भूषण और उनका साहित्य

लेखक

राजमल बोरा

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

आदरणीय सम्पादकजी
'समीक्षा' को सादर
समालोचनार्थ

— रामनलाल
३१/१२/१९६८

भूषण और उनका साहित्य

लेखक

डा० राजमल बोरा एम. ए., पी-एच. डी.

प्राध्यापक—हिन्दी-विभाग

श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
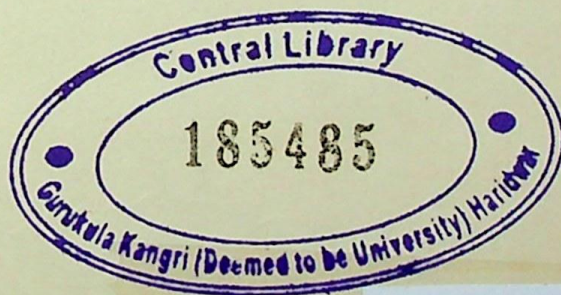
तिरुपति (आन्ध्र)

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

श्रद्धेय
डा० विजयपालसिंह
को
सादर

हमारी योजना

शोध एक साधना है। श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय का हिन्दी विभाग इस साधना की आरंभिक स्थितियों को पार कर रहा है। अहिन्दी क्षेत्रों में और विशेषत: दक्षिण में हिन्दी के शोध-कार्य की कुछ अनिवार्य सीमाएँ हैं। धीरे-धीरे सीमाएँ विलुप्त हो रही है : साधना सघन हो रही है।

विभागीय शोध-कृतियाँ को प्रकाशित करने की हमारी प्रकाशन-योजना का यह पंचम पुष्प है। डा० राजमल बोरा का पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध 'भूषण और उनका साहित्य' इस रूप में प्रस्तुत है। जहाँ तक इसके स्तर का प्रश्न है, मुझे विशेष नहीं कहना है। इस प्रबन्ध के निर्देशक के रूप में. मैं इतना ही कह सकता हूँ कि डा० बोरा मराठी स्रोतों से प्राप्त भूषण सम्बन्धी कुछ नवीन और अछूती सामग्री को प्रकाश में लाए हैं। इसके प्रकाश में पुराने निष्कर्षों का परीक्षण भी किया गया है और नवीन संकेत भी दिए गए हैं। प्रबन्ध के चिन्तन और प्रस्तुतीकरण को उचित स्तर प्रदान करने के लिए बोरा जी का अध्यवसाय प्रसंशनीय है।

जहाँ तक विभागीय शोध-साधना की दिशाओं का प्रश्न है, उनमें तीन मुख्य हैं : सैद्धान्तिक शोध, तुलनात्मक शोध तथा रीतिकालीन साहित्य के पुनर्मूल्यांकन से सम्बद्ध शोध। वैसे, आधुनिक विषयों पर भी शोध-कार्य हुआ और हो रहा है। रीति-कालीन साहित्य के एक प्रबल अपवाद भूषण के साहित्य और कृतित्व की पुनर्स्थापना ही प्रस्तुत प्रबन्ध का लक्ष्य है।

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ने इसको प्रकाशित करके एक प्रकार से अहिन्दी क्षेत्र के प्रति हिन्दी के प्रकाशक के एक दायित्व को ही पूर्ण किया है। अपनी योजना के यज्ञ में इस आहुति का मूल्य-महत्त्व में स्वीकार करता हूँ।

मेरा विश्वास है कि नवोदित शोधार्थी प्रस्तुत प्रबन्ध से प्रेरणा ग्रहण करेंगे और हिन्दी जगत में इस प्रयास का स्वागत होगा। अन्त में डा० राजमल बोरा के प्रति मैं अपनी शुभकामना प्रकट करता हूँ कि वे भविष्य में भी शोध-साधना में संलग्न रहें। इन शब्दों के साथ यह ग्रन्थ विज्ञ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

—डा० विजयपाल सिंह
एम. ए. (हिन्दी), एम. ए. (संस्कृत)
पी-एच. डी., डी. लिट्,
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति

प्राक्कथन

भूषण कवि की वीर-वाणी ने मध्ययुग की राष्ट्रीय चेतना को प्रतिध्वनित किया हैं। रीतिकालीन कवियों में उनका विशिष्ट स्थान है। अब तक यह कवि उपेक्षित रहा है। इस कवि के सम्बन्ध में जो कार्य हुआ है, वह फुटकर रूप में पत्र-पत्रिकाओं में एवं ग्रन्थावलियों की भूमिकाओं के रूप में है। स्वतन्त्र रूप से कुछ पुस्तकें भी मिलती हैं, किन्तु इनमें भी सारी सामग्री को एकत्रित रूप में देखने का प्रयास नहीं किया गया है। इस अभाव को पूर्ण करने के लिए यह शोध-प्रबन्ध लिखा गया है। मैं यह नहीं कहता कि भूषण के सम्बन्ध में यह अन्तिम कार्य है किन्तु इतना अवश्य कह सकता हूँ कि अब तक प्राप्त सामग्री को नए आलोक में देखने का प्रयास किया है। कम से कम विषय को और आगे बढ़ाने में यह प्रबन्ध सहायक होगा।

अपने इस कार्य में मुझे जिन महानुभावों से प्रेरणा एवं सहायता मिली है उनमें सर्वप्रथम श्रद्धेय डा० विजयपालसिंह, प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति का स्थान है। मैंने आपके तत्वावधान एवं निर्देशन में यह कार्य किया है। आपने केवल निर्देशन मात्र ही नहीं किया वरन् अन्य सभी प्रकार की सहायता एवं सुविधाएँ भी प्रदान की जिनके कारण यह कार्य पूरा हो सका है। आपके स्नेह एवं कृपा के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

मुझे नई सामग्री की खोज में तीन बार पूना की यात्राएँ करनी पड़ी हैं। १९६०, १९६१ और १९६७ ई० में। दो बार शोध-प्रबन्ध को उपाधि के लिए प्रस्तुत करने से पूर्व और तीसरी बार प्रेस में देने से पूर्व तथ्यों को फिर से एक बार देख लेने के लिए। तीनों ही बार मुझे भारत इतिहास संशोधक मंडल, पूना से सभी प्रकार की सहायता मिली है। इस सम्बन्ध में मैं महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदार एवं श्री गणेश हरि खरे का विशेष रूप से आभारी हूँ।

प्रबन्ध में प्रकाशित दो चित्र हैं, छत्रपति शिवाजी एवं महाराजा छत्रसाल बुन्देला के। इनमें प्रथम भारत इतिहास संशोधक मंडल, पूना के सौजन्य से प्राप्त हुआ है और दूसरा डा० भगवानदास गुप्त, झाँसी की कृपा से मिला है। दोनों के प्रति लेखक आभार प्रकट करता है।

इनके अतिरिक्त श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के सभी गुरुजनों एवं सहयोगियों से समय-समय पर सहायता मिली है। उनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा ने इस प्रबन्ध को प्रकाशित किया है। परिश्रम को प्रकाश में लाने का श्रेय प्रकाशक का है इस नाते उनका भी आभारी हूँ।

अपने ग्रन्थ के सम्बन्ध में और कुछ नहीं कहना है। जैसा है, विज्ञ पाठकों के सम्मुख है। इति नमस्कारान्ते।

हिन्दी विभाग,
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय
तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश)

—राजमल बोरा

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

परिस्थितियाँ

परिस्थितियाँ

१.१. युग की चेतना और भूषण

भूषण का सम्बन्ध भारतीय इतिहास के मध्यकाल से है (सत्रह्वीं शती)। यह काल सामन्तीय संस्कृति के पतन का काल ही कहा जा सकता है। इस काल में कला, संस्कृति और धर्म के क्षेत्रों में जीवन के आन्तरिक मूल्यों की अपेक्षा बाह्याचारों और रूपगत मूल्यों की प्रतिष्ठा अधिक हो गई थी। दुर्बल राजनीति जैसे अपने पैरों पर खड़ी नहीं रह पा रही थी। वह धर्म सापेक्ष होती जा रही थी। अकबर ने पूर्णतः नहीं तो अंशतः जिस धर्म निरपेक्ष राजनैतिक मार्ग का अवलम्बन करके शासक और शासित की भावनाओं के लिए एक सामान्य भावभूमि तैयार की थी, वह धर्मान्धता की आँधी को न सह सकी और असमय में ही भूमिसात् हो गई। जन-मन जिस ऐक्य के सूत्रों से कुछ दिनों से बँधकर चला आ रहा था, वे सूत्र छिन्न-भिन्न हो गये। यह समस्त भूमिका उस रक्तपात की है, जो धर्म या राजनीति के नाम पर बहुत दिनों तक चलती रही। यदि राजा अपनी प्रजा के साथ पक्षपात की दृष्टि से व्यवहार करने लगे और प्रजा के एक वर्ग को संरक्षण देने लगे और उसी से संतुष्ट हो जाय तो मानसिक और भौतिक संघर्ष का चरम बिन्दु पर पहुँच जाना स्वाभाविक है। इस परिस्थिति में न कला ही पूर्ण स्वस्थ रह सकती है और न जीवन ही। भूषण का जन्म इन्हीं प्रज्वलित ऐतिहासिक परिस्थितियों में हुआ। इस अस्तव्यस्त वस्तुस्थिति में कवि या तो तटस्थ रह कर अपने परिस्थिति निरपेक्ष बाह्यांग भूषित कवि-कर्म में निरत रह सकता था अथवा आपादमस्तक उनमें डूबकर उनकी व्याख्या और उचित दिशा का निर्देश भी कर सकता था। शोषित और पीड़ित वर्ग का यदि कवि प्रतिभा पर कोई अधिकार है और कवि का उनके प्रति कोई उत्तरदायित्व है तो कवि की निष्क्रियता उसकी प्रतिभा पर कलंक और उसकी संवेदना पर कुण्ठा बन सकती है। इस युग की पुकार को सुनने वाला और उससे आन्दोलित हो उठने वाला कवि निश्चित ही महान् होगा।

भूषण के युग की परिस्थितियाँ इतिहास के पृष्ठों पर मुखरित हैं। उस समय के इतिहास पर पर्याप्त रूप से लिखा गया है। अतः तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों का आकलन मात्र इतिहास के पृष्ठों के समान निर्जीव और तथ्यात्मक हो जायगा। रीतिकालीन हिन्दी साहित्य के अध्येताओं और शोधकों ने तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थिति का इस दृष्टि से विश्लेषण प्रस्तुत कर भी दिया है। यदि इतिहास के उन्हीं सत्य तथ्यों को पुनः चर्चित किया जाय तो अनावश्यक पुनरावृत्ति हो होगी। इतिहास का एक रूप वह भी है जो साहित्य में व्यक्त अव्यक्त रूप में प्रविष्ट हो जाता है। कहीं कहीं यह इतिहास इतना प्रच्छन्न होता है कि उसकी रेखाएँ अस्फुट ही रह जाती हैं किन्तु जो साहित्यिक युग की हलचल से बचता हुआ नहीं चलता उसके साहित्य में इतिहास की ये रेखाएँ विशेष रूप से उभर आती हैं। भूषण ने अपने युग की परिस्थितियों की चुनौती का स्वागत किया और जो कुछ लिखा वह परिस्थितियों के प्रति सजग और सचेष्ट होकर ही लिखा। अतः भूषण के काव्य में ऐतिहासिक तथ्यों की साहित्यिक सत्य के रूप में जो परिणति हुई है उसका आलेखन दर्पण के समान परिस्थितियों को अपने में प्रतिबिम्बित कर सकता है। जहाँ कल्पना या ऐतिहासिक अनुमानों का आभास होता है वहाँ जैसे ऐतिहासिक सत्य लुप्त न होकर अधिक मार्मिक सत्य के रूप में प्रकट हुआ है। हो सकता है कि भूषण ने इतिहास का समग्र रूप से पर्यवेक्षण न किया हो किन्तु यह असंदिग्ध है कि उसके काव्य में जो वातावरण प्रस्तुत किया गया है, वह अनैतिहासिक नहीं है, चाहे स्थूल घटनाएँ इतिहास के केन्द्र से हटकर उसकी साहित्यिक परिधि पर आ गई हों। यह भी सम्भव है कि शोषित के प्रति उमड़ता हुआ कवि-मन का रोष और भावावेश इतिहास के प्रस्तुतीकरण में कुछ पक्षपात करा गया हो किन्तु इस पक्षपात ने ऐतिहासिक वातावरण को इतना क्षत-विक्षत नहीं किया कि यथार्थ विकल हो उठे। प्रस्तुत अध्याय में यही देखने की चेष्टा की गई है कि इतिहास किस प्रकार और कितना भूषण के काव्य का अंग बना है। इसकी दो उपयोगिताएँ हैं—परिस्थितियों का स्पष्टीकरण और भूषण की राष्ट्रीयता के विचार की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना, जिसका विचार आगे किया गया है।

१.२. राजनैतिक परिस्थितियाँ

मध्यकाल में राजनैतिक व्यवस्था का मुख्य आधार व्यक्तिवादी निरंकुश राजतन्त्र था। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि—"इस प्रकार की व्यवस्था में शासक ही राष्ट्र के भाग्य का विधाता, युग चेतना का नियामक तथा कुछ सीमा तक एक विशिष्ट जीवन दर्शन का प्रतिपादक भी होता है। उसके सार्वभौम व्यक्तित्व में समस्त अधिकार केन्द्रित रहते हैं। जब शासक विजातीय हो तो इस वैयक्तिक

१.२.१. केन्द्रीय सत्ता

तत्त्व की निरंकुशता और भी बढ़ जाती है। उसकी दृष्टि यदि समन्वयवादी न हुई तो शासक तथा शासित का सम्बन्ध केवल शोषक और शोषित का रह जाता है।"[1] भूषण के समय में भारत का सम्राट् औरंगजेब ऐसा ही शासक था। वह कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसे समस्त मुसलमान जाति की भी समर्थन प्राप्त न था। शियाओं का वह विरोध करता था। मुसलमानों का यह वर्ग योग्य और सुसंस्कृत होने पर भी उसके पक्षपात का शिकार हो गया। फलतः सम्राट् को मुसलमानों में भी योग्य व्यक्तियों का सहयोग कम मिला। उसने अपने पिता को कैद किया और भाइयों को धोखे से मार डाला और फिर सिंहासनारूढ़ हुआ।[2] दारा सूफियों का समर्थक था किन्तु औरंगजेब उसका भी विरोध करता था। सामान्य मुस्लिम जनता और कतिपय हिन्दू भी सूफियों के प्रति श्रद्धा का भाव रखते थे। औरंगजेब की अनुदार धार्मिक नीति ने हिन्दुओं को तो असंतुष्ट किया ही मुस्लिम जनता के एक बहुत बड़े भाग को भी असंतुष्ट किया। सम्राट् को फलतः अपने विश्वासी व्यक्ति कम मिले। जो योग्य थे, वेउसकी धार्मिक नीति या धर्मान्धता के कारण अविश्वास के पात्र हो गये थे। जिन पर वह विश्वास करना चाहता था, वे अयोग्य थे। विश्वसनीय एवं योग्य व्यक्तियों के अभाव में उसका शासन अधःपतन के मार्ग की ओर अग्रसर होने लगा। उसके अधीन जितने भी छोटे-छोटे राज्य थे, वे सब उससे आतंकित रहते थे, राजपूतों ने तो बाह्य रूप से हार स्वीकार कर ली थी—चाहे आन्तरिक रूप से पराजय का क्षोभ उन्हें विद्रोह की आग में जला रहा हो, पर विवशता उस कुण्ठा को जटिल से जटिलतर बना रही थी। यदि क्रान्ति होती तो उसे उनका मानसिक समर्थन अवश्य प्राप्त होता। ये अधीन राजा किसी प्रकार अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहते थे। परिणामतः नजराने या भेंट देकर या "चाकरी" करके वे सम्राट् को प्रसन्न रखना चाहते थे। उदयपुर के

१. २. २. केन्द्रीय सत्ता के अधीन राव-राजा

---

१. **हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, सं० डाक्टर नगेन्द्र, पृ० ३**

२ **"किबले के ठौर बाप बादसाह साहजहाँ,**
वाको कैद कियो मानो मक्के आगि लाई है।
बड़ो भाई दारा वाकों पकरिकै मारि डार्‌यो,
मेहरहू नाहिं मा को जायो सगो भाई है।।
खाइकै कसम त्यौं मुराद को मनाइ लियो,
फेरि ताहू साथ अति कीन्हीं तैं ठगाई है।
भूषन सुकबि कहै सुनो नवरंगजेब,
ऐसे ही अनीति करि पातसाही पाई है।।
भूषण—पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५४१

महाराणा भी अपनी परम्परा को भूल गए थे । हाड़ा (कोटा बूँदी के राजा), राठौड़ (जोधपुर के राजा), कछवाहे (जयपुर के महाराजा) और गौरवंशीय क्षत्रिय भी औरंगजेब का चँवर ढुलाते थे ।[१]

यह एक प्रकार से अत्रपतित सामन्तों का युग था । औरंगजेब के दरबार में बहुत से सामन्त थे । इनके अधीन राज्य के छोटे-छोटे भाग रहते थे । उनके पास उनकी अपनी सेना होती थी । उन्हें पंचहजारी, छःहजारी आदि मनसब दिए जाते थे ।[२] मध्ययुग की सामन्त व्यवस्था का दोष बतलाते हुए पं० राजबली पांडेय ने लिखा है—"मध्ययुग में राजनैतिक विशृंखलता, अनिश्चितता और अरक्षा के कारण इस सामन्ती व्यवस्था को अधिक प्रोत्साहन मिला । परस्पर युद्ध और संघर्ष के कारण सेनाओं का आवागमन लगा रहता था और लूटमार हुआ करती थी ।"[३]

१.२.३. केन्द्रीय सामन्त

भूषण के काव्य में इनकी दुरवस्था का सजीव चित्रण हुआ है । ये सामन्त मुगल सम्राट् से सुरक्षित होकर विलासितापूर्वक जीवन व्यतीत करते थे । इस समय प्रजा पर दुहरे शासन की चक्की चल रही थी । आर्थिक भेंटों से बादशाह को प्रसन्न रखने और अपनी विलासिता की दिनों दिन बढ़ती प्यास को सन्तुष्ट करने के लिए सामन्त लोग निरीह प्रजा का निर्मम शोषण करते थे । इधर दिल्ली भी प्रजा पर कर लादती थी । इस प्रकार दुराज[४] में पड़ी हुई प्रजा आर्थिक दृष्टि से कुण्ठित और राजनैतिक दृष्टि से उदासीन जीवन व्यतीत करती थी । सामन्तों का काम अपने अधीन प्रजा को लूटना और सम्राट् को प्रसन्न रखना रह गया था और ये इसी में अपना हित समझते थे । इनकी बेगमें इन्हें युद्ध में जाने से रोकतीं और इन्हें विलासिता में मग्न रखतीं । "आम-खास" में बैठना, बेगमों के साथ आमोद-प्रमोद करना आदि ये अपना

---

१. "अटल रहे हैं दिगअन्तन के भूप,
धरि रैयत को रूप निज देस पेस करिकै ।
राना रह्यौ अटल बहाना धरि सुलह को,
बाना धरि भूषन कहत गुन भरिकै ॥
हाड़ा राठवर कछवाहे गौर और रहे,
अटल चिकत्ता की चमाऊ धरि डरिकै ।
अटल सिवाजी रह्यौ दिल्ली कों निदरि,
धीर धरि ऐंड धरि गढ़ धरि तेग धरिकै ॥१२०॥ 'भू० मि०'

२. "पंच-हजारिन बीच खरा किया मैं उसका कुछ भेद न पाया ।
—छं० सं० १६१ 'भू० मि०'

३. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, प्रथम भाग, सं० राजबली पांडेय, पृ० ३७

४. दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यौं न बढ़ै दुख दंदु ।
अधिक अँधेरो जग करत, मिलि मावस रवि-चंदु ॥३५७॥ बिहारी-रत्नाकर

काम समझते थे।[१] शाईस्तखाँ की असावधानी और विलासिता का लाभ शिवाजी ने उठाया। उसने दो सौ सवारों के साथ लाख सवारों का सामना किया।[२] सामन्तों की इसी दुर्बलता के कारण औरंगजेब को बार-बार परेशान होना पड़ता था। दक्षिण में जो मुगल-सूबेदार या सेनापति नियुक्त होकर उत्तर से आते थे वे शिवाजी की छोटी सी सेना का सामना करने में असमर्थ रहते। फलतः सम्राट् को हर समय दक्षिण का सूबेदार बदलना पड़ता था।[३] इस प्रकार भूषण की कविता में मुगल सूबेदारों और सामन्तों का जो जीवन प्रतिनिम्वित हुआ है, वह तत्कालीन मुगल साम्राज्य की जर्जरता का चित्र प्रस्तुत करता है। इस सामन्तवादी प्रथा के कारण देश का राजनैतिक विघटन हुआ और जनता की दृष्टि से देश की एकता की भावना का लोप होता गया। स्थानीयता और व्यक्तिवाद को प्रोत्साहन मिला। साथ ही सामन्तों द्वारा अपनी सत्ता बनाये रखने के प्रयत्न के कारण उनका प्रजाहित और जन-कल्याण का दृष्टिकोण गौण होता गया।

---

१. छूटत हुलास आम खास एक संग छूटे,
हरम सरम एक संग बिन ढंग ही।
नैनन को नीर धीर छूटे एक संग छूटे,
सुख रुचि मुख-रुचि त्यौं ही एक रंग ही॥
भूषन बखानै सिवराज मरदाने तेरी,
धाक बिललाने न गहत बल अंग ही।
दच्छिन को सूबा पाइ दिल्ली के उजीर तजी,
उत्तर की आसा जीव-आसा एक संग ही॥
—भू० मि०, छंद सं० १३७

२. मनसबदार चौकीदारन गँजाय, महलन में
मचाय महाभारथ सो भार को।
तो सौ को सिवाजी जिहि दो सौ आदमी सों
जीत्यौ जंग सरदार सौ हजार असवार कौ॥
—भू० मि०, छन्द सं० १७४

३. यों पहिले उमराव लरे रन जेर कियो जसवन्त अजूबा।
साइत खाँ अरु दाउद खाँ पुनि हारि दिलेर महम्मद डूबा॥
भूषन देखें बहादुर खाँ पुनि होय महावत खाँ अति ऊबा।
सूखत जानि सिवाजू के तेज तें पान से फेरत औरंग सूबा॥
—भू० मि०, छन्द सं० ४६४

राजनैतिक दृष्टि से उस समय की जनता जागरूक नहीं थी। एक प्रकार से वह 'कोउ नृप होहि हमहिं का हानी। चेरी छाँडि कब होउ की रानी।'' वाली मनोवृत्ति का परिचय दे रही थी। औरंगजेब की धार्मिक नीति से जनता अप्रसन्न अवश्य थी किन्तु उनकी अप्रसन्नता ने क्रान्ति का प्रबल रूप नहीं लिया।

१.२.४. जन भावना

डाक्टर ताराचन्द लिखते हैं—"परन्तु एक बात स्मरण रखने योग्य है। वह यह कि हिन्दुओं को कभी इस बात का अनुभव नहीं हुआ कि उनके साथ जो बुरा सुलूक हुआ उसके कारण हिन्दू मात्र को सम्राट् के विरुद्ध विद्रोह करना चाहिए। उन्होंने इस नीति का न कोई प्रतिवाद किया और न युद्धों में सम्राट् का पक्ष छोड़ा। औरंगजेब के सभी युद्धों में चाहे वह हिन्दू जाति या हिन्दू वर्गों के विरुद्ध रहे हों, हिन्दू सेनापति अपने स्वामी के पक्ष में लड़ते रहे। राजपूत, बुन्देले, मराठा और सिख अधिकारी राजपूत, बुन्देलों, मराठा, सिख और सतनामी दलों के विरुद्ध औरंगजेब के सम्पूर्ण शासन काल में बराबर लड़े। हिन्दू जनता का उसके शासन के विरुद्ध कोई आन्दोलन नहीं हुआ····कारण यह था कि उस काल के लोग धर्म को निजी और व्यक्तिगत बात समझते थे। धर्म का सम्बन्ध उनके सार्वजनिक तथा राजनैतिक जीवन से न था। इस प्रकार किसी हिन्दू के लिए अहिन्दू के नेतृत्व में मुसलमान के विरुद्ध लड़ना कोई लज्जा की बात नहीं समझी जाती थी। न हिन्दुओं और मुसलमानों में देश-भक्ति का भाव ही था। यदि कोई बन्धन वह स्वीकार करते थे तो वह वंश का और स्वामिभक्ति का था, अर्थात् जिनमें रक्त का सम्बन्ध था या जिनका नमक खाया था, उनकी वफादारी आवश्यक थी। और कभी-कभी व्यक्तिगत उन्नति और स्वार्थ सिद्धि के लिए इनकी भी उपेक्षा की जाती थी।''[१] डाक्टर ताराचन्द के कथन में सच्चाई है। हिन्दू जनता धार्मिक अत्याचार से पीड़ित होने पर भी राजनैतिक दृष्टि से इतनी जागरूक नहीं हुई थी कि औरंगजेब का तख्ता उलट दे। यही कारण था कि औरंगजेब के जीवन काल में मुगल-साम्राज्य को धक्का नहीं लगा। राव-राजा आपस में ही लड़ते रहे। हिन्दुओं में फूट थी।[२]

इस परिस्थितियों में राजनैतिक प्रतिक्रिया का किसी न किसी रूप में होना एक प्रकार से आवश्यक हो गया था। दक्षिण में छत्रपति शिवाजी और तदनन्तर उत्तर में छत्रसाल बुन्देला इस प्रतिक्रिया के नायक हुए। ये दोनों जन-प्रवृत्ति के अनुकूल अन्याय दमन में तत्पर हुए और दोनों ने ही सम्राट् की महान् शक्ति

१. २. ५. प्रतिक्रिया

---

१. हिन्दुस्तान के निवासियों का इतिहास।
—डा० ताराचन्द (१९४९ ई० वाला संस्करण), पृ० २३३ और २३४

२. आपस की फूट ही तें सारे हिन्दुवान टूटे········।
—भू० मि०, छन्द सं० ४७७

का सामना किया। ये दोनों नायक राष्ट्रनायक थे। इनके सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि ये हिन्दू-धर्म के रक्षक होने पर भी इस्लाम के द्रोही नहीं थे। औरंगजेब से इनका विद्रोह उसकी धर्मान्धिता जन्य जनता के साथ किए गए अत्याचार के प्रति था।

१. २. ६. विदेशी कोठियाँ

इस समय विदेशियों की कोठियाँ भारत में स्थापित हो गई थीं। विदेशी लोग यहाँ पर व्यापार करने की दृष्टि से ही आए थे किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से देश की राजनीति पर भी उनका प्रभाव पड़ना इन्हीं दिनों आरंभ हो गया था। भूषण के काव्य में इनके उल्लेख मिलते हैं। "फिरंगी" शब्द का प्रयोग प्रायः विदेशियों के लिए ही किया गया है। विदेशियों की ये कोठियाँ पहले समुद्र के किनारों पर विशेषतः दक्षिण भारत में स्थापित हुईं। शिवाजी से उनका संघर्ष होना स्वाभाविक था। शिवाजी ने सूरत की कोठियाँ लूट लीं और इनमें उन्हें काफी धन-माल मिला।[1] सूरत मुगलों के अधीन था। वे इन कोठियों की रक्षा नहीं कर सके। औरंगजेब ने इन कोठियों को व्यापार करने की सुविधा दी थी।[2] विदेशियों की कोठियों में छोटी सी सेना भी रहती थी। ये सेना प्रशिक्षित होती थी किन्तु इनका उपयोग राजनैतिक दृष्टि से नहीं होता था। अपने व्यापार की सुरक्षा की दृष्टि से ही इनका उपयोग होता था। शिवाजी के आतंक से ये कोठियाँ थर्राती थीं और इसीलिए समय समय पर शिवाजी को नजराने भेजा करती थीं।[3] मुगल सरदार भी शिवाजी से लड़ने में घबराते थे। वे औरंगजेब से प्रार्थना भरे स्वर में कहते—कहो तो विदेशी कोठियों को जीत लें, भले ही इसमें हमारे प्राण चले जाएँ किन्तु कृपया हमें शिवाजी से लड़ने मत भेजिये।[4]

---

१. सूरत को कूटि सिवा लूटि धन लै गयो........।

—भू० मि०, छन्द सं० ४७३

२. औरंगजेब, यदुनाथ सरकार, पृ० ५१९, ५२० और ५२१

३. पेसकस भेजत बिलाइत पुरतगाल,
नीकी जिहाजन ह्वै करनाटक दली है........।

—भू० मि०, छन्द सं० २३८

४. पूरब के उत्तर के प्रबल पछाँह हू के सब पातसाहन के गढ़-कोट हरते।
भूषन कहैं यौं अवरंग सों उजीर, जीति लेबे कौं पुरतगाल सागर उतरते॥
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम-काज, हजरत हम मरिबे कौं नाहि डरते।
चाकर ह्वै उजर कियौ न जाय नेक पै कछू दिन उबरते तौ घने काम करते॥

—भू० मि०, छन्द सं० १६३

मुगलों की अपेक्षा शिवाजी अधिक दूरदर्शी थे। वे जानते थे कि इन विदेशियों का आगमन भारत-भूमि के लिए अहितकर है, उनसे लड़ने के लिए समुद्री बेड़े की आवश्यकता है, इसीलिए उन्होंने अपना बेड़ा भी तैयार किया और उन्हें हराया भी जब कि मुगल शिवाजी के विरुद्ध उनकी सहायता करते रहे। इन्द्र विद्यावाचस्पतिजी लिखते हैं—"उधर औरंगजेब ने शिवाजी की शक्ति का दमन करने के लिए अबीसीनियन बेड़े को सहायता भेजी, जिसने मराठा बेड़े का बहुत सा हिस्सा नष्ट कर दिया परन्तु शिवाजी ने लड़ाई बन्द न की और सीदियों की शक्ति को कम करने का प्रयत्न जारी रखा।"[1] आगे चलकर शिवाजी ने बेड़े पर पूर्णत: विजय प्राप्त की। शिवाजी की इस दूरदर्शिता के सम्बन्ध में वाचस्पतिजी लिखते हैं—"इस प्रकार शिवाजी ने थोड़े ही वर्षों में जहाजी बेड़ा बनाकर उसे इतना मजबूत बना दिया कि वह मुगल, सीरी, अँग्रेज और पुरतगाल जातियों से टक्कर ले सके। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस दूरदर्शी महापुरुष की कल्पना ने देख लिया था कि हिन्दुस्तान का भविष्य निर्णय मैदान पर नहीं—समुद्र पर होगा।"[2] विलायती लोग शिवाजी से थर्राते थे,[3] शिवाजी की एक विशेषता यह भी थी जो उन्हें जातीयता की अपेक्षा राष्ट्रीयता का पद प्रदान करती है।

१.३ सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

ऐतिहासिक दृष्टि से यह युग सांस्कृतिक मिश्रण, बाह्य उच्चवर्गीय संस्कृति के शास्त्रीय विकास, आन्तरिक रूप से सांस्कृतिक जर्जरता और पतित सामन्तवादी युग की विलासिता से पूर्ण था। यही कारण है कि काव्य के रूपों, वास्तु आदि कलाओं तथा वेश-भूषा का चरम इस युग में मिलता है। शास्त्रीय विधान सम्भवत: मध्ययुग में न इतना कभी उभरा और न इतना अलंकृत हुआ। इस सांस्कृतिक विकास का सम्बन्ध समाज के उच्चस्तर से ही था। सामान्य जन जैसे रूढ़ संस्कारों को ढोता हुआ नवीन आलोक के अभाव में भटक सा रहा था। भूषण के काव्य में जो सांस्कृतिक चित्र मिलते हैं, उसमें मुगलकालीन विलासिता, वैभव और कृत्रिम जीवन के रंग अधिक उभरे हुए हैं; उन पर एक हलका सा व्यंग बनकर भूषण की कविता इनके चित्रण में प्रवृत्त हुई।

---

१. मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण।

—इन्द्र विद्यावाचस्पति, पृ० ३१४

२. वही, पृ० ३१५

३. गोलकुण्डा, बीजापुर हबस पुरतगाल, बलख बिलाइत दिली में दहसति है…… ।

—भू० मि०, छन्द सं० ४६०

भूषण पर काव्यगत शास्त्रीयता का प्रभाव स्पष्ट झलकता है क्योंकि रीतिकालीन कवियों की लक्षण-निरूपण पद्धति उसमें है। इस नाते काव्य के मंगलाचरण के रूप में कुछ देवताओं का भी उल्लेख हुआ है। उन देवताओं का जन-जीवन से भी अवश्य सम्बन्ध था, पर भूषण ने कुछ का मंगलाचरण परम्परा निर्वाह के लिए भी किया है और कुछ का चित्रण लोक-सांस्कृतिक दृष्टि से। कुछ देवता उपमान बनकर भी आए हैं, पर साभिप्राय। भूषण ने शिवराज-भूषण में मंगलाचरण में गणेश जी की स्तुति की है।[1] गणेश जी की वन्दना सर्व देवों में प्रथम की जाती है। स्वयं गोस्वामी तुलसीदास ने भी विनय पत्रिका में सर्वप्रथम गणेश जी की ही वन्दना की है।[2] गणेश पूजा का हिन्दू संस्कृति में बड़ा महत्त्व है, महाराष्ट्र में आज भी गणपति पूजा लोकप्रिय है, अब भी हिन्दू संस्कृति में विश्वास करने वाले किसी कार्य का आरम्भ करने से पूर्व गणेश जी की वन्दना करते हैं, गणेशजी के बाद भूषण ने भवानी की भी स्तुति की है।[3] लोक में भवानी शक्ति की प्रतीक है, और इसी आधार पर आधिदैविक तत्त्व के रूप में भवानी का सम्बन्ध शिवाजी से जोड़ दिया गया है, महाराष्ट्र में किंवदन्ती है कि भवानी ने प्रसन्न होकर शिवाजी को तलवार दी थी। आज भी महाराष्ट्र में अनेक घरों में ऐसे चित्र देखे जा सकते हैं, जिनमें शिवाजी दुर्गा भवानी के सामने घुटने टेके बैठे हैं और भवानी उन्हें तलवार दे रही है। दुर्गा या भवानी की वन्दना शक्ति की वन्दना है। भूषण चाहते हैं कि देवी से शिवाजी को अपार बल प्राप्त हो और उस शक्ति का उपयोग जनता-जनार्दन की

१. ३. १. मंगलाचरण

---

१. अकथ अपार भवपंथ के बिलोकौ स्रमहरन करन बीजना से बरम्हाइयै।
यह लोक परलोक सफल करन कोकनद से चरन हियें आनिकैं जुड़ाइयै॥
....
....भगत मन-रंजन द्विरदमुख गाइयै॥
—भू० मि०, छन्द सं० १

२. गाइये गनपति जगवन्दन, संकर-सुवन-भवानी-नन्दन।
—विनय पत्रिका, तुलसी० १

३. जयति जयति जय आदि सकति जय कालि कपर्दनि।
जय मधु-कैटभ-छलनि देबि जय महिषहि मर्दनि॥
....
....
....
सरजा समत्थ सिवराज कहिं देहि बिजय जय जगजननि॥
—भू० मि०, छंद सं० २

सेवा में हो। भूषण दुर्गा की वन्दना करते समय अपने लिए कुछ नहीं माँगते। गोस्वामी जी जिस प्रकार विनयपत्रिका में देवताओं की स्तुति करने के बाद अन्त में उनसे यही याचना करते हैं कि— "बसहु रामसिय मानस मोरे" उसी प्रकार भूषण भवानी से यह याचना करते हैं कि—"सरजा समथ्थ सिवराज कहि देहि बिजय जय जगजननि"। भवानी की स्तुति के बाद भूषण ने सूर्य की स्तुति की है।[1] सूर्यवंश में भगवान राम अवतरित हुये और उन्होंने संसार के पापियों का संहार किया। उसी तरह शिवाजी भी उसी वंश में अवतरित हुए हैं और वे भी अत्याचार का विरोध करने वाले हैं। इस सम्बन्ध में भूषण के काव्य में अनेक उदाहरण मिलते हैं। इसीलिये भूषण ने प्रथम सूर्य की स्तुति की और तत्पश्चात् उस वंश का महत्त्व बतलाते हुये यह कहा कि शिवाजी भी उसी वंश में अवतरित हुये हैं—

१. ३. २. अवतारवाद

राजत है दिनराज को बंस अवनि-अवतंस।
जामें पुनि पुनि अवतरे कंसमंथन प्रभु-अंस।
महाबीर ता बंस में भयौ एक अवनीस।
लियौ बिरद सीसौदियौ दियौ ईस को सीस।[2]

तत्पश्चात्—

उदित होत सिवराज के मुदित भए द्विज देव।
कलिजुग हट्यौ मिट्यौ सकल म्लेच्छन कौ अहमेव।।[3]

किसी जाति के पतनोन्मुख होने पर उसकी पौराणिक भावना अधिक प्रबल हो जाती है। इसी सांस्कृतिक भावना का उपयोग करते हुए भूषण ने भी शिवाजी के व्यक्तित्व के आसपास एक पौराणिक ताना-बाना बुन दिया है। यह जनता की पौराणिक वृत्ति को सन्तुष्ट भी करता है और शिवाजी को लोकप्रिय बनाने में समर्थ भी। इसीलिए भूषण ने सूर्यवंश से उनका व्यक्त-अव्यक्त सम्बन्ध जोड़ा है। पुराण की अनेक कथाएँ इनके काव्य में मिलती हैं। इन कथाओं का उल्लेख मात्र है और उनका उपयोग शिवाजी के गौरव वर्णन एवं यश-वर्णन के लिए ही किया गया है—

---

१. **तरनि तचत जलनिधि तरनि जय जय आनँद ओक।**
कोक-कमलकुल-सोकहर, लोक-लोक आलोक।।

—भू० मि०, छन्द सं० ३

२. **भूषण, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ४ और ५**

३. **वही, छं० सं० १२**

दारुन दइत हरनाकुस बिदारिबे कौं भयौ नरसिंह रूप तेज बिकरार है।
भूषन भनत त्यौं ही रावन के मारिवे कौं रामचन्द भयौ रघुकुल सरदार हैं॥
कंस के कुटिल बल-बंसन विधंसिवे कौं भयौ जदुराय बसुदेव को कुमार है।
पृथी-पुरहूत साहि के सपूत सिवराज म्लेच्छन के मारिबे कौं तेरो अवतार है॥[1]

डाक्टर कपिलदेव पाण्डेय ने लिखा है—"अवतार-प्रतीक प्रतिभा और प्रातिभ ज्ञान की अपेक्षा आस्था और विश्वास की देन है। महाकाव्य एवं मध्य-कालीन युग की जनता धर्म-प्रवर्तकों, युग-प्रवर्तकों, वीरों, नेताओं तथा अन्यान्य महापुरुषों को विष्णु जैसे दिव्य देव या देव शक्ति का अवतार मानती रही है। इन प्रतीकों में उद्भव युग की विशेषताओं के साथ आने वाले अनेक युगों की अर्थवत्ता उन पर लादती चली जाती है। अवतार प्रतीकों में प्रतीकात्मक ढंग से युग विशेष की आवश्यकताएँ, विवशताएँ तथा रुदन-क्रन्दन और हर्षोल्लास समाहित रहते हैं।"[2], यही बात भूषण के काव्य में भी है। कवि पौराणिकों के द्वारा अपने नायक को अधिक परिचित और लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न करता है। यह एक प्रकार के पुराणों का प्रत्याह्वान है। यह प्रत्याह्वान पुराणों की तद्वत नकल नहीं है बल्कि इसमें युग की रचनात्मक प्रवृत्ति भी सन्निविष्ट है। इस प्रवृत्ति के आधार पर अनुभूति को तीव्र और मार्मिक बनाने का प्रयत्न किया गया है।

शिवाजी के समकालीन लिखे गये ग्रन्थों में चार और ऐसे ग्रन्थ उपलब्ध हैं जिनमें शिवाजी को अवतारी पुरुष माना गया है: (१) कवि परमानन्द कृत—"शिवभारत", (२) जयराम पिण्येड्कृत—"पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान", (३) रघुनाथ पंडित कृत—"राज व्यवहार कोश" और (४) सम्भाजी कृत—"बुधभूषण"। इन चारों ग्रन्थों में शिवाजी महाराज के अवतारत्व का वर्णन विस्तारपूर्वक करते हुए यह कहा गया है कि शिवाजी विष्णु के अवतार हैं।[3] इन सब के समान भूषण ने

---

१. **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३९५**

२. **मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद, डा० कपिलदेव पाण्डेय, पृ० ७१९**

३. **"शिवकालीं लिहिलेल्याग्रन्थांतून "महाराज विष्णूचा अवतार होते" असे उल्लेख सांपडतात। शिवभारताप्रमाणेंच जयराम कृत 'पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान', रघुनाथ पंडित कृत 'राजव्यवहारकोश' व संभाजी (महाराजांचा मुलगा) यानीं केलेला 'बुध भूषण' ग्रन्थ वगैरह शिवकालीन ग्रन्थांत त्यांना "विष्णूचा अवतार" असे म्हटलें आहे —अर्थात् शिवाजी के समकालीन लिखे गये ग्रन्थों में "महाराज विष्णु के अवतार थे" ऐसे उल्लेख मिलते हैं। शिवभारत के समान जयरामकृत पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान, रघुनाथ पंडित कृत राजव्यवहारकोश और**

भी शिवाजी को अवतारी पुरुष कहा है। सदाशिव महादेव दिवेकर का कहना है कि शिवाजी को विष्णु का अवतार मानना कवि के शिवाजी के समकालीन होने का द्योतक है। उपर्युक्त चारों बतलाये गये ग्रन्थ शिवाजी के समय में ही लिखे गये हैं। बाद में जो ग्रन्थ लिखे गये हैं, उनमें ऐसी कल्पना और मान्यता नहीं मिलती। बाद के ग्रन्थों में उन्हें शंकर का अवतार माना गया है। जैसे "सप्त प्रकरणात्मक चरित"। इसी को चिटणीस बखर भी कहते हैं। "शिव दिग्विजय" भी इसी प्रकार का ग्रन्थ है।[1]

युद्ध के वर्णन में प्रायः कालिका देवी का उल्लेख किया गया है। दुर्गा या भवानी के पति भूतनाथ को भी स्मरण किया गया है। भूतनाथ अपने रूप में चित्रित हैं—

प्रेतिनी-पिसाचरु निसाचर-निसाचरहू, मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई है।
भैरो भूत-प्रेत भूरि भूधर-भयंकर-से, जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमाति जोरि आई है॥
किळकि किळकि कै कुतूहल करति काली, डिम-डिम डमरू दिगम्बर बजाई है।
सिवा पूछैं सिव सों समाज आजु कहाँ चली, काहू पै सिवा-नरेस भृकुटी चढ़ाई है॥[2]

\+ \+ \+

संभाजी कृत (महाराज के पुत्र) बुधभूषण आदि शिवाजी के समकालीन लिखे गये संस्कृत ग्रन्थों में उन्हें "विष्णु का अवतार" कहा गया है।"

—देखिए शिवभारत (परमानन्द कविकृत), सम्पादक—सदाशिव महादेव दिवेकर, प्रकाशन तिथि शक संवत् १८४६ ; भारत इतिहास संशोधक मण्डल द्वारा प्रकाशित उपोद्घात में सम्पादक द्वारा, पृ० १७

१. "परन्तु शिवाजी महाराजांच्या वर्णनासंबंधीचे जे उत्तरकालीन लेख उपलब्ध आहेत त्यांत विष्णूच्या अवताराची कल्पना कोठेंहि उल्लेखलेली सांपडत नाहीं। उलट महाराज हे "शंकराचे अवतार होते" असे आढलते, या गोष्टीची "सप्तप्रकरणात्मक चरित्र" "शिविदिग्विजय" वगैरे बहुसंख्यक ग्रन्थ साक्ष देत आहेत।"—अर्थात् किन्तु शिवाजी महाराज के वर्णनों से सम्बन्धित उत्तर-कालीन जो लेख उपलब्ध हैं, उनमें विष्णू के अवतार की कल्पना का कहीं भी उल्लेख नहीं हैं, इसके विरुद्ध "महाराज शंकर के अवतार थे।" ऐसे उल्लेख ही मिलते हैं। सप्तप्रकरणात्मकचरित्र और शिवदिग्विजय दोनों ग्रन्थ इस बात की साक्ष देते हैं—शिवभारत, सं० स० म० दिवेकर, उपोद्घात, पृ० १७

२. भूषण, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ४१३.

आमिष-अहारी माँसहारी दै-दै तारी नाचैं,
खाँड़े तोड़े किरचैं उड़ाए सब तारे से ।[1]

भूषण की कविता में देवी देवता के प्रति जो उल्लेख मिलते हैं, उससे ये बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दू जनता में देवी-देवताओं के प्रति ये मान्यताएँ प्रचलित थीं और जनता का इनमें विश्वास था । ये वे सांस्कृतिक उपादान हैं जिनका विविध महत्त्व है । एक तो भावनाओं को विस्तार प्राप्त होता है और दूसरे काव्य-शैली को लोकप्रिय बनाया जा सकता है । रीतिकालीन अन्य कवियों के काव्य में इन सांस्कृतिक उपादानों का अभाव सा हो गया था । यही भक्तिकालीन कवियों की शक्ति थी। भूषण में उनका फिर से उत्थान मिलता है । अतः उनकी शैली अधिक लोकप्रिय हो सकी । चाहे अवान्तर रूप में ही इनका प्रयोग हो, पर भूषण की राष्ट्रीय वाणी की यह सांस्कृतिक पृष्ठभूमि बन गई ।

यह युग घोर अव्यवस्था का युग था । समाज में उच्चवर्ग और निम्न वर्ग के बीच एक बहुत बड़ी खाई बन गई थी । उच्चवर्ग अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए

१. ३. ३. सामाजिक अव्यवस्था

जनता पर अत्याचार करता था । प्रजाहित और जन-कल्याण का भाव तत्कालीन शासकों में नहीं था । कुलीन वर्ग का भी नैतिक दृष्टि से पतन हो गया था । यदुनाथ सरकार ने इस सम्बन्ध में लिखा है—"मुगल अमीरों के नैतिक पतन का एक बहुत ही अर्थपूर्ण उदाहरण हमें वजीर के पौत्र तफख्खुर के चरित्र में मिलता है । अपने साथी गुण्डों को लेकर वह दिल्ली में अपने महलों से निकलता और तब बाजार में दुकानों को लूटता तथा डोलियों में बैठकर नगर की आम सड़कों पर से निकलने वाली या यमुना नदी की ओर जाने वाली हिन्दू स्त्रियों को उड़ाकर उनके साथ व्यभिचार करता था, फिर भी न तो वहाँ कोई ऐसा शक्ति-शाली या साहसी न्यायाधीश ही था जो उसे दण्ड दे सकता और न ऐसे अत्याचारों को रोकने के लिए वहाँ पुलिस का कोई समुचित प्रबन्ध ही था ।"[2] भूषण ने भी इस प्रकार की अवस्था का चित्रण किया है—

बैठतीं दुकान लैकै रानी रजवारन की,
तहाँ आइ बादसाह राह देखै सबकी ।
बेटिन को यार और यार है लुगाइन को,
राहन के मार दावादार गए दबकी ।।

---

१. **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४१४**

२. **औरंगजेब, यदुनाथ सरकार, पृ० ५८५**

ऐसी कीन्ही बात तोऊ कौऊवै न कीन्ही घात,
भई है नादानी वंस छत्तिस में कबकी।
दच्छिन को नाथ ऐसी देखि धरे मूँछो हाथ,
सिवाजी न होतो तो सुनति होती सबकी ॥[1]

औरंगजेब ने अपने शासन का बहुत बड़ा भाग युद्धों में बिताया। इससे उसके साम्राज्य की आर्थिक स्थिति बहुत बिगड़ गई। इस समय की आर्थिक स्थिति का बड़ा ही दयनीय चित्र खींचते हुए यदुनाथ सरकार ने लिखा है "अपनी अन्तिम चढ़ाई के बाद जब सन् १७०५ में औरंगजेब वापस लौटा तब तक सारा देश बरबाद होकर पूर्णतया वीरान हो चुका था। उन प्रान्तों के खेतों में न तो फसलें रही थीं और न कोई वृक्ष ही। उनके स्थान पर वहाँ सब ओर मनुष्यों और ढोरों की हड्डियाँ बिखरी पड़ी थीं।" (मनुची) यों उस प्रदेश में दूर-दूर तक के जंगलों के बिलकुल ही कट जाने से वहाँ की खेती पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। युगों तक निरन्तर चलने वाले इन युद्धों से साम्राज्य का कोष बिलकुल ही खाली हो गया तथा वहाँ के अन्य नागरिक भी दरिद्री हो गए, अतएव आवश्यक द्रव्य के अभाव में बहुत अधिक समय बीतने पर भी मकानों या सड़कों की दुरुस्ती नहीं हो सकती थी।"[2] देश के इस आर्थिक त्रास के कारण सभ्यता और संस्कृति का अनुदिन ह्रास होता गया।

१. ३. ४. केन्द्रीय सत्ता की धार्मिक नीति

भूषण के काव्य में मुख्यतः हिन्दू और इस्लाम दो धर्मों का वर्णन मिलता है। इस्लाम धर्म का समर्थक, संरक्षक, प्रचारक और हिन्दू धर्म का कट्टर विरोधी औरंगजेब उन दिनों मुगल सम्राट् था। हिन्दू धर्म पर इस्लाम के अत्याचार इससे पहले भी हुए। महमूद गजनवी ने हिन्दुओं के मन्दिर लूटे थे। अल्लाउद्दीन खिलजी ने हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया था। किन्तु मुस्लिम राजाओं में कतिपय बादशाह ऐसे भी हुये जिन्होंने हिन्दुओं से मेल-जोल की नीति में विश्वास किया था।[3] भूषण ने उनकी नीति की भूरि-भूरि प्रशंसा की

---

१. भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४७०

२. औरंगजेब, यदुनाथ सरकार, पृ० ५७२

३. "अकबर ने शासन में ऊँचे से ऊँचे ओहदे देते हुए यह विचार नहीं किया कि जिसे वह ओहदा दे रहा है, वह हिन्दू है या मुसलमान। अकबर के राज्य में सूबों की गवर्नरी या फौज की कमान का ऊँचे से ऊँचा पद हिन्दुओं के लिए खुला था।"
— मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण, इन्द्र विद्यावाचस्पति, पृ० २८

हैं ।[१] किन्तु औरंगजेब ने उस नीति का एक प्रकार से परित्याग कर दिया ।[२] वह अल्लाउद्दीन खिलजी की नीति को अपनाने वाला था। धर्म के मामले में वह बड़ा कट्टर था। "सम्पूर्ण जनसमाज को इस्लाम धर्म में दीक्षित कर उसका धर्म परिवर्तित करना और हर प्रकार के धार्मिक मतभेदों को मिटा देना ही मुसलमानी राज्य का आदर्श है। किसी भी मुसलमानी समाज में कोई काफिर रहने दिया जाता है तो केवल इसी कारण कि इस दोष को तब मिटा पाना संभव नहीं हो। ऐसी स्थिति केवल कुछ काल तक रह सकती है। ऐसे विधर्मी को राजनैतिक तथा सामाजिक अधिकारों से वंचित किया जाना चाहिए कि शीघ्र ही उस व्यक्ति को वह अनोखी ज्योति प्राप्त हो जावे और उसका नाम भी सच्चे मुसलमान धर्मावलम्बियों में लिखा जा सके।"[३] औरंगजेब की नीति बिलकुल यही थी। उसकी महत्त्वाकांक्षा बड़ी ऊँची थी। इस सम्बन्ध में इन्द्रविद्यावाचस्पति जी ने लिखा है—"औरंगजेब की नीति यह थी कि हिन्दुओं के अधिकार मुसलमानों से इतने कम कर दिए जाएँ और हिन्दू रहना इतना मँहगा बना दिया जाय कि वह लाचार होकर मुसलमान बन जाय। इस प्रकार थोड़े ही समय में सारे हिन्दुस्तान के निवासी मुसलमान हो जाएँगे, जिससे परलोक भी सुधरेगा और यह लोक भी। इसी भावना के अनुसार औरंगजेब ने मन्दिरों का ध्वंस करवाया और जजिया फिर से लगाया।[४] उसने न केवल हिन्दुओं को मुसलमान

---

१. बब्बर अकब्बर हिमायूँ हद्द बाँधि गए,
हिन्दू औ तुरुक की कुरान बेद-ढ़ब की।
इन पातसाहन में हिन्दुन की चाह हुती,
जहाँगीर साहजहाँ साख पूरै तब की॥
—भू० मि०, छं० सं० ४४७

२. देवल गिरावते फिरावते निसान अली,
ऐसे समै राव-राने सबै गए लबकी।
गौरा गनपति आप, औरँग को देखि ताप,
आपने मुकाम सब मारि गए दबकी।
पीरा पयगंबरा दिगंबरा दिखाई देत,
सिद्ध की सिधाई गई रही बात रब की।
कासी हू की कला गई मथुरा मसीत भई,
सिवाजी न होतो तो सुनति होति सबकी॥
—भू० मि०, छं० सं० ४४६

३. औरंगजेब, यदुनाथ सरकार, पृ० १८० और १८१

४. मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण, इन्द्र वाचस्पति, पृ० २०७, २०८

बनने पर मजबूर किया बल्कि साथ-साथ उनके पवित्र धर्मस्थान मन्दिरों को भूमि-सात् भी कर दिया। लाखों हिन्दू जबरदस्ती मुसलमान बना लिए गए।[1]

हिन्दू धर्म की मुख्य शाखाएँ तीन थीं—शैव, वैष्णव और शाक्त। इनमें कुछ मिश्रित भी हैं। औरंगजेब की इन मन्दिरों पर कुदृष्टि पड़ी। उसने इन सभी सम्प्रदायों के मन्दिरों को विध्वंस कर वहाँ मस्जिदें खड़ी कीं। भूषण ने काशी के विश्वनाथ जी (शैवों का), मथुरा के केशवराय जी (वैष्णवों का), गोकुल के गोपाल जी एवं सम्भवतः नगरकोट के देवी का देहरा (शाक्तों का) मन्दिरों के गिराए जाने का उल्लेख किया है।[2] औरंगजेब ने मन्दिरों से ध्वंस के आदेश निकाले थे। "भाइयों और पिता की ओर से निश्चिन्त होकर १६६९ ई० में उसने (औरंगजेब ने) आदर्श मुस्लिम राज्य की स्थापना का कार्य पूरे जोर से जारी कर दिया। उस वर्ष देश भर में निम्न आशय का फरमान जारी किया गया—"काफिरों की सब पाठशालाएँ और मन्दिर नष्ट कर दिए जाएँ, और उनकी मजहबी तालीम को बन्द कर दिया जाए।" इस आज्ञा का पालन जिस कठोरता के साथ कराया गया उसे देखकर आश्चर्य होता है........१६५९ ई० का एक फरमान बनारस के सम्बन्ध में है, उसमें तो केवल नये मन्दिरों का बनाना रोका गया है, परन्तु १६६९ ई० की जो आज्ञा ऊपर दी गई है उसमें तो नये पुराने सब का भेद मिटा दिया गया है। उसके पीछे तो मन्दिरों को तोड़ना हर एक अफसर का कर्त्तव्य हो गया और उसमें भी जो मन्दिर को तोड़कर उसके खण्डहरों से मस्जिद बना सके, उसका कार्य तो अत्यन्त प्रशंसनीय हो जाता

---

१. कुम्भकर्न औरँग को औनि अवतार लैकै,
मथुरा जराइ कै दुहाई फेरी रबकी।
खोदि डारे देबी-देव-देवल अनेक सोई,
पेखि निज पानिप तें छूटी माल सबकी॥
भूषन भनत भाजे कासीपति बिस्वनाथ,
और का गनाऊँ नाम गिनती में अब की।
दिल में डरन लागे चारों बर्न ताही समै,
सिवाजी न होते तो सुनति होति सबकी॥
—भू० मि०, छं० सं० ४४८

२. गौरा गनपति आप औरँग को देखि ताप,
आपने मुकाम सब मारि गए दबकी।
कासी हू की कला गई मथुरा मसीत भई,
सिवाजी न होतो तो सुनति होति सबकी॥
—भू० मि०, छं० सं० ४४६

था। बादशाह का प्यारा बनने का प्रधान उपाय मन्दिरों का भंग था।"[1] यदुनाथ सरकार ने भी अपनी पुस्तक में औरंगजेब द्वारा मन्दिरों के ध्वंस किए जाने का उल्लेख किया है।[2] भूषण के काव्य में भी इनका उल्लेख हुआ है। औरंगजेब किसी की मानता ही न था, वह 'जालिम' बन गया था, वह वही करता था जिसे वह धर्मानुकूल समझता था। सारे राव-राजा उस समय मुरझा गए थे। किसी में विरोध का साहस न था। धर्म का भवन ढह पड़ा था। पुराणों की मर्यादाएँ मिट रही थीं।"[3]

१. ३. ५. हिन्दू-धर्म की आन्तरिक स्थिति

औरंगजेब के समय में हिन्दू-धर्म आन्तरिक दृष्टि से भी दुर्बल था। गोस्वामी जी ने इस जर्जरावस्था का उल्लेख मानस के उत्तरकाण्ड में किया है।[4] वह तत्कालीन परिस्थिति पर प्रकाश डालता है। औरंगजेब की धार्मिक अनुदार नीति के फलस्वरूप इस समय परिस्थिति और भी जटिल हो गई थी। ह्रास और विघटन की गति तीव्रतर हो रही थी। धर्म का जो

---

१. मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण, इन्द्र वाचस्पति, पृ० १९८ व १९९

२. "९ अप्रैल १६६९ ई० को उसने (औरंगजेब ने) एक आम हुक्म दिया कि काफिरों के सब शिवालय और मन्दिर गिरा दिए जावें तथा उनकी धार्मिक प्रथाओं को दबाया जावे। अब उसकी विनाशकारी कुदाल सोमनाथ के दूसरे मन्दिर और मथुरा में केशवराय जी के समान बड़े मन्दिरों पर भी पड़ी........ वहाँ के (मथुरा के) हिन्दुओं को दबाने के लिए औरंगजेब ने अब्दुन्नबी नामक एक कट्टर मुसलमान को मथुरा का फौजदार नियुक्त किया। कई वर्ष पहले दारा ने उपहार स्वरूप मथुरा के केशवराय के मन्दिर में पत्थर का जगमोहक जंगला लगवा दिया था। यह बात १४ अक्टूबर १६६६ ई० को औरंगजेब को ज्ञात हुई। उसने तत्काल ही हुक्म दिया कि उस जंगले को वहाँ से हटा दिया जावे। अन्त में १६७० ई० में उसने इस मन्दिर को बिलकुल ही ध्वंस कर देने की आज्ञा दी और यह हुक्म दिया कि मथुरा का नाम बदल कर इस्लामाबाद कर दिया जावे।"

—औरंगजेब, यदुनाथ सरकार, पृ० १९४ और १९५

३. औरंग अठाना साह सूर की न मानै आनि,
जब्बर जोराना भयो जालिम जमाना को।
देवल डिगाने राव राने मुरझानें अरु,
धरम ढहाना पन मेट्यो है पुराना को॥

—भू० मि०, छं० सं० ४६५

४. कलि मल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सद्ग्रन्थ।
दम्भिन्ह निज मति कल्पि करि, प्रगट किए बहु पन्थ॥ ९७–क

वाह्य-रूप मन्दिर, तीर्थ आदि थे, उसे औरंगजेब ने और जर्जर कर दिया।[१] औरंगजेब के आदेश से मन्दिर गिराए जाते थे और मन्दिर के देवी-देवता अपने बचाव में कुछ नहीं कर पाते। 'गौरा' और 'गनपति' सब चुप थे। इससे भी हिन्दुओं में अपने धर्म के प्रति जो आस्था थी वह और भी क्षीण हो रही थी क्योंकि उनकी यह धारणा बल ग्रहण करने लगी थी कि जो देवता स्वयं अपनी रक्षा करने में समर्थ नहीं, वह जनता की क्या रक्षा करेगा ? अपढ़ जनता जो परा प्राकृतिक शक्तियों में विश्वास करती है और छोटी-छोटी आपत्तियों के आने पर उपचार के लिये अब तक सिद्धों की शरण में जाती थी, अब पीर पैगम्बरों की ओर आकर्षित हुई।[२] इस प्रकार जहाँ उच्चस्तरीय हिन्दू-वर्ग औरंगजेब की शास्त्रीय धर्मान्धता से प्रताड़ित था, वहाँ निम्नवर्ग भी अव्यक्त रूप से इस्लाम की ओर बढ़ रहा था। पूरा हिन्दू समाज जैसे चारों ओर से इस्लामी दबाव का अनुभव कर रहा था।

इस प्रकार की परिस्थितियों में प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक था वह हुई भी। मोटे रूप में प्रतिक्रिया की रूपरेखा ये है :—

१. ३. ६. प्रतिक्रिया

क्र० सं०	हिन्दू सम्प्रदाय	प्रतिक्रिया	नायक
१.	शैव	राजपूत	—
२.	वैष्णव	भक्त	—
३.	निर्गुण	गुरु-नानक दर्शन	गुरु गोविंदसिंह
४.	शाक्त-मिश्रित	समर्थ गुरु रामदास	छत्रपति शिवाजी

भए लोग सब मोहबस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान ग्यान निधि, कहउँ कछुक कलि धर्म॥ ९७–ख
बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी॥
द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजा सन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥१॥
मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।
मिथ्यारम्भ दम्भरत जोई। ता कहुँ सन्त कहइ सब कोई॥२॥
—उत्तरकाण्ड, रामचरितमानस

१. यौं कबि भूषन भाषत है इक तौ पहिलें कलिकाल की सैली।
तापन हिन्दुन की सब राह सु औरँगसाह करी अति मैली॥
—भू० मि०, छं० सं० २६८

२. पीरा पयगंबरा दिगंबरा दिखाई देत,
सिद्ध की सिधाई गई रही बात रब की।
कासी हू की कला गई मथुरा मसीत भई,
सिवाजी न होतो तो सुनति होति सबकी॥
—भू० मि०, छं० सं० ४४६

औरंगजेब से पूर्व हिन्दू प्रतिक्रिया का प्रज्वलतम रूप राजपूत-संघर्ष था। यद्यपि अकबर की धार्मिक सहिष्णुता से प्रभावित और उसके बल से पराजित राजपूत अपनी तलवार को मुगल साम्राज्य की रक्षा में समर्पित कर चुके थे तथापि अपवाद रूप से महाराणा प्रताप की प्रतिक्रिया चलती रही। पीछे स्वार्थ-विलास और अनेक्य के पंक में राजपूत की वीरता लुप्त हो गई। औरंगजेब के समय में राजपूत अप्रसन्न और अशान्त तो थे किन्तु अपने स्वार्थों और विवशता के कारण औरंगजेब से मिले हुए थे। जयसिंह और जसवन्तसिंह का यही हाल था। वे औरंगजेब का खुलकर विरोध करने का साहस नहीं कर सके। अब राजनैतिक प्रेरणा से पुष्ट प्रतिक्रिया सार्वजनीन रूप नहीं ले सकती थी। अतः धार्मिक प्रेरणा के स्रोत क्रान्ति की ज्वाला निःसृत करने लगे। वैष्णवों में भक्त हुए किन्तु उनकी वृत्ति अन्तर्मुखी और साधना भावावेश पर आधारित हो गई। अतः इस धार्मिक संघर्ष में भक्ति प्रेरित कोई नेता आगे नहीं बढ़ा। निर्गुण दर्शन आरम्भ से ही कुछ सामाजिक क्रान्ति को लेकर चला था। उसमें धार्मिक समन्वय की चेष्टा भी थी, पर धर्म के नाम पर जो रक्तपात हुआ, उससे उनकी क्रान्ति की दिशा बदली।[1] इस प्रेरणा से दो प्रबल नायक इस संघर्ष में आए—उत्तर में छत्रसाल बुन्देला और दक्षिण में छत्रपति शिवाजी। गुरु गोविन्दसिंह और उनके दोनों बालक इसी संघर्ष में बलि हुए। छत्रपति शिवाजी को समर्थ गुरु रामदास से प्रेरणा मिली। कहते हैं जब दादाजी कोंडदेव और शिवाजी ने सिंहगढ़ पर अधिकार कर लिया (१६४४ ई०) ठीक उसी समय सतारा में रामदास प्रकट हुए। तब से तीस वर्ष तक उन दोनों व्यक्तियों ने महाराष्ट्र को अपने कार्य का मुख्य क्षेत्र बनाया। स्वयं समर्थ रामदास ने शिवाजी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर अपनी नीति में परिवर्तन किया। सरदेसाई लिखते हैं—"यह धारणा काफी हद तक न्यायसंगत है कि अपने राजनैतिक आदर्शों में शिवाजी को रामदास से प्रेरणा मिलने की बजाय रामदास को अपने आदर्शों और शिक्षा में परिवर्तन करना पड़ा, किन्तु यह तभी हुआ जब रामदास को शिवाजी के व्यक्तित्व में एक वीर नायक का स्पष्ट प्रमाण मिल गया। समयान्तर में रामदास को यह भी अनुभव हुआ कि कोई धर्म तब तक नहीं ठहर सकता और न उन्नति कर सकता है जब तक कोई शक्तिशाली नेता आगे बढ़कर उसकी रक्षा न करे। दूसरे शब्दों में, धार्मिक स्वाधीनता को बनाये रखने के लिये राजनैतिक शक्ति आवश्यक है। यह सत्य भी प्रतीत होता है। प्रारम्भ में रामदास ने अपनी शिक्षा को समाज के आध्यात्मिक पुनरुज्जीवन के क्षेत्र तक ही

---

१. **"औरंगजेब की धर्मान्धता पर सबसे विलक्षण टीका यह हुई कि उसके अन्याय से आहत होकर गुरु नानक का चलाया हुआ सिक्ख सम्प्रदाय, जो शान्त भक्तों का सम्प्रदाय था, खुलकर सैनिकों का सम्प्रदाय हो गया।"**

—संस्कृति के चार अध्याय, रामधारीसिंह दिनकर (तृतीय संस्करण), पृ० ३६४

सीमित रखा था। यद्यपि उसमें जीवन को सफल बनाने के व्यावहारिक संकेत भी थे, उन्होंने समस्त देश में मठों की एक शृंखला स्थापित कर दी, जहाँ पर शारीरिक शिक्षा दी जाती थी और शारीरिक बल तथा चरित्र के निर्माण का विशेष ध्यान रखा जाता था। इन मठों के इष्टदेव बलिष्ठ हनुमान थे। परंतु इन मठों को शिवाजी की राजनैतिक प्रवृत्ति के गुप्त शिक्षण केन्द्र समझना अथवा उन्हें सहायता देने के लिए इनको राजनैतिक जासूसी की संस्थाएँ मानना बीसवीं शताब्दी की भारतीय राजनीति की कल्पना मात्र होगी।"[१] छत्रपति शिवाजी अपने आदर्शों पर दृढ़ रहे। गुरु के स्वप्न को उन्होंने चरितार्थ करने का पूरा प्रयास किया। उन्होंने मुगलों का जीवन भर विरोध किया। भूषण ने अत्याचार की प्रतिक्रिया के रूप में छत्रपति शिवाजी की वीरता का वर्णन करते हुए उनका गुणस्तवन किया है। उत्तर में छत्रसाल बुन्देला ने भी शिवाजी से प्रेरणा प्राप्त कर मुगलों से संघर्ष किया। भूषण ने उनकी वीरता का भी बखान किया है।

जब किसी धर्म पर अन्य धर्म का अत्याचार होता है, तो आक्रान्ता धर्म रूढ़िप्रिय बन जाता है। फलतः उस युग में भी भूषण ने जिस हिन्दू-धर्म का पुनरुत्थान चाहा वह वर्णाश्रमाश्रित और रूढ़िवादी है। वह गौ, ब्राह्मण की रक्षा, वेद पुराणों की चर्चा, 'जनेऊ' 'चोटी' 'माला' आदि का उल्लेख करता है। ये सब लुप्त हो रहे थे। शिवाजी ने फिर इनको प्राण दिया और ये सब फिर प्रचलित हुए। वेदों और पुराणों का पठन शुरू हुआ। राम नाम घर-घर सुनाई देने लगा।[२]

इस युग में ललित कलाओं का ह्रास हो गया था। साथ ही इस समय की पीढ़ी के लोगों का बौद्धिक स्तर भी पहले वालों से बहुत नीचा हो गया था। अकबर

१. ३. ७. कला और दरबारी चित्र

और शाहजहाँ के समय में ललित कलाओं को जो प्रोत्साहन मिलता रहा, वह इस युग में बन्द हो गया। इस युग के अधिकारियों में पहले वालों की सी उदारता, क्षमता और हिम्मत नहीं थी।

---

१. मराठों का नवीन इतिहास, गोविन्द सखाराम सरदेसाई, भाग १, द्वितीय संस्करण, पृ० २७३ और २७४

२. राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे बेदबिधि सुनी मैं।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं।
भूषन सुकबि जीति हद्द मरहट्ठन की,
देस-देस कीरति बखानी तव सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबिकै दिवाल राखी दुनी मैं।
—भू० मि०, छं० सं० ४२१

औरंगजेब स्वयं सशंक रहने के कारण कलाकारों को समुचित साधन और उपयुक्त अवसर नहीं देता था। गद्दी पर बैठने के ग्यारहवें वर्ष में उसने शाही दरबार में गवैयों को अपने सामने नाचने गाने से मना कर दिया था। प्रतिक्रिया में कला प्रेमियों ने संगीत का जनाजा निकाला जिसे देखकर उसने कहा था कि उसे बहुत अच्छी तरह दफना दिया जाय।

दिल्ली के सम्राट् को छोड़ दें तो कलाकारों को प्रश्रय देने वाले इस युग में सामंत और राव-राजा रह गए थे। औरंगजेब से आतंकित रहने के कारण ये लोग भी अपनी रुचि के अनुसार कलाओं को प्रोत्साहन देने में असमर्थ रहे। अतः इस युग की कला में मौलिकता का अभाव मिलता है। 'स्वार्थपरायण राजनैतिक व्यवस्था, सामंतीय वातावरण, राजनैतिक विकेन्द्रीकरण और सामाजिक अव्यवस्था तथा विलासमूलक, वैभवजन्य, प्रदर्शनप्रधान अलंकरण प्रवृत्ति का तत्कालीन साहित्य एवं विविध ललितकलाओं की गतिविधि पर बड़ा गहरा प्रभाव रहा है। तद्युगीन कलाकार की आत्मा पर ये बाह्य परिस्थितियाँ एक प्रकार से हावी हो गई थीं।"[1] भूषण के काव्य में कलाओं के जो चित्र मिलते हैं वह मुगल दरबार से प्रभावित ही मिलते हैं।

रीतिकालीन साहित्य दरबारी संस्कृति का साहित्य है। दरबारी जीवन के भारतीय उपादान इस समय शिथिल पड़ने लगे थे और मुस्लिम दरबार हिन्दू राजाओं के लिए भी अनुकरणीय बन रहे थे। दरबारों के अतिरिक्त महलों का जीवन भी मुस्लिम प्रसाधनों को लिए हुए विलासिता की ओर अग्रसर था। छुट-पुट रूप में भूषण के साहित्य में इस मिश्रित संस्कृति के कुछ चित्र मिल जाते हैं। इस संबंध में डा० त्रिभुवन सिंह ने लिखा है—"भारतीय इतिहास के मध्यकाल के सामन्त हिन्दू थे जिससे उनके द्वारा जिस संस्कृति और सभ्यता का विकास हुआ वह पूर्णतः भारतीय थी। किन्तु हिन्दी मध्यकाल के प्रमुख सामन्त मुसलमान अथवा उनके संरक्षक थे जिससे इस काल में जिस कला एवं संस्कृति को प्रोत्साहन मिला उसमें विदेशी मेल है।"[2] राज प्रासादों और महलों का जीवन अप्रस्तुत वर्णन के रूप में इस साहित्य में चित्रित हुआ है। भूषण का सम्बन्ध भी एक दरबार से ही था। किन्तु भूषण का नायक दरबार में कम बैठनेवाला था। उसकी झाँकी युद्ध क्षेत्र में ही देखी जा सकती है। अतः शिवाजी के दरबार की सुष्ठु झाँकियाँ भूषण के साहित्य में नहीं मिलेंगी। जहाँ कहीं कुछ उल्लेख है, उसमें मुगल दरबार के प्रभाव की बात स्पष्ट हो जाती है। दरबार की अपेक्षा गढ़ों का वर्णन है, विशेष रूप से रायगढ़ किले का—

---

१. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० ३०

२. दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक, डा० त्रिभुवनसिंह, पृ० ४७

जा पर साहितनँ सिवराज सुरेस की ऐसी सभा सुभ साजैं ।
यौं कवि भूषन जंपत है लखि सम्पति कौं अलकापति लाजैं ।।
जा मधि तीनहु लोक की दीपति ऐसौ बड़ौ गढ़ु राय बिराजैं ।
बारि पताल सी माची मही अमरावति की छबि ऊपर छाजैं ।।[१]

मुगल दरबार तथा इनके राजप्रासादों के जीवन का परिचय शिवाजी के आतंक चित्रण में अव्यक्त या व्याजस्तुति की शैली में मिलता है । इस आतंक के कारण मुगलों को विलासी जीवन बिताने में बाधा होती थी, उनकी बेगमों का बुरा हाल था—

अतर गुलाब चोवा चन्दन सुगंध सब,
सहज सरीर की सुबास बिकसाती हैं ।
पल भरि पलँग तें भूमि न धरत पाँव,
तेई खान-पान छोड़ि बन बिललाती हैं ।।
भूषन भनत सिवराज बीर तेरे त्रास,
हार-भार तोरि निज सुधि बिसराती हैं ।
ऐसी परी नरम हरम बादसाहन की,
नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं ।।[२]

इस वर्णन में मिश्रित प्रसाधनों की सूची है । अतर गुलाब का जहाँ उल्लेख है, वहाँ चोवा घनसार आदि का भी । मुगलों के महलों में अनेक मनोरंजन के साधनों का प्रबन्ध रहता था । चउगान खेलने में दरबारी सामन्तों की रुचि थी ।[३] शिकार भी उनके मनोरंजन का साधन था ।[४] सामन्तों का अधिकांश समय प्रमोद में ही बीतता था । इनके महलों की व्यवस्था देखने योग्य है । इनके महलों में तहखाने, गुसलखाने, सिलहखाने (हथियारगृह), हरमखाने (अन्तःपुर), सुतुरखाने (ऊँटों का बाड़ा), पीलखाने (हाथियों का स्थान), करंजखाने (मुर्गी के रहने का स्थान), खसखाने (खस की टट्टी लगा हुआ ठण्डा कमरा) आदि होते थे—

---

१. भूषणं, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १५

२. वही, छं० सं० ४३१

३. आलमगीर के मीर वजीर फिरें चउगान बटान से मारे···· ।
—भू० मि०, छं० सं० ४६९

४. भूषन जू खेलत सितारे में सिकार साहू, संभा को सुवन जातें दुवन सचैं नहीं ।।
—भू० मि०, छं० सं० ५२९

तुरुमती तहखाने तीतर तोसहखाने,
सूकर सिलहखाने कूकत करीस हैं ।
हरिन हरमखाने सिंघ है सुतुरखाने,
पीलखाने पाठी हैं करँजख़ाने कीस हैं ॥
भूषन सिवाजी गाजी खग्ग सों खपाए खल,
खाने खाने खलन के खेरे भए खीस हैं ।
खड़गी खजाने खरगोस खिलवतखाने,
खीसैं खोले खसखाने खूँसत खबीस हैं ॥[१]

औरंगजेब के दरबार में मनाए जाने वाले जशन का वर्णन भूषण ने किया है ।[२] इस वर्णन की यथार्थता को सर यदुनाथ सरकार ने भी स्वीकार किया है । वे लिखते हैं––"हिन्दी कवि भूषण ने ठीक ही लिखा है कि इस जन्म-दिवस के उत्सव के दरबार में औरंगजेब स्वर्ग में तेजपूर्ण देवताओं से घिरे हुए इन्द्र की तरह बैठा था––राजसभा लोगों से खचाखच भरी थी, सभासदों की भाँति-भाँति की रंग-बिरंगी पोशाकें, रंगीन गलीचे और चमकदार किमखाब देखने से ऐसा भ्रम होता था मानो जमीन एक रंगीन फूलों का बगीचा है । चारों ओर दरबारियों और कर देने वाले छोटे-छोटे राजाओं के शरीर के आभूषणों से हीरा मोती और नाना प्रकार के रत्नों की ज्योति फैल रही थी । बादशाह राजगद्दी पर बैठा था ।[३]

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि तत्कालीन परिस्थितियों के बीच रहकर कवि अपने कर्म में व्यस्त है । केवल शृंगारिक वातावरण तक सीमित न रहकर कवि देश की राजनैतिक गतिविधियों, आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक समन्वय और नवीन सांस्कृतिक उपादानों से अवगत है ।

---

१. भूषण, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ३३८

२. जसन के रोज यौं जलूस गहि बैठो जोऽब
इन्द्र आवै सोऊ लागै औरँग की परजा ।
भूषन भनत तहाँ गरजो सिवाजी गाजी,
जहाँ को तुजक देखिकै हिये न लरजा ॥
ठान्यौ न सलाम मान्यौ साह को इलाम,
मान्यौ धाम-धूम कै न रामसिंघहू को बरजा ॥
जासों जोरा करि बाचै भूपत दिगंत तासौं
तोरा करि तखत तरे तें आयौ सरजा ।
—भू० मि०, छं० सं० १७९

३. शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० ७३ और ७४

१. ३. ८. साहित्यिक परिस्थितियाँ

साहित्यिक दृष्टि से यह युग रीतिकालीन कविता का युग है। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र रीतिकाल को 'शृंगारकाल' कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं। वे लिखते हैं—"किसी साहित्यकाल के नामकरण की उपयुक्तता के दो तत्त्व उपलब्ध होते हैं। एक तो सर्वसामान्य प्रवृत्ति का बोधक हो, दूसरे अन्तर्विभाग का मार्ग अवरुद्ध रहे। सर्वसामान्य प्रवृत्ति की बोधकता का सम्बन्ध किसी विशेष काल में प्रस्तुत ग्रन्थ राशि के बाहुल्य से है; समस्तता से नहीं।"[१] दूसरी बात वे कहते हैं कि—"साहित्य के इतिहास में विभाजन और नामकरण का सर्वोत्कृष्ट ढंग वर्ण्यविषय की व्याप्ति के अनुसंधान से सम्बद्ध है, पर वर्ण्यविषय की दृष्टि से भी वस्ततुः दो पक्ष हो जाते हैं—एक बाह्य और दूसरा आभ्यन्तर....यदि रीतिकाल नाम की ओर देखते हैं तो उसमें रीति अर्थात् रस, अलंकार, शब्द-शक्ति, नायक-नायिका, पिंगल आदि काव्य-रीति वर्ण्य विषय ही हैं। पर रीति शब्द बाह्यार्थ का ही बोधक है, आभ्यन्तर का नहीं। उस काल का आभ्यन्तर वर्ण्य शृंगार था।"[२] रीतिकाल का उपविभाजन दो मुख्य धाराओं में किया गया है—रीतिबद्ध और रीतिमुक्त। रीतिबद्ध कवि रीति की सामग्री का उपयोग करते थे, जबकि रीतिमुक्त इस बन्धन से मुक्त रहते थे। रीतिबद्ध में कुछ ने लक्षण-बद्ध काव्य लिखे और कुछ ने लक्ष्य मात्र। भूषण और मतिराम के काव्य में लक्षण और लक्ष्य दोनों भी हैं जब कि बिहारी ने केवल लक्ष्य काव्य ही लिखा है। साधारणतः लक्षण काव्य लिखने वालों की अपेक्षा लक्ष्य काव्य लिखने वालों ने उत्कृष्ट काव्य लिखा है। इसका कारण यही है कि एक हद तक वे बन्धनों से मुक्त रहे हैं। लक्ष्य काव्य के साथ-साथ जिन्होंने लक्षण भी लिखे हैं, वे प्रायः आचार्यत्व की ओर झुक गये हैं और इसका प्रमुख कारण उस युग की प्रवृत्ति है। इस युग ने बाह्य रूप में रीति के जिस आवरण को अपनाया वह बहुत कुछ संस्कृत की शास्त्रीय पद्धति से प्रभावित था। काव्य वास्तव में कवि की स्वयं-प्रसूत भावना से सम्बन्ध रखता है। वह बनावट के आधार पर नहीं चल सकता। इतना होने पर भी उसके नियम और शास्त्र बने हैं जिनका नियन्त्रण आवश्यक माना गया है। शास्त्र प्रथम या काव्य प्रथम? इस प्रश्न का उत्तर काव्य के पक्ष में ही दिया जायगा। किन्तु जब दोनों का विकास हो जाता है तो काव्य शास्त्र की उपेक्षा नहीं कर सकता। डाक्टर रमाशंकर शुक्ल रसाल ने लिखा है—"दोनों ओर पर्याप्त विकास हो चुकने पर काव्यालंकार शास्त्र के नियमों के आधार पर ही कवियों को चलना पड़ा है और उन्हीं के नियंत्रण में रहकर काव्य की रचना करनी पड़ी है। यद्यपि कवियों को फिर भी कुछ स्वतन्त्रता अवश्य ही दे दी गई थी तथापि उनकी इस स्वतंत्रता को अनुचित प्रोत्साहन नहीं दिया गया था,

---

१. बिहारी, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ३
२. वही, पृ० ५

वरन् उसकी एक प्रकार से अवहेलना ही की गई ।"[1] रीतिकाल का समय ऐसा ही था । काव्य और शास्त्र का पर्याप्त विकास हो चुका था, कवि अपने को शास्त्र से मुक्त नहीं समझते थे और इन्हें युग की प्रवृत्ति के अनुसार शास्त्र का अनुसरण करना पड़ता था इसी कारण अच्छे-अच्छे कवि भी शास्त्रीयता के बोझ में दब गए और इस बन्धन के कारण उनकी कविता में स्वच्छन्दता का आभास अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है ।

इस दृष्टि से भूषण के काव्य पर विचार करें तो ऐसा लगता है कि उनका मार्ग तत्कालीन कवियों से भिन्न रहा है । मिश्रजी ने आभ्यंतर पक्ष को लेकर जो कहा कि रीतिकालीन आभ्यंतर वर्ण्य पक्ष शृंगार रहा है, उससे भूषण बचे हुए हैं । इसको स्वयं मिश्रजी ने भी स्वीकार किया है । पर वे लिखते हैं कि संभवतः भूषण की अन्य रचनाएँ भूषण उल्लास, दूषण उल्लास जो अब प्राप्य नहीं हैं, उनमें शृंगार का विवेचन हुआ होगा । मिश्रजी यहाँ तक लिखते हैं कि—"उनके (भूषण के) फुटकल शृंगार के छन्द इन्हीं ग्रन्थों (भूषण उल्लास, दूषण उल्लास, भूषण हजारा) के होंगे, अतः भूषण की यदि सारी रचनाएँ मिल जाएँ तो कदाचित् वे बाहुल्य के विचार से शृंगार के ही कवि ठहरेंगे ।"[2] किन्तु ये केवल अनुमान है अब तक प्राप्त रचनाओं के आधार पर उन्हें शृंगारी कवि नहीं कहा जा सकता । बाह्य पक्ष में रीति का अनुसरण उन्होंने अवश्य किया पर आभ्यंतर पक्ष की दृष्टि से उनकी प्रवृत्ति तत्कालीन प्रवृत्तियों से भिन्न रही है । उनका आभ्यंतर पक्ष वीर भावना की ओर झुका हुआ है । घोर शृंगारी कविता के युग में वीर रस की कविता लिखकर भूषण ने अपने विशिष्ट व्यक्तित्व का परिचय दिया है ।

१.४ भूषण पर युग की प्रतिक्रिया

भूषण का युग मध्यकालीन पतित सामंतों का युग है । इस विलासिता को औरंगजेब ने रोकने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु उसके सरदारों की विलासिता रुकी नहीं, दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई । इसी का प्रभाव राजा-महाराजाओं के दरबार पर भी था । भूषण रीतिकाल की इस विलासी संस्कृति से परे रहे । यद्यपि शृंगार की स्फुट रचनाएँ उन्होंने कीं फिर भी वे शृंगार रस में डूबे नहीं हैं । बिहारी ने इस जीवन को जितनी निकटता से देखा उतना भूषण ने नहीं । युग के प्रवाह और प्रवृत्ति से ही उन्होंने कुछ कवित्त और सवैये शृंगार रस के भी लिख डाले हैं । शृंगार रस के ये कवित्त और सवैये भी सरस और मार्मिक प्रसंगों को व्यक्त करने वाले

---

१. अलंकार पीयूष, डा० रमाशंकर शुक्ल रसाल, पृ० ४ और ५

२. बिहारी, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० ६

हैं। इसके आधार पर हम इतना ही कह सकते हैं कि उनमें काव्य-प्रतिभा थी। यदि वे चाहते तो इस कोटि की भी उत्तम रचना कर सकते थे किन्तु उनका मन इस प्रकार की रचनाओं में नहीं लगा। संभवतः इसीलिए वे किसी एक स्थान पर टिक कर नहीं रहे। शृंगार रस की रचना करने वाला कवि विलासी प्रवृत्ति का होता है, वह जीवन को शान्तिपूर्वक एक स्थान पर रहकर बिताना चाहता है। भूषण के पास इतना समय नहीं था। वे युग की विभीषिकाओं और इतिहास के विराट् परिवर्तन को अपनी आँखों से देख रहे थे। इसीलिये उनके काव्य में युग का प्रतिबिम्ब सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक—यथार्थ रूप में चित्रित हुआ है। साहित्यिक प्रवृत्ति का प्रभाव इसी से ज्ञात हो जाता है कि इच्छा न होने पर भी अलंकार-ग्रन्थ लक्षण-निरूपण पद्धति का लिखना पड़ा और शृंगार रस के स्फुट कवित्त और सवैये भी इसी बात को प्रमाणित करते हैं। बाकी के यथार्थ रूपों पर विवरण प्रस्तुत किया गया है। ये सारे प्रतिबिम्ब अपने युग के इतिहास की भूमिका के साथ चित्रित हुए हैं। इतिहास युग के यथार्थ को तथ्यों और प्रमाणों के आधार पर प्रस्तुत करता है, जब कि काव्य मानवीय जीवन के इन तथ्यों और प्रमाणों को सजीवन बनाकर प्रस्तुत करता है। इतिहास यदि ढाँचा मात्र प्रस्तुत करता है तो काव्य उसमें प्राण डाल देता है। और जहाँ इतिहास और काव्य का मेल हो वहाँ तो युग अपने आप बोल उठता है। भूषण के काव्य में यही हुआ है।

द्वितीय अध्याय

भूषण का जीवन-वृत्त

भूषण का जीवन-वृत्त

२. १. भूषण के जीवन-वृत्त सम्बन्धी समस्याएँ

हिन्दी साहित्य में अनेक प्राचीन कवियों के जीवन-वृत्त प्रायः संदिग्ध रहे हैं क्योंकि उन्होंने स्वयं अपने विषय में कुछ नहीं लिखा है। इसे उनके अहम् का निराकरण कहें या दैन्य का प्रदर्शन अथवा 'स्वान्तः सुखाय' कविता करने की प्रवृत्ति, जो कुछ कहें, उन्होंने स्वयं को भौतिक यश और वैभव से दूर रखा है। इससे हमारी हानि अवश्य हुई क्योंकि हम उनके जीवन-वृत्त से अनभिज्ञ रह गए हैं। भूषण के जीवन का पूर्ण प्रामाणिक विवरण हमें नहीं मिलता। भूषण के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक समस्याएँ हैं। प्रथम समस्या तो यह है कि उनके काल का निर्णय अभी नहीं हो पाया है। विद्वानों का एक दल उन्हें शिवाजी का समकालीन मानता है और दूसरा दल कहता है कि भूषण का जन्म ही शिवाजी की मृत्यु के एक वर्ष बाद हुआ है। इसी तरह उनके वास्तविक नाम का पता नहीं लग सका है। 'भूषण' तो चित्रकूट नरेश द्वारा मिली हुई उपाधि है। तीसरी समस्या उनके मतिराम से सम्बन्ध की है। उनकी जन्म-तिथि और मृत्यु-तिथि ज्ञात नहीं हैं। उनके आश्रयदाताओं में शिवाजी को माना जाय अथवा नहीं ? यह समस्या उनके काल निर्णय से सम्बन्ध रखने वाली है। इसी तरह अन्य आश्रयदाताओं का प्रश्न भी है। इन समस्याओं पर अब तक जो सामग्री प्राप्त हुई है और विद्वानों के जो अनुमान इस सम्बन्ध में हैं, इन सबको प्रकाश में रख भूषण की जीवनी लिखने का प्रयास नीचे किया गया है।

२. २. भूषण के जीवन-वृत्त से सम्बन्धित साहित्य

भूषण के जीवन-वृत्त से सम्बन्धित साहित्य को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) अन्तस्साक्ष्य, (२) बहिस्साक्ष्य, और (३) जनश्रुतियाँ

अन्तस्साक्ष्य की दृष्टि से एक मात्र प्रामाणिक रचना शिवराज भूषण है। इसमें भूषण ने अपना संक्षिप्त परिचय दिया है। भूषण के पिता का नाम रतिनाथ या रत्नाकर था। वे कश्यपगोत्री कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। वे त्रिविक्रमपुर (तिकवाँपुर) में रहते थे। यह गाँव जमुना नदी के किनारे स्थित है। यह वह स्थान है जहाँ बीरबल जैसे वीर राजा उत्पन्न हुए और जहाँ विश्वेश्वर के समान देव-बिहारीश्वर महादेव का मन्दिर है। चित्रकूट के राजा रुद्रसाह सुलंकी के पुत्र हृदयराम सुलंकी ने इन्हें भूषण की उपाधि दी।[1]

२. २. १. अन्तस्साक्ष्य

इन स्पष्ट कथनों के साथ साथ भूषण ने शिवराज भूषण के अन्तिम छंदों में उक्त ग्रन्थ का रचनाकाल दिया है। वह इस प्रकार है—

> समत सत्रह सेंतीस पर सुचि बदि तेरसि भानु।
> भूषन सिवभूषन कियौ पढ़ौ सकल सुज्ञान ॥[2]

उक्त दोहे की व्याख्या के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र उक्त दोहे के आधार पर शिवराज भूषण का रचनाकाल संवत् १७३० मानते हैं।[3] पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित का मत एक दम इसके विपरीत है। उन्होंने नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित प्राचीन प्रति में से उक्त दोहा जो उद्‌धृत किया है, वह इस प्रकार है :—

> सम सत्रह सैंतीस पर, शुचि वदि तेरसि भान।
> भूषण शिवभूषण कियो, पढ़ियो सुनौ सुज्ञान ॥[4]

---

१. द्विज कनोज कुल कस्यपी रतिनाथ कौ कुमार।
बसत त्रिबिक्रमपुर सदा जमुना-कंठ सुठार ॥२६॥
बीर बीरबर से जहाँ उपजे कबि अरु भूप।
देव बिहारेस्वर जहाँ बिस्वेस्वर तद्रूप ॥२७॥
कुल सुलंक चितकूटपति, साहस-सील-समुद्र।
कबि भूषन पदवी दई, हृदैराम सुत रुद्र ॥२८॥ भू० मि०

२. उक्त दोहा पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र की 'भूषण' पुस्तक से उद्‌धृत है। मिश्रजी ने संवत् १८१८ की पुष्पिका से उक्त ग्रन्थ का सम्पादन किया है।

३. भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ८१ और ८२

४. महाकवि भूषण, पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित, पृ० ६

इसका अर्थ उनकी दृष्टि में इस प्रकार है—"इस दोहे द्वारा भूषण ने श्लेष से 'शिवराज भूषण' का निर्माण-काल और अपना जन्म-काल दोनों वतलाने का प्रयत्न किया है। 'पर' का अर्थ पश्चात् और उल्टा। इस भावना के सहारे से उक्त दोनों बातें बड़ी सुन्दरता से व्यक्त कर दी गई हैं। तथा भूषण ने साहित्यिकों को सावधान करते हुए इस दोहे को समझदारी के साथ पढ़ने का आदेश दिया है। इस प्रकार से उन्होंने अपना जन्म-काल आषाढ़ बदी १३ संवत् १७३८ और 'शिवराज भूषण' का निर्माण काल संवत् १७७३ विक्रम स्पष्ट रूप से दिखला दिया है।"[१]

दीक्षितजी को छोड़कर प्राय: विद्वानों का दूसरा दल मिश्रबन्धु,[२] रामचन्द्र गोविंद काटे,[३] बाबू ब्रजरत्नदास,[४] पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,[५] और डाक्टर टीकम सिंह तोमर[६] सभी शिवभूषण का रचना काल संवत् १७३० मानते हैं। काव्येतिहास-संग्रह में प्रकाशित शिवभूषण की प्रति में संवत् १७३० स्पष्ट लिखा हुआ है। उसमें दोहा इस प्रकार उद्धृत है—

> सम सत्रह सैंतीस (१७३०) पर सुचि बदि तेरसि भान।
> भूषन सिवभूषन कियो, पढ़ियो सुनो सुजान ॥[७]

काव्येतिहास संग्रह में शिवराज भूषण का प्रकाशन १८८६ ई० में हुआ। इसका सम्पादन जनार्दन बालाजी मोडक (डेक्कन कालेज, पूना) ने जयपुर महाराजाश्रित पंडितवर दुर्गाप्रसाद जी की सहायता से किया। इसमें प्रकाशित दोहे में अक्षरों के साथ-साथ संख्या भी स्पष्ट लिखी हुई है। अत: संवत् १७३० शिवराज भूषण का रचना काल मानना चाहिए। और तो और, तिथि सम्बन्धी सारी बातों का निबटारा दीवान बहादुर स्वामी कन्नु पिल्ले के इण्डियन इफीमरीज को देखने से हो जाता है। उसके अनुसार संवत् १७३० जेष्ठ बदी १३ (दक्षिणी पद्धति से वैशाख बदी १३) को भानुवार आता है। शक संवत् वैशाख वद्य १३, १५९५ और ई० के

---

१ सम्मेलन पत्रिका, भाग ४७, संख्या ४ में दीक्षित जी का लेख "भूषण और मतिराम", पृ० ५७

२ भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु (सातवां संस्करण), पृ० ३२, ३३, ३४ और ३५

३ सम्पूर्ण भूषण, रामचन्द्र गोविन्द काटे, पृ० ४ और ५ (निवेदन)।

४ भूषण ग्रन्थावली, बाबू ब्रजरत्नदास, पृ० ६

५ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ८१

६ हिन्दी वीरकाव्य, डा० टीकमसिंह तोमर, पृ० २५

७ काव्येतिहास संग्रह देखने का सौभाग्य लेखक को महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदार, पूना के निजी पुस्तकालय में प्राप्त हुआ है।

३

हिसाब से ४ मई १६७३ उसी दिन है। अतः शिवभूषण का रचना काल अब ४ मई १६७३ ई० मानना चाहिए।[1]

शिवभूषण में कुछ ऐसे संकेत भी मिलते हैं जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि रचना शिवाजी के प्रश्रय में लिखी गई है और भूषण शिवाजी के दरबार में रहा करते थे। भूषण लिखते हैं :—

देसनि देसनि तें गुनी आवत जाचन ताहि।
तिनमें आयौ एक कवि भूषन कहियै जाहि ॥[2]

अर्थात् देश-देश से गुणी जन याचना करने के लिए यहाँ आते हैं (शिवाजी के पास) उन्हीं में भूषण कवि भी एक आया।

सिवचरित्र लखि यौं भयौ, कवि भूषन के चित्त।
भाँति-भाँति भूषननि सों भूषित करौं कवित्त ॥[3]

शिवाजी के चरित्र को "लखि" अर्थात् देखकर भूषण के चित्त में यह भाव पैदा हुआ कि शिवाजी के चरित्र रूपी भूषणों से कवित्तों को भूषित किया जाय। यहाँ ध्यान देने योग्य शब्द "लखि" है, जो शिवाजी के समकालीन होने का द्योतक है।

शिव भूषण के प्रारम्भ में जो मंगलाचरण है, वह गणेश जी का है और बाद में दुर्गा भवानी का है। भूषण दुर्गा भवानी की वन्दना करते हुए यह कामना प्रकट करते हैं कि वह शिवाजी को विजय प्राप्त करने में सहायता दे—

जय जय निसुंभ-सुंभह दलनि भनि भूषन जय जय भननि।
सरजा समथ्थ सिवराज कहि देहि बिजय जय जगजननि ॥[4]

भूषण यदि शिवाजी के समकालीन न होते, तो इस तरह की पंक्तियाँ क्यों लिखते? शिवाजी का समकालीन कवि ही शिवाजी की विजय की कामना प्रकट कर सकता है।

---

[1] उक्त इण्डियन इफीमरीज मुझे भारत इतिहास संशोधक मण्डल पूना में देखने को मिली।

[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० २५

[3] वही, छं० सं० ३४८

[4] वही, छं० सं० २

इसी तरह शिव भूषण के अन्त में लिखा है कि जब तक पृथ्वी, जल, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और आकाश हैं तब तक वीर शिवाजी आप और आपका यश जीवित रहे और उस यश का प्रकाश चारों ओर फैले :—

पुहुमि पानी अरु रवि पवन, जब लौं रहौ अकास ।
सिब सरजा तब लों जियौ भूषन सुजस-निवास ।।[१]

उपर्युक्त उल्लेख तो इतने स्पष्ट हैं कि इन्हें पढ़कर कोई भी सहज में यह कह सकता है कि भूषण शिवाजी के समकालीन कवि थे । इन उल्लेखों के अतिरिक्त भूषण की वर्णन पद्धति भी उन्हें शिवाजी के समकालीन सिद्ध करने में सहायक होती है । रायगढ़ किले के वर्णन के सम्बन्ध में श्री शान्ताराम विष्णू आवलसकर का कथन है कि भूषण कवि का रायगढ़ वर्णन प्रत्यक्ष आँखों देखा हुआ वर्णन है ।[२] रायगढ़ का महत्त्व शिवाजी के समय में ही था । शाहू के समय में तो राजधानी 'सातारा' हो गई और बाद में मराठों की राजधानी पूना हुई ।

कहीं-कहीं शिवाजी के सम्बन्ध में ऐसे उल्लेख मिलते हैं या कहने का ढंग कुछ ऐसा है जिससे ज्ञात होता है कि भूषण शिवाजी के समकालीन थे । जैसे—

(१) है नरलोक में राज बड़ो **सब राजन में सिवराज बड़ो है** ।[३]
(२) रज-लाज **राजत आज है** महाराज श्री सिवराज मैं ।[४]
(३) साहस-भूमि-अधार **सोई अब** श्री सरजा सिवराज में सोहै ।[५]

इस तरह यदि देखते जायें, तो शिवाजी सम्बन्धी वर्णन प्रणाली उन्हें शिवाजी के समकालीन सिद्ध करने में सहायक होती है । भूषण ने शिवाजी से पूर्व उनके पिता और पितामह का भी उल्लेख किया है । काल की दृष्टि से ये वर्णन शिवाजी के काल से भिन्न लगते हैं । वर्णन भूतकाल के समान है । जैसे—

ता कुल में नृपबृंद सब **उपजे** बखत-बिलंद ।
भूमिपाल **तिनमें भयौ** बड़ौ माल मकरंद ।।६।।

---

१ वही, छं० सं० ३४७

२ "रायगढ़ची जीवन कथा", शां० वि० आवलसकर (हस्तलिखित प्रति के आधार पर) इस पुस्तक के प्रकरण ८ में भूषण द्वारा वर्णित रायगढ़ का उल्लेख है । प्रस्तुत ग्रन्थ देखने का सौभाग्य लेखक को भारत इतिहास संशोधक मण्डल, पूना में लेखक के पास प्राप्त हुआ ।

३ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० २१९

४ वही, छं० सं० २१६

५ वही, छं० सं० ३६१

सदा दान किरवान में जाके आनन अंभ।
साहि निजाम **सखा भयौ** दुग्ग देवगिरि खंभ ॥७॥
भूषन भनि **ताकै भयौ** भुव भूषन नृप साहि।
रात्यौ दिन संक्रित रहैं साहि सबै जग जाहि ॥६॥[1]

इसके बाद शाहजी सम्बन्धी एक कवित्त है, जिसकी अन्तिम पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

जाहिर **जहान भयौ** साहिजू खुमान बीर।
साहन कौं सरन सिपाहन कौं तकिया ॥[2]

यहाँ तक का वर्णन भूतकाल की तरह किया गया है, शाहजी के लिए भयौ शब्द का प्रयोग किया गया है। किन्तु शिवाजी का नाम आते ही ढंग बदल गया है :—

दसरथ राजा राम भौ, बसुदेव के गुपाल।
सोई प्रगट्यो साहि के, श्री सिवराज भुआल ॥[3]

प्रगट्यो—प्रगटित हुए—शब्द के पीछे "सोई" वही अब) शब्द में जो ध्वनि है वह भूषण के शिवाजी के समकालीन होने की है। आगे की पंक्तियाँ भी देखिए —

उदित होत सिवराज के, मुदित भए द्विज-देव।
कलिजुग हट्यो मिट्यो सकल म्लेच्छन को अहमेव ॥[4]

वर्णन क्रम आगे इसी तरह चलता गया है। इसे पढ़ने से लगता है कि भूषण शिवाजी के समकालीन थे।

भूषण ने देशाटन किया था। वे अनेक राज्यों में गए थे। उनकी भेंट भिन्न-भिन्न राजाओं से हुई थी। इसका संकेत हमें उनकी अग्रलिखित पंक्तियों में मिलता है :—

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ६, ७ और ६

[2] वही, छं० सं० १०

[3] वही, छं० सं० ११

[4] वही, छं० सं० १२

मोरँग जाहु कि जाहु कुमाहु कि श्रीनगरै हु कबित्त बनाए।
बाँधव जाहु कि जाहु अमेर कि जोधपुरैं कि चितौरहिं धाए॥
जाहु कुतुब्ब की एदिल पै दिलीसहु पै किन जाहु बुलाए।
भूषन ह्वै हौ निहाल मही गढ़पाल सिवाहि की कीरति गाए॥[1]

इस सवैये के आधार पर पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित का कहना है कि इसमें भूषण ने अपने आश्रयदाताओं का वर्णन किया है और वे उन दरबारों का भ्रमण कर आए हैं।[2] भूषण ने अनेक राव-राजाओं की प्रशस्ति में कवित्त और सवैए लिखे हैं। इन सबको भूषण का आश्रयदाता मान लेना उचित नहीं लगता। उनकी निम्नलिखित पंक्तियों से लगता है कि वे छत्रसाल के आश्रय में भी रहते थे—

आन रावराजा एक मन में न लाऊँ अब।
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल कौ॥[3]

छत्रपति शिवाजी के दरबार में रहकर भूषण ने शिवराज भूषण लिखा। यह ऊपर लिखा गया है। महाराज छत्रसाल बुन्देला भी उनके आश्रयदाता थे, किन्तु इनके अतिरिक्त जिन-जिन रावराजाओं की प्रशस्ति में भूषण ने एक भी छन्द लिखा है, उन्हें भूषण का आश्रयदाता नहीं माना जा सकता। पं० विश्वनाथप्रसाद लिखते हैं—"भूषण ने जिन जिन रावराजाओं की प्रशस्ति में काव्य लिखा है उन को उनका आश्रयदाता कहना ठीक नहीं। अनेक राजा महाराजाओं से अवसर विशेष पर भेंट होने पर उनकी प्रशस्ति में कुछ कह देना शिष्टाचारवश भी हो सकता है।"[4]

अन्तस्साक्ष्य के आधार पर जो बातें प्रमाणित होती हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

(१) भूषण का जन्म स्थान तिकवाँपुर (त्रिविक्रमपुर) था।
(२) वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम रतिनाथ या रत्नाकर था।
(३) वे शिवाजी के समकालीन और उनके दरबारी कवि थे।
(४) शिव भूषण ग्रन्थ की रचना उन्होंने संवत् १७३० में पूर्ण की।

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० २३०
[2] भूषण विमर्श, पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित, पृ० १०६ और ११०
[3] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५१२
[4] वही, पृ० १०६

(५) चित्रकूट नरेश ने उन्हें कवि भूषण की उपाधि दी।

(६) उन्होंने देशाटन किया था। उनके मुख्य आश्रयदाता छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल बुन्देला थे।

२. २. २. बहिस्साक्ष्य

२. २. २. १. **कालिदास हजारा :** सर जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है कि भूषण के ७२ कवित्त और सवैये कालिदास हजारा में संग्रहीत हैं।[1] इस संग्रह में शिवसिंह सरोज के अनुसार संवत् १४८१ से लेकर संवत् १७७६ तक के २१२ कवियों के १००० पद्य संग्रहीत हैं।[2] कालिदास का समय संवत् १७४५ में उपस्थित माना गया है। गोलकुण्डे की चढ़ाई में ये औरंगजेब की सेना में किसी राजा के साथ गए थे। १७४९ संवत् में इन्होंने वारवधू बनाया।[3] इससे इतना ज्ञात होता है कि भूषण की रचनाएँ अपने दिनों में इतनी ख्यात हो गई थी कि कालिदास ने अपने संग्रह में इनके कवित्त और सवैयों को स्थान दिया है। काल निर्णय की दृष्टि से इस बात की पुष्टि होती है कि भूषण कालिदास के समकालीन या इसके पूर्व थे।

२. २. २. २. **आचार्य भिखारीदास :** आचार्य भिखारीदास ने भूषण कवि का उल्लेख किया है। इनका कविता काल संवत् १७८५ से संवत् १८०७ तक माना जा सकता है।[4] इन्होंने लिखा है :—

सूर, केसव, बिहारी, कालीदास ब्रह्म,
चिंतामनि, मतिराम, भूषण सु जानिए।
लीलाधर, सेनापति, निपट, नेवाज, निधि,
नीलकंठ, मिश्र सुखदेव, देव मानिए।
आलम, रहीम, रसखान, सुन्दरादिक,
अनेकन सुमति भए कहाँ लौ बखानिए।
ब्रजभाषा हेत ब्रजभाषा ही न अनुमानौ,
ऐसे ऐसे कविन की बानी हू सों जानिए॥[5]

\+ \+ \+

---

[1] **हिन्दी साहित्य का इतिहास, सर जार्ज ग्रियर्सन (अनुवादक : किशोरीलाल गुप्त), पृ० १५८**

[2] **हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, (नौवाँ संस्करण), पृ० २६१**

[3] **वही, पृ० २६१**

[4] **वही, पृ० २७७**

[5] **काव्य-निर्णय, आचार्य भिखारीदास, सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, दूसरा खण्ड, छं० सं० १०**

एक लहैं तप पुंजन के फल ज्यों तुलसी अरु सूर गोसाई।
एकन को बहु सम्पति केशव भूषन ज्यों बलबीर बड़ाई।।
एकन कों जस ही सों प्रयोजन है रसखानि रहीम की नाईं।
दास कबित्तन की चरचा गुनवंतन कों सुखदै सब ठाईं।।[1]

दासजी की इन पंक्तियों से ज्ञात होता है कि भूषण अपने समय के प्रख्यात कवि थे। दूसरे 'चिन्तामनि, मतिराम, भूषन सु जानिए' में क्रम से तीनों नाम आए हैं, इससे इन तीनों के भाई होने का अनुमान किया जा सकता है। अन्य प्रमाणों से यह ज्ञात हुआ है कि तीनों भाई थे। तीसरी बात यह है कि भूषण को अपने आश्रयदाताओं से जितनी सम्पत्ति मिली, उतनी औरों को नहीं। इससे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भूषण अपने समय में बहुत अधिक लोकप्रिय रहे और आश्रयदाताओं द्वारा वे बहुत अधिक सम्पत्ति पाने वाले कवि थे।

२. २. २. ३. चिटणीस बखर : सप्तप्रकरणात्मक चरित्र (चिटणीस बखर) में मराठी के प्रसिद्ध सन्त कवि तुकाराम द्वारा शिवाजी को भेजे गए पत्र का उल्लेख स्वयं तुकाराम के शब्दों में उद्धृत है। इस पत्र में भूषण का उल्लेख किया गया है। पत्र इस प्रकार है—

"आतां हे विनन्ती प्रधान-अष्ट का, प्रभूसी विवेका ऐशा सांगा ।।१।।
प्रतिनिधि मनरंजक चतूर, सात्त्विकांचे घर तुम्हांपाशी ।।२।।
मजुमूचे धणी लेखन कारक, पत्रींचा विवेक समजावा या ।।३।।
पेशवे सुरनीस चिटणीस डबीर, राजाज्ञा सादर सेनापति ।।४।।
भूषन पण्डित विद्या अध्ययन, वैदिका नमन माझे असो ।।५।।
पत्राचा हा अर्थ अन्तरी जाणोनी, श्रवणीं विवंचोनी घाला राया ।।६।।
तुका म्हणे तुम्हां नमन अधिकाऱ्यां, सांगावे ते राया पत्र माझें।[2]

प्रसिद्ध इतिहासकार विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े इस पत्र के आधार पर चार निष्कर्ष निकालते हैं, जिनमें चौथा निष्कर्ष उन्हीं के शब्दों में—(४) भूषण कविचा उल्लेख केला आहे।"[3] अर्थात् भूषण कवि का उल्लेख इसमें मिलता है। इसी पृष्ठ पर आगे उन्होंने लिखा है—"व शेवटी १६४९ ई० अगोदर भूषण कवि

---

[1] काव्य-निर्णय, आचार्य भिखारीदास, सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, दूसरा खंड, छं० सं० १६

[2] सप्त प्रकरणात्मक चरित्र, मल्हार रामराव चिटणीस विरचित, सं० रा० ब० काशीनाथ नारायण साने बी० ए० (प्रकाशन तिथि १९२४) पुस्तक से उद्धृत।

[3] मराठ्यांचा इतिहासांची साधनें (खण्ड चौथा), विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे (चित्रशाला छापाखाना पूना, द्वारा प्रकाशित) सन् १९०० ई०, पृ० ९८

शिवाजीच्या पदरीं राहिला होता ही हि गोष्ट सम्भवनीय मानावी लागतें।"[१] अर्थात् अन्त में यह स्वीकार करना पड़ता है कि १६४६ ई० से पूर्व भूषण कवि शिवाजी के दरबार में रहता था, यह बात सम्भावित और विश्वसनीय माननी पड़ती है।

इस सम्बन्ध में एक बात और स्पष्ट कर देना उचित होगा कि तुकाराम के प्रस्तुत अंश को कतिपय विद्वान प्रक्षिप्त मानते हैं। उनका तर्क यह है कि प्रस्तुत पत्र में राजाज्ञा और प्रतिनिधि के जिन पदों का उल्लेख है, वे १६५० ई० या इससे पूर्व नहीं थे जब कि सन्त तुकाराम की मृत्यु १६५० ई० में हो गई। इस तर्क को मान लेने पर भी भूषण के शिवकालीन होने में कोई अन्तर नहीं आता, क्योंकि पत्र में उल्लिखित सभी तथ्य ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक हैं। स्वयं राजवाड़े ने इन्हें प्रामाणिक माना है। दूसरी बात यह है कि चिटणीस की मृत्यु १८२३ ई० मानी जाती है, अतः चिटणीस बखर जिसमें यह पत्र उद्धृत है १८२३ ई० या इससे पूर्व की रचना है। साथ ही चिटणीस ने इस अंश को तुकाराम के नाम पर उद्धृत किया है। अतः बखर की रचना से पूर्व ही अन्य किसी ने यह प्रक्षिप्त अंश लिखा होगा और लिखनेवाला यह निश्चित रूप से जानता था कि भूषण शिवाजी के दरबार में थे। इन अभंगों के अतिरिक्त स्वयं चिटणीस ने भी भूषण कवि के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। मतिराम का उल्लेख तो बखर में नहीं मिलता, किन्तु चिन्तामणि का उल्लेख उसमें भूषण के बड़े भाई के रूप में हुआ है। साथ ही इसमें भूषण का प्रथम कुमाऊँ नरेश के पास जाना और वहाँ से बाद में शिवाजी के पास जाने का उल्लेख है। भूषण सम्बन्धी दन्तकथाएँ भी इसमें हैं। भूषण की प्रसिद्धि का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि चिटणीस ने छत्रपति शिवाजी का इतिहास लिखते हुए भूषण कवि का उल्लेख भी उस इतिहास में कर दिया। वास्तव में भूषण कवि का जीवन-वृत्त लिखनेवाला प्रथम व्यक्ति चिटणीस ही था।

२. २. २. ४. **रसचन्द्रिका** : मतिराम के प्रपौत्र बिहारीलाल कवि ने विक्रम सतसई की टीका में (रसचन्द्रिका में) मतिराम का परिचय देते हुए भूषण कवि का उल्लेख किया है।[२] इससे इतना ज्ञात होता है कि चिन्तामणि, मतिराम और भूषण सहोदर बन्धु थे।

---

[१] मराठ्यांच्या इतिहासांची (खंड चौथा), पृ० ९८

[२] बसत त्रिबिक्रमपुर नगर, कालिन्दी के तीर।
बिरच्यो भूप हमीर जनु, मध्यदेश को हीर ॥१॥
भूषन चिन्तामनि तहाँ, कबि भूषन मतिराम।
नृप हमीर सनमान ते, कीन्हें निज निज धाम ॥२॥

२. २. २. ५. **अलंकार-प्रकाश :** कैप्टन शूरवीर सिंह ने इधर नागरी प्रचारिणी पत्रिका (वर्ष ६०, अंक २, संवत् २०१२, पृ० ११५ से १२१ तक) में और साहित्य सन्देश (मार्च १९५६ ई०) में भूषण के सम्बन्ध में नई खोजपूर्ण सामग्री पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार—"मुझे हाल में भूषणकृत एक 'अलंकार प्रकाश' नामक ग्रन्थ की प्रतिलिपि उपलब्ध हुई है, जिसका रचनाकाल भी संवत् १७०५ ही है। इसमें दस उल्लासों में भूषण की रचना है, जिससे यह विदित होता है कि सम्भवतः यही वह 'भूषण उल्लास' ग्रन्थ होगा, जिसका न मिलना मिश्रबन्धु विनोद में लिखा है। इस ग्रन्थ में शृंगार रस के छन्द भी प्रचुर मात्रा में हैं।[1] उक्त रचना भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़ द्वारा १९६२ ई० में प्रकाशित हो गई है। इस ग्रन्थ में कवि ने अपना परिचय निम्न रूप में दिया है—

रामकृष्ण कश्यप कुलहि, रामेश्वर सुव तासु।
ता सुत मुरलीधर कियो, अलंकार परकासु॥४३२॥
पाँच सुन्न सत्रह, वरिष, कातिक सुदि छटि जानु।
अलंकार परकास को, कवि कीनो निरमानु॥४३३॥

संवत् १७०५ इति श्री गहरवार बुन्देल वंश वारिज विकासन मार्तण्ड राज्य-लक्ष्मी रक्षण विचक्षण दोर्दण्ड महावीराधिवीर राजाधिराज श्री राजा देवीशाह देव प्रोत्साहित त्रिपाठी रामेश्वरात्मज कबि भूषण मुरलीधर विरचिते अलंकार प्रकाशे अभिधा निरूपणो नाम दसमो उल्लासः समाप्तम्।"[2]

सन् १९५९ ई० में मुरलीधर कवि भूषण की एक नई रचना छन्दोहृदय प्रकाश (प्रो० विश्वनाथप्रसाद द्वारा सम्पादित) प्रकाशित हुई है। इसकी भूमिका को पढ़ने से ज्ञात होता है कि कैप्टन साहब द्वारा बताये गये भूषण की रचना 'अलंकार प्रकाश' प्रसिद्ध कवि भूषण की रचना नहीं, बल्कि मुरलीधर कवि भूषण की रचना है। प्रो० विश्वनाथप्रसाद ने लिखा है—"तिकवाँपुर के भूषण से मुरलीधर भूषण का कोई सम्बन्ध नहीं था। और न शिवराज भूषण ग्रन्थ से ही इसकी कोई

है पन्ती मतिराम के, सुकवि बिहारीलाल।
जगन्नाथ नाती विदित, सीतल-सुत सुभ चाल॥३॥
कस्यप बंस कनौजिया, विदित त्रिपाठी गोत।
कबिराजन के बृन्द में, कोबिद सुमति उदोत॥४॥
—भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, से उद्धृत, पृ० ९८

[1] साहित्य सन्देश, मार्च १९५६, पृ० ३६०

[2] अलंकार प्रकाश, सं० कैप्टन शूरवीरसिंह, पृ० ८६

संगति है, क्योंकि शिवराज भूषण के रचयिता भूषण ने लिखा है कि उन्हें भूषण की उपाधि चित्रकूट के राजा रुद्रशाह सोलंकी ने दी थी, जब कि छन्दोहृदय प्रकाश के रचयिता मुरलीधर भूषण को यह उपाधि चँदेरी के राजा देवीसिंह ने दी थी (देवीसिंह किएउ कवि भूषन आदि) इस प्रकार ये दोनों भूषण एक दूसरे से भिन्न सिद्ध होते हैं।"[1] छन्दोहृदय प्रकाश में भूषण ने जो अपना परिचय दिया है, वह अलंकार प्रकाश के परिचय से मिलता है। यहाँ भूषण ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—

गहवर गुन मंडित कवि पंडित रामकृष्ण कस्यप कुल भूषन।
रामेश्वर ता तनय सुकवि जा कवितन नाहिन (?) निरषेउ नेक दूषन।
मुरलीधर ता सुअन सुपंचम रच्यो तिन्ह जगमगात जिमि मिहिर मयूषन॥[2]

अर्थात् गहरवार वंश के नरेशों द्वारा प्रशंसित कश्यपगोत्रिय पंडित रामकृष्ण के पुत्र थे। रामेश्वर और उनके पंचम पुत्र थे मुरलीधर जिन्हें देवीसिंह ने भूषण की उपाधि से सम्मानित किया था। अलंकारप्रकाश के रचयिता भूषण का भी परिचय उक्त रचना में इसी तरह का है। अत: अलंकारप्रकाश और छन्दोहृदय के रचयिता मुरलीधर भूषण कवि प्रसिद्ध कवि भूषण से भिन्न ठहरते हैं।

२. २. २. ६. **शिवसिंह सरोज** : ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने भूषण का काल संवत् १७३८ उ० दिया है।[3] इस उ० से उपस्थिति काल लें या उत्पत्ति काल लें, इस सम्बन्ध में मतभेद है। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि—"हिन्दी के ऐतिहासिकों को शिवसिंह सरोज से बहुत धोखा हुआ है। यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त है कि उसमें कवियों का कविताकाल दिया गया है; जन्मकाल नहीं।"[4] मिश्र जी का कथन ठीक है, क्योंकि मतिराम के सम्बन्ध में भी सं० १७३८ उ० लिखा हुआ है।[5] यदि दोनों सहोदर बन्धु हैं तो दोनों का उत्पत्ति काल एक नहीं हो सकता। मिश्र जी ने अनेक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि सरोज के संवत् उपस्थिति काल बतलाते हैं; जन्मकाल नहीं।[6] ठाकुर शिवसिंह

---

[1] मुरलीधर कवि भूषण कृत छन्दोहृदय प्रकाश, सं० प्रो० विश्वनाथप्रसाद, पृ० ७
[2] वही, पृ० ६
[3] शिवसिंह सरोज, ठाकुर शिवसिंह सेंगर, (प्रस्तुत अंश मिश्रजी की पुस्तक 'भूषण' से उद्धृत किया गया है, पृ० ६४)
[4] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, (आरम्भ वचन से), पृ० ३
[5] शिवसिंह सरोज, ठाकुर शिवसिंह सेंगर, (यह अंश भी मिश्र जी की पुस्तक से उद्धृत है), पृ० ६६
[6] भूषण, पण्डित विश्वनाथप्रसाद मिश्र, (आरम्भ वचन से), पृ० ३

सेंगर का तात्पर्य यदि उत्पत्ति काल से होता, जैसे कि पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित मानते हैं, तो शिवसिंह सेंगर को यह भी लिख देना चाहिए था कि भूषण शिवाजी के दरबार में नहीं गये या शिवाजी के काल का उल्लेख नहीं होना चाहिए था। किन्तु वस्तु-स्थिति यह है कि सेंगर जी भूषण का शिवाजी के दरबार में उपस्थित होने का उल्लेख करते हैं।[१] सेंगर जी ने चिन्तामणि का वृत्त लिखते हुए भूषण का भी उल्लेख किया है:—

"चिन्तामणि त्रिपाठी टिकमापुर जिले कानपुर वाले सं० १७२६ में उ० ये महाराज भाषा साहित्य के आचार्यों में गिने जाते हैं। अन्तरवेद में विदित है कि इनके पिता दुर्गापाठ करने नित्य देवी के स्थान में जाते थे। वे देवीजी बन की मुइयाँ कहाती हैं, टिकमापुर से एक मील के अन्तर पर हैं। एक दिन महाराज राजेश्वरी भगवती प्रसन्न ह्वै चारि मुण्ड दिखाय वोली—यही चारों तेरे पुत्र होंगे, निदान ऐसा ही हुआ कि (१) चिन्तामणि, (२) भूषण, (३) मतिराम, (४) जटाशंकर या नीलकण्ठ चार पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें केवल नीलकण्ठ महाराज तौ एक सिद्ध के आशीर्वाद से कवि हुए; शेष तीनों भाई संस्कृत काव्य को पढ़ि ऐसे पण्डित हुए कि उनका नाम प्रलय तक बाकी रहैगा। इन्हीं के वंश में शीतल और बिहारीलाल कवि जिनका लालभोग है संवत् १९०१ तक विद्यमान थे........।"[२]

तात्पर्य यह है कि सेंगर जी ने चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और जटाशंकर चारों को सहोदर बन्धु माना है।

२. २. २. ७. **मिश्रबन्धु** : मिश्रबन्धुओं ने सर्वप्रथम भूषण की जीवनी और कृतियों पर प्रकाश डाला है। भूषण ग्रन्थावली की उनकी भूमिका शोधपूर्ण है। सर्वप्रथम उन्होंने वैज्ञानिक दृष्टि से भूषण के काल निर्णय पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने भूषण का जन्म सन् १६१४ ई० के आसपास स्वीकार किया है। वे लिखते हैं—"भूषण का जन्म सन् १६१४ ई० के आसपास या उससे पहले का मानना पड़ेगा। हमने आगे सप्रमाण लिखा है कि भूषण जी प्रायः सन् १७४० ई० तक जीवित रहे।"[३] मिश्रबन्धुओं ने एक प्रकार से भूषण के काल की रेखाएँ खींच दी हैं। १६१४ ई० से उन्हें पीछे ले जाना सम्भव नहीं और १७४० ई० के पश्चात् भी वे नहीं रहे, यह भी निश्चित है। एक प्रकार से इस अवधि अर्थात् १७४०—१६१४=१२६ वर्ष के बीच ही वे रहे होंगे। मिश्रबन्धुओं ने मतिराम और चिन्तामणि को भूषण का भाई माना है, किन्तु जटाशंकर के सम्बन्ध में लिखा है कि—"जटाशंकर का भूषण का भाई होना अनिश्चित है।"[४] भूषण शिवाजी के दरबार

---

[१] **शिवसिंह सरोज, ठाकुर शिवसिंह सेंगर, (मिश्रजी की पुस्तक से उद्धृत), पृ० ९४**

[२] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ९५ से प्रस्तुत अंश उद्धृत किया गया है।**

[३] **भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु (सातवाँ संस्करण), पृ० ६**

[४] **वही, पृ० ६, १२, १३, १४ और १५**

में उपस्थित हुए थे। वे १६६७ ई० से १६७३ ई० तक शिवाजी के दरबार में लगभग ६ वर्ष तक रहे। वहाँ उन्होंने १६७३ ई० अर्थात् संवत् १७३० में शिवराज भूषण पूर्ण किया।[१]

२. २. ३. जनश्रुतियाँ

भूषण के सम्बन्ध में लोक में दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। चिटणीस बखर में ये कथाएँ सर्वप्रथम मिलती हैं। चिटणीस की मृत्यु १८२३ ई० में हुई। उससे पूर्व ही ये कथाएँ प्रचलित रही होंगी। चिटणीस बखर के अनुसार दन्तकथाएँ नीचे लिखी जा रही हैं।[२]

दिल्ली के बादशाह के दरबार में चिंतामणि कवि थे; उन्हीं के घर पर रहते समय किसी व्यक्ति ने भूषण से यह कह दिया कि तुम घर पर ही रहते हो (अर्थात्) कुछ नहीं करते। इस पर भूषण को क्रोध आ गया और उन्होंने कहा कि मुझे यवनों का अन्न नहीं खाना है—कहते हुए वे वहाँ से प्रथम कुमाऊँ नरेश के पास गये और वहाँ उन्होंने कुमाऊँ नरेश की प्रशस्ति में कवित्त सुनाए। कुमाऊँ नरेश ने उनका बड़ा सम्मान किया और जब कवि वहाँ से लौटने लगा तो विदाई में दान-दक्षिणा में एक लाख रुपये दिए और गर्व से कहा कि—"ऐसा दाता पृथ्वी पर और कौन हो सकता है ?" सुनकर कवि ने तत्काल उत्तर दिया कि—"ऐसे दानी शत-भीष्म बहुत हैं, किन्तु ऐसा याचक तुमने नहीं देखा होगा। लाख रुपये गर्व से दिए गये हैं, इसलिए तुच्छ हैं। इस द्रव्य को मैं स्पर्श नहीं करूँगा।" इस तरह कह वहाँ से वे सीधे दक्षिण प्रांत की ओर शिवाजी की कीर्ति सुन चले आए और उनसे भेंट कर कहा—"जो यवनों का शत्रु होगा, उन्हीं के पास मैं रहूँगा।" शिवाजी ने कहा—"मैं यवनों का काल हूँ।" भूषण वहीं उनके आश्रय में रह गये और कविता करने लगे। शिवाजी का प्रताप देखकर उन्होंने "शिव भूषण" नूतन ग्रन्थ की रचना की। महाराज की मर्जी वह हर क्षण रखते थे। इस तरह चार पाँच वर्ष बीत गये। बाद में महाराज की आज्ञा लेकर दिल्ली लौटे। लौटते समय महाराज ने वस्त्र, भूषण, हाथी, घोड़े और लाखों रुपये उन्हें दान में दिये और फिर लौट आने के लिए आग्रह किया। भूषण ने स्वीकार किया कि वे लौट आएँगे। जल्दी आऊँगा ऐसा कह वे चले गए।

---

१ **भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु (सातवाँ संस्करण), पृ० ३२ से ३६ तक देखिए।**

२ **मल्हार रामराव विरचित शककर्ते श्री शिव छत्रपति महाराज ह्यांचे सप्त प्रकरणात्मक चरित्र, सम्पादक, काशीनाथ नारायण साने बी० ए० (प्रकाशन तिथि १९२४ ई०), पृ० १८८ और १८९**

दिल्ली पहुँचने पर बादशाह को भूषण के आने का पता चला। शिवाजी की ओर से सम्मानित होकर भूषण आए हैं, यह सुनकर बादशाह ने उनके भाई चिन्तामणि कवि को आज्ञा दी कि—"तुम्हारे भाई भूषण को दरबार में ले आओ।" इस पर चिंतामणि ने भूषण से कहा कि मेरे यजमान तुम्हें बुलाते हैं। भूषण ने उत्तर दिया कि—"मेरे यजमान के शत्रु···मैं उनका दर्शन नहीं करूँगा। मेरे मुख से शिवाजी के प्रताप को छोड़कर और कुछ नहीं निकलेगा। इससे तुम्हारे यजमान कुपित होंगे।" इस पर चिन्तामणि ने उन्हें बहुत समझाया और न मानने पर बादशाह से कहा कि "कवि आपसे मिलने के लिए आएगा, किन्तु वह शिवाजी के प्रताप का ही वर्णन करेगा। आज्ञा हो तो बुलाऊँ।" बादशाह ने ले आने की आज्ञा दे दी। इस पर चिन्तामणि कवि भूषण को लेकर दरबार में गए। भेंट हुई और फिर आदेश मिला कि—"कुछ वर्णन हो।" कवि ने कहा—"आप हाथ धोकर बैठिए। मैं वीर रस की कविता कहूँगा, उस समय आपका हाथ मूँछों पर पहुँच जाएगा।" इस पर हाथ धोने का क्या कारण है ? पूछा गया। भूषण ने कहा—"आपको शृंगार प्रिय है, मेरे भाई शृंगार का ही वर्णन करते हैं, इससे आपका हाथ पाजामे को लग जाता है, इसलिए हाथ धो लिया जाय।" बादशाह ने कहा—"यदि हाथ मूँछों पर नहीं गया तो सिर धड़ से अलग कर दिया जायगा।" कहकर उन्होंने हाथ धो लिया। भूषण ने कहना शुरू किया। प्रथम शिवाजी के यश और प्रताप का वर्णन किया। बाद में आदेश मिला कि—"हमारे सम्बन्ध में कुछ कहो—विशेषतः सार्वभौम पद के सम्बन्ध में, क्योंकि सारे रावराजा हमें कर देते हैं और मांडलिक बने हुए हैं—ऐसा वर्णन हो।" इस पर पृथ्वी पर सब राजा पुष्प-वृक्ष हैं और आप भ्रमर हैं—सब का मधु-सेवन करने वाले—इस प्रकार वर्णन कर अन्त में कहा कि शिवाजी चंपक वृक्ष हैं। चंपक को भ्रमर स्पर्श नहीं करता।"[1] फिर बादशाह ने कहा—हाथ धुलवाने के

---

[1] उक्त कवित्त इस प्रकार हैं :—

केतकी भो राना और बेला सब राजा भए,
ठौर-ठौर रस लेत नित यह काज है।
सिगरे अमीर भए कुंद मकरंद भरे,
भृङ्ग सो भ्रमत लखि फूल की समाज है।
भूषन भनत सिवराज देस-देसन की,
राखि है बटोरि एक दच्छिन में लाज है।
तजत मलिन्द जैसे तैसे तजि दूर भाग्यौ,
अलि अवरंगजेब चम्पा सिवराज है॥

—भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४४०

+ + + +

उद्देश्य के कुछ कवित्त सुनायें" । भूषण ने ६ उत्कृष्ट वीर रस युक्त कवित्त सुनाए। सातवें कवित्त पर बादशाह का हाथ आवेश में आने के कारण मूँछों पर चला गया। इसके बाद कवि चुप हो गया। बादशाह बहुत खुश हुए और उन्होंने सम्मान के साथ पुरस्कार में वस्त्र, जवाहर और हाथी दिए। यह समाचार शिवाजी महाराज के वकील ने उन्हें लिखा। इसे सुनकर शिवाजी महाराज बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने भूषण को आने के लिए निमन्त्रण भेजा। भूषण आये। चिटणीस बखर की कथा यहाँ समाप्त हो जाती है।

भूषण के घर से भागने के सम्बन्ध में और भी किम्वदन्तियाँ हैं। एक किम्बदन्ती यह है कि एक बार दाल में नमक की कमी का अनुभव कर उन्होंने अपनी भाभी से नमक माँगा। उसने कहा—"बहुत कमाकर ले आये हो जो दूँ।" इसी बात पर भूषण ने घर छोड़ दिया और कहा कि जब नमक ले आऊँगा, तभी भोजन करूँगा। एक और अन्य कथा प्रचलित है कि भूषण की स्त्री गणेश चतुर्थी के दिन गणेश जी की पूजा में घाट पर नहीं गई; इस पर जेठानी ने ताना मारा कि अपने पति से कहो कि दरवाजे पर जीवित गणेश (हाथी) लाकर बाँध दे। यहीं पूजा किया करो। फलस्वरूप भूषण हाथी को प्राप्त करने के भाव से घर से निकल पड़े और इन कथाओं के अनुसार उन्होंने—प्रथम कथा के अनुसार एक लाख का नमक भेजा, और द्वितीय कथा के अनुसार कई हाथी भेजे।

एक दन्तकथा के अनुसार बादशाह ने भूषण से दरबार में यह पूछा कि प्रशंसा में आप लोग कवित्त तो सुनाते ही हैं, हमारे दोष पर कुछ सुनाओ। और कवि तो चापलूसी करते रहे, पर भूषण ने कहा यदि कवित्त सुनने के बाद माफ कर दिया जाऊँ तो सुनाऊँ। बादशाह ने स्वीकृति दे दी। भूषण ने "किबले के ठौर........" वाला कवित्त सुनाया। औरंगजेब ने क्रुद्ध होकर कवि को मारने का आदेश दिया।

कूरम कमल, कमधुज है कदंब फूल,
गौर है गुलाब राना केतकी बिराज है।
पाँडरि पँवार जुही सोहत है चंदावत,
बकुल बुँदेला अरु हाड़ा हंसराज है।
भूषन भनत मुचकुंद बड़गूजर है,
बघेले बसंत सब कुसुम-समाज है।
सब ही को रस लैकै बैठि न सकत आय,
अलि अवरंगजेब चंपा सिवराज है॥

—भूषण, पण्डित विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द संख्या ४४१, पृ० २२५

[1] **देखिए भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द संख्या ५४१ और ५४२, पृ० २४३**

लोगों ने उसे उसके वचन की याद दिलाई, इससे भूषण बच गए, किन्तु औरंगजेब ने कहा कि सामने से हट जाएँ। भूषण अपने डेरे पर लौटकर अपनी कबूतरी घोड़ी पर बैठकर चले गए।

भूषण से शिवाजी की भेंट हुई, इस सम्बन्ध में एक दूसरी दन्तकथा है। कहते हैं जब भूषण अपनी भाभी से नाराज हुए तो वे सीधे दक्षिण चले आये। रायगढ़ पहुँच कर एक मन्दिर में ठहरे। कहते हैं शिवाजी वहाँ भेष बदलकर इस आशय से पहुँचे कि आने वाले यात्री का अभिप्राय क्या है? भूषण ने बतलाया कि वह शिवाजी को अपनी कविता सुनाना चाहता है। छद्मवेशी शिवाजी ने कहा—"सुनाओ"। भूषण ने सुनने वाले का परिचय पूछा। शिवाजी ने बतलाया कि वे शिवाजी के एक सिपाही हैं। शिवाजी का निकटस्थ व्यक्ति समझकर उन्होंने—"इन्द्र जिमि जम्भ पर........" वाला[1] कवित्त ५२ बार पढ़कर सुनाया। कुछ लोगों के अनुसार १८ बार सुनाया। किसी का विश्वास है कि एक ही कवित्त नहीं, अलग-अलग ५२ कवित्त सुनाए गये। दूसरे दिन जब भूषण दरबार में पहुँचे, तो उसी सिपाही को शिवाजी के रूप में देखा तो इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। कहते हैं कि इन्हें शिवाजी ने ५२ लाख रुपए, ५२ हाथी और ५२ गाँव पुरस्कार में दिए। ५२ हाथियों को पाने का उल्लेख संवत् १७८० में ही लोकनाथ कवि ने भी किया है :—

"भूषन निवाज्यो जैसे सिवा महाराजजू ने,
बारन दै बावन धरा पै जस छाय है।"

इस सम्बन्ध में आचार्य भिखारीदास ने काव्य-निर्णय में एक सवैया लिखा है, जिसका आशय यही है कि जैसी सम्पत्ति और बड़ाई कविता से भूषण जी ने पाई वैसी प्रायः औरों ने नहीं पाई।[2]

ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने लिखा है कि शिवाजी के पास से लौटने पर ये छत्रसाल के दरबार में गए। शिवाजी के राजकवि जानकर छत्रसाल ने इनकी बड़ी आवभगत की और विदा करते समय इनकी पालकी का डंडा अपने कन्धे पर रख लिया। भूषण तत्काल पालकी से कूद पड़े और उनकी प्रशंसा में "साहू कौ सराहौं कै सराहौं छत्रसाल कौ"........वाला[3] कवित्त पढ़कर सुनाया। चिटणीस बखर में भूषण का कुमाऊँ नरेश के दरबार में प्रथम जाने का उल्लेख है, किन्तु सरोज के

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द संख्या ५०, पृ० १५७

[2] काव्य निर्णय, आचार्य भिखारीदास, सं० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, दूसरा खण्ड, छन्द संख्या १६, पृ० ५

[3] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द संख्या ५१२, पृ० २३८

अनुसार वे शिवाजी के पास से लौटने पर कमाऊँ नरेश के पास गए। बाद की कथा लगभग वही है। शिवाजी के राज्याभिषेक के समय भूषण दक्षिण में नहीं थे। उससे कुछ पूर्व ही शिवराज भूषण की रचना पूर्ण कर वे लौट गए थे। कहते हैं वे फिर दक्षिण गए और शिवाजी का स्वर्गवास होने पर लौटे। साहू के गद्दी पर बैठने पर सम्भवतः फिर एक बार वे दक्षिण में गए हों।

२.३. समस्याओं के सन्दर्भ में सामग्री की संगति

अब प्राप्त सामग्री के आधार पर भूषण के जीवन-वृत्त सम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश डाला जा रहा है—

२. ३. १. जन्म स्थान एवं परिचय

अन्तस्साक्ष्य के आधार पर यह बात स्पष्ट रूप से ज्ञात होती है कि भूषण का जन्म स्थान त्रिविक्रमपुर (टिकवाँपुर) था। यह गाँव जमुना नदी के किनारे पर स्थित है। भूषण के पिता का नाम रतिनाथ या रत्नाकर था। वे कश्यप गोत्रीय कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।

२. ३. २. काल निर्णय

भूषण की जन्म-तिथि और मृत्यु-तिथि निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। इस सम्बन्ध में विद्वानों ने अनुमान से ही काम लिया है। नीचे उनकी जन्म-तिथि और मृत्यु-तिथि पर विचार किया जा रहा है।

(अ) **जन्म-तिथि :** मिश्र बन्धुओं ने भूषण ग्रन्थावली की भूमिका में भूषण की जन्म-तिथि १६१४ ई० मानी है।[१] किन्तु इस सम्बन्ध में उन्होंने जो प्रमाण दिया है, इस पर स्वयं उन्होंने सन्देह प्रकट किया है। हिन्दी नवरत्न में उन्होंने लिखा है कि—"अब हमको भूषण का जन्म काल संवत् १६९२ के आसपास……… मालूम होता है।"[२] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मिश्र बन्धुओं के आधार पर (उनकी ग्रन्थावली के आधार पर, नवरत्न के आधार पर नहीं) भूषण का जन्मकाल १६७० संवत् अर्थात् १६१४ ई० माना है।[3] बाबू ब्रजरत्नदास भूषण की जन्म-तिथि संवत् १७०० लिखते हैं।[४] अतः इन विभिन्न तिथियों को देखते हुए निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु इतना तो निश्चित है कि वे शिवाजी के समकालीन थे। यह बात पीछे अन्तस्साक्ष, वहिस्साक्ष और जनश्रुतियों के आधार पर प्रमाणित की गई है, दीक्षित जी के मतानुसार भूषण की जन्म-तिथि १७३८ संवत् नहीं मानी जा सकती। ये भी निश्चित है कि मतिराम उनके बड़े भाई थे और

---

[१] भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु (सातवाँ संस्करण), पृ० ६

[२] हिन्दी नवरत्न, मिश्रबन्धु, पृ० ३००

[3] हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (नौवाँ संस्करण), पृ० २५४

[४] भूषण ग्रन्थावली, बाबू ब्रजरत्नदास, पृ० १३

मतिराम की जन्म-तिथि १६०३ ई० यदि ठीक है,[1] तो भूषण का जन्म उनके बाद हुआ होगा और वह मिश्र बन्धुओं के अनुसार १६९२ संवत् या बाबू ब्रजरत्नदास के अनुसार १७०० संवत् के आसपास हो सकता है।

(आ) मृत्यु-तिथि : मिश्र बन्धुओं ने भूषण की मृत्यु-तिथि संवत् १७९७ अर्थात् १७४० ई० के आसपास मानी है।[2] इसका कारण यह है कि १७४० ई० तक की घटनाओं का उल्लेख उनके काव्य में मिलता है। यदि भगवन्तराय खीची के सम्बन्ध में लिखे गए उनके कवित्तों को छोड़ दें तो उनका समय १० वर्ष और पीछे आ जाता है। भगवन्तराय खीची सम्बन्धी उनके कवित्त भूधर कवि के बताए जाते हैं। अतः उनका समय बंगश-बुन्देला युद्ध तक खींचा जा सकता है। इस युद्ध का ऐतिहासिक समय १७२९ ई० है। अतः भूषण का अस्तित्व १७३० ई० तक माना जा सकता है। इसी के आसपास उनकी मृत्यु हुई होगी।

भूषण शिवाजी के समकालीन कवि थे। उनका समय १६३५ ई० और १७३० ई० के बीच माना जा सकता है।

भूषण और मतिराम समकालीन थे इस पर कोई विवाद नहीं। प्रश्न यह है कि क्या वे सहोदर बन्धु थे ? शिवसिंह सेंगर ने ऐसा ही माना है। उनके अनुसार

२.३.३. भूषण और मतिराम का बन्धुत्व

चिन्तामणि, मतिराम, भूषण और जटाशंकर या नीलकंठ चारों भाई थे। हिन्दी साहित्य के इतिहास-कारों ने भी सरोज का सहारा लेकर उक्त चार भाइयों का उल्लेख करना ठीक माना है। डाक्टर भगीरथ मिश्र ने हाल ही में सम्मेलन पत्रिका में[3] एक लेख 'मतिराम नामधारी दो कवि' लिख कर पुष्ट प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि प्रसिद्ध कवि मतिराम 'ललित ललाम' और 'रसराज' के रचयिता वृत्त-कौमुदी के रचयिता मतिराम से भिन्न हैं। अब समस्या यह है कि भूषण के बन्धु प्रसिद्ध कवि मतिराम (रसराज और ललित ललाम के रचयिता) थे या वृत्त-कौमुदी के रचयिता दूसरे मतिराम थे ? साथ ही क्या वे सहोदर बन्धु थे ?

पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित मतिराम नामधारी दो कवियों को स्वीकार कर लेते हैं किन्तु उनका कथन है कि भूषण के भाई पहले और प्रसिद्ध मतिराम नहीं

---

[1] मतिराम ग्रन्थावली, (परिचय और भूमिका वाला भाग १), पं० कृष्णबिहारी मिश्र, पृ० २५१

[2] हिन्दी नवरत्न, मिश्रबन्धु, पृ० ३००

[3] मतिराम नामधारी दो कवि, सम्मेलन पत्रिका, भाग ४७, अंक २ (डाक्टर भगीरथ मिश्र का लेख)

बल्कि दूसरे मतिराम (वृत्त-कौमुदी के रचयिता) हैं। साथ ही वे यह भी मानते हैं कि वे सहोदर बन्धु नहीं, फुफेरे या ममेरे भाई हो सकते हैं।[1] संभवतः दीक्षितजी दो मतिरामों को स्वीकार करते हुए भी प्रथम मतिराम को भूषण का भाई इसलिए नहीं मानते कि ऐसा मानने से भूषण शिवाजी के समकालीन सिद्ध हो जाएँगे, जब कि उनकी मान्यता है कि भूषण का जन्म ही शिवाजी की मृत्यु के एक वर्ष बाद, अर्थात् १६८१ ई० या १७३८ संवत् में हुआ।[2] किन्तु मेरे विचार से दो मतिरामों को स्वीकृत करने से समस्या सुलझ गई है और अब आसानी से यह कहा जा सकता है कि मतिराम यदि भूषण के भाई थे, तो वे प्रसिद्ध और प्रथम मतिराम के ही भाई थे। कम से कम द्वितीय के तो कदापि नहीं।

इस सम्बन्ध में कुछ प्रमाण दृष्टव्य होंगे। डाक्टर भगीरथ मिश्र ने अपने उक्त लेख में अपने कथन को सत्य प्रमाणित करने के लिए ६ कारण बतलाए हैं। उनमें दूसरा कारण यह है—

"दोनों मतिरामों के वंश परिचय भिन्न-भिन्न हैं और दोनों का सम्बन्ध भिन्न गोत्रों के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से है।"[3]

प्रथम और प्रसिद्ध मतिराम का परिचय उनके पौत्र तथा चरखारी नरेश विक्रमादित्य के राजकवि बिहारीलालकृते 'बिक्रम सतसई' की टीका 'रसचन्द्रिका' में दिया गया है।[4] यह परिचय भूषण के वंश और गोत्र से मेल खाता है। अतः इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि भूषण प्रथम और प्रसिद्ध मतिराम के सहोदर

---

[1] भूषण और मतिराम, सम्मेलन पत्रिका, भाग ४७, अंक ४, (पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित का लेख), पृ० ५६

[2] वही, पृ० ५७

[3] मतिराम नामधारी दो कवि, सम्मेलन पत्रिका, भाग ४७, अंक २, पृ० ४

[4] बसत त्रिबिक्रमपुर नगर, कालिन्दी के तीर।
बिरच्यो नृप हमीर जनु, मध्यदेश को हीर ॥१॥
भूषन, चिन्तामनि तहाँ, कबि भूषन मतिराम।
नृप हमीर सनमान ते, कीन्हें निज-निज धाम ॥२॥
है पन्ती मतिराम के, सुकबि बिहारीलाल।
जगन्नाथ नाती बिदित, सीतल-सुत सुभ चाल ॥३॥
कस्यप बंस कनौजिया, बिदित त्रिपाठी गोत।
कबिराजन के बृन्द में, कोबिद सुमति उदोत ॥४॥

—प्रस्तुत अंश पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र की 'भूषण' पुस्तक से उद्धृत है, पृ० ९८

बन्धु थे । दूसरे मतिराम का परिचय स्वयं उसी की रचना 'वृत्त-कौमुदी' में इस प्रकार दिया गया है—

> तिरपाठी बनपुर बसैं, बत्सगोत्र सुठि गेह ।
> बिबुध चक्रमणि पुत्र तहँ, गिरिधर गिरिधर देह ।
> भूमिदेव बलभद्र हुअ, नितहिं तनुज मुनि-गान ।
> मंडित पंडित-मंडली, मंडन मही महान ।
> तिनके तनय उदारमति, बिस्वनाथ हुअ नाम ।
> दुतिधर श्रुतिधर कौ अनुज, सकल गुननि कौ धाम ।
> तासु पुत्र मतिराम कबि, निज मति के अनुसार ।
> सिंह स्वरूप सुजान को, बरन्यो सुजस अपार ।[1]

इसी आधार पर पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मतिराम भूषण के सहोदर बन्धु नहीं हैं । उनके अनुसार वृत्त-कौमुदी में मतिराम के पिता का नाम भूषण के पिता के नाम से भिन्न है, इसी तरह गोत्र भिन्न है और स्थान भी ।[2] पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र भी भूषण और मतिराम को सहोदर बन्धु मानते हैं, किन्तु मतिराम नामधारी दो कवियों को एक कवि मानने का भ्रम अब तक परम्परा से चले आने के कारण वृत्त-कौमुदी वाले मतिराम के परिचय को प्रसिद्ध कवि मतिराम के वंश में सिद्ध करने के लिए उन्होंने वंशावली का विस्तृत परिचय दिया है । उनके अनुसार कश्यप गोत्र और वत्स गोत्र वास्तव में एक ही हैं । वे लिखते हैं—"तिकवाँपुर वाले मतिराम वत्सगोत्रीय न होकर कश्यपगोत्रीय ही थे और गूदरपुर के तिवारी थे तथा बछई के वंश में थे ।"[3] मिश्रजी के कथन में प्रामाणिकता होने पर भी यदि यह बात पहले ही ज्ञात होती कि वृत्त-कौमुदी के रचयिता दूसरे मतिराम हैं, तो वंशावली के इतने विस्तृत परिचय की आवश्यकता न होती और इस सम्बन्ध में इतना विवाद न होता ।

डाक्टर भगीरथ मिश्र ने अपने उक्त लेख में दो मतिरामों को सिद्ध करने के लिए जो पाँचवाँ कारण दिया है, वह इस प्रकार है :—

"रसराज के प्रणेता मतिराम ने न कहीं किसी ग्रन्थ में अपना परिचय दिया है और न रचनाकाल ही, क्योंकि वे स्वयं ही अति प्रसिद्ध कवि थे और उनके ग्रन्थ भी अति विख्यात थे । किसी भी दरबार में मतिराम जैसे कवि का जाना उनकी

---

१ वृत्त कौमुदी का प्रस्तुत अंश पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र की पुस्तक 'भूषण' से उद्धृत किया गया है, पृ० ६६

२ भूषण विमर्श, पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित, पृ० २३

३ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १०२

परम शोभा ही थी। अतः उन्हें अपने परिचय की आवश्यकता नहीं पड़ी। परन्तु वृत्त-कौमुदीकार की शैली ऐसी है जिसमें रचनाकाल भी दिया हुआ है। अतः दोनों व्यक्तियों की पद्धतियाँ अलग-अलग हैं।"[1]

पं० कृष्णबिहारी मिश्र मतिराम ग्रन्थावली की भूमिका में लिखते हैं कि—"हम मतिराम, चिंतामणि और भूषण को सगा भाई तथा कश्यपगोत्रीय त्रिपाठी और तिकवाँपुर का रहनेवाला मानते हैं। चिंतामणि का "भाषा-पिंगल" नामक ग्रन्थ हाल ही में हमको मिला है। इसमें शिवाजी के पितामह मकरंद और उनके पिता शाहजी की प्रशंसा है। संभवतः चिन्तामणि जहाँगीर के राजत्वकाल में कविता करते थे, और तीनों भाइयों में सबसे बड़े थे। मतिराम इनसे छोटे और भूषण सब से छोटे थे····मतिराम और भूषण की कविता में भी ऐसा कुछ भावसाम्य, तथा लक्षण आदि की एकता है कि उससे भी इनके भ्रातृत्व की बात की पुष्टि होती है।"[2]

डाक्टर भगीरथ मिश्र और पं० कृष्णबिहारी मिश्र दोनों विद्वानों के उक्त कथन इस बात की घोषणा करते प्रतीत होते हैं कि भूषण प्रसिद्ध कवि मतिराम के सहोदर बन्धु थे। पं० कृष्णबिहारी मिश्र ने अपनी पुस्तक में २२० से २२४ पृष्ठों पर दोनों कवियों के तुलनात्मक पद प्रस्तुत किए हैं। इनको देख लेने से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि दोनों में भावसाम्य, भाषा-सादृश्य और लक्षणों की एकता है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यही है कि मतिराम की जिन रचनाओं के साथ भूषण के काव्य की तुलना की गई है, वे रचनाएँ प्रसिद्ध कवि मतिराम की ही हैं।

सर जार्ज ग्रियर्सन ने भी दो मतिरामों को स्वीकार किया है और साफ लिखा है कि—"छन्दसार प्रसिद्ध भूषण के भाई कश्यपगोत्रीय मतिराम की रचना नहीं है। यह बनपुर जिला कानपुर के निवासी वत्सगोत्रीय विश्वनाथ त्रिपाठी के पुत्र मतिराम की रचना है। इसका असली नाम वृत्त-कौमुदी है।"[3] निष्कर्ष रूप में हम यह बात कह सकते हैं कि भूषण मतिराम के (प्रसिद्ध मतिराम के) सहोदर बन्धु थे।

२.३.४. भूषण का वास्तविक नाम

भूषण का वास्तविक नाम क्या था? यह अब तक ज्ञात नहीं है। 'भूषण' उनको चित्रकूट नरेश द्वारा दी गई उपाधि है। यह स्वयं कवि के कथन से स्पष्ट है :—

---

[1] सम्मेलन पत्रिका, भाग ४७, संख्या २, पृ० ४

[2] मतिराम ग्रन्थावली, पं० कृष्णबिहारी मिश्र, (तृतीयावृत्ति-परिचय भाग, पृ० २१९

[3] हिन्दी साहित्य का इतिहास, सर जार्ज ग्रियर्सन, अनु० किशोरीलाल गुप्त, पृ० १५८

कुल सुलंक चितकूटपति, साहस-सील-समुद्र ।
कबि भूषन पदवी दई, हृदैराम सुत-रुद्र ॥[१]

इनके वास्तविक नाम के सम्बन्ध में विद्वानों ने अनुमान से काम लिया है । विशाल भारत, अगस्त सन् १९३० के अंक में कुँवर महेन्द्रपाल सिंह ने अपने एक लेख में बताया कि तिकवाँपुर के एक भाट से उन्हें पता लगा था कि भूषण का असली नाम 'पतिराम' था । पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित भूषण का असली नाम 'मनिराम' मानते हैं । इसके लिए उन्होंने जो प्रमाण दिया है. वह यह है—"पं० बद्रीदत्त पाण्डे कृत कुमाऊँ के इतिहास में एक घटना का उल्लेख मिलता है, उसमें वर्णित है"—कहते हैं सितारा गढ़ नरेश शाहू महाराज के राजकवि 'मनिराम' राजा के पास अल्मोड़ा आए थे । उन्होंने राजा की प्रशंसा में यह कवित्त बनाकर सुनाया था । राजा ने दस हजार रुपए और एक हाथी इनाम में दिया । वह छन्द इस प्रकार है[२]—

पूरन पुरुष के परम दृग दोउ जानि,
कहत पुरान वेद बानि जोरि रढ़ि गई ।
दिन पति ये निसापति ज्यों,
दुहुन की कीरति दिसानि माँझि मढ़ि गई ।
रवि के करन भये महादानि यह,
जानि जिय आनि चिन्ता माँझि चढ़ि गई ।
तोहि राज बैठत कुमाऊँ श्री उदोतचन्द,
चन्द्रमा की करक करेजेहू ते कढ़ि गई ॥[३]

आगे लिखा है कि—"चूँकि साहू महाराज के दरबारी कवि केवल भूषण ही थे अन्य कोई नहीं, अतः मनिराम हमारे चरित नायक भूषण का ही वास्तविक नाम था ।"[४] राहुल की पुस्तक "कुमाऊँ" में उक्त कवित्त कुछ पाठभेद के साथ है और मतिराम के नाम पर है । राहुल जी ने उक्त छन्द देने से पूर्व लिखा है—"हिन्दी (ब्रजभाषा) के महान कवि मतिराम शिवाजी के पौत्र साहूजी के दरबारी कवि थे, उन्होंने उद्योतचन्द की प्रशंसा में लिखा था—"पुरान·······"वाला कवित्त है ।[५]

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द संख्या २८
२ महाकवि भूषण, पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित, पृ० १४ और १५
३ वही, पृ० १४ और १५
४ महाकवि भूषण, पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित, पृ० १५
५ कुमाऊँ, राहुल, पृ० ८९

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने यही कवित्त मतिराम के नाम पर उद्धृत किया है और कहा है कि वह भूषण का नाम नहीं है। अतः मनिराम भूषण का नाम नहीं हो सकता। पतिराम एवं मनिराम दोनों ही नाम मतिराम के वजन पर हैं, इसलिए इनमें से कोई नाम भूषण का हो सकता है, ऐसा विद्वानों का अनुमान है, पर जो प्रमाण दिए गए हैं, वे इतने पुष्ट नहीं हैं। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र "राधामाधवविलास चम्पू" के आधार पर कहते हैं कि भूषण का नाम "घनशाम" था। 'राधामाधवविलास चम्पू' का कवि जयराम पिण्ड्ये शिवाजी के पिता शाहजी का दरबारी कवि था और बाद में वह शिवाजी का दरबारी कवि रहा है। मिश्र जी ने उक्त चम्पू का निम्नलिखित अंश उद्धृत किया है—

> गायो उत्तर देस को, द्वै गुनि अति अभिराम।
> नाम एक को लालमनि, दूसरो है घनशाम॥
> बात अचम्भो एक यह जंत्र सजे को ठाट।
> चित्र चना के दारि मह चित्रचना के दारि यह॥
> चित्र चना के दारि बारन साट लिखि ल्यायो।
> जंत्र सज्यो जह ठाट राग मारुत बुरि गायो॥[1]

उक्त उद्धरण में घनश्याम का जो उल्लेख है, उसे देखकर मिश्रजी ने अनुमान कर लिया कि हो ना हो यही वह भूषण कवि है। उक्त उद्धरण के आगे मिश्रजी ने चम्पूकाव्य से एक अमृतध्वनि छन्द उद्धृत किया है और कहा है कि वह भूषण के अमृतध्वनि से मिलता जुलता है। अतः यह घनशाम और कोई नहीं बल्कि वही भूषण है। ऐसा मिश्रजी का विश्वास है।[2]

राधामाधवविलास चम्पू की रचना शिव भूषण से पहले हुई है। ऐसी स्थिति में जयराम द्वारा घनशाम का उल्लेख भूषण कवि का ही होगा, ऐसा कहने में सन्देह होता है। जयराम पिण्ड्ये ने अपने ग्रन्थ में स्पष्ट लिखा है कि उसकी पूरी रचना शाहजी (शिवाजी के पिताजी) ने अपने कानों से सुनी है—

> द्वादश भाषा ललित शाह नरेश्वरानें।
> आकर्णिले मग म्हणें मृदुल स्वरानें॥

---

[1] **राधामाधव विलासचम्पू, जयराम पिण्ड्येकृत, सं० वि० का० राजवाडे (प्रकाशन तिथि १८४४ शक संवत्), छन्द सं० ५७, पृ० २७५**

[2] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १०३, १०४ और १०५**

ऐसे सिकोन कवि जे मजला पहाती।
त्या लागि देईन धुरंधर मस्त हाती ॥[१]

अर्थात् द्वादश भाषा में लिखा यह ललितकाव्य शाहजी राजा ने अपने कानों से सुना और फिर मृदुल स्वर में कहा कि इस ढंग से जो कवि लिखता है उसे मैं मस्त और धुरन्धर हाथी इनाम में दूँगा। तात्पर्य यह कि शाहजी की मृत्यु के पूर्व ही उक्त चम्पू की रचना हुई है। शाहजी की मृत्यु २३ जनवरी १६६४ ई० को हुई (भा० इ० सं० मं० पूना की शिवकालीन शकावली के अनुसार) अर्थात् कवि ने अपना ग्रन्थ १६६४ ई० से पूर्व लिखा। शिवराज भूषण की रचना १७३० संवत् अर्थात् १६७३ ई० में पूरी हुई, अर्थात् कम से कम ९ वर्षों के बाद, अधिक की संभावना भी हो सकती है। शिवराज भूषण लिखने से पूर्व भूषण को प्रसिद्धि मिली होगी ऐसा, अनुमान करना कठिन है। ऐसी स्थिति में "घनशाम" नाम स्वीकार करने में संकोच होता है। कैप्टन शूरवीरसिंह ने भूषण का नाम अलंकार प्रकाश के आधार पर मुरलीधर बतलाया है, किन्तु अभी ऊपर कहा जा चुका है कि मुरलीधर भूषण प्रसिद्ध कवि भूषण से भिन्न हैं। अन्त में हम इतना कह सकते हैं कि विद्वानों ने इस सम्बन्ध में अनुमानों से काम लिया है, किन्तु कोई पुष्ट प्रमाण इस सम्बन्ध में नहीं मिला है। अतः हमें 'भूषण' नाम पर ही सन्तोष करना पड़ता है।

सबसे पहले भूषण संवत् १७२१ या संवत् १७२३ के आसपास चित्रकूट नरेश के पास पहुँचे। वहाँ उनकी योग्यता से प्रसन्न होकर चित्रकूटाधिपति ने उन्हें "कवि भूषण" की पदवी से विभूषित किया।

२.३.५. भूषण के आश्रयदाता

कहते हैं कि सोलंक़ियों का राज्य १७२८ संवत् में महाराज छत्रसाल ने छीन लिया। अतः भूषण संवत् १७२८ से पूर्व ही चित्रकूटाधिपति के पास गए होंगे। औरंगजेब से मिलने के लिए शिवाजी जयसिंह के साथ सन्धि के पश्चात् दिल्ली आए थे। यह भेंट १६६६ ई० अर्थात् १७२३ संवत् में हुई। इसके अनन्तर शिवाजी औरंगजेब के जाल से मुक्त होकर दक्षिण लौट आए। इससे शिवाजी उत्तर भारत में प्रख्यात हो गए। सम्भवतः भूषण इस ख्याति को सुनकर संवत् १७२४ में रायगढ़ आए। यहाँ लगभग ६ वर्ष तक वे छत्रपति शिवाजी के आश्रय में रहे। उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ शिवराज भूषण यहीं पर १७३० संवत् में पूर्ण किया। ग्रन्थ के पूर्ण होते ही वे उत्तर लौट गए। उनके लौटने पर शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ। शिवराज भूषण में राज्याभिषेक का कहीं उल्लेख नहीं है। इससे यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि इससे

---

[१] **राधामाधव विलास चम्पू, जयराम पिण्ड्येकृत, सं० वि० का० राजवाडे, छं० सं० १४३ (अन्तिम छन्द), पृ० २७८**

पूर्व ही वे उत्तर लौट गए होंगे। शिवाजी के पास से लौटने पर ही वे छत्रसाल बुन्देला के दरबार में गए। ठीक समय तो नहीं बतलाया जा सकता, किन्तु साहू के राजा बनने के बाद ही गए होंगे। क्योंकि छत्रसाल का भूषण की पालकी को कन्धा लगाने वाली घटना को यदि सत्य माना जाय, तो यह मानना पड़ेगा कि भूषण छत्रसाल के दरबार में साहू के राजा बनने के बाद गए। भूषण ने उस अवसर पर कहा है—"साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को।" सम्भवतः वे फिर दक्षिण में साहू के दरबार में गए हों। इनके अतिरिक्त जितने रावराजाओं के नाम भूषण के काव्य में आए हैं, उनके सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि कवि की उनसे भेंट हुई है। वे एक दरबार से दूसरे दरबार में आया जाया करते थे। कुमाऊँ के दरबार में उनके जाने का उल्लेख मिलता है—चिटणीस बखर में और शिवसिंह सरोज में भी। कुमाऊँ नरेश का नाम नहीं लिखा गया है। अतः किस नरेश के समय में गए होंगे, यह नहीं बतलाया जा सकता। कुमाऊँ नरेश उद्योतचन्द का समय १६७८ से १६९८ ई० है। इनके बाद ज्ञानचन्द का समय संवत् १७५७ से १७६५ है अर्थात् १७०० से १७०७ ई० है।[१] सम्भवतः वे उद्योतचन्द के समय में ही गए होंगे। नीचे भूषण के काव्य में जिन जिन रावराजाओं के उल्लेख मिलते हैं उनका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। वास्तव में इन सबको भूषण का आश्रयदाता नहीं मानना चाहिए, क्योंकि भूषण ने किसी किसी के सम्बन्ध में तो एक या दो कवित्त ही लिखे हैं और ये प्रसंगवश या शिष्टाचार के नाते भी हो सकते हैं। वास्तव में भूषण के आश्रयदाता छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल बुन्देला ही थे।

साहूजी : ये छत्रपति शिवाजी के पौत्र और उनके पुत्र संभाजी के पुत्र थे। शाहू का राज्याभिषेक १७०८ ई० में हुआ और लगभग ४१ वर्ष के लम्बे शासन के बाद उनकी मृत्यु हुई। उनकी राजधानी सतारा थी।

बाजीराव : बाजीराव के सम्बन्ध में भूषण के दो कवित्त मिलते हैं। किन्तु इन दोनों में भूषण का नाम न होने के कारण इन्हें भूषणकृत मान लेने में सन्देह होता है। मिश्रजी भी इन्हें भूषणकृत नहीं मानते।[२] बाजीराव शाहू के पेशवा एवं प्रधान मन्त्री थे। बंगश-बुन्देला युद्ध में १७२९ ई० में इन्होंने छत्रसाल बुन्देला की सहायता की थी। इससे प्रभावित होकर छत्रसाल ने उन्हें अपना पुत्र मान अपने राज्य का तिहाई भाग इन्हें देना स्वीकार किया था। बाजीराव की मृत्यु १७४७ ई० में हुई।

चिन्तामणि : इनका नाम चिमनाजी अप्पा भी था। "सक्र जिमि सैल पर"........वाले कवित्त में चिंतामनि का नाम आया है। मिश्रजी ने चिंतामणि के स्थान

---

[१] कुमाऊँ, राहुल, पृ० ८९ से ९२ तक।
[२] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ११०

पर सिवराज लिखा है।[1] यदि चिन्तामणि मान लिया जाय, तो ये चिन्तामणि चिमनाजी अप्पा बतलाए जाते हैं। ये बाजीराव पेशवा के छोटे भाई थे। इनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि मराठों का प्रभाव उत्तर में बढ़ाने में इन्होंने अपने बड़े भाई बाजीराव पेशवा की सहायता की थी।

अवधूतसिंह : कहा जाता है कि इनके पिता अनिरुद्धसिंह मऊगंज के सेंगर ठाकुरों के हाथ मारे गए। इस समय उनकी अवस्था ६ मास की थी। पन्ना नरेश छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह ने रीवाँ पर चढ़ाई कर उस पर अधिकार कर लिया। दिल्ली के बादशाह की सहायता से अवधूतसिंह को इनका राज्य फिर से इन्हें मिल गया। इनका समय संवत् १७५७ से १८१२ तक माना जाता है।

हृदयराम सुलंकी : भूषण के अनुसार 'भूषण' उपाधि इन्हें चित्रकूट नरेश द्वारा हृदयराम सुलंकी से मिली। इनका समय संवत् १७२३ बतलाया जाता है।

जयसिंह : "भले भाय भासमान........" वाला कवित्त मिश्रबन्धु सवाई जयसिंह के सम्बन्ध में मानते हैं। इनका समय संवत् १७६५ से १८०० तक है।[2] पं० विश्वनाथप्रसाद के अनुसार ये मिर्जा राजा जयसिंह हैं, जिन्होंने शिवाजी से युद्ध किया और बाद में सन्धि हुई।[3] मिर्जा राजा जयसिंह की मृत्यु १६६७ ई० में हुई।

रामसिंह : मिर्जा राजा जयसिंह के पुत्र थे। शिवाजी जब औरंगजेब से मिलने दिल्ली गए थे तो इन्होंने शिवाजी को अपने पास ठहराया था।

अनिरुद्धसिंह : ये पौरच नरेश क्षत्रिय राजा अमरेश के पुत्र थे। इनका समय लगभग १७७० संवत् माना गया है।

बुद्ध राव : ये बूँदी नरेश छत्रसाल हाड़ा के भाई भीमसिंह के प्रपौत्र थे, औरंगजेब के देहावसान पर उसके पुत्रों में राज्य के लिए जो युद्ध हुए उसमें ये मुअज्जम की ओर से लड़े थे।

कुमाऊँ नरेश : भूषण ने किसी का नाम नहीं दिया है। सम्भवतः उद्योतचन्द हों। इनका समय १६७८ ई० से १६९८ ई० है।[4]

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ४०८**
[2] **हिन्दी नवरत्न, मिश्रबन्धु, पृ० ३०४**
[3] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १११**
[4] **कुमाऊँ, राहुल, पृ० ८९**

भगवन्तराय : भगवन्तराय का समय १७७० से १७९७ संवत् माना गया है। ये असोथर नरेश थे। इनके सम्बन्ध में भूषण के लिखे गए कवित्त संदिग्ध हैं।

दन्तकथाओं के आधार पर भूषण के सम्बन्ध में ज्ञात होता है कि बाल्यावस्था में भूषण अपढ़ एवं निकम्मे रहे। घर के किसी व्यक्ति ने, सम्भवतः उनकी भाभी ने, उनसे कुछ कहा। इसी से प्रेरणा पाकर वे पढ़ने लगे।

२.३.६. भूषण का ज्ञान एवं स्वभाव

किन्तु उनका मन अपने भाइयों की तरह शृंगार में नहीं रमा। अपने स्वभाव के कारण वे घर छोड़ कर चले गए। उनकी योग्यता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि चित्रकूटाधिपति ने उन्हें 'कवि भूषण' की पदवी से विभूषित किया। शिवराज भूषण ग्रन्थ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रीतिकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों से वे पूर्णतः परिचित थे। ग्रन्थ लिखते समय उन्होंने आरम्भ में इस बात का उल्लेख किया है कि सुकवियों से सुन-सुनकर वे कवियों का पन्थ समझ गये हैं। इसी आधार पर उन्होंने शिवभूषण ग्रन्थ की रचना की है। वास्तव में भूषण का ज्ञान पोथी के ज्ञान की अपेक्षा आँखों देखा अधिक था। उनकी सहज बुद्धि समय को पहचानने में समर्थ थी। अपने समय का राजनैतिक ज्ञान उनका अच्छा था। यहाँ की तो बात छोड़ दें, विदेशियों तक के सम्बन्ध में उनकी परख गहरी थी। इस सम्बन्ध में उनका निम्नलिखित कवित्त दृष्टव्य होगा—

जोर रूसियान को है तेग खुरासान हू की,
जीति इंगलैंड चीन हुन्नर महादरी।
हिम्मत अमान मरदान हिन्दुवानहू को,
रूम अभिमान हबसान-हद कादरी।
नेकी अरबान, सान अदब ईरान त्योंही,
क्रोध है तुरान, ज्यों फराँस फन्द आदरी।
भूषन भनत इमि देखिए महीतल पै,
बीर सिरताज सिवराज की बहादरी॥[1]

२.४. निष्कर्ष

भूषण का जन्म तिकवाँपुर (कानपुर के निकट ग्राम में) में संवत् १७९२ या १७३५ ई० के आसपास हुआ। इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। चिन्तामणि और मतिराम इनके बड़े भाई थे। बाल्यावस्था में भूषण अपढ़ एवं निकम्मे रहे। सम्भवतः अपनी भाभी की कटुक्तियों को सहन नहीं कर सके। वे घर छोड़कर चले गए। सब से पहले वे चित्रकूट नरेश के पास

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४८२**

गए। वहाँ चित्रकूट नरेश ने उन्हें कवि भूषण की उपाधि से विभूषित किया। १६६६ ई० में अर्थात् १७२३ संवत् में शिवाजी औरंगजेब से मिलने दिल्ली आए थे। औरंगजेब ने उन्हें कैद कर लिया, किन्तु वे वहाँ से भाग कर दक्षिण आ गए। इस प्रसंग से शिवाजी की ख्याति अखिल भारत में हो गई। उनकी इस ख्याति को सुनने के बाद १६६७ ई० में भूषण दक्षिण में शिवाजी के पास आए। इस समय वे ऐसे आश्रयदाता की खोज में थे जो यवनों का विरोधी हो—अर्थात् औरंगजेब का विरोधी हो। शिवाजी से भेंट होने पर उनमें उन्हें मन के अनुकूल आश्रयदाता के गुण मिल गए और उन्होंने छत्रपति शिवाजी को अपने काव्य का विषय बनाया।

जे सोहात सिवराज को ते कवित्त रसमूल।
जेई परमेस्वर पै चढ़ै, तेई आछे फूल॥[1]

१६६७ से लेकर १६७३ ई० तक वे शिवाजी के दरबार में रहे। १६७३ ई० में उन्होंने शिवभूषण की रचना पूर्ण की। इसके बाद वे फिर उत्तर लौट गए। इसके बाद वे अन्य दरबारों में भी गए, किन्तु मन के अनुकूल और कोई आश्रयदाता नहीं मिला। छत्रपति शिवाजी का यश वे सभी स्थानों पर गाते थे। अन्त में छत्रसाल के पास जब वे गए, तो उन्हें उनमें शिवाजी के आदर्श दिखाई दिए। शिवाजी की तरह उन्होंने छत्रसाल की भी प्रशस्ति में कवित्त और सवैये लिखे।

अपवाद रूप में उनके नायिका भेद सम्बन्धी कुछ कवित्त और सवैये भी मिलते हैं। इन्हें देखकर हम इतना ही कह सकते हैं कि युग की प्रवृत्ति के कारण ही उन्होंने इस प्रकार के कवित्त और सवैये लिखे। उनका मन वास्तव में राष्ट्रनायकों के चरित गान में ही रमा। उनका राष्ट्रीय दृष्टिकोण बड़ा ही व्यापक था। इस महापुरुष की मृत्यु १७३० ई० के आसपास हुई होगी।

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३८७**

तृतीय अध्याय

भूषण की रचनाएँ

भूषण की रचनाएँ

३.१. रचनाओं का उपक्रम

ठाकुर शिवसिंह सेंगर ने १८८३ ई० में हिन्दी कवियों का वृत्त संग्रह 'शिवसिंह सरोज' लिखा, जिसमें भूषण की चार रचनाओं का उल्लेख है— (१) शिवराज भूषण, (२) भूषण हजारा, (३) भूषण उल्लास, और (४) दूषण उल्लास।[१] बाद में सर जार्ज ग्रियर्सन ने १८८९ ई० में "माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान" ग्रन्थ में भूषण की इन्हीं चार रचनाओं का उल्लेख करते हुए ये भी लिखा है कि 'कालिदास हजारा' में भूषण के ७० पद संग्रहीत हैं।[२] इसी साल (१८८९ ई०) दक्षिण में पूना के भारत इतिहास संशोधक मण्डल से 'शिवराज भूषण' का प्रकाशन काव्येतिहास संग्रह में हुआ। इसकी भूमिका में श्री जनार्दन बालाजी मोडक (डेक्कन कालेज, पूना) ने भी भूषण के उक्त चार ग्रन्थों का उल्लेख किया है।[३] 'काव्येतिहास संग्रह' में शिवराज भूषण के अतिरिक्त ३२ पद शिवाजी सम्बन्धी, १ पद चिन्तामणि (चिमनाजी अप्पा) सम्बन्धी, ३ पद छत्रसाल सम्बन्धी और १ पद कुमाऊँ नरेश के सम्बन्ध में—एकत्रित ३७ पद स्फुट रूप में प्रकाशित हुए हैं।[४] नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा भूषण ग्रन्थावली का प्रकाशन सर्वप्रथम १९०७ में हुआ। इसका सम्पादन मिश्रबन्धुओं ने किया है। उन्होंने अपनी भूमिका में

---

१ भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, (सातवाँ संस्करण), पृ० ३

२ हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, डा० सर जार्ज ग्रियर्सन (अनु० किशोरीलाल गुप्त) प्रथम संस्करण, १९५७ ई०, पृ० १५७

३ काव्येतिहास संग्रह (१८८९ ई०), भारत इतिहास संशोधक मण्डल, पूना द्वारा प्रकाशित, इसमें शिवराज भूषण की भूमिका देखिए।

४ वही, शिवराज भूषण के साथ उक्त पद देखिए।

उक्त चार रचनाओं के साथ-साथ भूषण की अन्य दो रचनाओं—(१) शिवा-बावनी और (२) छत्रसाल दशक का भी उल्लेख किया है।[1] बाद के इतिहास ग्रन्थों में मिश्रबन्धुओं द्वारा उल्लिखित रचनाओं का ही उल्लेख हुआ है। इस तरह अब तक भूषण की जिन रचनाओं का उल्लेख हुआ है, वे निम्न प्रकार हैं :—

(१) शिवराज भूषण, (२) भूषण हजारा, (३) भूषण उल्लास, (४) दूषण उल्लास, (५) शिवा-बावनी, और (६) छत्रसाल दशक।

इनके अतिरिक्त सम्पादकों ने भूषण के स्फुट पद भी संग्रहीत किये हैं। मिश्र-बन्धुओं की ग्रन्थावली में "स्फुट-काव्य" शीर्षक के अन्तर्गत ५४ पद और भी प्रकाशित हुए हैं।

उपर्युक्त रचनाओं में दूसरी, तीसरी एवं चौथी रचनाएँ अब तक किसी को प्राप्त नहीं हुई हैं। यहाँ तक कि ठाकुर शिवसिंह सेंगर, जिन्होंने सर्वप्रथम इनका उल्लेख किया है, उनके सम्बन्ध में मिश्रबन्धु कहते हैं—"उन्होंने (शिवसिंह सेंगर) केवल यही कह दिया है कि भूषण के ये चार ग्रन्थ हैं। यदि वे लिखते कि उन्होंने इन चार ग्रन्थों को देखा है अथवा उनका होना किसी स्थान विशेष पर प्रामाणिक रीति पर सुना है, तो उनका कथन अधिक मान्य होता।"[2] तात्पर्य यह कि इन तीनों ग्रन्थों का केवल उल्लेख मात्र मिलता है। ये अब तक किसी के देखने में नहीं आये और न प्रकाशित हुए हैं। अतः इनकी चर्चा नहीं की जा सकती। शेष रचनाओं का विवरण नीचे प्रस्तुत है।

३.२. शिवराज भूषण

३.२.१. प्रामाणिकता

भूषण की एकमात्र प्रामाणिक और श्रेष्ठ रचना यही है। इसकी अनेक प्रतियाँ खोज में मिली हैं और विभिन्न स्थानों से इसका प्रकाशन हुआ है। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है।

३.२.२. रचनाकाल

शिवराज भूषण का रचनाकाल भूषण ने स्वयं अपने ग्रन्थ में इस प्रकार दिया है :—

समत सत्रह सें तीस पर सुचि बदि तेरसि भानु।
भूषन सिवभूखन कियौ, पढ़ौ सकल सुज्ञान ॥[3]

---

[1] भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु (सातवाँ संस्करण), पृ० ३

[2] वही, पृ० ३

[3] संवत् १८१८ के हस्तलेख की पुष्पिका के आधार पर, शिवराजभूषण के हस्तलेख की पुष्पिका का यह पृष्ठ पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र की 'भूषण' पुस्तक में है, पृ० ७१

पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस दोहे के आधार पर समत सत्रह सें तीस का १७३० संवत् माना है।[१] पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित को छोड़कर और प्रायः सभी विद्वान इस दोहे के आधार पर शिवराज भूषण का रचनाकाल संवत् १७३० मानते हैं। दीवान बहादुर स्वामी कन्नु पिल्ले की इण्डियन इफीमरीज के अनुसार समत सत्रह सौ तीस की जेष्ठ बदी १३ को भानुवार आता है। (दक्षिणी पद्धति से वैशाख बदी १३, शक संवत् १५९५ को भानुवार है) इस दिन ४ मई १६७३ ई० तिथि आती है। अतः शिवभूषण का रचनाकाल ४ मई १६७३ ई० मानना चाहिए।[२]

पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित ने अपनी पुस्तक भूषण-विमर्श में शिवराजभूषण के निर्माणकाल पर एक स्वतन्त्र अध्याय लिखकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि शिवराजभूषण में अनेक ऐसी घटनाओं का उल्लेख हुआ है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से शिवराजभूषण के निर्माण काल के पीछे की हैं।[३] उनके अनुसार शिवराजभूषण का निर्माण काल संवत् १७७३ है।[४] दीक्षितजी के तर्कों का उत्तर पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने भूषण ग्रन्थ में दिया है। वास्तव में शिवराजभूषण में ऐसी किसी घटना का उल्लेख नहीं हुआ है, जो १६७३ ई० के बाद की हो। १६७४ ई० में शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ। इसका उल्लेख शिवराजभूषण में नहीं हुआ है। डाक्टर टीकमसिंह तोमर ने भूषण ग्रन्थावली की ऐतिहासिकता पर अपने शोध प्रबन्ध में एक स्वतन्त्र अध्याय लिखा है। शिवराजभूषण की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में रचनाकाल की दृष्टि से उनके विचार ये हैं—"शिवराजभूषण में वर्णित घटनाओं की ऐतिहासिक जाँच से भी यही तिथि (१७३० संवत्) ठीक उतरती है। क्योंकि इसमें ऐसी घटना वर्णित नहीं हुई है, जो इस तिथि के पश्चात् घटित हुई हो। इससे भूषण की समसामयिकता पर प्रकाश पड़ता है और उनका वीर शिवाजी के दरबार में रह जाना सिद्ध हो जाता है।"[५]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि शिवराजभूषण का रचनाकाल संवत् १७३० या १६७३ ई० है।

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ८१

२ दीवान बहादुर स्वामी कन्नु पिल्ले की इण्डियन इफीमरीज भारत इतिहास संशोधक मण्डल में देखने को मिली।

३ भूषण विमर्श, पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित, पृ० ७८ से १०८

४ वही, पृ० १०५

५ हिन्दी वीरकाव्य, डा० टीकमसिंह तोमर, पृ० २६

शिवराज भूषण के प्रारम्भ में गणेश जी की स्तुति है, तत्पश्चात् भवानी की। इसके बाद शिवाजी के पूर्वजों का अति संक्षिप्त परिचय प्रबन्धात्मक ढंग से दिया गया है। फिर शिवाजी के जन्म का उल्लेख हुआ है।

३. २. ३. वर्ण्य विषय

कवि ने अपना संक्षिप्त परिचय भी दिया है। बाद में ग्रन्थ के लिखने का उद्देश्य इन शब्दों में व्यक्त किया है।

सिव चरित्र लखि यों भयौ कवि भूषन के चित्त।
भाँति-भाँति भूषननि सों भूषित करौं कबित्त ॥[1]

\+ \+ \+

सुकबिन सों सुनि-सुनि कछुक समुझि कबिन कौ पन्थ।
भूषन भूषनमय करत सिवभूषन सुभ ग्रन्थ ॥[2]

भूषन ने इस ग्रन्थ की रचना शिवाजी के चरित्र को भूषित करने के लिए की है। सुकवियों के पंथ को अपना कर भूषण अपने ग्रन्थ को भूषणमय बनाना चाहते हैं। ग्रन्थ के नाम की सार्थकता के सम्बन्ध में सर देसाई का कथन है—"(१) शिवाजी के यश का वर्णन जिसमें किया गया है अर्थात् जिसके योग से उसे भूषण प्राप्त हुआ है। यह एक अर्थ है। (२) सिवा इसके भूषण का अर्थ अलंकार होता है। इससे अलंकार शास्त्र पर यह ग्रन्थ लिखा गया है। ऐसा अर्थ भी इसमें निहित है। और (३) भूषण कवि ने इस ग्रन्थ की रचना की यह तीसरा अर्थ भी इससे व्यक्त होता है।[3]

प्रस्तुत ग्रन्थ अलंकार ग्रन्थ है। इसमें अलंकारों के लक्षण दोहों में दिये गए हैं और उदाहरण कवित्त और सवैयों में दिए गये हैं। कतिपय उदाहरणों में छप्पय और अमृतध्वनि का भी प्रयोग किया गया है। ग्रन्थ में १०० अर्थालंकार, ४ शब्दालंकार और १ उभयालंकार इस तरह १०५ अलंकारों का विवेचन हुआ है। लक्षणों के

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३४८

[2] वही, छं० सं० २९

[3] (१) शिवराजाचें यश ज्यांत वर्णिले आहे, म्हणजे ज्याचे योगानें त्याला भूषण प्राप्त झाले, असा एक अर्थ। (२) शिवाय भूषण म्हणजे अलंकार। त्यायोगानें "अलंकारशास्त्रावरील हा ग्रन्थ" असा त्यां नावांत गर्भित अर्थ आहे। (३) भूषण कविने हा ग्रन्थ बनविला असाही तीसरा एक अर्थ त्यांत व्यक्त होतो।"
—शिवाजी सावेनेर टरसेंच्यूरी सिलेक्शन बाम्बे, ३ मई १९२७, सं० सरदेसाई, पृ० ३

उदाहरण कवि ने छत्रपति शिवाजी महाराज के जीवन की प्रमुख घटनाओं पर घटित किये हैं। इन घटनाओं का उल्लेख ऐतिहासिक क्रम से नहीं मिलता। एक ही घटना का अनेक बार उल्लेख हुआ है। किन्तु इससे ऐतिहासिकता में कोई अन्तर नहीं आता। कवि ने ग्रन्थ रचना का जो उद्देश्य बतलाया है, उसका पूर्ण निर्वाह काव्य-ग्रन्थ में मिलता है।

शिवराज भूषण का प्रारम्भिक भाग प्रबन्धात्मक ढंग से लिखा गया है। अलंकार वर्णन जहाँ से आरम्भ होता है, वहाँ से मुक्तक पद्धति को अपनाया गया है। ग्रन्थ का मुख्य भाग मुक्तक पद्धति से ही लिखा गया है। शिवाजी के यश वर्णन में घटनाओं को विस्तार न देकर—उन्हें वर्णनात्मक पद्धति में न लिखकर—केवल उन पर अपनी प्रतिक्रिया कवि ने व्यक्त की है। यह प्रतिक्रिया जन-भावना के अनुकूल होने के कारण कविता का रूप राष्ट्रीय हो गया है।

संक्षेप में शिवराज भूषण का उद्देश्य लोकधर्म की रचना करने वाले नायक का गुणगान कर लोकधर्म की रक्षा का आग्रह करना तथा राष्ट्रीय भावनाओं को अभिव्यक्ति देना है।

शिवराज भूषण का सर्वप्रथम प्रकाशन संवत् १९४४ के आसपास पूना से श्री शंकर पांडुरंग और रानाडे महोदय के प्रयत्न से हुआ।[1] तत्पश्चात् संवत् १९४६ में या १८८९ ई० में इसका प्रकाशन जयपुर महाराजाश्रित पण्डितवर दुर्गाप्रसाद जी की सहायता से डेक्कन कालेज, पूना के सज्जन श्री जनार्दन बालाजी मोडक ने काव्येतिहास संग्रह में किया।

३. २. ४. प्रकाशन

श्री मोडक जी ने भूमिका में लिखा है—इस दुर्लभ ग्रन्थ की प्रति हमारे पास बम्बई के परम मित्र काशीनाथ पांडुरंग परब ने जयपुर के विद्वान् पंडित दुर्गाप्रसाद जी से, रीवाँ दरबार और जयपुर दरबार के सुप्रतिष्ठित गृहस्थ श्री श्यामनाथ जी त्रिपाठी के निजी संग्रह से लाकर हमें दी। इसलिए हम इन तीनों का आभार प्रकट करते हैं क्योंकि इन तीनों ने महाराष्ट्र की जनता का बड़ा उपकार किया है। यह ग्रन्थ हिन्दी में होने के कारण उसके पाठ को शुद्ध करने में और प्रूफ देखने में पं० दुर्गाप्रसाद जी ने समय-समय पर हमारी सहायता की इसलिए हम उनके आभारी हैं।"[2] इसकी प्रति अब केवल महामहो-

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ७३

[2] **या दुर्लभ ग्रन्थाची एक प्रत आमचे मुम्बईकर परममित्र काशिनाथ पांडुरंग परब यांनी जयपुरकर विद्वद्वर्य पं० दुर्गाप्रसाद जी यांजकडून, रीवां दरबार व जयपुर दरबार यांतील सुप्रतिष्ठित गृहस्थ त्रिपाठी श्री श्यामनाथजी यांच्या संग्रहांतून, आणवून आम्हांस दिलीत्या बद्दल त्या त्रिवर्गाचे आभच्यावर व सर्व**

पाध्याय दत्तो वामन पोतदार के निजी पुस्तकालय में है।[1] इसी से पता चलता है कि दक्षिण में उन्हीं दिनों इस ग्रन्थ का कितना प्रचार हो गया था। क्योंकि इस प्रकाशन के तुरत बाद में ही लक्ष्मी व्यंकटेश्वर प्रेस, बम्बई से शक संवत् १८३९ या १९१७ ई० में इसका तीसरा संस्करण प्रकाशित हो गया। उत्तर भारत में शिवराज भूषण का संवत् १९५० में सर्वप्रथम प्रकाशन जबलपुर के निवासी श्री परमानन्द सुहाने ने नवलकिशोर प्रेस द्वारा किया। इसके बाद कलकत्ता की बंगवासी भूषण ग्रन्थावली में इस ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ। नागरी प्रचारिणी सभा से सर्वप्रथम शिवराज भूषण का प्रकाशन मिश्रबन्धुओं के सम्पादन में भूषण ग्रन्थावली में १९०७ ई० में हुआ। मिश्रबन्धुओं ने इस सम्पादन में मुख्यतः निम्नलिखित दो हस्तलिखित प्रतियों से सहायता ली है :[2]

(१) स्वर्गीय पं० युगलकिशोरजी मिश्र के पुस्तकालय गंधौली (सीतापुर की प्रति)।

(२) स्वर्गीय कवि गोविंद गिल्लाभाई जी काठियावाड़ के पुस्तकालय से।

इसी समय श्री रामनरेश त्रिपाठीजी ने भूषण ग्रन्थावली में शिवराज भूषण का प्रकाशन किया। मिश्रबन्धुओं और रामनरेश त्रिपाठी जी के शिवराज भूषण का क्रम एक ही है। इसके अनन्तर शिवराज भूषण का प्रकाशन अन्य स्थानों से भी होता रहा है। किन्तु प्रायः सभी सम्पादनों में मिश्रबन्धुओं को ही आधार माना गया है। बाबू व्रजरत्नदास ने सन् १९५० ई० में शिवराज भूषण का सम्पादन भूषण ग्रन्थावली में मिश्रबन्धुओं की प्रति के आधार पर ही किया। इधर हाल में पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने संवत् २०१० ई० सन् १९५३ में शिवराज भूषण का फिर से सम्पादन संवत् १८१८ वै० की पुष्पिका के आधार पर किया है। वे लिखते हैं—"अभी हाल में मुझे एक प्रति मिली है, जो प्राप्त प्रतियों में सब से प्राचीन है। इसका लिपिकाल संवत् १८१८ वै० है।[3] मिश्रजी ने इस प्रति में जितने छन्द मिले उनका सम्पादन किया और वे छन्द जो इस प्रति में नहीं मिले किन्तु अन्य प्रतियों में मिलने के कारण

महाराष्ट्र जनांवर फार फार उपकार आहेत। हा ग्रन्थ हिन्दी भाषेंत असल्यामुळे त्यांतील शुद्धाशुद्ध अंशाचा निर्णय करण्याचें व प्रुफे तपासण्याचे काम ही पं० दुर्गाप्रसाद जी यांनीं वेळच्यावेळी केलीं त्या बद्दल आम्हीं त्याचें फार आभारी आहों।" —काव्येतिहास संग्रह, १८८९ ई०, शिवराज भूषण की भूमिका

[1] लेखक को महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदार के घर पर प्रस्तुत प्रति देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

[2] भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, (सातवाँ संस्करण), पृ० ५४

[3] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, आरम्भ वचन से, पृ० ३

मिश्रबन्धुओं द्वारा सम्पादित प्रति में थे, उन छन्दों को उन्होंने परिशिष्ट में रखा है। अब तक के प्राप्त संस्करणों में यह संस्करण सब से अधिक शुद्ध है। मिश्र जी ने पाद टिप्पणियों में अन्य प्रतियों में प्राप्त पाठभेद भी दिये हैं, इससे इस संस्करण की उपयोगिता और बढ़ गई है।

इस ग्रन्थ की टीकाएँ भी लिखी गई हैं। सर्वप्रथम इसकी टीका मराठी में लिखी गई है। महाराष्ट्र से सर्वप्रथम भारत इतिहास संशोधक मण्डल, पूना से "सम्पूर्ण भूषण" का प्रकाशन हुआ। इसमें शिवराज

३. २. ५ टीकाएँ

भूषण की टीका स्वर्गीय श्री रामचन्द्र गोविन्द काटे ने लिखी है। इसका प्रकाशन १९३० ई० में हुआ। यह टीका बड़े परिश्रम से लिखी गई है। टीका लिखने का उद्देश्य महाराष्ट्र की जनता को भूषण की रचनाओं से अवगत कराना रहा है। हिन्दी में इस ग्रन्थ की टीका पं० राजनारायण शर्मा ने लिखी है। इसका प्रकाशन हिन्दी भवन, इलाहाबाद से हुआ है। इस टीका की लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि १९५३ ई० तक इसके चार संस्करण प्रकाशित हो गए।

३. ३. शिवा बावनी

शिवा बावनी कोई स्वतन्त्र रचना नहीं है क्योंकि अब तक इसकी कोई हस्तलिखित प्रति किसी को प्राप्त नहीं हुई है, न इसका उल्लेख ठाकुर शिवसिंह सेंगर, जार्ज ग्रियर्सन और जनार्दन बालाजी मोडक ने

३. ३. १. प्रामाणिकता

किया है। इसका उल्लेख स्वतन्त्र रचना के रूप में सर्वप्रथम मिश्रबन्धुओं ने १९०७ ई० में किया और वे भी इसे स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं, संग्रह ही मानते हैं क्योंकि उन्होंने इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कह दिया है—"यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं, अथच भूषण के ५२ छन्दों का संग्रह मात्र है।"[१] अन्य स्थान पर वे लिखते हैं—"इसके स्वतन्त्र होने के विरुद्ध यह भी प्रमाण है कि इसका वन्दना वाला छन्द ही शिवराज भूषण से लिया गया था एवं दो एक छन्द और ऐसे ही थे। इसमें आद्योपान्त कोई प्रबन्ध भी नहीं है और न किसी ने इसे स्वतन्त्र ग्रन्थ कहा ही है।"[२] पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस सम्बन्ध में साफ लिखा है कि संवत् १९४६ से पूर्व शिवा बावनी का अस्तित्व ही नहीं था।[3] संवत् १९४६ में सब से पहले गोवर्धनदास लक्ष्मीदास ने कच्छभुज से

---

[१] भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, (सातवाँ संस्करण), पृ ३९

[२] वही, पृ० ४१

[3] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ८४

ये दोनों संग्रह (शिवा बावनी और छत्रसाल दशक) प्रकाशित किये। इसे स्वयं उन्होंने स्वीकार किया है—

"कोई कोई रसिक लोगों के पास से एकाध कवित्त का पता मिले वहाँ जाय लिख लेना जारी रख थोड़े कवित्त जमा किये थे। बाद भगवत्संकल्प ऐसा ही हुआ की प्रतापी भूषण कविराज के श्रम का नाश न होना और उन्होंने बनाई हुई कविता का पुनर्जन्म या जीर्णोद्धार होना वास्ते निमित्त रसिक सारस्वत व्यास हरीराम सूरजी और मित्रवर्य रा० रा० काशीनाथ पांडुरंग परब ईन महाशयों ने यह ग्रन्थ प्रसिद्ध करने का मुजे उत्तेजन दिया उस पर से मुजे हिम्मत हुवा मैंने बहुत सा शोध करने में कुछ कवित्त जमा हुए और जिस ग्रन्थ का नाम हम ऊपर लिख गए हैं वो सिवराजभूषण ग्रन्थ भी सम्पूर्ण हमारे हाथ आया बाद भासाकाव्य में परिपूर्ण पेहेलवान मिसिर श्री गुरुप्रसादजी भवानी प्रसादजी इन्होंने कवित्तों की और इस ग्रन्थ को सोधने की बहोत सी मदद करने से यह अपूर्व काव्य शिवा बावनी ग्रन्थ खड़ा हुआ। जो यह कृपापूर्वक श्रम न लेते तो ईस सहर में यह ग्रन्थ खड़ा न होता। इस ग्रन्थ में शिवाजी महाराज छत्रपति के युद्ध प्रसंग के चुने हुए ५२ कवित्त रखे गए हैं। और महाराजा छत्रसाल पन्नानरेस के इसी कविराज भूषण के बनाए हुए १२ कवित्त रखे गए हैं और कुछ छुट काव्य भी रखी है।"[1]

यह कथन इस बात को प्रमाणित करता है कि शिवा बावनी का इससे पूर्व अस्तित्व नहीं था।

इस सम्बन्ध में एक और उल्लेखनीय बात यह है कि—'शिवा बावनी' के जो विभिन्न संस्करण स्थान-स्थान से प्रकाशित हुए हैं, उनमें प्रकाशकों और सम्पादकों ने स्वतन्त्र रूप से अपनी इच्छानुसार हेर-फेर किया है। मिश्र बन्धुओं ने स्वयं हेर-फेर किया है। वे लिखते हैं—"यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं, वरन् भूषण जी के ५२ छन्दों का एक संग्रह मात्र है इसी हेतु प्रचलित प्रतियों का क्रम छोड़कर हमने अपना नया क्रम स्थिर किया है, क्योंकि हम उक्त प्रचलित क्रम को बहुत ही अनुपयुक्त समझते हैं।"[2]

शिवा बावनी के सम्बन्ध में यह किंवदन्ती रही है कि जब भूषण शिवाजी से प्रथम मिले उस समय उन्होंने ५२ छन्द सुनाए। किसी के अनुसार एक ही छन्द ५२ बार सुनाया और किसी के अनुसार ५२ विभिन्न छन्द सुनाए। कोई-कोई १८ छन्दों का उल्लेख करते हैं। कहा गया है कि यही ५२ छन्द शिवा बावनी के नाम से संग्रहीत हैं। किन्तु उपर्युक्त तथ्यों के विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि

---

१ **भूषण, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आरम्भ वचन से उद्धृत, पृ० ३ और ४**

२ **भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, (सातवाँ संस्करण), पृ० १०८**

शिवा बावनी का सम्पादन और संग्रह आधुनिक है। इसके विरोध में एक और प्रमाण यह भी दिया जा सकता है कि यदि शिवा बावनी के छन्द भूषण ने शिवाजी को प्रथम भेंट में सुनाये तो उसमें ऐतिहासिक दृष्टि से उन घटनाओं का वर्णन होना चाहिये जो भेंट से पूर्व हुई हो किन्तु वस्तुस्थिति यहे है कि शिवाबावनी में शिवराज भूषण के रचनाकाल के बाद की घटनाओं का उल्लेख भी है। साहू के सम्बन्ध में लिखे गये कवित्त भी उसमें हैं। प्रकाशकों एवं सम्पादकों से यह भी भूल हो गई कि शिवाबावनी के नाम के अनुकूल शिवाजी सम्बन्धी कवित्त रखने के बजाय शाहू की प्रशंसा के कवित्त भी इसमें जोड़ दिये गये हैं। औरंगजेब सम्बन्धी कवित्त भी आ गए हैं। कुछ विद्वानों की यह मान्यता है कि वे ५२ छन्द साहू को सुनाए गए तो इस दृष्टि से साहू बावनी नाम होना चाहिए था और यदि राष्ट्र संगठन की बात की जाय कि साहू को शिवाजी के आदर्श का स्मरण करवाया गया तो भूषण की रचनाओं का ऐसा स्वर प्रतीत नहीं होता। तात्पर्य यह कि शिवा बावनी स्वतन्त्र रचना नहीं है।

शिवा बावनी के सभी छन्द प्रामाणिक हैं. ऐसा मानने में कठिनाई है क्योंकि इसकी कोई हस्तलिखित प्रति अब तक प्राप्त नहीं हुई है। संग्रहकर्त्ताओं ने इधर-उधर से संग्रहों से कवित्तों को एकत्रित किया है।

३. ३. २. शिवा बावनी के संदिग्ध छन्द

और ये जिन संग्रहों से एकत्रित किए गए हैं, उनमें भूषण के अतिरिक्त अन्य अनेक कवियों के पद भी संग्रहीत हैं। अतः भूल से अन्य अनेक कवियों के पद भी भूषण के नाम पर एकत्रित किये जाने की सम्भावना है। मथुरा निवासी मायाशंकर जी याज्ञिक के पास अब भी अनेक संग्रह हैं, जिनमें भूषण के अतिरिक्त अन्य अनेक कवियों की रचनाएँ भी उनमें संग्रहीत हैं।[१] यही कारण है कि भूषण के काल-निर्णय में कठिनाई हो रही है। भूषण की रचनाओं में अन्य अनेक कवियों के कवित्त और सवैये भूषण के नाम पर जुड़े हुए हैं। जब तक इन्हें अलग नहीं किया जायगा तब तक काल-निर्णय में कठिनाई होती रहेगी। भूषण का समय इन्हीं प्रक्षिप्त अंशों के कारण दूर तक खींच लिया गया है।

मिश्र बन्धु की शिवा-बावनी में ८वाँ कवित्त इस प्रकार है—

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती है।
कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करैं,
तीनि बेर खातीं सो तीन बेर खाती हैं॥

---

[१] **देखिए, खोज रिपोर्ट, हस्तलिखित ग्रन्थों का पन्द्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण सन् १९३२ ई० से १९३४ ई०, सम्पादक डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, पृ० ३९८**

भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग,
बिजन डुलातीं तेब बिजन डुलाती है।
भूषन भनत सिवराज बीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती है।।[1]

इन्दु[2] कवि के नाम पर 'दिग्विजय भूषण' के त्रयोदश प्रकाश में छन्द संख्या ३९ इसी रूप में है—

ऊँचे धौल मन्दिर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे धौल मन्दिर के अन्दर रहाती है।
कन्दपान भोगवारी कन्दपान भोग करै,
तीनि बेर खानवाली तीनि बेर खाती है।।
मैनवारी सी प्रमान मैनवारी सी प्रमान,
बिजन डोलाती ते वै बिजन डोलाती है।
कहै कवि इन्दु महाराज आज वैरि नारी,
नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती है।।

पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने निम्नलिखित कवित्तों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में सन्देह व्यक्त किया है। क्योंकि ये कवित्त अन्य कवियों के नाम पर भी मिलते हैं। अन्यत्र इनमें पाठभेद भी है और कुछ तो ऐसे हैं जिनमें भूषण का नाम भी नहीं है।[3]

(१) बाने फहराने घहराने……………………सिर सेस के।
(२) ऊँचे धौल मन्दिर……………………नगन जड़ाती है।
(३) दाढ़ी के रखैयन की……………………घराने की।
(४) केतिक देस जिते दल के……………………एक न राख्यो।

---

[1] भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, (सातवाँ संस्करण), शिवा बावनी, छन्द संख्या ८

[2] दिग्विजय भूषण में 'इन्दु कवि' के सम्बन्ध में शिवसिंह सरोज का सहारा लेकर ही परिचय दिया गया है। उनका समय (उपस्थिति काल) संवत् १७७६ निश्चित किया है। इन्दु कवि के परिचय में सरोजकार ने भी यह छन्द उद्धृत किया है। दिग्विजय भूषण—कवि परिचय, सं० डा० भगवतीसिंह, पृ० १०

[3] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ८४ से ८६ तक देखिए।

औरंगजेब सम्बन्धी छन्दों के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों की धारणा है कि ये दोनों छन्द भूषण के नहीं हैं। किसी ने पीछे से इन्हें बनाए, जो भूषण के नाम पर पीछे से चल पड़े हैं।[1]

३. ३. ३. शिवा बावनी का रचनाकाल

शिवा-बावनी का रचनाकाल ज्ञात नहीं है। इसका प्रमुख कारण यही है कि इसकी कोई हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहीं हुई है। ये सम्पादकों द्वारा किया गया संग्रह मात्र हैं। इन छन्दों में कुछ ऐसी घटनाओं का वर्णन मिलता है, जो शिवराज भूषण के रचना काल के बाद की हैं। अतः इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसके छन्द स्फुट रूप में शिवराज भूषण के बाद लिखे गए हैं।

३. ३. ४. शिवा-बावनी का वर्ण्य विषय

शिवा-बावनी में शिवाजी के यश और गौरव का गान है। ५२ छन्दों का संग्रह होने के कारण इसे बावनी कहा गया है। ये ५२ छन्द शिवाजी से सम्बन्धित होने के कारण इसे शिवा-बावनी कहा गया है। ये छन्द मुक्तक रूप में लिखे गए हैं। प्रत्येक छन्द एक स्वतन्त्र खण्ड चित्र प्रस्तुत करता है। मुगलों के अत्याचार का वर्णन, शिवाजी की प्रतिक्रिया, समयानुकूल देश की रक्षा करने में शिवाजी का आगे बढ़ना, शिवाजी द्वारा शत्रुओं का आतंकित रहना, इस्लाम के अत्याचार से हिन्दू-धर्म की रक्षा करने में शिवाजी का नेतृत्व आदि के खण्ड-चित्र बड़ी ही ओजस्वी शैली में शिवा-बावनी में मिलते हैं। शिवा-बावनी की प्रसिद्ध पंक्ति है—"शिवाजी न होतो तो सुनति होती सबकी।"

३. ३. ५. प्रकाशन

शिवा-बावनी का सर्वप्रथम प्रकाशन गोवर्धनदास लक्ष्मीदास ने संवत् १९४६ या १८८९ ई० में किया। कच्छभुज से इस संस्करण के प्रकाशित होने के बाद अन्य स्थानों से भी इसके विभिन्न संस्करण प्रकाशित होते गए। यह स्वतन्त्र रचना न होने के कारण प्रकाशकों और सम्पादकों ने अपनी इच्छानुसार उसमें हेर-फेर भी किया है। संवत् १९४६ वाली शिवा-बावनी के बाद ही इसका दूसरी बार प्रकाशन १८९३ ई० में 'शिवराज बावनी' के नाम से हुआ।[2] फिर उत्तर भारत में भी इसके संस्करण निकले। मिश्रबन्धुओं ने १९०७ ई० में इसका अपने ढंग से संग्रह कर भूषण ग्रन्थावली में इसे प्रकाशित किया। वे लिखते हैं—"यह कोई

---

१ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ८६**

२ **वही, पृ० ८६**

स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं। वरन् भूषण जी के ५२ छन्दों का एक संग्रह मात्र है, इसी हेतु प्रचलित प्रतियों के क्रम को छोड़कर हमने अपना नया क्रम स्थिर किया है। क्योंकि हम उक्त क्रम को बहुत ही अनुपयुक्त समझते हैं।"[1] इसके तुरत बाद ही रामनरेश त्रिपाठी जी की भूषण ग्रन्थावली में शिवा-बावनी का प्रकाशन हुआ। इस शिवा-बावनी का क्रम मिश्रबन्धुओं के क्रम से भिन्न है।[2] रामचन्द्र गोविन्द काटे द्वारा सम्पादित 'सम्पूर्ण भूषण' (सन् १९३० ई०) में, शिवाजी सावेनेर में प्रकाशित शिवा-बावनी (सरदेसाई द्वारा १९२७ ई०) में, बाबू ब्रजरत्नदास की भूषण ग्रन्थावली में शिवा-बावनी में (सन् १९५० ई०) और राजनारायण शर्मा द्वारा लिखी गई टीका (भूषण ग्रन्थावली में प्रकाशित शिवा बावनी) में शिवा-बावनी का क्रम प्रायः मिश्र-बन्धुओं वाला ही है। पं० विश्वनाथप्रसाद ने अपने ग्रन्थ भूषण में प्रथम बार शिवा-बावनी के अस्तित्व को अस्वीकार किया है। उन्होंने शिवा-बावनी के छन्दों को प्रकीर्णक शीर्षक के अन्तर्गत रखा है।

शिवराज भूषण की तरह शिवा-बावनी की टीका प्रथम मराठी में ही लिखी गई है। रामचन्द्र गोविन्द काटे की सम्पूर्ण भूषण में प्रकाशित शिवा-बावनी में श्री

३. ३. ६. टीकाएँ

काटे ने उसकी टीका लिखी है। यह टीका १९३० ई० में प्रकाशित हुई। इससे पूर्व १९२७ ई० में शिवाजी सावेनेर में भी शिवा-बावनी की टीका मराठी में प्रसिद्ध इतिहासकार श्री सरदेसाई ने प्रकाशित करवाई। हिन्दी में इसकी टीका पं० राजनारायण शर्मा ने लिखी है। इसका प्रकाशन हिन्दी भवन इलाहाबाद से हुआ है।

३.४. छत्रसाल दशक

३. ४. १. प्रामाणिकता

शिवा-बावनी की तरह छत्रसाल दशक भी पीछे से किया हुआ संग्रह मात्र है। इसका सर्वप्रथम सम्पादन गोवर्धनदास लक्ष्मीदास ने संवत् १९४६ में किया।[3] यह भूषण की सर्वथा प्रामाणिक रचना नहीं है। इसके छन्द संदिग्ध हैं, जो इस बात को प्रमाणित करते हैं कि यह अप्रामाणिक रचना है।

३. ४. २. छत्रसालदशक के अप्रामाणिक छन्द

इस संग्रह का निम्नलिखित कवित्त मुकुन्द कवि के नाम पर दिग्विजय भूषण में मिलता है। दोनों कवित्त दिये जा रहे हैं—

---

1 भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, (सातवाँ संस्करण), पृ० १०८

2 सम्पूर्ण भूषण, रामचन्द्र गोविन्द काटे (निवेदन), पृ० २

3 भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, आरम्भ वचन, पृ० ३ और ४

मिश्रबन्धु के छत्रसाल दशक में प्रथम कवित्त—

चले चन्दबान घनबान औ कुहुकबान,
चलत कमान धूम आसमान छै रहो।
चली जमडाढ़ैं बाढ़वारैं तरवारैं जहाँ,
लोह आँच जेठ के तरनि मान वै रहो।।
ऐसे समै फौजैं बिचलाई छत्रसालसिंह,
अरि के चलाये पायँ वीररस च्वै रहो।
हय चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले,
ऐसी चलाचली मैं अचल हाडा ह्वै रहो।।[1]

दिग्विजय भूषण में यह कवित्त इस प्रकार है—

चलै चन्द्रबान घन बान औ कुहुकबान,
चलत कमान धूम आसमान ह्वै रह्यो।
चली जमडाढ़ै, तरवारै चलीं चले सेल्ह,
लोह आँच जेठ के तरनि मानि त्यै रह्यो।।
ऐसे मैं मुकुन्दसिंह हाथिन चलाइ दल,
रिपु के चलाइ पाइ बीर रस च्वै रह्यो।
हय चले हाथी चले संग छोड़ साथी चले,
एते चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रह्यो।।

दिग्विजय भूषण की भूमिका में मुकुन्द कवि का परिचय देते हुए यह लिखा गया है कि "ये छत्रसाल बूँदी के राजा शत्रुसाल (सिंहासनारोहण सं० १६८८) थे। छत्रसाल बुन्देला से इनके पृथक् अस्तित्व की पुष्टि भूषण के नीचे लिखे दोहों से हो जाती है—

इक हाड़ा बूँदी धनी मरद महेवा वाल।
सालत नौरँगजेब को ये दोनों छतसाल।।
वै देखौ छत्ता पता ये देखौ छतसाल।
वै दिल्ली की ढाल यैं दिल्ली ढाहनवाल।।

शत्रुसाल (बूँदी नरेश) शाहजहाँ के प्रधान सहायकों में थे। उत्तराधिकार युद्ध में औरंगजेब की अधिक सेना देखकर भी इन्होंने अपने स्नेही शाहजहाँ के आदेशानुसार दारा का साथ दिया था। सं० १७१५ में धरमत के (फतेहबाद) युद्ध

---

[1] **भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, छत्रसाल दशक का प्रथम कवित्त।**

में दाराशिकोह के मैदान से भाग खड़े होने पर भी, अपने इने-गिने सैनिकों के साथ वे अविचल भाव से डटे रहे और वहीं वीरगति को प्राप्त हुए। इस अवसर पर इनके साथ कोटा के राव मुकुन्दसिंह भी उपस्थित थे। (पूर्व आधुनिक राजस्थान—डाक्टर रघुवीरसिंह, पृ० ११४)।"[1] दिग्विजय भूषण के संपादक ने उक्त कवित्त के बारे में दो संभावनाएँ लिखी हैं—एक यह कि इस कवित्त में मुकुन्दसिंह की वीरता का वर्णन उनके किसी आश्रित कवि ने किया है। दूसरी संभावना यह कि संभव है मुकुन्दसिंह ने स्वयं प्रत्यक्षदर्शी के रूप में महाराज शत्रुसाल का (हाड़ा का) शौर्य वर्णन उक्त छन्द में किया हो।[2] तात्पर्य यह कि उक्त कवित्त मुकुन्द कवि या मुकुन्दसिंह (कोटा के राजा) के किसी आश्रित कवि का है। दूसरी बात यह कि छत्रसाल दशक के अनुसार यह छन्द छत्रसाल बुन्देला संबंधी न होकर यह शत्रुसाल (हाड़ा) संबंधी है। यह भी ज्ञात हो गया कि छत्रसाल दशक के दोहों का संबंध बूँदी नरेश छत्रसाल हाड़ा और शत्रुसाल से है क्योंकि दोनों का संबंध बूँदी से है और ऐतिहासिक घटना के अनुकूल है। इस दृष्टि से छत्रसाल दशक के ये दोनों दोहे भी संदिग्ध हो गए और स्वयं पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी इन्हें संदिग्ध लिखा है। मिश्रजी ने निम्नलिखित कवित्तों की प्रामाणिकता पर सन्देह व्यक्त किया है[3]—

(१) चले चन्दवान घनबान..................अचल हाड़ा ह्वै रह्यो।
(२) दारा साहि औरंग..........................माथो हर माल में।
(३) निकसत म्यान तें.................................माल को।
(४) कीबे के समान प्रभु...............................फहरात है।

मिश्रजी ने इस सम्बन्ध में साफ लिखा है—"दशक में आए केवल छह कवित्त भूषण के हैं जिनमें से एक कवित्त छत्रसाल की स्वतन्त्र प्रशंसा करनेवाला नहीं है। शेष चार कवित्त अन्य कवियों के हैं। उनमें भूषण का नाम नहीं, पर जो कवित्त भूषण के हैं, उनमें उनका नाम आया है। जिनमें उनका नाम आया है, वे दूसरे कवियों के नाम पर मिलते हैं। आरम्भ के दो दोहे भी सन्दिग्ध हैं। इस प्रकार की अप्रामाणिक रचना भूषण के नाम पर चलती रहे यह कितने दुख की बात है।"[4] तात्पर्य यह कि छत्रसाल दशक को स्वतन्त्र रचना नहीं मानना चाहिए और उन सन्दिग्ध या अप्रामाणिक छन्दों को भूषण के नाम से हटा देना चाहिए।

---

१ दिग्विजय भूषण, सं० डा० भगवतीसिंह (कवि परिचय), पृ० ८० और ८१
२ वही, पृ० ८० और ८१
३ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ६० से ६३ तक।
४ वही, पृ० ६४

३. ४. ३. छत्रसाल दशक का रचनाकाल

छत्रसाल दशक का रचनाकाल ज्ञात नहीं है। इतना निश्चित कहा जा सकता है कि इस संग्रह में आए भूषण के प्रामाणिक छन्द छत्रसाल से भेंट होने के बाद लिखे गए। इसमें उल्लिखित घटनाएँ शिवराज भूषण के रचनाकाल के बाद की हैं अतः इनकी रचना-तिथि शिवराज भूषण के बाद की है।

३. ४. ४. वर्ण्य विषय

छत्रसाल दशक में दो दोहे और बाद में १० कवित्त संग्रहीत हैं, जिनमें प्रथम दोनों दोहों में बूँदी के दोनों छत्रसाल और शत्रुसाल का उल्लेख हुआ है। बाद के दस कवित्तों में प्रथम दो कवित्तों में बूँदी नरेश छत्रसाल हाड़ा का वर्णन है और बाद के आठ कवित्तों में छत्रसाल बुन्देला की वीरता का वर्णन बड़ी ही ओजस्वी भाषा में किया गया है। संख्या और विषय दोनों दृष्टियों से छत्रसाल दशक नाम उचित नहीं लगता।

३. ४. ५. प्रकाशन

इस संग्रह का प्रकाशन शिवा बावनी के साथ प्रथमतः संवत् १९४६ में गोवर्धनदास लक्ष्मीदास ने कच्छभुज से किया। इसके बाद इसके विभिन्न संस्करण स्थान-स्थान से प्रकाशित हुए हैं। मिश्रबन्धुओं ने १९०७ ई० में भूषण ग्रन्थावली में छत्रसाल दशक का सम्पादन किया है। इसके अनन्तर जितनी भूषण ग्रन्थावलियाँ स्थान-स्थान से प्रकाशित हुई हैं उनमें छत्रसाल दशक भी प्रकाशित हुआ है। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इसे स्वतंत्र रचना न होने के कारण इसमें आए छंदों को प्रकीर्णक शीर्षक के अन्तर्गत रखा है।

३. ४. ६. टीकाएँ

हिन्दी में इसकी टीका राजनारायण शर्मा ने लिखी है। यह टीका हिन्दी भवन इलाहाबाद से प्रकाशित हुई है।

३. ५. स्फुट-काव्य या प्रकीर्ण रचनाएँ

पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित भूषण में भूषण के सब से अधिक छन्द संग्रहीत हैं और पाठ संशोधन की दृष्टि से यही ग्रन्थावली श्रेष्ठ है। अतः इसी की प्रकीर्णक रचना पर नीचे विचार किया गया है। मिश्रजी की पुस्तक में कुल ५८६ छंद हैं जिनमें ४०७ छंद शिवराज भूषण के हैं शेष १७९ छंदों को उन्होंने प्रकीर्णक के अन्तर्गत रखा है। इसमें शिवा-बावनी और छत्रसाल दशक के छंद भी सम्मिलित हैं। इनको मिश्रजी ने स्वतंत्र रचना के रूप में स्वीकार नहीं किया है। प्रकीर्णक पदों का ब्यौरा निम्न प्रकार है—

छंद संख्या ४०८ से ५०६ तक··········शिवाजी सम्बन्धी छंद हैं।
,, ,, ५०७ से ५२५ तक··········छत्रसाल हाड़ा और छत्रसाल बुन्देला सम्बन्धी छंद हैं।

छंद संख्या ५२६ से ५२९ तक…………शाहू सम्बन्धी छंद हैं ।
,, ,, ५३० और ५३१…………बाजीराव सम्बन्धी छंद हैं ।
,, ,, ५३२…………सुलंकी सम्वन्धी छंद है ।
,, ,, ५३३…………अवधूतसिंह सम्बन्धी छन्द है ।
,, ,, ५३४…………जयसिंह सम्बन्धी छंद है ।
,, ,, ५३५…………रामसिंह सम्बन्धी छंद है ।
,, ,, ५३६…………अनिरुद्धसिंह सम्बन्धी छंद है ।
,, ,, ५३७ और ५३८…………राव बुद्ध सम्बन्धी छंद हैं ।
,, ,, ५३९…………कुमाऊँ नरेश सम्बन्धी छंद है ।
,, ,, ५४०…………गढ़वाल नरेश सम्बन्धी छंद है ।
,, ,, ५४१ और ५४२…………औरंगजेब सम्बन्धी छंद हैं ।
,, ,, ५४३…………दाराशाह सम्बन्धी छंद है ।
,, ,, ५४४ और ५४५…………भगवंतराय सम्बन्धी छंद हैं ।
,, ,, ५४६ से ५८५…………शृंगार रस सम्बन्धी छंद हैं ।
,, ,, ५८६…………शान्त रस सम्बन्धी छंद है ।

३. ५. १. संदिग्ध छन्द

इन छन्दों में सभी को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता । शिवा-बावनी और छत्रसाल दशक के संदिग्ध छंद भी इसी में सम्मिलित हैं । इसी तरह "सक्रजिमि सैल पर……सिवराज देखिए ।" (भूषण. मिश्रजी, छन्द सं० ४०९) छंद में मिश्रवन्धुओं की प्रति में "चिन्तामन देखिए" पाठभेद मिलता है ।[1] कहा गया है कि ये चिंतामनि चिमनाजी अप्पा थे, जो बाजीराव के छोटे भाई थे । बाजीराव सम्बन्धी दोनों छंदों में भूषण का नाम नहीं है अतः दोनों छंद भी संदिग्ध हैं । रामसिंह सम्वन्धी छन्द भी संदिग्ध हैं । मिश्रजी की प्रति में यह छन्द इस प्रकार है :

अकबर पायो भगवंत के तनै सो मान,
बहुरि जगतसिंह महा मरदाने सों ।
भूषन त्यों पायो जहाँगीर महासिंहजू सों,
शाहजहाँ पायो जयसिंह जग जाने सों ।
अब नवरंगजेब पायो रामसिंहजू सों,
औरो दिन-दिन पैहै कूरम के माने सों ।
केते राव राजा मान पावैं पातसाहन सों,
पावैं पातसाह मान मान के घराने सों ।[2]

---

[1] भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, (सातवाँ संस्करण), स्फुट काव्य, छन्द सं० ६

[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५३५

यहीं छन्द मथुरा निवासी मायाशंकरजी याज्ञिक के पास जो कवित्त संग्रह है, उसमें इस प्रकार है[1]—

"अकबर पायो भगवंत के तनय सौं,
बहुरि कै—जगतसिंह महा मरदाने सौं।
जहाँगीर पायो महाराज महासिंघजू सौं,
साहिजहाँ पायो जै साहिवर वानै सौं।
अव अवरंगजेव पायो रामसिंहजू सौं,
औरो दिन पैहैं कूरम के माने सौं........।
ओर राजा राय मान पामें पातसाहिन सौं,
पामै पातसाह मान मान के घराने सौं।:'

दूसरे छंद में भूषण का नाम नहीं है और कहीं-कहीं पाठान्तर भी है। लगता है सम्पादक ने भ्रमवश इसे भूषण का मानकर किंचित संशोधन कर उसमें भूषण का नाम जोड़ दिया। भगवंतराय सम्बन्धी कवित्त संख्या ५४४ सारंग कवि का है। इस कवित्त की एक पंक्ति में पाठभेद इस प्रकार है—

(१) भूषन भनत तहाँ भूप भगवन्तराय............"भूषण" वाले कवित्त में।[2]
(२) सारंग सुकवि भनै भूपति भवानीसिंह........सारंग वाले कवित्त में।[3]

कवित्त की और पंक्तियाँ समान हैं। इसी तरह छन्द संख्या ५४५ भी भूधर कवि का माना जाता है। भूधर असोथर (फतेहपुर) के भगवन्तराय खीची के दरबारी कवि थे।[4]

यदि इस तरह भूषण के काव्य से प्रक्षिप्त अंश जो अन्य कवियों के हैं और प्रकाशकों या सम्पादकों की भूल से भूषण के नाम पर चल पड़े हैं, उन्हें हटा दिया जायगा तो भूषण के काल-निर्णय में बड़ी सुविधा होगी और भूषण को शिवाजी का समकालीन कवि सिद्ध किया जा सकेगा। डाक्टर टीकमसिंह तोमर ने भी यही संभावना प्रकट की है—"यदि इनके पाठ का समुचित रूप से संशोधन हो जाय तो

---

१ हस्तलिखित ग्रन्थों का पन्द्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण सन् १९३२ से १९३४ ई० तक, सं० डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, पृ० ३९८ पर संख्या २४८ देखिए (ना० प्र० सभा द्वारा)

२ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५४४

३ वही, छन्द संख्या ५४४ की पाद टिप्पणी देखिये।

४ वही, छन्द संख्या ५४५ की पाद टिप्पणी देखिये।

इनकी कविता प्रमुख रूप से शिवाजी और छत्रसाल विषयक होने के नाते उन्हें शिवाजी का समकालीन सिद्ध करने में सफल होगी।"[१]

३.६. शृंगार रस सम्बन्धी स्फुट काव्य

शृंगार रस सम्बन्धी भूषण के ४० पद भूषण' में संग्रहीत हैं। इन कवित्त और सवैयों को पढ़ने से ऐसे लगता है कि नायिका भेद का वर्णन करने की दृष्टि से प्रस्तुत पद लिखे गये हैं। यद्यपि नायिका भेद के लक्षण स्वतन्त्र रूप से दिये हुए नहीं हैं किन्तु कवित्त या सवैयों में नायिका का वर्णन करने के पश्चात् उसी पद के अन्त में यह उल्लेख कहीं-कहीं स्पष्ट रूप से कर दिया गया है कि इसे मुग्धा कहते हैं या इस प्रकार की नायिका उत्तमा कहलाती है। एक दो उदाहरण उपयुक्त होंगे—

बैठी संकेत किसोरी सखी बन सूनो बिलोकति ही बिलखानी।
पी बिन ही मृग-सावक नैनि न बोली कछू नत बोली थिरानी।
गुंजि उठे अलिपुंज तहाँ कवि भूषन स्रौन परी यह बानी।
सोच भिद्यौ मन मोद ततच्छन लच्छन हौं मुगधा पहचानी॥[२]

इसी तरह—

जद्यपि बिहारी और मन्दिर तें आये भोर,
उरज की छाप उर और छबि पावही।
तद्यपि सुचैन वाहि पीतम कौ बैन चाहि,
सुधा सों लपेटे बैन आवत सुभावही॥
लोचन बिलोल यौं बिरोचन उए हैं कौल,
अठिलात बोलि अंकमालिका लगावही।
कहै कवि भूषन भई है कुलभूषन ए,
भले गुन भामिनी तें उत्तम कहावही॥[3]

ऐसे लगता है कि प्रस्तुत पद तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्ति से प्रभावित होकर ही भूषण ने लिखे होंगे। वैसे उनके काव्य की मूल प्रवृत्ति से ये पद कुछ भिन्न प्रतीत होते हैं और सहज ही में यह विश्वास नहीं होता कि वीर रस की कविता लिखने वाला शृंगार के वर्णन—वह भी घोर रति का वर्णन—कैसे कर सकता है? भाषा की दृष्टि से देखने पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि

---

१ हिन्दी वीर काव्य, डाक्टर टीकमसिंह तोमर, पृ० २१७
२ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५७२
3 वही, छन्द सं० ५८०

इनमें मतिराम, देव और पद्माकर की सी स्निग्धता है और वैसी सफाई भी। संभव है भूषण ने नायिका-भेद पर स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा हो जो अब नहीं मिलता किन्तु प्राप्त अंश के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कवि ने नायिकाओं के अनूठे चित्र खींचे हैं और आचार्यत्व की दृष्टि से भी उनके ये पद अच्छे बन पड़े हैं।

५.७. निष्कर्ष

भूषण की एकमात्र प्रामाणिक रचना 'शिवराज भूषण' है। शिवा-बावनी और छत्रसाल दशक पीछे से सम्पादकों द्वारा किए गए संग्रहमात्र हैं। ये दोनों स्वतंत्र रचनाएँ नहीं हैं। शिवराज भूषण के अतिरिक्त उनके प्राप्त पदों को प्रकीर्णक रचना मानना चाहिए। प्रकीर्णक पदों का समुचित रूप से संशोधन होना आवश्यक है। इनमें से प्रक्षिप्त अंशों को दूर कर देने से भूषण सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण करने में सुविधा होगी।

चतुर्थ अध्याय

भूषण के काव्य में इतिहास

भूषण के काव्य में इतिहास

४. १. काव्य और इतिहास

साधारण रूप से यह समझा जाता है कि इतिहास और काव्य का मेल नहीं हो सकता क्योंकि इतिहास तथ्यों और प्रमाणों पर आधारित रहता है, जब कि काव्य के लिए यह आवश्यक होने पर भी अनिवार्य नहीं है। प्रायः इतिहासकारों ने काव्य पर उतना विश्वास नहीं किया जितना शिलालेखों पर, सिक्कों पर या अन्य प्रकार के उपलब्ध विश्वसनीय तथ्यों पर। सारे तथ्य मिल जाने पर वे तथ्य यदि तत्कालीन कवि की रचनाओं में मिल गए तब उस कवि की रचना को पढ़ना (ऐतिहासिक दृष्टि से) आवश्यक माना गया, मूल प्रमाण मानकर नहीं, बल्कि आनुषंगिक मानकर। काव्य को इतिहास का मूल प्रमाण कभी नहीं माना गया। क्योंकि प्रायः सभी इतिहासकारों की यही धारणा रही है कि काव्यों में तथ्यों से अधिक कल्पना से काम लिया जाता है। एक हद तक उनका यह कहना ठीक है किन्तु इसके साथ-साथ यह भी मानना आवश्यक है कि इतिहास के लिए अन्य प्रमाण जहाँ एक ढाँचा मात्र प्रस्तुत करने का काम करते हैं, वहाँ काव्य उसमें प्राण फूँकने का काम करता है। काव्य में युग का चित्र होता है, ढाँचे के रूप में निर्जीव नहीं बल्कि मांसल, सजीव, रंगीन और रम्य रूप में और यह एक प्रकार से युग का वास्तविक इतिहास होता है।

भूषण कवि के काव्य में अपने युग का इतिहास मुखरित हुआ है। कवि की दृष्टि युग के यथार्थ पर अधिक रही है। इस सम्बन्ध में पीछे लिखा गया है। यहाँ भूषण के काव्य में अपने युग की अनुस्यूत ऐतिहासिक स्थूल घटनाओं का विवरण, ऐतिहासिक दृष्टि से उनका अध्ययन और अध्ययन-प्रसूत निष्कर्षों का निरूपण करने का प्रयत्न किया गया है।

भूषण कवि अपने युग की हलचलों से इतने अधिक संपृक्त हैं कि उनके काव्य की परिधि में ऐतिहासिक तत्त्व और तथ्य प्रविष्ट होकर काव्य और इतिहास की अनुपम मैत्री उपस्थित करते हैं। काव्य में वर्णित और प्रासंगिकता की दृष्टि से विवेचनीय घटनाओं की बिखरी हुई कड़ियों को यदि शृंखलाबद्ध किया जाय तो समग्र रूप में ऐतिहासिक चित्र खड़ा होता है। अतः इस ऐतिहासिक चित्र की अस्फुट रेखाओं को स्पष्ट कर देना समीचीन होगा। इन ऐतिहासिक रेखाओं को कालक्रम से संजोकर लिखने का प्रयत्न नीचे किया गया है। साथ ही उन घटनाओं और विवरणों की परीक्षा इतिहास के प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर की गई है। भूषण ने कुछ घटनाओं का उल्लेख मात्र कर दिया है। अतः उस घटना को या उन घटनाओं को विस्तार के साथ इतिहास ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है। यह आवश्यक है क्योंकि इसके अभाव में उन तथ्यों का उद्घाटन संभव नहीं होगा।

४. २. काव्य में प्राप्त इतिहास-वृत्त

भूषण के काव्य में जो इतिहास मिलता है, वह काल क्रमबद्ध नहीं है। छत्रपति शिवाजी, छत्रसाल बुन्देला, छत्रसाल हाड़ा, औरंगजेब, शाहू एवं अन्य राव-राजाओं से सम्बन्धित ऐतिहासिक वृत्तों का यत्र-तत्र उल्लेख काव्य में हुआ है। इनमें अधिक विस्तार छत्रपति शिवाजी के जीवन और उनसे सम्बन्धित घटनाओं को ही मिला है। शिवराज भूषण, जो भूषण की एकमात्र प्रामाणिक रचना है, छत्रपति शिवाजी से सम्बन्धित काव्य है। छत्रपति शिवाजी भूषण के काव्य के नायक हैं अतः प्रथम उन्हीं के जीवन और उनसे सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं का जैसे अफ़जलखान-वध, शाईस्तखाँ की दुर्दशा, सूरत की लूट, शिवाजी की औरंगजेब से भेंट, कैद से छुटकारा, लोहगढ़ सिंहगढ़ की विजय, साल्हेर का युद्ध एवं पन्हाले की विजय का काव्य में प्राप्त वृत्त देते हुए साथ-साथ ऐतिहासिक ग्रन्थों के आधार पर उनकी प्रामाणिकता पर विचार किया गया है। इन प्रमुख घटनाओं के अतिरिक्त अन्य कुछ स्फुट उल्लिखित घटनाओं का भी ऐतिहासिक आधार दिया गया है। इनके साथ-साथ औरंगजेब, छत्रसाल बुन्देला, छत्रसाल हाड़ा, शाहू एवं अन्य राव-राजाओं से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं का काव्य में प्राप्त वृत्त देते हुए उनकी प्रामाणिकता की भी परीक्षा की गई है। अन्त में निष्कर्ष लिखा गया है।

शिवाजी सम्बन्धी अब तक जो इतिहास लिखा गया है, उनमें से बहुत सा भाग अब तक स्फुट एवं प्रकीर्ण रूप में प्रकाशित है। यदुनाथ सरकार द्वारा लिखित इतिहास भी पूर्णतः प्रामाणिक नहीं माना जाता।

४. २. १. शिवाजी और उनसे सम्बन्धित घटनाएँ

वि० का० राजवाड़े, गोविन्द सखाराम सर देसाई, ग्राण्ट डफ, गणेश हरि खरे, दत्तो वामन पोतदार, दि० वि० काले, शंकर नारायण जोशी, द० वि०

श्री छत्रपति शिवाजी

जे सोहात सिवराज कों ते कवित्त रसमूल ।
जे परमेस्वर पै चढ़ैं, तेईं आछे फूल ।।

—भूषण

आपटे, वा० सी० बेन्द्रे, स० म० दिवेकर आदि अनेक लेखकों ने शिवाजी के इतिहास पर शोधपूर्ण कार्य किया है। इन ऐतिहासिक ग्रन्थों के अतिरिक्त अनेक बखरें, कागद पत्र एवं तत्कालीन कवियों के काव्य ग्रन्थ भी प्रामाणिक रूप में उपलब्ध हैं, जिनका अब तक पूर्ण उपयोग किसी एक लेखक के ग्रन्थ में पूर्णतः नहीं हुआ है। अतः इतिहास के इस भाग को मूल ग्रन्थों में भी देखना आवश्यक हो जाता है। भूषण का काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से मूल प्रामाणिक ग्रन्थों में माना जाना चाहिए। उसमें पाये जाने वाले ऐतिहासिक तथ्य तत्कालीन मूल उपलब्ध ग्रन्थों से बहुत हद तक साम्य रखते हैं। नीचे भूषण के काव्य का ऐतिहासिक विवेचन करते हुए इतिहास में अनुपलब्ध तथ्यों का विवेचन तत्कालीन प्राप्त मूल सामग्री के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। जहाँ तक सन्, संवत् की बात है, शंकर नारायण जोशी द्वारा संपादित "शिवकालीन शकावली" को आधार मानकर सन् संवत् की चर्चा की गई है। शिवकालीन शकावली का प्रकाशन भारत इतिहास संशोधक मंडल, पूना द्वारा हुआ है (१९३७ ई०)।

शिवाजी सम्बन्धी ऐतिहासिक वृत्त का विवेचन करते समय पहले भूषण के काव्य में प्राप्त वृत्त दिया गया है और बाद में उसकी विवेचना की गई है।

४. २. १. १. शिवाजी के पूर्वज : "सूर्यवंश में एक वीर का जन्म हुआ जिसने अपना सिर देकर सीसौदिया की उपाधि प्राप्त की। उसी कुल में अनेक राजा हुए। जिन्होंने बड़ा नाम पाया। मालमकरन्द (मालोजी) उसी कुल में पैदा हुए। तलवार चलाने में वे बड़े कुशल थे। निजामशाही राजा से उनकी मित्रता थी। सिंह के समान शोभित रहने के कारण उन्हें सरजा की उपाधि से विभूषित किया गया। युद्ध में शिला के समान अचल रहने के कारण उन्हें भ्वैसिला कहा गया। उन्हीं के पुत्र का नाम शाहजी था। शाहजी भी बड़े वीर हुए। हिन्दू जाति उन्हें अपना आधार मानती थी। राजा और सिपाही सभी उनसे प्रसन्न रहते थे।"[1]

ऐतिहासिक विवेचन : मालोजी निजामशाही दरबार में रहते थे। उनका कार्यकाल १५७७ ई० से १६०७ ई० तक माना जा सकता है।[2] श्री दि० वि० काले ने छत्रपति शिवाजी की वंशावली दी है। वह इस प्रकार है।[3]

---

[1] **भूषण, पं० बिश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४, ५, ६, ७, ८, ९ और १०**

[2] **छत्रपति शिवाजी, श्री दि० वि० काले, पृ० ८ (कुछ विद्वानों का मत है कि मालोजी की मृत्यु १६०५ में हुई—(देखिए शिव-चरित्र निबन्धावली, पृ० ११)**

[3] **छत्रपति शिवाजी, दि० वि० काले, पृ० ८**
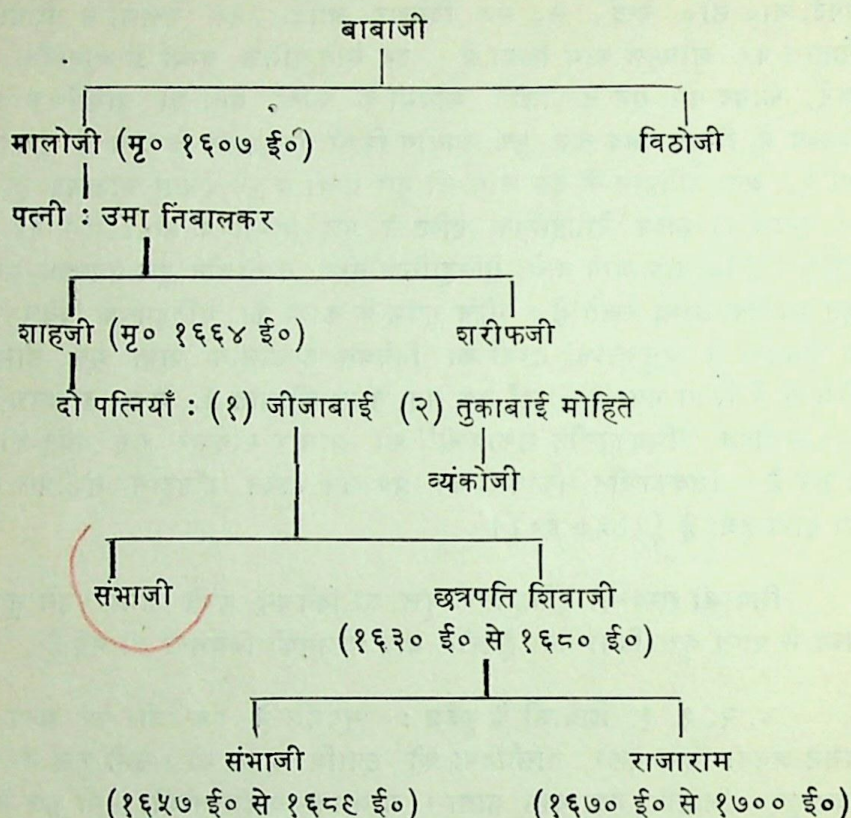
गोविन्द सखाराम सरदेसाई ने शिवाजी की वंश परम्परा के सम्बन्ध में लिखा है—"महाराष्ट्र की परम्परानुसार बहुत पहले यह माना जा चुका है कि शिवाजी का जन्म चित्तौड़ के सूर्यवंशी सीसौदिया कुल में हुआ था।"[1] सभासद बखर में भी शिवाजी के राजपूत सीसौदिया होने का उल्लेख है।[2] शिवाजी के कुल को भौंसला कुल भी कहा गया है।[3]

काव्य में वर्णित तथ्य इतिहास के अनुकूल हैं। कवि ने सीसौदिया, भ्वैसिला की व्याख्या अपने ढंग से की है।

---

[1] मराठों का इतिहास, गोविन्द सखाराम सरदेसाई, पृ० ५८

[2] सभासद बखर, सं० वि० स० वाकसकर, पृ० ३६

[3] शिव चरित्र निबन्धावली में प्रथम निबन्ध "भोसल्यांचा उदय" देखिए, पृ० १ से १२ तक। इसमें भौंसले कुल का सम्बन्ध राजपूतों से सिद्ध करते हुए यह दिखलाया गया है कि इस वंश का सम्बन्ध चित्तौड़ के सिसौदिया वंश से है।

४. २. १. २. **शिवाजी का जन्म और उनका रायगढ़ वास**—पूर्वजों के परिचय के बाद शिवाजी की कथा इस रूप में मिलती है। छत्रपति शिवाजी शाहजी के पुत्र थे। बाल्यावस्था में ही अपने साहसी गुणों के कारण उन्होंने आसपास के किलों को जीत लिया। किशोरावस्था में बीजापुर और गोलकुण्डा को हराया और यौवनावस्था में मुगलों को परास्त किया। दक्षिण के सब किलों को जीतने के बाद उन्होंने रायगढ़ किले को अपना निवास स्थान बनाया। रायगढ़ किले पर शिवाजी का दरबार इन्द्र के समान था। यह किला बड़ा ही प्रचण्ड था। किले के नीचे का भूभाग जलमय खन्दक के कारण पाताल सा था। माची पृथ्वी के समान थी। यहीं शिवाजी का निवास स्थान और दरबार भी था।[१]

ऐतिहासिक विवेचन : शिवाजी का जन्म शिवकालीन शकावली के अनुसार १९ फरवरी १६३० ई० को हुआ। बाल्यावस्था में उनकी शिक्षा उनकी माताजी जीजाबाई और उनके गुरु दादाजी कोण्डदेव के द्वारा हुई। दादाजी कोण्डदेव की मृत्यु शकावली के अनुसार १९ जुलाई १६४७ ई० को हुई। इस समय शिवाजी १७ वर्ष के थे। उसी समय वे स्वतन्त्र हो गए। उन्होंने अपने पिता से प्राप्त जागीरों को संगठित करने का कार्य इसी समय आरम्भ कर दिया। वे एक छत्र राज्य स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे। सबसे पहले १६ अक्तूबर १६४७ ई० को उन्होंने पुरन्धर किले को अपनी प्रभुता में लिया।[२] उसी वर्ष उन्होंने कोण्डाना किला भी जीत लिया। १६५६ ई० में उन्होंने जावली पर अधिकार किया। उसी वर्ष मई १६५६ ई० में कल्याण, भिवंडी से चेऊल रायरी तक का भाग उन्होंने अपने अधिकार में ले लिया। इससे पूर्व राजगढ़ और तोरणा उन्होंने ले लिये थे। अप्रैल १६५६ ई० में उन्होंने रायगढ़ किले पर अधिकार किया। यही रायगढ़ बाद में शिवाजी का निवास स्थान हो गया। इसी को उन्होंने अपनी राजधानी भी बनाया।[3] रायगढ़ वर्णन (भूषण द्वारा) के सम्बन्ध में स्वर्गीय श्री शान्ताराम विष्णू आवलसकर का कथन है—"भूषण कवि ने शिवराज भूषण में रायगढ़ का जो वर्णन किया है, वह प्रत्यक्ष देखने के बाद किया है, ऐसा प्रतीत होता है।"[४]

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द संख्या ११, १२, १३, १४ और १५

२ छत्रपति शिवाजी, श्री दि० वि० काले, पृ० ३७ और ३८

3 इन सभी किलों को प्राप्त करने की तिथियाँ शिवकालीन शकावली के आधार पर दी गई हैं।

४ रायगढ़ची जीवन कथा, स्व० श्री शान्ताराम विष्णू आवलसकर-प्रकरण ८ से (हस्तलिखित प्रति के आधार पर), यह प्रति भा० इ० सं० मण्डल में उन्हीं के पास १९६० ई० में देखने को मिली।

"दच्छिन के सब दुग्ग जिति दुग्ग-सहाय-विलास, सिव-सेवक सिव गढ़पति कियौ रायगढ़ बास"[१] भूषण ने यहाँ सब किलों के नाम नहीं दिए हैं और न उनका ऐतिहासिक विवरण। किन्तु उसका तात्पर्य उन सब किलों से है, जिन्हें शिवाजी ने जीत लिया था। शिवाजी ने बीजापुर एवं गोलकुण्डा से संघर्ष किया ही था, इसके साथ-साथ मुगलों से भी संघर्ष किया। बाल्यावस्था में उन्हें अपने पड़ोस के राजाओं से अर्थात् बीजापुर और गोलकुण्डा से संघर्ष करना पड़ा और युवावस्था में मुगलों से। कवि ने लिखा है—"गोलकुण्डा बीजापुर जीत्यौ लरिकाई ही में ज्वानी आएँ जीत्यौ दिल्ली-पति पातस्याह कौं"[२] यहाँ पर जीतने का अर्थ उन राज्यों पर पूर्णतः विजय प्राप्त कर लेना नहीं अपितु उन राज्यों के भूमि भाग को अपने अधिकार में लेना और अपने राज्य की सीमाएँ बढ़ाना लेना चाहिए।

तथ्य इतिहास के अनुकूल हैं। यहाँ तक की कथा अति संक्षिप्त ढंग से क्यों न हो, प्रबन्धात्मक ढंग से लिखी हुई है। यह एक प्रकार से काव्य का प्रस्तावना वाला भाग है। रायगढ़ वर्णन तक और उसके बाद अपने परिचय तक कवि ने अलंकारों का विवेचन नहीं किया है। जैसे ही अलंकारों का विवेचन होने लगता है, काव्य की पद्धति बदल जाती है। इसके बाद का काव्य मुक्तक पद्धति में लिखा हुआ है। इसीलिए उसमें शृंखला नहीं है। एक ही घटना का अनेक छन्दों में और एक ही छन्द में अनेक घटनाओं का उल्लेख कवि ने कर दिया है। ऐसी स्थिति में शिवाजी सम्बन्धी घटनाओं को क्रम से छाँटकर तत्सम्बन्धी प्राप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

४. २. १. ३. **अफजलखान-वध**—बीजापुर के बादशाह ने (आदिलशाही ने) शिवाजी का दमन करने के लिये अफजलखान को भेजा। वह बड़ा धूर्त था। वह अपने साथ बारह हजार सेना लेकर जावली के पास "पार" गाँव आया। यह स्थान प्रतापगढ़ के तल के समीप था। यहीं पर दोनों दल मिले। जावली के जंगल में शिवाजी के स्थान (सिंह के स्थान) को न पहचानकर अफजलखान (हाथी) को भेजकर वास्तव में आदिलशाही राजा ने अपनी मूर्खता का परिचय दिया। अफजलखाँ धोखा देना चाहता है यह बात शिवाजी की समझ में तत्काल आ गई। निश्शंक होकर वे उससे मिलने गए। अफजलखाँ बड़ा डीलडौल वाला था। गले मिलते हुए उसने कटारी निकाल ली। वह धोखे से तलवार चलाना चाहता था किन्तु शिवाजी ने बड़ी तत्परता से बीछू का घाव (बघनख द्वारा वार) कर उस पर

---

[१] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १४**

[२] **वही, छं० सं० १३**

ऐसे सवार हो गए मानो सिंह हाथी पर सवार हो। याकुतखाँ और अंकुशखाँ जान बचाकर भागे।[1]

ऐतिहासिक विवेचन : शिवकालीन शकावली के अनुसार अफजलखान-वध १० नवम्बर १६५६ ई० को हुआ। अब्दुल्ला भटियारा उर्फ अफजलखाँ बीजापुर राज्य का अव्वल दर्जे का उमराव था। सुलतान के सामने उसने बीड़ा उठाया कि—"मैं घोड़े पर बैठे-बैठे ही शिवाजी को हराकर बाँध लाऊँगा"। अफजलखाँ उचित-अनुचित सभी उपायों से शिवाजी को पकड़ने के लिए निकला। पहले वह महाराष्ट्र के सबसे बड़े तीर्थक्षेत्र पंढरपुर आया। इस तीर्थ को नष्ट कर वह तुलजापुर पहुँचा। उसने वहाँ की भवानी मूर्ति को तोड़ दिया। तत्पश्चात् अप्रैल १६५६ ई० में "वाई" नामक स्थान पर पहुँचा। यहीं पर रहकर शिवाजी को पकड़ने के उपाय सोचता रहा। अक्तूबर में शिवाजी प्रतापगढ़ पहुँच गए। यह किला वाई से बीस मील पश्चिम में है। अफजलखान ने कृष्णाजी भास्कर को मध्यस्थ बनाकर शिवाजी से बातचीत की। शिवाजी भी इस समय चिंतित थे। उन्होंने भी अपने सलाहकारों से सलाह ली। अन्त में भेंट का समय और स्थान निश्चित हो गया। खाँ के इरादे को शिवाजी ताड़ गए थे। कृष्णाजी भास्कर द्वारा भी शिवाजी को इस बात का ज्ञान हो गया कि खाँ का इरादा अच्छा नहीं है। इसलिए उन्होंने पूरी तैयारी कर ली। पेशवा और नेताजी पालकर के अधीन दो बड़ी फौजों को प्रतापगढ़ के पास जंगल में छुपकर रहने का आदेश दिया गया। शिवाजी ने साफ कह दिया था कि वे 'वाई' नहीं आएँगे। अतः खाँ को इस बात पर राजी कर लिया गया कि दोनों की भेंट प्रतापगढ़ किले के कुछ नीचे पहाड़ की चोटी पर होगी। यहीं पर तम्बू ताना गया। खाँ वाई छोड़कर "पार" गाँव पहुँच गया। यह स्थान प्रतापगढ़ से एक मील की दूरी पर है। १० नवम्बर १६५६ ई० को पारगाँव से अफजलखाँ मिलने के लिए चला। साथ में एक हजार बन्दूकची थे। पन्ताजी गोपीनाथ के कहने से फौज को पीछे छोड़ केवल दो अंगरक्षकों के साथ वह आगे बढ़ा। शिवाजी भी पूरी तैयारी से आए। उन्होंने कुर्ते के नीचे लोहे का जालीदार कवच और सिर पर पगड़ी के नीचे छोटी कढ़ाही के सदृश इस्पात की टोपी छिपाकर पहन ली। बाएँ हाथ में बघनखा और दाएँ हाथ में बिछुआ नामक पतला छुरा था। शामिआने में अफजलखाँ पहले से बैठे हुए थे। शिवाजी चबूतरे से चढ़कर उससे मिलने गए। वे नाटे थे। खाँ गद्दी से उठ कर कुछ कदम आगे बढ़े और शिवाजी से बगलगीर हुए। अफजलखाँ लम्बा चौड़ा था, शिवाजी केवल उसके कन्धे तक ही पहुँच सकते थे। खाँ ने दोनों हाथों से शिवाजी का गला घेर लिया। इसके बाद उसने एकाएक बाएँ

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द संख्या ३८, ५६, १४५, १५६, २२१, २३३, ३१५, ३५४, ३८४, ४३६, ४३६ और ४७४**

हाथ से शिवाजी का सिर काँख में दबाया और सीधे हाथ से, कमर से, लम्बा सीधा छुरा निकाल कर शिवाजी की बाँई बगल में चोट की। शिवाजी ने भी इसी समय अपना बाँया हाथ घुमाकर खाँ के पेट में बघनखा घुसेड़ दिया। साथ ही दाहिने हाथ का बिछुआ खाँ की बगल में भौंक दिया और अपने को छुड़ाकर अलग हो गए।[१]

भूषण द्वारा दिए गए तथ्य इतिहास के अनुकूल हैं। भूषण ने लिखा है—"याकुत महाउत लै आँकुस कौं सटक्यौ"[२] याकूतखाँ अंकुशखाँ को लेकर सटक गया। ऐतिहासिक ग्रन्थों में इनके नाम नहीं हैं किन्तु तत्कालीन कवि परमानन्द के काव्य "शिवभारत" में इनका उल्लेख मिलता है शिवभारत ऐतिहासिक काव्य है और उसमें पाये जाने वाले तथ्य प्रामाणिक माने गए हैं।[३] यही नहीं वह समकालीन होने के कारण घटनाओं का ब्यौरा सूक्ष्म दृष्टि से प्रस्तुत करने वाला काव्य है। अफजलखान-वध प्रसंग का वर्णन उसमें बड़े विस्तार के साथ किया गया है। शिवभारत के १७वें अध्याय से २२वें अध्याय तक ६ अध्यायों में इसी प्रसंग का विस्तार मिलता है। भूषण ने इतने विस्तार से नहीं लिखा किन्तु जो लिखा है, उसमें भी शिवभारतकार की प्रतिच्छाया देखी जा सकती है।

जयवल्लीवनं घोरं गृहं कंठीवरस्य मे।
विशन्निधनमागंता द्विषन्नफजलो गजः॥[४]

यह शिवाजी का कथन है जावली का घोर वन यह मेरी, सिंह की गुफा है। उसमें प्रवेश करने वाला शत्रु अफजल रूपी हाथी निश्चित ही नष्ट होगा।

यही कथन भूषण के शब्दों में बड़े वेगपूर्ण एवं ओजस्वी प्रवाह में है—

सिंहथरी जाने बिन जावली जंगल भटी,
हठी गज एँदिलु पठाय करि भटक्यौ।
भूषन भनत देखि भभ्भर भगाने सब,
हिम्मति हिए में धरि काहुवै न हटक्यौ॥

---

१ **शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० ३० से ३७ तक देखिए।**

२ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५६**

३ **शिवभारत, सं० स० म० दिवेकर, उपोद्घात, पृ० १७**

४ **शिवभारत, सं० स० म० दिवेकर, अध्याय १८ वाँ, छं० सं० ३६, पृ० १७६**

साहि के सिवाजी गाजी सरजा समथ्थ महा,
मदगल अफजल पंजा-बल पटक्यौ।
ताबगरि ह्वै करि निकाम निज धाम कहिं,
याकुत महाउत लै आँकुस कौं सटक्यौ ।।[1]

याकुत खाँ और अंकुशखाँ अफजलखान के साथ में थे। वे दोनों ही अफजलखान का वध होने पर भाग गए। इसका विस्तृत विवेचन घटनाओं के संदर्भ में शिवभारत में है। शिवभारत की इस प्रसंग की पंक्तियाँ निम्न प्रकार हैं—

अथ ध्वस्तहये स्रस्तशस्त्रे वित्रस्तचेतसि।
अपक्रामति संग्रामात् मुसेखानेऽभिमानिनि ।।४१।।
सद्यो यापितवैयात्ये याकुतेऽप्यपयायिनि।
अत्याहितेन हसने व्यसनेषु निमज्जति ।।४२।।
भयशंकुवशे क्षिप्रमंकुशे विगतौजसि।
मृदुभ्यामपकोषाभ्यां पदाभ्यामपसर्पति ।।४३।।
कातरौ भ्रातरौ हित्वा ज्यायानफलात्मजः।
विहाय सेनां चास्थाय रूपान्तरमपासरत् ।।४४।।[2]

अर्थात्—फिर घोड़ा नष्ट हो गया, शस्त्र टूट गए और मन घबरा गया। इस स्थिति में घमण्डी मुसेखान ने भी युद्ध से अपने पैर निकाल लिये। याकुतखाँ को उसकी उद्धटता का दण्ड मिला। उसने भी पलायन किया। इस भयानक आपत्ति के कारण हसन घबरा गया। भयभीत हो जाने के कारण कोमल पाँव वाला अंकुशखान अपने सामर्थ्य का अन्त देख बिना बोले भाग गया। घबराए हुए दोनों भाइयों को छोड़, सेना की परवाह किए बिना अफजलखान का बड़ा लड़का वेष बदलकर भाग गया।

भूषन ने लिखा है कि अफजलखाँ बारह हजार सेना साथ ले आया था। सभासद बखर में भी बारह हजार सेना ले आने का उल्लेख है।[3]

४. २. १. ४. शाईस्तखाँ की दुर्दशा—औरंगजेब ने जसवन्तसिंह (जोधपुर के महाराजा) और शाईस्तखाँ दोनों को मराठों के विरुद्ध दक्षिण भेजा। शाईस्तखाँ

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५६

[2] शिव भारत, (परमानन्द कविकृत), सं० स० म० दिवेकर अध्याय २२ से, पृ० २१७

[3] सभासद बखर, सं० वि० स० वाकसकर, पृ० ११

ने दक्षिण देश पर अपना अधिकार कर लिया और तलवारों का बल दूना कर—पहले से दुगुनी सेना के साथ—पूने में रहने लगा। जिस दिन शिवाजी ने शाईस्तखाँ के डेरे पर आक्रमण किया उस दिन सभी रागरंग में मस्त होकर सुख की नींद सो रहे थे। शिवाजी ने शाईस्तखाँ के मुसाहिब तथा चौकीदारों को खतम कर बड़ा भारी महाभारत मचा (युद्ध कर) अपना यश फैलाया। औरंगजेब ने शाईस्तखाँ को बड़ी उम्मीद से दक्षिण भेजा था परन्तु उसने वहाँ जाकर कुछ नहीं किया उल्टा अपने पुत्र अब्दुलफतेखाँ के साथ-साथ अपना हाथ भी गँवा दिया। एक लाख सिपाहियों के बीच अपने दो सौ आदमियों के साथ ही शिवाजी ने उस सरदार पर विजय पा ली, शाईस्तखाँ की बेइज्जती कर डाली।[1]

ऐतिहासिक विवेचन : शाईस्तखाँ औरंगजेब का मामा था। औरंगजेब ने उसे दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा ताकि वह शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को रोक दे। २५ फरवरी १६६० ई० को अहमदनगर से कूचकर रास्ते को मराठों से निरापद करता हुआ वह पूना पहुँचा। पूना पहुँचने से पूर्व चाकण किले पर उसने आक्रमण किया था किन्तु उसमें जानमाल की अधिक हानि हुई अतः वह पूने में ही स्थिर हो गया। यहाँ से उसने मराठों के विरुद्ध और भी अनेक योजनाएँ बनाकर आगे बढ़ने का प्रयत्न किया किन्तु हर बार असफल हुआ। पूने में वह शिवाजी के बचपन के निवास स्थल 'लाल महल' में ठहरा हुआ था। उसके चारों ओर तम्बू कनातें खड़ी करके स्त्रियों और नौकरों के लिए जगह बनाई गई। पहरेदारों के रहने का स्थान उसके पास ही था। फौज के अन्य सामन्तों ने पूना नगर में इधर-उधर आश्रय पा लिया था। कुछ दूर दक्षिण—सिंहगढ़ के रास्ते पर—में महाराजा जसवन्तसिंह दस हजार फौज के साथ डेरा डाले पड़े थे।

शिवाजी ने शाईस्तखाँ के डेरे में पहुँचने से पूर्व पूरी तैयारी कर ली। सेनापति के अधीन एक-एक हजार मावलों की पैदल सेना और घुड़सवारों के दो दल बनाकर मुगल शिविर की दाहिनी और बाईं ओर आध-आध कोस की दूरी पर छिपा दिया और स्वयं एक हजार बहादुर सिपाहियों को साथ ले वे सिंहगढ़ से बाहर हो शाम को पूना पहुँच गये। अपने दल के ६०० सिपाहियों को बाहर छोड़कर तथा पेशवे मोरोपन्त और सेनापति नेताजी को दो तरफ तैनात कर बाकी चार सौ वीरों के साथ वे मुगलों के खेमों के बीच घुस गए। पहरेदारों से यह कहा कि—"हम बादशाह की दक्षिणी फौज के आदमी हैं, अपने स्थान में ठहरने जाते हैं।" कुछ घण्टे वहीं कोने में बिताकर रात को शाईस्तखाँ के मकान के पास आ पहुँचे। रमजान का महीना था। दिन भर का रोजा था। इसलिए शाम को सब लोग खा-पीकर गहरी

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३४, ७२, ६४, १५६, १७४, २६८, ३०१, ३०४, ३१५, ३६१ और ४६४**

नींद में सो रहे थे। दो चार बावर्ची प्रातःकाल का खाना बनाने में लगे हुए थे। उन्हें मराठों ने शान्त कर दिया। यह रसोईघर बाहर की ओर था। इसी से लगा हुआ अन्दर वाला भाग महल के नौकरों के रहने का स्थान था। बीच में केवल एक दीवार खड़ी थी। पहले इस दीवार में एक छोटा-सा दरवाजा था। शाईस्तखाँ ने ईंटों से चुनवाकर उस दरवाजे को बन्द करवा दिया था। शिवाजी के साथी सब्बल से ईंटें निकालने लगे। नौकरों ने उठकर खाँ को खबर दी। खाँ ने मामूली विघ्न समझ उन लोगों को भगा दिया। धीरे धीरे आदमी जाने योग्य जगह बन गई। सबसे पहले शिवाजी अपने रक्षक चिमनाजी बापू को साथ लेकर महल में घुस गए। उनके पीछे-पीछे दो सौ सिपाही भी उतर गए (भूषण ने दो सौ सिपाहियों का उल्लेख किया है वह उचित ही है)। बाकी दो सौ सिपाही बाहर ही खड़े रहे। तलवारों और छुरों से कनातें काटते हुए शाईस्तखाँ की जगह पहुँच गये। औरतों ने डरकर खाँ को जगाया। किन्तु खाँ के तलवार पकड़ने से पूर्व ही शिवाजी उस पर टूट पड़े और एक चोट ही में उसकी अंगुलियाँ काट डालीं। खाँ की दासी ने होशियारी से दीपक बुझा दिया। इससे मरठों को रास्ता नहीं सूझा किन्तु महल में वे फिर भी मारकाट करने लगे। छः दासियाँ मारी गईं और आठ आदमी घायल हुए। बाहर के दो सौ आदमियों ने पहरेदारों के मकान में घुसकर उन्हें मारा। शाईस्तखाँ का पुत्र अब्दुल-फतेखाँ शोर सुनकर सबसे पहले पिता को बचाने दौड़ा किन्तु शत्रु के हाथ से मार डाला गया। इस प्रकार शत्रु को परास्त कर शिवाजी तत्काल अपने अनुचरों को एकत्र कर वहाँ से भाग गए।[1] यह घटना ५ अप्रैल १६६३ ई० को हुई।

शाईस्तखान के सम्बन्ध में भूषण का कथन इतिहास के अनुकूल है।

४. २. १. ५. **सूरत की लूट**—शिवाजी ने सूरत नगर को जलाया और उसे लूटकर बादशाह औरंगजेब के हृदय में दाह उत्पन्न किया। दिल्ली की सेना उनके आगे कुछ नहीं कर सकी। निर्भय होकर उन्होंने नगर लूटा और मुगल सेना को डंके की चोट भगा दिया। वह सेना डरकर भड़ौंच की ओर भाग गई। औरंगजेब इससे इतना आतंकित हो गया कि वह सूरत शहर को रात दिन शिवाजी की सेनाओं से घिरे हुए रूप में देखने लगा।[2]

ऐतिहासिक विवेचन : शिवाजी ने सूरत नगर को दो बार लूटा। प्रथम बार सन् १६६४ ई० जनवरी ६ से १० तक (बुधवार से रविवार तक) लूट की। दूसरी बार की लूट ३ एवं ४ अक्तूबर १६७० ई० को हुई। प्रथम लूट में कम से कम १५

---

[1] **शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० ४२ से ४८ तक देखिए।**

[2] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १८२, ३१२, ३३२, ४७२, ४७३ और ५०५**

लाख एवं अधिक से अधिक १ करोड़ की लूट की गई होगी, ऐसा अनुमान है। दूसरी लूट में उन्हें ९६ लाख मिला।[1] भूषण ने किस लूट का उल्लेख किया इसका अनुमान करना कठिन है किन्तु दोनों ही बार शिवाजी को अपार सम्पत्ति मिली और औरंगजेब की इसमें एक प्रकार से हार हुई। सूरत उन दिनों एक सघन शहर एवं व्यापारी केन्द्र एवं बन्दरगाह था। शिवाजी की इस लूट से सूरत में चारों ओर आतंक छा गया और औरंगजेब भी इससे बहुत परेशान रहा। इस आतंक का वर्णन भूषण ने बड़े यथार्थ रूप में किया है और वह इतिहास के अनुकूल है। भूषण की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

साहितनै सिव साहि भई मनि भूषन यौं तुव धाक घनेरी।
रातिहुँ द्यौस दिलीस्वर के तुव सैन की सूरति सूरति घेरी।[2]

४. २. १. ६. **शिवाजी की औरंगजेब से भेंट**—शिवाजी से जिस दिन औरंगजेब ने भेंट ली, उस दिन वह उत्सव होने के कारण जुलूस बनाकर अमीर उमरावों के साथ दरबार में बैठा हुआ था। उस समय बादशाह ने शाही दरबार के नियमानुसार कई गुर्जबरदारों को बड़ी सावधानी के साथ खड़ा करवाया। जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह को बुलाकर उसने अपने निकट रखा और अन्य बहुत से सरदार जिन पर उसका विश्वास था, उन्हें भी निकट रखा। औरंगजेब को भय था कि कहीं शिवाजी सिंह की भाँति अचानक झपट न पड़े? हथियारों की नाहीं करके और अपने सरदारों की कतार बाँधकर डरते डरते गुसलखाने के पास उसने शिवाजी से भेंट की। शिवाजी इस शान को देखकर जरा भी विचलित नहीं हुए। उन्हें यह समझने में देर नहीं लगी कि उन्हें छः हजारी मनसबदारों के निकट पंचहजारी मनसबदारों में खड़ा किया गया है। उन्होंने सलाम नहीं किया। रामसिंह ने उन्हें बहुत समझाया पर वे न माने। उन्होंने अपना रोष प्रकट किया। शत्रु हाथ आया जानकर औरंगजेब बड़ा प्रसन्न था पर शिवाजी ने इस समय भी मूँछों पर ताव दी। अमीर उमरावों ने और स्वयं रामसिंह ने उनकी खुशामद की किन्तु वे नहीं माने। उस दिन इस्लाम को (इस्लाम के सेवक औरंगजेब को) गुसलखाने ने बचा लिया। यही भला था कि उनकी कमर की कटारी उन्हें नहीं दी गई थी। शाही कायदे के अनुसार वह रखवा ली गई थी। शिवाजी के हाथ में इस समय कोई दूसरा हथियार भी नहीं था। यह भी अच्छा ही रहा अन्यथा बड़ा अनर्थ होता।[3]

---

[1] छत्रपति शिवाजी, श्री दि० वि० काले, पृ० ११० से ११४ तक (प्रथम लूट) एवं ११६ से १७० तक (दूसरी लूट)

[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३१२

[3] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३३, १६६, १७६, १८६, १६१, २४२, २६२, ३४६, ८२, ४४२, ४४४, और ४५५

ऐतिहासिक विवेचन : २२ जनवरी १६६६ को शाहजहाँ की मृत्यु हुई। शाहजहाँ की मृत्यु से पूर्व औरंगजेब दिल्ली में रहता था। अपने पिता की मृत्यु का निश्चित समाचार सुनने के बाद वह आगरा आया। (पिता की उपस्थिति के कारण उसके मन में अब तक यह भय बना हुआ था कि किसी भी समय उसको पदच्युत किया जा सकता है। उसने पिता को विष देकर मारने का कई बार प्रयत्न किया किन्तु असफल रहा। बाजारों में पितृघातक के रूप में उसकी चर्चा होती थी, ऐसा मनुची का कहना है।) अब उसने निश्चिन्त भाव से अपना ५० वाँ जन्म दिवस मनाने का निश्चय किया। सारी तैयारी इसी भाव से की गई। उसका एकमात्र प्रबल शत्रु भी उससे मिलने आ गया था। औरंगजेब ने उसको इसी अवसर पर भेंट दी। वह उसे प्रभावित करना चाहता था। यह भेंट आगरा में ही हुई, दिल्ली में नहीं। तत्कालीन अन्य ग्रन्थों में एवं डफ के इतिहास में भी लिखा हुआ है कि यह भेंट दिल्ली में हुई। बखरों में एवं भूषण के काव्य में भी आगरा का उल्लेख नहीं, दिल्ली का ही उल्लेख मिलता है। इसका एकमात्र कारण यह है कि शाहजहाँ की मृत्यु से पूर्व अपने ८ वर्षों के कार्यकाल में औरंगजेब आगरा नहीं आया। इसीलिए बखरकारों ने शिवाजी दिल्ली गए हैं, ऐसा लिखा, आगरा जाने का उल्लेख नहीं किया। भूषण ने दिल्ली का उल्लेख निम्नलिखित पंक्तियों में किया है—

ह्याँते चल्यौ चकतैं सुख देन कौं गोसलखाने गएँ दुख दीनौ।
जाय दिल्ली-दरगाह सलाह कौं साह कों वैर बिसाहिकै लीनौ ॥[1]

अर्थात् यहाँ से (दक्षिण से)[2] तो शिवाजी चगताई के वंशज औरंगजेब को प्रसन्न करने के लिए गए थे परन्तु वहाँ दिल्ली में जाकर उन्होंने उसे उलटा दुख दिया। भूषण कवि का कहना है कि दिल्ली दरबार में जाकर बादशाह को (प्रसन्न करने की बात तो दूर रही) उलटा उन्होंने शत्रु ही बना लिया।

यहाँ दिल्ली का उल्लेख राजधानी के रूप में ही है, भेंट के स्थान विशेष से उसका सीधा सम्बन्ध नहीं है। यदि मान भी लिया जाय तो उस युग की राजधानी भेंट से पूर्व चूँकि दिल्ली ही रही अतः उस दृष्टि से वैसा उल्लेख हुआ है, ऐसा

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १८६**

[2] **प्रस्तुत पद की भाषा में हमें ऐसा संकेत मिलता है, जिससे लगता है कि भूषण इस समय दक्षिण में थे। अनुमान किया जा सकता है कि भूषण इससे पूर्व ही शिवाजी के दरबार में आ गए हों।**

कहना चाहिए । शिव-चरित्र-निबन्धावली में भी यही कारण दिया गया है ।[१] किन्तु शिवाजी आगरे में कैद थे और वहीं से वे भाग निकले यह भूषण ने लिखा है । यहाँ पर कवि ने दिल्ली का उल्लेख नहीं किया है—

रस-खोट भए तें अगोट आगरे मौं,
सातौं चौकी नाँघि आय घर करी हद रेवा है ।[२]

इसी पद की ऊपर की पंक्ति में गुसलखाने में भेंट होने का उल्लेख है, यह दिल्ली में नहीं, आगरे में है । अतः कवि ने ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य ही लिखा है । अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों के साथ तुलना करने पर यह बात ठीक प्रतीत होती है ।

भूषण ने शिवाजी और औरंगजेब की भेंट "गोसलखाने" में हुई, ऐसा लिखा है । यह ऐतिहासिक तथ्य है । श्री दि० वि० काले ने लिखा है—"किन्तु इतने में दीवाने-आम की औपचारिक दरबारी बैठक को पूर्ण कर औरंगजेब चुने हुए लोगों के साथ परामर्श करने के लिए नियुक्त स्थान मंत्रागार में अर्थात् गुसलखाने में प्रविष्ट हुआ ।"[३] सभासद बखर में भी यही लिखा हुआ है । गुसलखाना शब्द का प्रयोग सभासद बखर में इस प्रकार हुआ है—"पुढ़े कोण सरदार पाठवावा ? कोण फत्ते करुन येईल ? असा विचार करुन सरदार निवडितां मिरजा राजा जयसिंग रजपूत निवडिला । त्यास आणून **घुशलखान्यांत** बसोन पादशहानीं नाना प्रकारें सांगितलें कीं", शिवाजीवर तुम्हीं जाणे, आपण पादशहांनीं जावें किंवा तुम्हीं जावें । असें जाणोन तुम्हांस रवाना करितों......."[४] तत्कालीन कागद पत्रों में भी गुसलखाने का उल्लेख मिलता है । जयपुर के तत्कालीन पत्र का कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है । पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"२१ नौ सवारा सेवौजी श्री महाराज कवारजी की ही हजुरी आयौ वौठौ ही महादेवजी की सेवा करी श्री महादेवजी उपराया तीउतारी कौल बोल कीयौ

---

१ **शिव-चरित्र-निबन्धावली, पृ० २९१ (प्रस्तुत अंश के लेखक रा० सा० गं० के० देशपांडे)**

२ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ७४**

३ **छत्रपति शिवाजी, श्री दि० वि० काले, पृ० १४० । मूल पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—"पण इतक्यांत दिवाण-इ-आम मधील मोठा औपचारिक समारंभी दरबार आटोपून औरंगजेब निवडक लोकांच्या परामर्शासाठी योजिलेल्या बैठकीला मंत्रागारमध्यें म्हणजे घुसलखाणामध्यें येऊंन दाखल झाला होता ।"**

४ **सभासद बखर, सं० वि० स० वाकसकर, पृ० ३४**

पाछौ श्री महाराज कवारजी जमानतगी कौषत लीषाई नीमा साम कौ **गुसलषानौ** महमद अमीषां नौ दीयौ तव महमद अमीषां अरज करी........आदि-आदि ।"[1]

इस पत्र के अन्त में तिथि दी गई है। वह इस प्रकार है—

"मीती जेठ बदी ६

ता० २२ मा० जीलकाद सन् १०७६ मुकाम आगरा।"[2]

यहाँ इस पत्र का उल्लेख इसलिए किया गया है कि इस पत्र में गुसलखाने शब्द का प्रयोग किया है और वह भी मन्त्रागार के अर्थ में ही प्रयुक्त है। औरंगजेब की भेंट इसी मन्त्रागार में शिवाजी से हुई थी। भूषण का कथन ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य प्रमाणित होता है।

शिवाजी की औरंगजेब से यह भेंट १२ मई १६६६ ई० को हुई। यह तिथि शिवकालीन शकावली के अनुसार दी गई है। (यदुनाथ सरकार ने एवं दि० वि० काले ने १२ मई के स्थान पर १३ मई का उल्लेख किया है।) इस भेंट के अवसर पर औरंगजेब का दरबार का चित्र यदुनाथ सरकार ने खींचा है और उस समय का भूषण द्वारा चित्रित दरबारी चित्र को उन्होंने उद्धृत करते हुए कहा है कि भूषण कवि का कथन ठीक है। यदुनाथ सरकार ने लिखा है—"इधर देरी बहुत हो चुकी थी और बादशाह दीवान आम का दरबार खतम कर किले में भीतरी दीवान खास में (यहाँ इसका तात्पर्य गुसलखाने से लिया जा सकता है) चले गये थे। कुमार रामसिंह शिवाजी को वहीं ले गये। सफेद पत्थर का बना हुआ यह दीवान खास जन्म-दिन के उत्सव में बाकायदा सजाया गया था और जमीन पर बहुत बढ़िया गलीचा बिछाया गया था। यहाँ भी ऊँचे दर्जे के अमीर-उमरा और राजा लोग खूब चमकीली पोशाकें पहनकर अपने-अपने दर्जे के अनुसार खड़े थे। हिन्दी कवि भूषण ने ठीक ही कहा है कि इस जन्म-दिवस के उत्सव के दरबार में औरंगजेब स्वर्ग में तेजपूर्ण देवताओं से घिरे हुए इन्द्र की तरह बैठा था।"[3] यदुनाथ सरकार ने भूषण के निम्नलिखित कवित्त के आधार पर ही यह बात कही है। कवित्त इस प्रकार है—

जसन के रोज यौं जलूस गहि बैठौ जोऽब
इन्द्र आवै सोउ लागै औरँग की परजा।

---

[1] **जयपुर के तत्कालीन पत्र के आधार पर—इस पत्र की प्रामाणिक प्रतिलिपि भारत इतिहास संशोधक मण्डल, पूना में देखने को मिली।**

[2] **वही**

[3] **शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० ७३**

भूषन भनत तहाँ गरजा सिवाजी गाजी,
जहाँ को तुजक देखिकैं हिये न लरजा ॥
ठान्यौ न सलाम मान्यौ साह को इलाम,
मान्यौ धाम-धूम कैं न रामसिंधहू को बरजा ।
जासों जोग करि बाचैं भूपत दिगन्त
तासों तोरा करि तखत तरे तें आयौ सरजा ॥[१]

भरे दरबार में योजनानुसार पिता और पुत्र (शिवाजी तथा संभाजी) को असदखान ने बादशाह के सामने प्रस्तुत किया। शिवाजी ने जैसी अपेक्षा की थी, उस रूप में उनका स्वागत नहीं हुआ। शिवाजी एवं सम्भाजी दोनों ने कायदे के अनुसार नजराणा प्रस्तुत किया साथ ही न्यौछावर भी दिया। किन्तु बादशाह ने एक शब्द भी नहीं कहा। शिवाजी को तख्त के पास से हटाकर सामान्य सरदारों की कतार में, पंचहजारी मनसबदारों के बीच खड़ा कर दिया गया। सालगिरह के उत्सव के पान जैसे और उमरावों को दिए गए वैसे ही शिवाजी को भी पान मिला। इसके बाद इस जलसे की खिलअतें और सिरोपाव सिर्फ शाहजादों, वजीर जाफरखाँ और महाराजा जसवन्तसिंह को दिये गए। शिवाजी को भी सिरोपाव दिया जाना चाहिए था किन्तु उन्हें सिरोपाव नहीं दिया गया। बादशाह ने शिवाजी का अपमान किया। प्रथमतः तो बात नहीं की, दूसरे उन्हें अनुचित स्थान पर खड़ा किया गया और तीसरे उन्हें सिरोपाव नहीं दिया गया। शिवाजी इन अपमानों को सह नहीं सके। राजा जसवन्तसिंह को शिवाजी के सामने अनेक बार हारना पड़ा था। इस पर भी विशेष रूप से भेंट के लिए आमन्त्रित कर, जसवन्तसिंह की तुलना में मेरा कम मूल्य हुआ, यह बात शिवाजी जैसे स्वाभिमानी व्यक्ति को असहनीय लगी। कवि भूषण ने सिंहगढ़ के प्रसंग में जसवन्तसिंह को शिवाजी के सम्मुख गीदड़ कहा है। "जाहिर है जग में जसवन्त लयौ गढ़सिंघ में गीदर बानौ।"[२] शिवाजी शोकाकुल होकर क्रोधोन्मत्त हो गए। उनकी आँखों में एक विलक्षण चमक आ गई। औरंगजेब की नजर से यह बात छिप नहीं सकी। उसने रामसिंह से कहा कि—"शिवाजी से पूछो कि तबियत कैसी है?" कुमार शिवाजी के पास आए और पूछा। इस समय शिवाजी ने आवेश में आकर कहा—"तुमने देखा है, तुम्हारे बाप ने देखा है, तुम्हारे बादशाह ने देखा है, कहो क्या मैं ऐसा आदमी हूँ कि मुझे जान-बूझकर खड़ा रखा जाय? मैं तुम्हारा मनसब छोड़ता हूँ। यदि खड़ा ही रखना था तो मुझे ठीक स्थान पर खड़ा करते।" तब वहीं से मुड़कर बादशाह की तरफ पीठ कर शिवाजी चल पड़े। रामसिंह ने शिवाजी का हाथ पकड़ा, पर उन्होंने

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १७९

२ वही, छं० सं० २८६

अपना हाथ छुड़ा लिया और एक ओर जाकर बैठ गये। भूषण ने इस समय शिवाजी के क्रोधोन्मत्त व्यक्तित्व का मार्मिक वर्णन किया है—

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिवे के जोग,
ताहि खरो कियो छ-हजारिन के नियरे।
जानि गैरमिसिल गुसीले गुसा धारि मन,
कीन्हों ना सलाम न वचन बोले सियरे।।
भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यौ,
सारी पातसाही के उड़ाय गए जियरे।
तमक तें लाल मुख सिवा को निरखि भए,
स्याहमुख नौरंग सिपाह-मुख पियरे।।[1]

रामसिंह ने शिवाजी को उस समय समझाया पर वे नहीं माने। उन्होंने कहा—"मेरी मौत आई है या तो तुम मुझे मारोगे या आत्मघात कर लूँगा। मेरा सिर काट कर ले जाना चाहो तो तुम ले जाओ। मैं तो बादशाह की सेवा में नहीं आता।" बादशाह को ज्ञात हुआ तो उन्होंने उमरावों से शिवाजी को दिलासा देने और सिरोपाव दे प्रसन्न करने के लिये कहा। शिवाजी ने इन उमरावों को जवाब दिया—'बादशाह ने जान-बूझकर मुझे जसवन्तसिंह के नीचे खड़ा किया है, इसलिए मैं सिरोपाव नहीं पहनूँगा।' अन्त में बादशाह ने कुमार (रामसिंह) से कहा—'अभी इसे अपने साथ ले जाओ और शान्त करो।' रामसिंह पहले उन्हें अपने डेरे पर ले गए और बहुत समझाया पर जब वे नहीं माने तो उन्हें अपने डेरे पर भेज दिया।[2]

सभासद बखर में लिखा है—"औरंगजेब ने शिवाजी से मिलने से पूर्व अपने पास पाँच हथियार रखे, जरी का कुर्ता पहना, साथ ही अपने तख्त के पास दो हजार विश्वसनीय व्यक्ति खड़े किये। मन में यह भाव था कि—'शिवाजी शैतान है, साधारण व्यक्ति नहीं, अफजलखान को भेंट में ही मार दिया। इसी तरह तख्त पर भी दौड़ सकता है।' जसवन्तसिंह को ऊँचे आसन पर देखकर शिवाजी ने रामसिंह से कटार माँगी किन्तु रामसिंह ने नहीं दी।"[3]

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४४३

[2] शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० ७३ से ७५ तक एवं छत्रपति शिवाजी—श्री दि० वि० काले, पृ० १३६, १४० और १४१ देखिए।

[3] सभासद बखर, सं० वि० स० वाकसकर, पृ० ४४

भूषण ने भी इसी प्रकार लिखा है :—

> एंच-हजारिन बीच खरा किया मैं उसका कुछ भेद न पाया ।
> भूषन यौं कहि औरंगजेब उजीरन सों बेहिसाब रिसाया ।।
> कम्मर की न कटारी दई इस नाम ने गोसलखाना बचाया ।
> जोर सिवा करता अनरथ्थ भली भई हथ्थ हथ्यार न आया ।।[१]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शिवाजी एवं औरंगजेब की भेंट का वर्णन इतिहास के विपरीत नहीं है ।

४. २. १. ७. कैद से छुटकारा—बात बिगड़ जाने पर भी शिवाजी आगरे के पहरेदारों से रक्षित सातों चौकियों को लाँघकर घर आ गए । दिन दहाड़े लाखों पहरेदारों के बीच से वे निकल आए । चकत्ता की (औरंगजेब की) नजर बड़ी तेज थी । अमीर उमरावों से कह कर उसने बड़ा कड़ा पहरा लगवाया था । इस पर भी शिवाजी मेवों की काँवर में बैठकर निकल आए और भेष बदल कर अपने स्थान पर किसी तरह पहुँच गए ।[२]

ऐतिहासिक विवेचन : आगरे में शिवाजी कैद कर लिए गए और उनके डेरे के चारों ओर तोपें रखवाई गईं और सरकारी फौज भी बिठा दी गई । चारों ओर से निराश होकर शिवाजी ने अपने भागने का उपाय सोच निकाला । बीमारी का बहाना कर वे पलँग पर लेट गए । बीमारी दूर करने के लिए वे ब्राह्मणों, साधुओं, सज्जनों और सभासदों के यहाँ बड़ी-बड़ी टोकरियाँ भरकर फल और मिठाइयाँ भेजने लगे । हर एक टोकरी को बाँस के डण्डे में लटका कन्धे पर रखकर दो कहार शाम के समय बाहर ले जाते थे । कोतवाली के पहरेदारों ने पहले कुछ दिन तक टोकरियों को जाँच कर देखा उसके बाद बिना देखभाल किये ही टोकरियों को ले जाने देने लगे । १७ अगस्त १६६६ ई० को अवसर देख वे वहाँ से अपने पुत्र सहित टोकरियों के साथ बाहर आ गए । मथुरा पहुँच कर उन्होंने भेष बदल लिया और अनेक तीर्थों की यात्रा करते हुए वे महाराष्ट्र लौट गए ।[३]

---

[१] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १६१**

[२] **वही, छन्द संख्या ७४, १३५, १७६, ४७६ और ५०१**

[३] **शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० ७७, ७८ और ७९ (ऊपर तिथि शिवकालीन शकावली के अनुसार दी गई है । सरकार ने १९ अगस्त १६६६ ई० दी है)**

भूषण का इस सम्बन्ध में कवित्त—

चारि चारि चौकी जहाँ चकता की चहूँ ओर,
साँझ अरु भोर लगि रही जियलेवा की।
काँधे धरि काँवर चल्यौ हौ जब चाव सेंती,
एक लिये जात एक जात चले देवा की॥
भेष को उतारि डरि डंमर निवारि डार्‌यौ,
धरयौ भेष औरै जब चल्यौ साथ मेवा की।
पौन हौ कि पंछी हौ कि गुटका कि गौन हौ,
कि देखौ कौन भाँति गयौ करामात सेवा की॥[1]

तथ्य इतिहास के अनुकूल हैं।

४. २. १. ८ **लोहगढ़ और सिंहगढ़ की विजय** – गौड़ क्षत्रियों और राठौडों ने हिम्मत और हर्ष से जिन लोहगढ़ और सिंहगढ़ किलों को ले लिया था और जिन किलों के कँगूरों पर गोलन्दाज और तीरन्दाज थे, उन्हीं को शिवाजी ने निश्शंक होकर जीत लिया।[2]

रात के समय सिंहगढ़ पर आक्रमण हुआ। युद्ध हुआ जिसमें उदयभान राठौड़ मारा गया। प्रभात के समय विजय के फलस्वरूप किले के ऊँचे छतों से ज्वाला प्रकट हुई। किला शिवाजी के हाथ रहा।[3]

ऐतिहासिक विवेचन : जयसिंह के साथ जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार लोहगढ़ और सिंहगढ़ शिवाजी ने मुगलों को सौंप दिए थे (अन्य किलों के साथ) आगरे से लौटने के बाद शिवाजी ने इन किलों पर फिर आक्रमण किये और इन्हें अपने अधिकार में कर लिया।

सिंहगढ़ किला : इस किले के विजय की कथा प्रसिद्ध है। इसी किले की प्राप्ति के लिए तानाजी मालुसरे ने अपना प्राण दिया था। शिवाजी को और उनकी माता जीजाबाई को यह बहुत बुरा लगा कि मुगलों को २३ किले देने पड़े (पुरन्धर की जयसिंह के साथ की गई सन्धि के अनुसार)। इसीलिए सिंहगढ़ को फिर से प्राप्त करने के लिए तानाजी मालुसरे को भेजा गया। तानाजी तीन सौ मावलों के साथ रस्सी की सीढ़ी बनाकर रात में किले पर चढ़ गए। उदयभान और उसके

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५०१**
[2] **वही, छं० सं० २३६**
[3] **वही, छं० सं० ९२, २६२**

राजपूत सिपाही किले की रक्षा कर रहे थे। दुश्मन को उपस्थित देखकर वे आगे बढ़े। जाड़े की रात थी। राजपूतों के पूर्णतः सावधान होने तक मराठों ने किले के एक भाग पर अधिकार कर लिया। राजपूत जैसे ही सावधान होकर लड़ने आए मराठे 'हर हर महादेव' कहते हुए उन पर टूट पड़े। उदयभान लड़ते-लड़ते मारा गया। तानाजी भी खेत रहा। तानाजी के मरने पर सूर्याजी ने नेतृत्व किया (सूर्याजी तानाजी का भाई था।) किला मराठों का हो गया। वहीं पर विजय सूचक चिह्न के रूप में किले में आग लगा दी गई। उसका प्रकाश छत्रपति शिवाजी ने राजगढ़ से देखा और समझ लिया कि किला अधिकार में आ गया है।[1] यह किला ४ फरवरी १६७० ई० को अधिकार में लिया गया।

लोहगढ़ विजय : सिंहगढ़ लेने के बाद अन्य किलों को भी शिवाजी ने मुगलों से छीन लिए। लोहगढ़ किले पर १३ मई १६७० ई० को शिवाजी ने अधिकार किया। इस किले के विजय की कथा सिंहगढ़ के समान तो नहीं मिलती किन्तु शिवचरित्र प्रदीप में जेधे शकावली के अन्तर्गत लिखा गया है कि—

"पुरणी शके १५९३ संवछरे, जेष्ट सुध ४ सुक्रवारी माला लाऊन लोहोगड घेतला।"[2] इसी के आधार पर शिवकालीन शकावली में इस किले के विजय की तिथि १३ मई १६७० ई० दी गई है।

कवि भूषण ने तिथि तो नहीं दी किन्तु उसने लिखा है कि इस किले पर गौड़ क्षत्रिय थे। साथ ही यह भी लिखा है कि रात के समय इस किले पर मावली सेना चढ़ गई और विजय प्राप्त की। जेधे शकावली में लिखा है कि "माला लाउन घेतला" अर्थात् सिंहगढ़ को जैसे रस्सी की सीढ़ी बनाकर किले पर चढ़ गए थे, उसी प्रकार इस किले पर भी रस्सी की सीढ़ी बनाकर ऊपर चढ़ गए और विजय प्राप्त की। किले में तीरन्दाज और गोलन्दाज थे किन्तु शिवाजी की सेना सावधानी से चढ़ गई और शत्रु को परास्त कर दिया। कवि भूषण की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

गौर गरबीले अरबीलै राठवर गह्यौ,
लोहगढ़ सिंहगढ़ हिम्मत हरष तें।
कोट के किंगूरनि में गुलन्दाज तीरन्दाज,
राखै वै लगाय गोली-तीरन बरषतें॥

---

[1] **शिवचरित्र निबन्धावली, पृ० ३३९ एवं ३४०**

[2] **शिवचरित्र प्रदीप, पृ० २५**

ह्वै कै सावधान किरवान कसि कम्मरनि,
सुभट अमान चहुँ ओरन करषतें।
भूषन भनत तहाँ सरजा सिवा तैं चढ़ि,
राति के सहारे वै अराति-अमरष तें ॥[1]

इस एक कवित्त में दोनों किलों के जीतने का उल्लेख है किन्तु ये दोनों ही किले एक ही समय में नहीं जीते गए। सिंहगढ़ किला ४ फरवरी १६७० ई० को और लोहगढ़ किला १३ मई १६७० ई० को जीता गया। किन्तु दोनों किलों को जीतने की पद्धति एक ही थी। एक किले पर अर्थात् लोहगढ़ पर गौड़ क्षत्रिय थे और दूसरे सिंहगढ़ पर राठौड़ों का अधिकार था। (दोनों मुगलों की ओर से ही नियुक्त थे।) सारी रक्षा के बावजूद, गोलन्दाजों और तीरन्दाजों के होने पर भी मराठे सुभट कम्मर कसकर रात के समय किलों पर चढ़ गए और विजय प्राप्त की।

सिंहगढ़ से सम्बन्धित और उल्लेख मिलते हैं :—

(१) भूषन बोलि उठे सिगरे हुत्यौ पूना में सायस्त खान को थानौ।
जाहिर है जग में जसवन्त लयौ गढ़सिंघ में गीदर बानौ ॥[2]

(२) सासतखाँ दुरजोधन सौं, औ दुसासन सौ जसवन्त निहारचौ।[3]

यह शिवाजी और औरंगजेब की भेंट से पूर्व की घटना है। इस समय शाईस्तखाँ पूना में मुगलों की ओर से नियुक्त था और जसवन्तसिंह भी इस समय दक्षिण में थे। १६६३ ई० के नवम्बर एवं दिसम्बर मास में जसवन्तसिंह ने सिंहगढ़ को घेर लिया था। ६ मास तक किला घिरा हुआ रहा। अन्त में अप्रैल १६६४ ई० में जसवन्तसिंह ने अन्तिम प्रयत्न किया किन्तु गड़करी ने इस समय अपने शौर्य का प्रदर्शन किया और मुगलों को भारी नुकसान उठाना पड़ा। अन्त में जसवन्तसिंह ने अपना घेरा उठा लिया। किला शिवाजी का ही रहा। कवि भूषण की ऊपर की पंक्तियों में यही संकेत है कि सिंहगढ़ के प्रसंग में जसवन्तसिंह ने गीदड़ का बाना अपना लिया था अर्थात् वह भयभीत रहा। निराश होकर उसे घेरा उठाना पड़ा या यों कहें कि उसे शिवाजी के आगे परास्त होना पड़ा।

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० २३६**

[2] **वही, छं० सं० २८६**

[3] **वही, छं० सं० ३४**

कवि का कथन ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक है। साथ ही कुछ नए तथ्यों पर भी प्रकाश पड़ता है, जैसे लोहगढ़ किला गौड़ क्षत्रियों द्वारा सुरक्षित था। मुगलों की ओर से लोहगढ़ किले की रक्षा का भार गौड़ क्षत्रियों को सौंपा गया था।

४. २. १. ९. साल्हेर का युद्ध : साल्हेर के युद्ध में शिवाजी ने खोज-खोजकर मुगल सेनापतियों को मारा। सैयद और पठानों का संहार हुआ। दिलेरखान बलहीन हुआ। बहादुरखान का सारा परिश्रम व्यर्थ गया। अमरसिंह चन्दावत मारा गया। सुजानसिंह जैसे साहसी वीर को प्राण खोने पड़े। मोहकमसिंह, किशोरसिंह और बहलोल पकड़ लिए गये। इस स्थिति का ज्ञान होने से औरंगजेब का रंग उड़ गया।[1]

ऐतिहासिक विवेचन : आगरे से लौटने के बाद शिवाजी ने धीरे-धीरे अपने किले मुगलों से छीनने का प्रयत्न किया। मुगल सरदारों में आपसी झगड़े हो रहे थे। इस अनबन का लाभ शिवाजी उठा रहे थे। इस समय दाउदखान और जसवन्त सिंह में अनबन हो गई। शिवाजी ने तत्काल साल्हेर किले पर अधिकार कर लिया (दिसम्बर १६७० ई०)। दिलेरखान, मुहमद अमीन मुगलों के बड़े बड़े सेनापति थे किन्तु वे युद्ध की भूमिका ही बनाते रह गए। तब से लेकर फरवरी १६७२ ई० तक मराठों और मुगलों में साल्हेर के लिए संघर्ष होता रहा। अन्त में निर्णायक युद्ध फरवरी १६७२ ई० में हुआ। इस युद्ध में मुगलों के बड़े-बड़े सेनापति एक साथ लड़ रहे थे। साल्हेर किले को मुगलों ने घेर लिया था। इस घेरे का नेतृत्व इखलास खान कर रहा था। बीजापुर के सरदार बहलोलखान का एक भाई, जो मुगलों की ओर था, वह बहलोलखान, अमरसिंह चन्दावत, मोहकमसिंह आदि उमराव भी मुगल सेना का नेतृत्व कर रहे थे। मराठों की ओर से प्रतापराव एवं आनन्दराव सेना का संचालन कर रहे थे। घनघोर युद्ध हुआ। अमरसिंह चन्दावत मारा गया, अमरसिंह का पुत्र मोहकमसिंह, इखलासखान और बहलोलखान पकड़ लिए गये। मुगलों के अनेक प्रमुख सेनापति मारे गए या कैद हुए। मराठों की विजय हुई।[2]

साल्हेर के युद्ध का वर्णन कवि ने इतिहास के अनुकूल ही किया है। कुछ अतिरिक्त जानकारी भी दी है। जैसे इस प्रसंग में कवि ने सुजानसिंह का नाम लिया है। पंक्तियाँ निम्न प्रकार हैं :—

(१) भूषन भनत करि कूरम बहानौ, रन-धरनि-**सुजान** प्रान दै बलन सौ।[3]

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ९०, ९४, ९८, १४०, १४५, २०२, २२१, २५४, २६७, ३०९, ३३३, ३३४, ३७२, ४१७**

[2] **छत्रपति शिवाजी, श्री दि० वि० काले, पृ० १६८, १६९ और १७० देखिए तथा शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० ९५ और ९६**

[3] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ९०**

(२) दुहूँ उदैभान बिन, अमर **सुजान** बिन,
मान बिन कीनी साहिवी त्यौ दिल्ली सुर की।[१]

(३) अमर **सुजान**, मुहकम बहलोलखान,
खाँडे डाँड़े छाँड़े उमराउ दिलीसुर के।[२]

तीनों ही स्थानों पर सुजानसिंह के सम्बन्ध में उल्लेख साल्हेर के युद्धवाले प्रसंग के हैं। इतिहास में सुजानसिंह का उल्लेख मिलता है। किन्तु यह उल्लेख साल्हेर के प्रसंग में नहीं मिलता। इस प्रसंग में भूषण ने ही उल्लेख किया है। सभासद बखर में लिखा है कि २२ नामधारी वजीर पकड़े गए और कितने ही मारे गए।[३] इन मारे जाने वालों में सुजानसिंह भी हो सकता है। भूषण के आधार पर यह संभावना की जा सकती है। व्रजरत्नदास द्वारा लिखित मुगल दरबार भाग १ (मआसिरुल उमरा का अनुवाद) में सुजानसिंह का परिचय इस प्रकार मिलता है—"राजा सुजानसिंह बुन्देला राजा पहाड़सिंह बुन्देला के पुत्र थे। मिर्जा राजा जयसिंह के साथ दक्षिण में इनकी नियुक्ति की गई थी। पुरन्धर दुर्ग के घेरे में इन्होंने अच्छा कार्य किया था अतः इन्हें ३००० हजारी का मन्सब का पद प्रदान किया गया। इसके अनन्तर आदिलशाहियों के साथ होनेवाले युद्धों में भी इन्होंने अपनी वीरता प्रदर्शित की अतः इन्हें दिलेरखाँ के साथ चाँदा (जो बरार के पास है) प्रान्त पर अधिकार करने के लिए भेजा गया।[४] इनकी मृत्यु तिथि इम्पी० गजे० जि० १९, पृ० २४४ में सन् १६७२ बतलाई गई है।[५] यदि १६७२ ई० को सत्य मान लिया जाय तो यह अनुमान किया जा सकता है कि इनकी मृत्यु साल्हेर के युद्ध में हुई। साल्हेर का युद्ध इसी सन् में हुआ था। इस युद्ध से कुछ पूर्व तक सुजानसिंह दिलेर खान के साथ में दक्षिण में ही थे और यह भी कहा गया है कि मुगलों के अनेक नामांकित सेनापतियों ने साल्हेर के युद्ध में भाग लिया था अतः भूषण द्वारा सुजान-सिंह का उल्लेख साल्हेर के युद्ध के प्रसंग में—ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक जान पड़ता है।

मिश्रबन्धुओं की भूषण ग्रन्थावली में शिवाबावनी में एक कवित्त में इखलास खान का उल्लेख साल्हेर के प्रसंग से सम्बन्ध रखने वाला है। किन्तु पं० विश्वनाथ

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १४०

२ वही, छं० सं० २२१

३ सभासद बखर, सं० वि० स० वाकसकर, पृ० ७२

४ मुगल दरबार, भाग १, ब्रजरत्नदास, पृ० ४३५ और ४३६

५ वही, पृ० ४३५ पर पाद टिप्पणी देखिए।

प्रसाद मिश्रजी की प्रति में इखलासखान का उल्लेख नहीं मिलता। दोनों में अन्तर निम्न प्रकार है—

मिश्रबन्धु : फौजें सेख सैयद मुगल और पठानन की,
मिलि इखलास काहू मीर न सम्हारे हैं।[1]

मिश्रजी : फौजें सेख सैयद औ मुगल पठानन की,
मिलि अफसर काहू भीर न सम्हारे हैं।[2]

साल्हेर के युद्ध में मुगल सेना का नेतृत्व इखलासखान कर रहा था। अतः मिश्रबन्धुओं की पंक्ति को ठीक भी मान लिया जाय तो वह कथन ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक माना जा सकता है।

किशोर सिंह कोटा राज्य के संस्थापक माधोसिंह के पुत्र थे। दारा और औरंगजेब के बीच १६५६ ई० में जो युद्ध हुआ उसमें माधोसिंह के पाँचों पुत्रों ने भाग लिया, जिनमें चार पुत्र मुकुन्दसिंह, मोहनसिंह, जुझारसिंह और कुणीराम वीरगति को प्राप्त हुए। केवल किशोरसिंह बच गए। मुकुन्दसिंह का पुत्र जगतसिंह की जब मृत्यु हो गई तो इन्हें औरंगजेब ने कोटा की गद्दी पर बिठाया। दक्षिण की सेना के साथ इन्हें भेजा गया था। कहते हैं इनकी मृत्यु अर्काट दुर्ग पर आक्रमण के समय १६९२ ई० में हुई।[3] टाड ने लिखा है कि इनकी मृत्यु सन् १६८६ ई० में दक्षिण में अरकाट गढ़ के दुर्ग पर युद्ध करते हुए हुई।[4] चाहे १६८६ ई० मानें या १६९२ ई० मानें इतना तो निश्चित है कि किशोरसिंह की मृत्यु १६७२ ई० के बाद हुई। यह भी निश्चित है कि वह दक्षिण में मुगल सेना में नियुक्त था। अतः साल्हेर के युद्ध में इखलासखान बहलोलखान के साथ वह भी पकड़ा गया—भूषण का यह कथन ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक है, जैसा अनुमान किया जा सकता है।

इसी प्रसंग में भूषण ने लिखा है—

भूषन भनत करि कूरम बहानौ,
रन-धरनि-सुजान प्रान यै बलन सौं।[5]

---

[1] भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, शिवाबावनी, छं० सं० २५

[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४१६

[3] मुगल दरबार, भाग १, ब्रजरत्नदास, पृ० ३१२ और ३४८

[4] टॉड कृत राजस्थान का इतिहास, पृ० ७८२

[5] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ९०

यहाँ कूरम से तात्पर्य कछवाहा सामंत से है और कछवाहा से तात्पर्य कीरतसिंह से ही हो सकता है। यह मिर्जा राजा जयसिंह के द्वितीय पुत्र थे। और मिर्जा राजा के साथ दक्षिण में मुगलों की ओर से मराठों से लड़ने के लिए दक्षिण में आए थे। मिर्जा राजा की मृत्यु के बाद भी ये दक्षिण में मुगलों की ओर से मराठों के विरुद्ध दिलेरखान के साथ रहते हुए लड़ते रहे।[1] इनकी मृत्यु १६७३ ई० में हुई[2] संभवत: साल्हेर के युद्ध के समय इन्होंने कोई बहाना किया हो अत: भूषण ने संकेत किया कि कछवाहे बहाना बनाकर रह गए। यहाँ कछवाहा का तात्पर्य कीरत-सिंह से ही है।

इस तरह हम देखते हैं कि भूषण ने इस प्रसंग में जिनके नाम लिए हैं, वे प्रामाणिक हैं। इतिहास ग्रन्थों में तो नाम नहीं मिलते किन्तु तत्कालीन मूल प्रामाणिक माने जाने योग्य ग्रन्थों में इनके उल्लेख मिल जाते हैं।

४. २. १. १०. **पन्हाले की विजय**—पन्हाला किला आदिलशाही राजा का था। शिवाजी ने इस किले पर अधिकार कर लिया। भूषण ने इस किले के सम्बन्ध में जो लिखा है, वह एक समय की घटना नहीं है। अत: कालक्रम के अनुसार विवेचन नीचे किया जा रहा है।

भूषण का एक सवैया इस प्रकार है :—

> लै परनालो सिवा सरजा करनाटक लौं कुल देस बिगूँचे।
> बैरिन के भजि बालक-वृन्द कहै कवि भूषण दूर पहूँचे॥
> नाँघत नाँघत घोर घने बन हारि परे यौं कटे जनु कूँचे।
> राजकुमार कहाँ सुकुमार कहाँ बिकरार पहार वे ऊँचे॥[3]

यहाँ कहा गया है कि पन्हाला किला लेने के बाद शिवाजी ने करनाटक तक के सब देशों को मथ डाला। श्री दि० वि० काले ने लिखा है कि छत्रपति शिवाजी ने १६५६ ई० के उत्तरार्द्ध में प्रथम बार, १६५८ ई० में दूसरी बार और १६५९ ई० में तीसरी बार कर्नाटक के देशों पर आक्रमण किया था। किन्तु उन्होंने यह भी लिखा है कि इनमें से किसी भी आक्रमण का विवरण नहीं मिलता, अनुमान यह किया जाता है कि मराठों की प्रथानुसार दशहरे के समय (आश्विन शुक्ल १०) ही ये आक्रमण किये जाते रहे होंगे। मुहमद आदिलशाह की मृत्यु १६५६ ई० में हुई।

---

[1] शिवचरित्रवृत्त संग्रह (खण्ड ३रा : फारसी विभाग), ग० ह० खरे, आलमगीर-नामा, पृ० ५८

[2] मुगल दरबार, भाग १, ब्रजरत्नदास, पृ० १०४

[3] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १८९

इसके बाद इसका पुत्र अलीआदिलशाह बादशाह हुआ। इसका १६५७ ई० का एक फरमान मिलता है, जिसके अनुसार उसने शिवाजी द्वारा करनाटक को त्रस्त आतंकित अनुभव कर इखलासखान को उस प्रदेश की रक्षा करने के लिए सूबेदार नियुक्त किया।[1] इस फरमान के आधार पर इतना निश्चित कहा जा सकता है कि १६५७ ई० से पूर्व शिवाजी ने १६५६ ई० में प्रथम बार, करनाटक के देशों पर आक्रमण किया था। पन्हाला किला शिवाजी ने प्रथमत: नवम्बर १६५९ ई० में लिया जैसा यदुनाथ सरकार ने लिखा है। अत: भूषण के कथनानुसार 'पन्हाला किले को लेने के बाद करनाटक तक के देशों को शिवाजी ने मथ डाला' वाली घटना नवम्बर १६५९ ई० के बाद की है। पन्हाला लेने के बाद ही शिवाजी ने दिसम्बर १६५९ ई० में रुस्तमजमा और फजलखान को कोल्हापुर के निकट परास्त किया। तत्पश्चात् जनवरी १६६० ई० में बीजापुर के प्रदेश पर आक्रमण किया और कृष्णा नदी के किनारे गदग लक्ष्मेश्वर तक पहुँचकर कर वसूल किया। इसी समय नेता जी ने रायबाग, अडगल तक का प्रदेश जीत लिया। फरवरी १६६० ई० में दाभौल बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया। २ मार्च १६६० ई० को शिवाजी फिर लौटकर पन्हाला आये।[2] अत: कवि द्वारा करनाटक तक के देश बिगूचने की बात कही गई है, वह नवम्बर २८ के बाद से (नवम्बर २८ को प्रथमत: पन्हाले पर अधिकार प्राप्त किया गया था) लेकर २ मार्च १६६० ई० तक की है। भूषण का यह कथन ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक है। दि० वि० काले ने भी लिखा है कि १६५९ ई० में तीसरी बार करनाटक पर छत्रपति ने आक्रमण किया था।[3] यद्यपि इस आक्रमण का पूर्ण विवरण नहीं मिलता किन्तु करनाटक तक के प्रदेशों को लूटने के उल्लेख मिलते हैं। कृष्णा नदी के किनारे तक एवं दाभोल तक पहुँचने के उल्लेख मिलते हैं।

शिवभारत में पन्हाला किला लेने के बाद शिवाजी ने नेताजी को भेज कर आदिलशाह के जिन प्रदेशों पर अधिकार प्राप्त किया गया उसका उल्लेख किया गया है। वह निम्न प्रकार है :—

कपित्थं बदरग्रामं मल्लग्रामं च कुण्डलम्।
गोहग्रामं सतीकीरमेडं च मिरजं तथा ।।४।।
गोकाकं दुग्धवाटं च पुरं मुरवटं पुनः।
धारावटं महादुर्गं क्षुद्रवंद्यपुरं तथा ।।५।।

---

[1] छत्रपति शिवाजी, श्री दि० वि० काले, पृ० ५६ एवं ५७
[2] शिवकालीन शकावली, शंकर नारायण जोशी, पृ० २१
[3] छत्रपति शिवाजी, श्री दि० वि० काले, पृ० ५६

श्यामग्रामं मायिलं च पारग्रामं च संगलम् ।
काणदं कर्दमवटं कागलं, ह्वीबलं तथा ।।६।।
हनुवल्लीं हूणवटं रायबाकं हुकेरिकाम् ।
कांडग्रामं हरिद्रा च घुणिकां किणिकामपि ।।७।।
अरगं तिलसंगं च केरूरं चांबुपं पुनः ।
कमलापुरसंयुक्तामतनीं च त्रिकूटम् ।।८।।
एतान्यन्यानि च महापत्तनानि पुराणि च ।
निगृह्य निग्रहाभिज्ञो निन्ये नेता स्वनिघ्नदाम् ।।९।।[1]

अर्थात् कवठगांव, बोरगाँव, मालगांव, कुण्डल, घोगांव, सत्तीकीर, एड (आड) मिरज, गोकाक, दोदवाड, मुरवाड, धारवाड़ का महान् दुर्ग, क्षुद्रवंद्यपुर, श्यामग्राम (सागाँव) मायिल, पारगाव, सांगली, काणद, कुरुन्दवाड, कागल, हेवाल, हनुवल्ली, हूणवाद, रायबाग, हूकेरी, कांडगांव, हलदी, श्रुणिका किणी, अरग, तेलसंग, केरूर, अंबुप, कमलापुर, अथनी, तिकोटे एवं और कितने ही बड़े-बड़े नगरों को जीत लिया (नेताजी ने)।

यहाँ जिन प्रदेशों के या स्थानों के नाम दिए गए हैं, वे करनाटक के हैं और साथ ही ये बात भी ठीक है कि इन स्थानों पर नेताजी शिवाजी की आज्ञा से पन्हाला किला लेने के बाद गए। इसी से त्रस्त होकर आदिलशाही बादशाह ने करनूल से सिद्दी जोहर को बुलवाया और शिवाजी को पकड़ने के लिये भेजा। शिवभारत में लिखा है—

इति ध्वस्ते जनपदे त्रस्ते सैन्येऽपि भूयसि ।
पराधीनत्वमाप्तेषु प्रणालाद्रिषु चाद्रिषु ।।१०।।
चिरयत्सु च ताम्रेषु द्रुतमाकारितेष्वपि ।
विदूयमानोऽनुदिनं पतन्नत्याहितांबुधौ ।।११।।
अल्ली कर्णपुराधीशं जोहरं नाम बर्बरम् ।
आहूय प्राहिणत्तूर्णं निग्रहीतुं शिवं नृपम् ।।१२।।[2]

अर्थात् इस तरह सारा प्रदेश उध्वस्त हो गया, बहुत सी सेना नष्ट हो गई या त्रस्त हो गई। पन्हाला किला शत्रु के अधिकार में चला गया, इसी समय मुगलों को तुरत सहायतार्थ बुलाया था किन्तु उनके आने में विलम्ब हो गया। अली आदिलशाह संकट सागर में थे। अन्त में करनूल से सिद्दी जोहर को बुलवाया और शिवाजी को जेर करने के लिए भेजा।

---

१. **शिवभारत, परमानन्द कवि, अध्याय २५, छं० सं० ४ से ९ तक, पृ० २४८**
२ **वही, छं० सं० १०, ११ और १२, पृ० २४९**

यह प्रसंग इतने विस्तार से इसलिए लिखा गया कि इसी प्रसंग के आधार पर पं० भगीरथ दीक्षित ने यह लिख दिया कि करनाटक पर शिवाजी का आक्रमण शिवभूषण की रचना के बाद हुआ। उनके तर्कों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना है किन्तु जो बात सत्य है वह यह कि पन्हाला किला शिवाजी ने १६५९ ई० में प्रथमतः अधिकार में लिया और इसके बाद तुरत ही आदिलशाही करनाटक प्रदेश को जीता।

पन्हाला किला बाद में सितम्बर २२, १६६० ई० को आदिलशाही बादशाह से सन्धि हो जाने के नाते सलाबतखान को सौंप दिया गया।[1] इस किले पर दूसरी बार शिवाजी ने फिर विजय प्राप्त की। इसका विवरण भूषण कवि ने विस्तार से दिया है। जयरामपिण्डये ने पर्णालपर्वग्रहणाख्यान में इसी दूसरी विजय की कथा लिखी है। भूषण का विवरण निम्न प्रकार है—

शिवाजी ने मावली सेना के साथ परनाले (पन्हाला) किले पर आक्रमण किया। आदिलशाह का तत्कालीन मन्त्री खवासखान कुछ नहीं कर सका। मावली सेना अमावस की अन्धेरी रात में एक दूसरे का हाथ पकड़ कर किले पर चढ़ गई। घमासान युद्ध हुआ। अन्त में किला शिवाजी के हाथ आ गया। बीजापुर में इसकी प्रतिक्रिया हुई। राजसभा में खलवली मच गई। यह सारी हानि नए मन्त्री खवासखाँ की बेखबरी से हुई है, यह कह कर सभी उन्हें दोष देने लगे। ऐसे समय में फिर से किला प्राप्त करने के लिए बहलोलखाँ को भारी सेना देकर शिवाजी का दमन करने के लिए भेजा गया। बहलोल के दल से शिवाजी का सामना हुआ। शिवाजी द्वारा वह परास्त ही नहीं हुआ बल्कि पकड़ कर दण्डित भी किया गया।[2]

ऐतिहासिक विवेचन : सन् १६७३ ई० की छठी मार्च की रात को कोण्डाजी फर्जंद साठ चुने हुए मावली सिपाही लेकर चुपचाप पन्हाला किले के ऊपर चढ़ गए। उनके सिपाहियों ने हाथ पकड़-पकड़ कर एक दूसरे को उस करारे पहाड़ के ऊपर खींच लिया। चोटी पर पहुँच कर वे चार दलों में विभक्त हो गए और चारों ओर से ढोल पीट कर किले के बीच से होकर दौड़े। कृष्णपक्ष की गहरी अँधेरी रात के गहरे सन्नाटे में, बाहर की समतल भूमि से नहीं बल्कि किले के भीतर ठीक बीच से यह आकस्मिक आक्रमण देखकर किले के रखवालों के होशहवास गायब हो गये…. ….किला मराठों के हाथ रहा। विजय की खबर पाते ही शिवाजी स्वयं किला देखने आए। वहाँ एक महीना ठहर कर उसकी दीवारें मजबूत कीं तथा और भी तोपें मँगवाकर पन्हाले को अपना अजेय आश्रय स्थान बना लिया। इतने किले हाथ से

---

[1] **शिवकालीन शकावली, शंकरनारायण जोशी, पृ० २१**

[2] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द संख्या ९८, १४५, १६१, ३३५, ३३६, ३७५, ३८४, ३९६, ४३९ और ५०३**

निकल जाने के कारण बीजापुर की राजसभा में बड़ी खलबली मची। नये वजीर खवासखाँ की बेखबरी से यह सब हानि हुई है, यह कहकर सब उन्हीं को दोष देने लगे। बहलोलखाँ को पन्हाला के उद्धार के लिए भेजा गया। साथ ही और तीन बड़े-बड़े सेनापतियों को दूर-दूर के प्रदेशों से अपनी फ़ौज के साथ आकर बहलोल को सहायता करने का हुक्म भेजा गया। किन्तु सहायता भेजने से पूर्व शिवाजी बहलोल पर जा टूटे। शिवाजी के प्रधान सेनापति प्रतापराव पन्द्रह हजार घुड़सवारों के साथ चुपचाप दो रात बड़ी तेजी से चलकर उमराणी नामक गाँव में पहुँच बहलोल के दल को चारों ओर से घेर लिया। यहाँ तक कि उसके पानी लाने वाले एक मात्र रास्ते को भी बन्द कर दिया। दूसरे दिन घमासान लड़ाई हुई जिसमें बहलोल का दल परास्त हुआ। बीजापुरियों को प्यास बुझाने के लिए पानी तक नहीं मिला। अन्त में बहलोल ने चुपचाप प्रतापराव को बहुत सा रुपया घूँस देकर भागने के लिए रास्ता माँगा। किसी तरह बहलोल को छुटकारा मिला।[1]

भूषण की तुलना इस प्रसंग में "पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान" से की जा सकती है। भूषण का एक कवित्त इस प्रकार है—

देखत उचाई उदरत पाग, सूधी राह,
द्यौसहू में चढ़ै ते जे साहस-निकेत है।
सिवाजी हुकुम तेरो पाय पैदलनि,
सलहेरि परनालो से ते जीते जनु खेत हैं।
सावन भादौ की भारी कुहू की अँध्यारी चढ़ि,
दुग्ग पर जात मावला-बल अचेत है।
भूषन भनत सिवराज छत्रधारी तहाँ,
तेरे परताप की उज्यारी गढ़ लेत है।[2]

इन पंक्तियों की तुलना निम्नलिखित पंक्तियों से की जा सकती है—

सूचीभेद्यं तमस्तावन्मुष्टिग्राह्यतया स्थितम्।
एक एव हि लोकेऽस्मिन्नद्वितीयतया पुनः ॥२८॥
+ + +
प्राप्तः प्रपातनिकटं संकटेन महीयसा।
ऊर्ध्वमालोकयामासुः लोकालोकमिवोच्छ्रितम् ॥३०॥

---

[1] शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० ९९, १००

[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ९८

अभवन्हतगर्वास्ते सर्वत्राच्छायदर्शनात् ।
ततस्तैः साधनैर्युक्ताः कृतव्यत्यासनामकाः ॥३१॥
हस्ताहस्तिकदानादि दत्वाऽध्यारुहुस्तदा ।
मौनेनाधित्यकायामध्यध्यारूढा दृढ़ायुधाः ॥३२॥[1]

अर्थात् उस समय इतना घना अन्धकार व्याप्त था कि वह मुष्टिग्राह्य स्थिति को व्यक्त कर रहा था। सब की बुद्धि कुछ ऐसी हो गई कि वे अपने को एकमात्र अद्वितीय समझने लगे.......स्वामी का कार्य करने के हेतु से वे बड़े प्रयत्न से पन्हाला किले के ठीक नीचे पहुँच गए। लोकालोक पर्वत की तरह उस ऊँचे पर्वत की ओर देखा। उस ऊँचाई को देखकर उनका गर्व खण्डित हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने चढ़ने के लिए साधनों और नामों का व्यतास किया और एक-एक का हाथ पकड़ कर चुपचाप ऊपर चढ़ गए।

इसी तरह भूषण की निम्नलिखित पंक्तियों की भी तुलना की जा सकती है :

लोगन सों भनि भूषन यौं कहै खानखवास कहा सिख दैहौ।
आवत देसन लेत सिवा सरजै मिलिहौ भिरिहौ कि भगैहौ॥
एदिल की सभा बोल उठी यों सलाह करौ ब कहाँ भजि जैहौ।
लीन्हो कहा लरिकै अफजल्ल कहा लरिकै तुमहू अब लैहौ॥[2]

इसी सन्दर्भ में पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान की पंक्तियाँ निम्न प्रकार हैं—

ततस्ते बहलोलाख्यप्रमुखा मुख्यमन्त्रिणः ।
खवासख्यं ह विख्याताः प्रोचुराक्षेपपूर्वकम् ॥१॥
तत्रैवाविनयेनैतदत्याहितमुपस्थितम् ।
यतः सख्यस्य भंगेऽसौ शिवराजो व्यवस्थितः ॥२॥
त्वयैतत् सर्वमाक्रान्ते महता बुद्धिशालिना ।
तस्मात्सर्वमिदं राष्ट्रं दृश्यते मज्जनोन्मुखम् ॥३॥[3]

इसी तरह भूषण की अन्य पंक्तियों से भी तुलना की जा सकती है। तात्पर्य तत्कालीन मूल ग्रन्थों की कथा से भूषण का कथन साम्य रखता है और इसीलिए ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक है।

---

[1] **पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान, जयरामपिण्ड्येकृत, (सं० स० म० दिवेकर), अध्याय ३ रा, पृ० २०**

[2] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३८४**

[3] **पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान, जयराम पिण्ड्येकृत, (सं० स० म० दिवेकर), अध्याय ५वाँ, पृ० ३६**

४. २. १. ११. अन्य स्फुट उल्लेख—इन कुछ प्रमुख घटनाओं के साथ अन्य कुछ स्फुट उल्लेख मात्र मिलते हैं। कवि का मुख्य उद्देश्य अपने नायक के कर्म सौन्दर्य की व्याख्या करना रहा है। वह नायक की कीर्ति का गुणगान करना और उनके यश को फैलाना चाहता है। इसलिए जिन-जिन सेनापतियों को शिवाजी ने परास्त किया, लूट लिया या बन्दी बना लिया उनके नाम लेकर कवि चुप हो गया है। किस स्थान पर और किस सन्दर्भ में ये घटनाएँ घटी हैं, इनके विस्तार में जाने की कवि ने आवश्यकता नहीं समझी। कवि इतना ही कह देता है—"शिवाजी ने कारतलबखाँ को लूट लिया, बहलोल को परास्त किया आदि। इसी तरह के अन्य स्फुट उल्लेख हैं। चन्द्रराव मोरे को मारकर शिवाजी ने जावली पर अधिकार कर लिया। इसी तरह कुछ किलों का नाम लेते हुए कवि कह देता है कि शिवाजी इन किलों को जीतने वाला है या ये किले उन्होंने जीत लिए। कैसे और किस प्रकार, इसका विवरण कवि ने नहीं दिया है। इस प्रकार के उल्लेखों की ऐतिहासिक विवेचना नीचे की जा रही है।

१. बीजापुर के वजीर फतेखान को शिवाजी ने खदेड़ दिया।

अफजलखान, रुस्तमैं-जमान, **फत्तेखान,**
कूटे, लूटे, हूटे, जे उजीर बीजापुर के।[1]

ऐतिहासिक विवेचन : इतिहास ग्रन्थों में फतेखान का उल्लेख नहीं मिलता किन्तु तत्कालीन लिखे गए ग्रन्थ शिवभारत में फतेखान का उल्लेख मिलता है। यह बीजापुर का वजीर था। १६४८ ई० में शहाजी के कैद हो जाने के बाद पुरन्धर में शिवाजी ने फतेखान को खदेड़ दिया था।[2] इस प्रसंग की शिवभारत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

पुरन्दरात् परावर्तमानां त्राणार्थिनीं चमूम्।
नालोकत फतेखानो ग्लानोऽनभिमुखी भवन् ॥१०५॥
अभिमुखमुपायातं तत्र प्रभूतबलं बला—
द्युधि किल फतेखानं भंक्त्वा स शाहनृपात्मजः
अविहतगतिर्दैवोद्रेकादुदित्वरविक्रमो ।
विजयपुर भूशकं जेतुं बताभिमुखोऽभवत् ॥१०६॥[3]

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २२१
[2] शिवकालीन शकावली, शंकरनारायण जोशी, पृ० ७४
[3] शिवभारत (परमानन्द कविकृत), सं० स० म० दिवेकर, अध्याय १४, पृ० १४५

अर्थात्—पुरन्दर से रक्षणार्थ फिर से लौटने वाली उस सेना की ओर खिन्न फतेखान ने मुड़कर भी नहीं देखा। यहाँ पर बहुत सी सेना के साथ सामने आकर आक्रमण करने वाले फतेखान को शाहजी के पुत्र शिवाजी ने अपने बल से हरा दिया। दैवगति शिवाजी के पक्ष में थी। अपने बढ़ते हुए पराक्रम से वे बीजापुर के सुलतान को जीतने के लिए उद्यत हो गए।

और आगे—

भृशं युद्धवावाप्तः शिवधरणिपालादभिभवं।
फनेखानो म्लानो विजयपुरमभ्यर्णमकरोत्॥
तमाकर्ण्योदन्तं सदसि महमूदेन सहसा।
ममज्जे चिन्ताब्धौ सुचिरमनुतप्तेन मनसा॥१०७॥[1]

अर्थात्—जोरदार युद्ध करने के पश्चात् और शिवाजी से पराजित होकर म्लान मन से फतेखान ने बीजापुर किसी प्रकार पहुँचने में अपनी कुशल समझी। जैसे ही वह समाचार दरबार में एकाएक महमूदशाह ने सुना तो उसका मन बड़ा दुखी हुआ और वह बहुत दिनों तक चिन्ता के सागर में डूबा रहा।

इसके बाद जनवरी १६५६ ई० में और एक बार बीजापुर के बादशाह ने फतेखान को शिवाजी के विरुद्ध लड़ने के लिए भेजा था। उस समय खलदबेलसर स्थान पर ३००० मावलों की शिवाजी की सेना ने उसे परास्त किया था।[2]

सार बात यह है कि भूषण ने लिखा कि बीजापुरी वजीर को शिवाजी ने खदेड़ दिया था, यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य जान पड़ती है। इस फतेखान की मृत्यु दिसम्बर १६५८ ई० में हुई।[3]

२. शिवाजी ने चन्द्रराव मोरे को नष्ट कर जावली पर अधिकार कर लिया। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

\+ \+ \+

चन्दराव चूर करि जावली जपत कीन्ही,
घेर्‌यौ है सिंगारपुर-भूपन कौं जायकै॥[4]

---

[1] शिवभारत (परमानन्द कवि कृत) सं० स० म० दिवेकर, अध्याय १४, पृ० १४५

[2] शिवकालीन शकावली, शंकरनारायण जोशी, पृ० १६

[3] वही, पृ० १६

[4] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४३६, इसके साथ-साथ छं० सं० १८८ भी देखिये।

ऐतिहासिक विवेचन : सतारा जिले के उत्तर पश्चिम कोने में सुप्रसिद्ध महाबलेश्वर पहाड़ से पाँच-छः मील पश्चिम की ओर जावली नामक एक ग्राम है। चन्द्रराव मोरे इस किले का शासक था। इस किले पर विजय प्राप्त करने में रघुनाथ ने शिवाजी की सहायता की। उसने धोखे से चन्द्रराव मोरे तथा उसके भाई सूर्याजीराव दोनों को बातचीत करते समय मार दिया और भाग गये। शिवाजी नजदीक ही छिपे थे। उन्होंने जावली पर धावा किया। जावली के नेताहीन सिपाही छः घण्टे तक बहादुरी से लड़ते रहे परन्तु अन्त में उन्होंने (१५ जनवरी १६५६ ई०) किला खाली कर दिया। इस तरह यह महत्त्वपूर्ण किला शिवाजी के हाथ आ गया।[1]

तथ्य इतिहास के अनुकूल हैं।

३. अहमदनगर के स्थान पर नौशेरीखाँ की फौज से शिवाजी की लड़ाई हुई, जिसमें खानदौरा नौशेरीखाँ पराजित हुआ।

पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

लूट्यौ खाँनदौरा जोरावर आसफजंग,
रु लूट्यौ कारतलबखाँ मानहु अमाल है ।[2]

\+ \+ \+

अहमदनगर के थान किरवान लैकैं,
नवसेरीखान सों खुमान भिर्‌यौ बल तें।
प्यादन सौं प्यादे पखरैतन पखरैत जुरे,
बकतरवारे बकतरवारे हलतें ॥
भूषन भनत एते मान घमसान भयौ,
जान्यौ न परत कौन आयौ कौन दल तें।
समवेष ताके तहाँ सरजा सिवा के बाँके,
बीर जाने हाँके देत मीर जाने चल तें ॥[3]

ऐतिहासिक विवेचन : छत्रपति शिवाजी और औरंगजेब की सन्धि वार्ता चल रही थी। इस समय उत्तर में शाहजहाँ बादशाह था और औरंगजेब दक्षिण में था। औरंगजेब बीजापुर के प्रदेशों पर अधिकार कर रहा था। ऐसी स्थिति में उसका ध्यान कोंकण की ओर नहीं जा सकता था किन्तु कोंकण वाला भाग शिवाजी की

---

१ **शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० २४ और २५**

२ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ६४**

३ **वही, छं० सं० २८४**

दृष्टि में बड़ा महत्त्वपूर्ण था। इसलिए इस प्रदेश के प्रति शिवाजी औरंगजेब से इसी समय बातचीत कर लेना चाहते थे। इसी आशय से उन्होंने विश्वनाथ डबीर को औरंगजेब के पास बीदर भेजा था। किन्तु औरंगजेब ने इस समय कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया। उलटे प्रसंग को टालकर स्वयं शिवाजी को मिलने के लिए आमन्त्रित किया। यह बात २३ अप्रैल १६५७ ई० की है। औरंगजेब की इस टालमटोल-नीति से, शिवाजी ने, औरंगजेब को पाठ पढ़ाने की दृष्टि से ३० अप्रैल, १६५७ ई० को जुन्नर शहर लूट लिया। इस समय उन्हें दो सौ घोड़े, ३ लाख होन का सामान, इसके अतिरिक्त कपड़ा-लत्ता और जड-जवाहर भी लूट में मिला। ४ जून १६५७ ई० को उन्होंने अहमदनगर लूटा। इस समय नौशेरीखाँ से उनका सामना हुआ। इस युद्ध में उन्होंने नौशेरीखान को परास्त किया और लूट की बहुत सी सामग्री लेकर चले आए। इस अपमान से औरंगजेब बहुत संतप्त हो गया। किन्तु उसे इस समय दिल्ली की ओर जाना था। अतः शिवाजी की इन वारदातों को भूलकर उसने १४ फरवरी १६५८ ई० को शिवाजी से सन्धि कर ली।[1]

कवि का कथन ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक है।

४. रुस्तमेजमाखाँ को शिवाजी ने लूट लिया। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

अफजलखान, रुस्तमै जमान फत्तेखान,
कूटे, लूटे, हूटे जे उजीर बीजापुर के।[2]

\+ \+ \+

"देखत में रुस्तम को छिन में खराब कियो।"[3]

ऐतिहासिक विवेचन : अफजलखान-वध के बाद तुरत ही शिवाजी ने पन्हाला किला बीजापुरियों से छीन लिया था। अतः बीजापुर के बादशाह को शिवाजी पर नियन्त्रण स्थापित करने के लिए एवं अपने प्रदेश पर पुनः अधिकार स्थापित करने के लिए किसी सेनानायक को भेजना आवश्यक हो गया। इस समय रुस्तमेजमाखाँ राजापुर एवं कारवार का सूबेदार था। (यह रणदुल्लाखान का लड़का था।) इसी के नेतृत्व में और अनेक सेनानायकों के साथ एक दल शिवाजी से लड़ने के लिए भेजा गया। इस समय रुस्तमेजमाखाँ के साथ-साथ अफजलखान का लड़का फजलखान भी था। कोल्हापुर के निकट २८ दिसम्बर १६५९ ई० को इस दल का सामना मराठों से हुआ। रुस्तमेजमाखाँ और फजलखान दोनों ही सेनापति

---

[1] **छत्रपति शिवाजी, श्री दि० वि० काले, पृ० ६० एवं ६१**

[2] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २२१**

[3] **वही, छं० सं० ४३६**

को अपने प्राण बचाकर भागना पड़ा। पन्हाला किला, वे लोग शिवाजी से छीन नहीं सके।[1]

तथ्य इतिहास के अनुकूल हैं।

५. शिवाजी ने कारतलबखाँ को लूट लिया।

लूट्यौ कारतलबखाँ मानहु अमाल है ॥[2]

ऐतिहासिक विवेचन : यह उस समय की घटना है, जब शाईस्तखाँ दक्षिण में था। उसने उत्तर कोंकण जीतने के लिए मराठों के विरुद्ध सेना भेजी। इस सेना का नायक चार हजारी मनसबदार कारतलबखाँ उजबत था। उम्बरखिण्डी नामक स्थान पर एक मार्ग हीन पहाड़ी के पास वह मराठों से घेर लिया गया। शिवाजी ने उसका रास्ता रोक दिया। खाँ ने समर्पण कर दिया। उसने प्राणों की भिक्षा माँगी। यह घटना ३ फरवरी १६६१ ई० की है। मराठों को इस लूट में काफी सामग्री मिली।[3]

शिवभारत में यह प्रसंग विस्तारपूर्वक लिखा हुआ मिलता है। कारतलबखाँ ने दूत द्वारा शिवाजी के पास सन्देशा भेजा वह इस प्रकार है—

तद् वितीर्य स्वसर्वस्वमात्मनमनवस्वकरम् ।
चिकीर्षामि महाबाहो जीवन् जिगमिषामि च ॥३६॥
अनुमन्यस्व मां तस्मात् त्वमस्मिन् विषये नृप ।
प्रपन्नपालनमरो भवानिव भवानिह ॥३७॥[4]

अर्थात्—हे महाबाहो मैं अपना सर्वस्व आपको समर्पित कर अपने अपराधों का क्षालन कर जीवित लौट जाना चाहता हूँ। हे राजा, इस प्रदेश से बाहर जाने की मुझे आज्ञा मिले। इस जगत में शरणागत का रक्षण करने वाले आपके समान आप ही हैं।

अथ लब्धाभयास्ताम्रसैनिकाः सभया इव ।
द्रुतं विनिर्ययुस्तस्मात् वनात् परकृतावनात् ॥५२॥[5]

---

१ छत्रपति शिवाजी, श्री दि० वि० काले, पृ० ८१ एवं ८२
२ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ९४
३ शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० ४४
४ शिवभारत, (परमानन्द कविकृत), सं० स० म० दिवेकर, अध्याय २९वाँ, पृ० २९५
५ वही, अध्याय २९ वाँ, पृ० २९८

अर्थात्—अनन्तर अभय प्राप्त कर वे मुगल सैनिक शत्रु के उस वन से भयभीत होकर द्रुतगति से भाग गए।

तथ्य इतिहास के अनुकूल है।

६. खवासखाँ कुडाल नामक स्थान पर चढ़ आया। शिवाजी ने उसका सामना किया, जिसमें वह परास्त हुआ।

उमड़ि कुडाल मैं खवासखान आए, ह्याँ ते,
सिवराज धाए जे भूषन पूरे मन के।
सुनि मरदाने बाजे हय हिहनाने घोर,
मूँछै तरराने मुख बीर धीर जन के।
ऐकै कहैं मारु मारु सम्हारु सम्हारु ऐकै,
म्लेच्छ गिरे मार बीच बेसुमार तन के।
कुंडन के ऊपर कराके उठैं ठौर ठौर,
जिरह के ऊपर खराके खरगन के।[1]

ऐतिहासिक विवेचन : कुडाल के देसाई लखम सावन्त ने पहले तो शिवाजी की अधीनता स्वीकार कर कुडाल शिवाजी को दे दिया था। किन्तु बाद में उसने शिवाजी का विरोध किया। वह बीजापुरियों से मिल गया। बीजापुर से उसकी सहायतार्थ खवासखाँ आया। अक्तूबर १६६४ ई० में शिवाजी के साथ उसका युद्ध हुआ। इस युद्ध में बीजापुरियों की हार निश्चित सी हो गई थी किन्तु खवासखाँ के साहसपूर्ण हमले के कारण बाजी पलट गई और मराठों को युद्ध क्षेत्र छोड़कर निकल जाना पड़ा। अब लखम सावन्त ने कुडाला पर अधिकार कर लिया और उसने खवासखाँ को भी वहीं बुला लिया। परन्तु शिवाजी यों हार मानने वाले नहीं थे, वे उपयुक्त अवसर की ताक में थे। उन्हें मुधोल के बाजी घोरपड़े से भी अपने पिता का पुराना वैर लेना था। अपने बीजापुरी सेनानायक की आज्ञानुसार बाजी घोरपड़े ने सन् १६४८ ई० में शाहजी को (शिवाजी के पिताजी को) कैद किया था। इस समय बाजी घोरपड़े खवासखाँ की मदद के लिए डेढ़ हजार सवारों के साथ कुडाला जा रहा था। एक बहुत बड़ी सेना के साथ शिवाजी ने कोंकण के घाटों के नीचे ही उसे जा घेरा। बूढ़ा बाजी घोरपड़े लड़ते हुए काम आया। अब शिवाजी पुनः कुडाला की ओर लौटे। शिवाजी की उस बड़ी सेना का सामना करना कठिन देखकर, लखम सावन्त की सलाहानुसार खवासखाँ कुडाल छोड़कर बाँदा की ओर लौट पड़ा। इसकी सूचना मिलते ही अपने चुने हुए सवारों को साथ लेकर नेताजी को खवासखाँ का पीछा करने के लिए भेजा (२६ अक्तूबर, १६६४ ई०)।

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३०६

अब तो खवासखाँ अपने सैनिकों के साथ बालाघाट चन्द्रगढ़ की ओर बड़ी तेजी से भागा।[1]

तथ्य इतिहास के अनुकूल हैं।

७. शिवाजी ने पैंतीस किलों पर बड़े प्रयत्नों से विजय प्राप्त की थी। जयसिंह के साथ सन्धि के समय उन्होंने ये किले जयसिंह को दे दिये।

तैं जयसिंहहिं गढ़ दिये सिव सरजा जस हेत।
लीन्हे कैयो बार में बार न लागी देत॥[2]

+ + +

भ्वैंसिला भुवाल साहितनै गढ़पाल,
दिन दोऊ न लगाए गढ़ लेत पँचतीस को।
सरजा सवाई सिवराज तैं सुहाई,
लीबे सौगुनी बड़ाई गढ़ दीने है दिलीस कौ?[3]

ऐतिहासिक विवेचन : जयसिंह के साथ शिवाजी की सन्धि हुई थी। यह पुरन्धर की सन्धि भी कहलाती है। यह सन्धि जून १६६५ ई० में हुई थी। इसके अनुसार शिवाजी को २३ किले और उसके आसपास का सारा भाग (जिसकी वार्षिक आय चार लाख होन अर्थात् २० लाख रुपये थी) बादशाह को देने पड़ेंगे। राजगढ़ सहित १२ किले शिवाजी के रहेंगे। शिवाजी बादशाह के अधीन रहकर काम करेंगे।[4]

कवि ने यह तो ठीक लिखा कि शिवाजी के पास ३५ किले थे किन्तु २३ किले सन्धि के अनुसार जयसिंह को दिये गये यह बात ठीक नहीं लिखी। कवि ने केवल इतना ही कह दिया कि अपना यश बढ़ाने के लिए शिवाजी ने जयसिंह को किले दे दिये। इसका सीधा अर्थ सभी किले भी हो सकता है। यह बात तथ्य के विपरीत जान पड़ती है। ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ पर कवि का ध्यान ऐतिहासिक तथ्य की ओर कम और अलंकार पर अधिक रहा है। उक्त प्रसंग की चर्चा विचित्र अलंकार के उदाहरण के रूप में की गई है। यदि अभीष्ट की प्राप्ति के लिए उसके विरुद्ध ही अनुष्ठान किया जाता है, तो वहाँ विचित्र अलंकार होता

---

[1] शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० १४१ और १४२
[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३७०
[3] वही, छन्द सं० १६३
[4] शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० ६४

है।[१] यहाँ पर शिवाजी ने किले मुगलों को सौंप कर अभीष्ट की प्राप्ति के लिए विरुद्ध अनुष्ठान ही किया था। इस विरुद्ध अनुष्ठान में कवि ने २३ किलों की संख्या स्पष्ट नहीं लिखी।

८ शिवाजी ने कर्ण को कर्ण के समान समझकर परास्त किया।

द्रोन सौ भाऊ करन्न करन्न सौं और सबै दल सौ दल भार्‌यौ।[२]

ऐतिहासिक विवेचन : राव कर्ण बीकानेर राजा सूरसिंह के पुत्र थे। पिता की मृत्यु के बाद १६३१ ई० में ये बीकानेर की राजगद्दी पर बैठे। इनकी नियुक्ति शाहजहाँ के समय में ही दक्षिण में हो गई थी। कहते हैं १६३२ ई० में दौलताबाद दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया। दौलताबाद के लिए जो युद्ध हुआ था, उसमें राव कर्ण महताबखाँ के साथ-साथ थे। इन्हें दौलताबाद का दुर्गाध्यक्ष बनाया गया। औरंगजेब ने राज्य प्राप्त करने के लिए जो युद्ध किया था उसमें ये सम्मिलिग नहीं हुए। औरंगजेब ने इनके इस अपराध को क्षमा कर दिया और पिता के समय जो इनका स्थान था, वही इन्हें प्रदान कर (तीन हजारी का मन्सब) इन्हें दक्षिण भेज दिया। ये अपने दोनों पुत्रों के साथ (अनूपसिंह तथा पद्मसिंह) दक्षिण गये। भारत के प्राचीन राजवंश भाग ३ में पृ० ३४ पर इनकी मृत्यु तिथि वि० सं० १७२६ आषाढ़ सुदी ४ दी गई है (अर्थात् १६६६ ई०)[३]। शिवाजी के साथ मुगलों के जो युद्ध हुए उनमें ये मुगलों की ओर से लड़े थे। किस युद्ध में शिवाजी ने कर्ण को कर्ण के सदृश देखा था यह कहना कठिन है किन्तु दक्षिण में होने के नाते शिवाजी से इनका सामंना हुआ था, यह बात ठीक प्रतीत होती है।

९. शिवाजी ने भाऊ को द्रोण के समान समझकर परास्त किया।

द्रोन सौ भाउ करन्न करन्न सौं और सबै दल सौ दल भार्‌यौ।[४]

ऐतिहासिक विवेचन : ये राव छत्रसाल हाड़ा के पुत्र थे। राव छत्रसाल (जिन्हें शत्रुसाल भी कहा गया है) की मृत्यु सामूगढ़ के युद्ध में दारा की ओर से लड़ते हुए हुई। औरंगजेब ने भाऊसिंह को राज्य प्राप्ति के बाद तीन हजारी का मन्सब प्रदान किया। दक्षिण में जब शाईस्तखाँ की नियुक्ति हुई तो उसके साथ ये

---

१ **"विचित्रा तद्विरुद्धस्य कृतिरिष्टफलाय चेत्" साहित्य दर्पण, दशम परिच्छेद : ७२**

२ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३४**

३ **मुगल दरबार, भाग १, ब्रजरत्नदास, पृ० ८५ से ८८ तक देखिए।**

४ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३४**

भी गये थे । शिवभारत में शाईस्तखाँ के साथ उत्तर से आने वाले मुगल सामन्तों के नाम दिये गये हैं । उनमें इनका नाम भी इस प्रकार मिलता है :—

तनयः शत्रुशल्यस्य भावसिंह प्रभावभृत् ।
किशोरशामसिंहह्वौ राजानौ चाँस्य बाँधवौ ।।४२।।[1]

जसवन्तसिंह भी इस समय शाईस्तखाँ के साथ दक्षिण आये थे । राव भाऊसिंह की बहन का व्याह जसवन्तसिंह के साथ हुआ था । शाईस्तखाँ के समय में ही जसवन्तसिंह ने सिंहगढ़ दुर्ग को घेर लिया था । इस समय भाऊसिंह भी जसवन्तसिंह के साथ थे । सम्भवतः भूषण ने इसी घटना की ओर संकेत किया हो । इस समय जसवन्तसिंह सिंहगढ़ पर विजय प्राप्त नहीं कर सका । १६६३ नवम्बर-दिसम्बर में जसवन्तसिंह ने सिंहगढ़ दुर्ग को घेरा था और यह घेरा अप्रैल १६६४ ई० तक बना रहा । मुगलों का इसमें बड़ा नुकसान हुआ । इस घेरे में जसवन्तसिंह को निराश होना पड़ा । अपनी पराजय स्वीकार कर वह अन्त में मई १६६४ ई० में घेरा उठाकर चला गया । इसी समय भाऊसिंह भी जसवन्तसिंह का साथ दे रहा था ।[2] सम्भवतः भूषण का संकेत इसी घटना की ओर रहा हो ।

मिर्जा राजा जयसिंह के साथ भाऊसिंह ने भी दक्षिणी युद्धों में भाग लिया था । इनकी मृत्यु सन् १६७७ ई० में हुई ?

१०. शिवाजी शृंगारपुर को जीतने वाले हैं ।

जावलि-वीर सिंगारपुरी औ जवारि को राम के नैर को गाजी ।[3]

ऐतिहासिक विवेचन : शृंगारपुर का राजा सूर्यराव था । १६५६ ई० में जावली पर शिवाजी ने अधिकार कर लिया था । उस समय चन्द्राराव मोरे के साथ हुए व्यवहार को देखकर सूर्यराव शिवाजी की शरण में चला गया । शिवाजी ने उसे आश्रय दिया । उस समय से वह शिवाजी की यदा-कदा सहायता करता आ रहा था । केवल शरण में आने के कारण ही शिवाजी ने उसे छोड़ दिया था और उस पर विश्वास कर रहे थे किन्तु बाद में वह बीजापुर के पक्ष में हो गया और शिवाजी के उपकारों को भूल गया । ऐसी स्थिति में शिवाजी ने

---

[1] **शिवभारत, (परमानन्द कवि कृत) सं० स० म० दिवेकर, अध्याय २५, पृ० २५३**

[2] **मुगल दरबार, ब्रजरत्नदास, भाग १, पृ० २५७ और २५८ देखिए तथा छत्रपति शिवाजी, दि० वि० काले, पृ० १०६ और ११० देखिए ।**

[3] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १८८]**

अप्रैल १६६१ ई० में श्रृंगारपुर पर आक्रमण किया। सूर्याजीराव लज्जित होकर भाग गया। वह कुडाल के सावन्त की शरण में चला गया। शिवाजी ने २९ अप्रैल १६६१ ई० को श्रृंगारपुर पर अधिकार कर लिया। उन्होंने उस किले का नाम बदलकर 'प्रतीतगढ़' रखा और त्र्यम्बक भास्कर को वहाँ का अधिकारी नियुक्त कर दिया।[1]

तथ्य इतिहास के अनुकूल हैं।

११. शिवाजी जवारि एवं रामनगर को जीतने वाले हैं।

भूषन भनत रामनगर जवार तेरे,
बैर पूर बहे अरि-रुधिर-नदीन के।[2]

+ + + +

जावलि-वीर सिंगारपुरी औ जवारि को राम के नेर को गाजी।[3]

ऐतिहासिक विवेचन : ५ जून १६७२ ई० को पेशवे मोरो त्र्यंबक ने जौहर पर अधिकार कर लिया। वहाँ के राजा विक्रमशाह मुगल राज्य में भाग गए। इसके कुछ दिन बाद २१ जून १६७२ ई० को रामनगर पर भी अधिकार हो गया। वहाँ के राजा सोमसिंह ने पुर्तगाली शहर दामन में आश्रय लिया।[4]

तथ्य इतिहास के अनुकूल है।

१२. पुर्तगाली लोग शिवाजी को नजराने भेजते थे।

पेसकस भेजत बिलाइत पुरतगाल,
नीकी जहाजन ह्वै करनाटक दली है।[5]

ऐतिहासिक विवेचन : सन् १६६३ ई० में गोवा के प्रधान अधिकारी ने शिवाजी की कृपा प्राप्त करने की दृष्टि से अपना एक वकील आल्ह्वरुद आताईदि (Dom Alvarode Ataide) को शिवाजी के पास भेजने के लिए नियुक्त किया। इस समय शिवाजी वेंगुर्ला में थे। उन्होंने मुगलों के विरुद्ध विजय प्राप्त की थी। अतः शिवाजी का अभिनन्दन करने के लिए पुर्तगालियों ने अपना और एक वकील

---

[1] छत्रपति शिवाजी, श्री दि० वि० काले, पृ० ९८, ९९ और १००

[2] भूषण पं० विश्वनाथप्रसाद, छन्द सं० १५४

[3] वही, छन्द सं० १८८

[4] छत्रपति शिवाजी, श्री दि० वि० काले, पृ० १७२ और १७३

[5] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २३८

रामोजी शेणवी कोठारी को शिवाजी के लिए मूल्यवान नजराना देकर भेजा। किन्तु शिवाजी के पास पहुँचने में देरी हो जाने के कारण कोठारी की शिवाजी से भेंट नहीं हो सकी। इसके बाद शिवाजी बहुत व्यस्त रहे और पोर्तगीज अवसर नहीं पा सके। शिवाजी जब आगरा से लौटे उस समय कोठारी को फिर भेजा गया। रायगढ़ में कोठारी और शिवाजी में बातचीत हुई। कोठारी जब गोवा लौटा तो शिवाजी ने अपना प्रतिनिधि सकोपन्त को भेजा। शिवाजी ने इसके साथ में एक घोड़ा और एक पोषाख गोवे के अधिकारी के लिए भेंट रूप में भेजी। सकोपन्त जब लौटा तो पोर्तुगीज सरकार ने भी शिवाजी के लिए ३२२ अशरफियों की कीमत का एक नजराणा भेजा। यह बात ५ दिसम्बर १६६७ ई० की है।[1]

तथ्य इतिहास के अनुकूल है।

१३. शिवाजी ने तिलंगाने को लूटा।

> लिय जिति एदिल को मुलक सब, सिव सरजा जुरि जंग।
> भनि भूषन भूपति भजे भंगग्गरब तिलंग॥
> भंगग्गरब्र तिलंगग्गयउ कलिंगग्गलि अति।
> दुन्दद्दबि दुहु दन्दद्दलनि बिलन्दद्दिहसति॥[2]

ऐतिहासिक विवेचन : सन् १६७२ ई० के जुलाई महीने में पेशवा ने नासिक जिले में घुसकर लूटना आरम्भ कर दिया। वहाँ के दो मुगल थानेदार हारकर भाग गए। अक्तूबर और नवम्बर में मराठे घुड़सवार तेजी से बरार और तिलंगाने में घुसकर रामगिर जिले को लूटने लगे। मुगल सेनापति बहादुरखाँ किसी तरह भी उन्हें न पकड़ सका।[3]

तथ्य इतिहास के अनुकूल है।

१४. बीजापुर के सरदार सिरजेखाँ के साथ शिवाजी का युद्ध हुआ जिसमें मराठों ने बीजापुरियों का संहार किया।

> इत सरजेखाँ उत सरजा सिवाजी सूर,
> दोउ उतसाहन लरैया खुरकन के।
> भूषन भनत गढ़ नाले पर खाले भिरे,
> देखैं दोउ दीन पै न एकौ कुरकन के॥

---

[1] शिवचरित्र प्रदीप, सं० द० वि० आप्टे एवं स० म० दिवेकर, पृ० १७८, १७९ एवं १८०

[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३३५

[3] शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० ९८

साहदी भवानी उन्हैं माहदी सँघारै सबै,
बीजापुरी बीर अब लेन मुरकन के।
लोहू चले नाले पै न हाले दल साले चले,
भाले मरहट्टन के ताले तुरकन के॥[1]

ऐतिहासिक विवेचन : इतिहास ग्रन्थों में इस प्रसंग का उल्लेख नहीं मिलता किन्तु जयराम पिण्ड्ये के काव्य में इसका उल्लेख मिलता है। पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान में बहलोलखाँ और खवासखाँ के आपसी सम्भाषण में इसका उल्लेख है। पन्हाला किला हाथ से चला जाने पर बीजापुर के सामन्त तत्कालीन मन्त्री खवासखान को दोष देने लगते हैं। बहलोलखान खवासखान को दोष देते हुए कहता है—

तत्रैकस्मिन्हि सह्याद्रौ कदनं यदभूच्छ्रुतम् ॥१३॥
यत्रायं मामको बन्धुर्निबद्धो बन्धुभिः सह।
अन्येप्यहो महत्कर्म ? सिंहाद्यास्तद्रणांगणे ॥१४॥
एक शृंखलया बद्धाश्चरणे वारणा इव।
यस्मिन्नमरसिंहोऽपि मारितः सह सैनिकैः ॥१५॥
न बाबुरहमित्येव मुच्चैः क्रोशन व्यवस्थितः।
ततोप्यधिकमेतस्मिन्निपेतुस्तस्य सैनिकाः ॥१६॥
प्रवदन्तो नबाबश्चेद्धंतव्यः शास्तिखानवत्।
हास्यमायात्यहोस्माकमौदारामीयऽपौत्रकः ॥१७॥
शिखासूत्रं दर्शयित्वा स्वात्मानं प्रविमुक्तवान्।
सर्जाखानादयोप्यन्ये तर्जितास्तस्य सैनिकैः ॥१८॥[2]

अर्थात्—उस समय सह्याद्रि पर्वत पर स्थित एक किले में जो कतल हुई थी उसमें मेरा भाई बन्धुओं के साथ कैद हुआ। (मोहोकम) सिंहादि दूसरे योद्धा भी रणोगण में हाथी के समान पाँवों में शृंखला बाँध कर कैद कर लिये गए। (शिवाजी का यह प्रबल पराक्रम था) उस कतल में अमरसिंह भी अपने सैनिकों के साथ मारा गया।

'मैं बाबू (हिन्दू) नहीं' (मैं नवाब हूँ) इस प्रकार से पुकार-पुकार कर कहने पर, 'नवाब हो तो शाईस्ताखान की तरह मारा जाय' ऐसा कहते हुए उसके

---

1. **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४९८**
2. **पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान, जयराम पिण्ड्येकृत, सं० स० म० दिवेकर, अध्याय ५ से, पृ० ३७ और ३८**

सैनिकों ने (शिवाजी के सैनिकों ने) जोरदार आक्रमण किया। हमारे उदाराम के पोते ने चोटी और जनेऊ दिखाकर अपने प्राण बचा लिये। क्या यह हास्यास्पद नहीं ? उसके सैनिकों ने सर्जाखानादि दूसरे योद्धाओं को भी धमकी दी।

यहाँ बहलोलखाँ ने सह्याद्रि पर्वत के जिस किले के युद्ध की ओर संकेत किया है. वह साल्हेर का युद्ध ही है। इसी युद्ध में बहलोलखाँ का भाई बहलोलखाँ और मोहकमसिंह पकड़ लिये गए थे और अमरसिंह चन्दावत मारा गया था। भूषण कवि ने भी इसका उल्लेख करते समय साल्हेर का नाम लिया है।

> बचैगा न समुहाने बहलोलखाँ मियाने,
> भूषन बखाने दिल आन मेरा बरजा।
> तोहीं तें सवाई तेरा भाई सलहेर पास,
> बन्दि किया साथ का न कोउ बीर गरजा ॥[१]

अतः पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान में बहलोलखाँ ने खवासखान से सह्याद्रि पर्वत के जिस किले के युद्ध का वर्णन किया है, वह साल्हेर किले के युद्ध का ही है। इस प्रसंग में आगे बहलोलखाँ ने यह भी कहा है कि उस युद्ध में हमारे उदाराम के पोते ने शिखा और जनेऊ दिखाकर प्राण बचा लिए और शर्जाखान आदि को शिवाजी के सैनिकों ने धमकी दी। बाद में यह भी लिखा गया है कि शर्जाखान ने अपने शस्त्र डाल दिए। 'तेऽपि संत्यक्तशस्त्रास्त्राः किमन्यत्प्रोच्यतामिह"[२] अर्थात् शर्जाखान ने भी शस्त्र डाल दिए अतः औरों का क्या कहा जाय ? बहलोलखान ने उदाराम के पोते का नाम लेते हुए हमारे 'अस्माकम्' शब्द का प्रयोग किया है और उसके आगे शर्जाखान का नाम आया है अतः इन दोनों का सम्बन्ध बीजापुर से था यह बात निश्चित है। साल्हेर का युद्ध मुगलों में और शिवाजी में हुआ था। उसमें बीजापुर ने मुगलों का साथ दिया होगा। ऐसा अनुमान करना कठिन है। अतः उदाराम और शर्जाखान के युद्ध की चर्चा बहलोलखाँ ने किसी दूसरे युद्ध की ओर संकेत करते हुए की है। इस युद्ध में बीजापुरी सरदार सिरजेखाँ (शर्जाखान) परास्त हुआ था।

इसी सरजाखाँ का भूषन ने और एक स्थान पर उल्लेख किया है और वह उल्लेख पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान से मिलता जुलता है। दोनों की तुलना नीचे की जा रही है।

---

१ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १४५**

२ **पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान, जयराम पिण्ड्येकृत, सं० स० म० दिवेकर, अध्याय ५ से, छन्द सं० १६, पृ० ३८**

सरजाखाँ बाच्यौ भजि काजी के बहाने,
वाबू राउ उमराउ ब्रह्मचारी के छलन सौं ।[1]

भूषण के इस पंक्ति की तुलना अभी ऊपर उद्धृत पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान की उन पंक्तियों से की जा सकती है, जिसमें बहलोलखाँ कहता है कि (उस युद्ध में) 'मैं बाबू नहीं (हिन्दू नहीं) तात्पर्य मैं नवाब हूँ ऐसा पुकार-पुकार कर कहा।' इसी तरह सरजाखान के शस्त्र डाल दिये जाने की बात कही है। भूषण भी कह रहा है कि सरजाखाँ काजी के बहाने से बच गए और उमराव अपने को 'बाबू' घोषित कर (हिन्दू है कह कर) ब्रह्मचारी का छल कर बच गए। शिवाजी काजी को या ब्राह्मण को (धार्मिक व्यक्ति को) नहीं मारते थे अतः सरजाखाँ और अन्य उमरावों ने अपने प्राण बचा लिये।

बीजापुर के सरदार शर्जाखान की हार हुई थी और यह युद्ध पन्हाले के विजय से पूर्व हुआ था यह भी निश्चित है। भूषण का कथन ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक प्रतीत होता है।

१५. भूषण का एक छप्पय इस प्रकार मिलता है—

बिज्ञपुर-बिदनूर-सूर सर-धनुष न संधहिं।
मंगल बिनु मल्लारि-नारि धम्मिल नहिं बन्धहि॥
गिरत गब्भ कोटै गरब्भ चिंजी चिंजाउर।
चालकुण्ड दलकुण्ड गोलकुण्डा संकाउर॥
भूषन प्रताप सिवराज तव, इमि दच्छिन दिसि संचरहि।
मधुरा-धरेस धकधक धकत, द्रविड़ निविड़ अबिरल डरहि॥[2]

यहाँ भूषण ने लिखा है कि शिवाजी के भय से अनेक राजा आतंकित रहते थे। शिवाजी ने करनाटक में अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त की थीं। इस सम्बन्ध में कवि ने लिखा है कि—

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
उग्ग नाचे उग्ग पर रुण्ड-मुण्ड फरके।
भूषन भनत बाजे जीति के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल को सरके॥[3]

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छन्द सं० ९०
[2] वही, छन्द सं० ४३५
[3] वही, छन्द सं० ४२४

शिवाजी के भय से करनाटक के भूप सिंहल की ओर सरक गए। विज्ञपुर (बीजापुर), विदनूर (बेदनूर) के वीर शिवाजी के भय से धनुष हाथ में नहीं लेते। चिंजी (जिंजी) और चिंजाउर (तंजौर) भी आतंकित रहते हैं। चालकुंड (पोर्तुगीजों की तत्कालीन बन्दरगाह चौल), दलकुण्ड (दाभौल) और गोलकुण्डा का मन सदैव शंकित रहता है और मदुरा के राजा की छाती धड़कती रहती है।

ऐतिहासिक विवेचन : (१) बीजापुर के कई किलों पर शिवाजी ने आक्रमण किया था और उनको अपने अधिकार में कर लिया था। बीजापुर के सरदार शिवाजी द्वारा मारे गए, लूटे गए और भगा दिये गये थे। इनका विवरण ऊपर दे दिया गया है। अतः उनका शिवाजी से आतंकित रहना स्वाभाविक था। (२) बेदनूर : कुडाल के युद्ध के पश्चात् शिवाजी दक्षिण की ओर गए। इस समय उन्होंने बेदनूर राज्य के पश्चिमी तट के बन्दरगाह बसनूर को लूट लिया। यह लूट फरवरी १६६५ ई० में हुई। इसमें शिवाजी ने जहाजी बेड़े से सहायता ली थी।[1] अतः बेदनूर राज्य भी शिवाजी से आतंकित रहता था। (३) चालकुण्ड : शिवाजी के राज्य की पश्चिमी सीमा के पास ही पुर्तगालियों का भारतीय प्रदेश था। उत्तर में दामन जिला, बीच में बम्बई, थाना, बसई (Bassein), चौल (यही चालकुण्ड है), दक्षिण में गोआ बार्देश शष्ठि (Salsette) थे। शिवाजी से पोर्तुगीज भयभीत थे इसीलिए उन्होंने अनेक उपायों से शिवाजी को शान्त रखने का प्रयत्न किया। दो बार (१६६७ ई० और १६७० ई०) उन लोगों के बीच लिखित सन्धि होकर सब झगड़ों का निपटारा भी हुआ।[2] (४) चिंजी (जिंजी) : जिंजी पर शिवाजी ने १३ मई १६७७ ई० को अधिकार कर लिया। वहाँ का शासक नासिर मुहम्मदखाँ ने वार्षिक ५० हजार आमदनी की जागीर और कुछ पाने की आशा से किला शिवाजी को सौंप दिया।[3] (५) चिंजाउर (तंजौर) एवं मदुरा : दक्षिण के इस अभियान में शिवाजी १२ जुलाई १६७७ ई० को तिरुमलवाड़ी पहुँच गए। यहाँ से उन्होंने मदुरा के राजा से कर वसूल करने का प्रयत्न किया। एक करोड़ माँगा किन्तु उतना न मिलने पर अन्त में ३० लाख पर मामला तय हो गया। यह भी तय हुआ कि इतने रुपये मिलने पर शिवाजी मदुरा पर आक्रमण नहीं करेंगे। इस स्थान से उनके भाई व्यंकोजी की राजधानी तंजौर केवल दस मील रह गई थी। यहीं पर उन्होंने अपने भाई व्यंकोजी को किसी तरह बुलाया। व्यंकोजी असन्तुष्ट होकर भाग गया। इस

---

[1] शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० १४३

[2] वही, पृ० १४६

[3] वही, पृ० १२० और १२१

पर शिवाजी ने अपने भाई के व्यक्तियों को कुछ समय रोककर फिर तंजौर भेज दिया। कोलेरुण के उत्तर की शाहजी की सम्पूर्ण जागीर पर उन्होंने अधिकार कर लिया। अन्त में दोनों भाइयों में सन्धि हो गई जिसके अनुसार शिवाजी ने तंजौर का राज्य अपने भाई को दे दिया। कुछ देन लेन भी हुआ।[१] (६) दलकुण्डा (दाभौल) : दक्षिण कोंकण की ओर अपने राज्य की सीमा बढ़ाते समय शिवाजी ने अनेक छोटे-छोटे राज्यों को अपने अधिकार में कर लिया था। उसी समय उन्होंने, दाभौल, संगमेश्वर, राजापुर इत्यादि बड़े-बड़े शहर एवं बन्दर स्थायी रूप से अपने अधिकार में ले लिये। इस प्रदेश से चौथ वसूल की जाने लगी। दाभौल एक बन्दरगाह है। इस पर आक्रमण की तिथि ५ जनवरी १६६० ई० है।[२] (७) गोलकुण्डा : ४ मार्च १६७७ ई० को छत्रपति शिवाजी ने भागनगर में कुतुबशाह से भेंट की। इस भेंट में कुतुबशाही बादशाह ने उनका स्वागत किया। सन्धि भी हुई। धन एवं सेना की सहायता लेकर शिवाजी ने वहाँ से करनाटक की ओर प्रस्थान किया।[३]

तथ्य इतिहास से साम्य रखते हैं। शिवाजी का आतंक सर्वत्र व्याप्त था।

१६. शेरखाँ लोदी को परास्त कर करनाटक के गढ़ों पर शिवाजी ने विजय प्राप्त की।

> प्रबल पठान फौज काटिकै कराल महा,
> आपनी मनाइ आनि जाहिर जहान को।
> दौरि करनाटक में तोरि गढ़कोट लीन्हें,
> मोदी सो पकरि लोदी सेरखाँ अचानको ॥[४]

ऐतिहासिक विवेचन : जिंजी प्रदेश से दक्षिण में कावेरी नदी तक फैली हुई शेरखाँ लोदी की बड़ी भारी जागीर थी। वह युद्ध विद्या से बिलकुल अनजान था और सब काम अपने चालाक द्रविड़ ब्राह्मण-मन्त्रियों की सलाह से ही किया करता था। इन लोगों ने समझा दिया था कि शिवाजी की फौज कुछ भी नहीं है। परन्तु उसके मित्र और मददगार पाण्डीचेरी के शासनकर्त्ता फ्रान्सोयामार्टिन ने उससे कहा कि शत्रु बड़ा भयंकर है। चार हजार डरपोक और निकम्मे घुड़सवार तथा तीन हजार प्यादों की फौज लेकर शेरखाँ तिरुवाड़ी में (कुड्डालोर से १३ मील पश्चिम) १० जून १६७८ ई० से मराठों का रास्ता रोक बैठा था। २३ मई को शिवाजी जिंजी

---

१ **शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० १२० और १२१**
२ **वही, पृ० ४५ (आक्रमण की तिथि पृ० १९५ पर दी गई है)**
३ **वही, पृ० ११७, ११८ और ११९ देखिए।**
४ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४६८**

से वेलूर पहुँच कर वहाँ एक महीने तक ठहरे और इस किले को घेरने का बन्दोबस्त ठीक-ठाक करके ६ हजार घुड़सवारों के साथ २६ जून को तिरुवाड़ी आए। उनको देखते ही शेरखाँ अपनी फौज सजाकर उनके ऊपर चढ़ाई करने को आगे बढ़ा, परन्तु मराठे लोग अपनी जगह पर स्थिर होकर चुपचाप खड़े-खड़े शत्रु की राह देखते रहे। यह दृश्य देखकर शेरखाँ का हृदय काँपने लगा। उसे बड़ी भारी आफत सामने दिखाई देने लगी। उसने अपनी फौज को लौटने की आज्ञा दे दी। इससे वे और भी डरे और छितरा गये। ठीक इसी समय पर शिवाजी घोड़ा दौड़ाकर उन पर टूट पड़े। शेरखाँ की सेना जान लेकर दौड़ी। शेरखाँ ने भागकर तिरुवड़ी के किले में शरण ली। इसके बाद शिवाजी ने शेरखाँ की रियासत के बहुत से शहर और किले बेरोकटोक के ले लिए।[1]

तथ्य इतिहास के अनुकूल हैं।

१७. मुगलों के विरुद्ध शिवाजी ने बीजापुर की सहायता की। दिल्ली की सेना ४०,००० थी।

> दिल्ली को हरौल भारी सुभट अडोल गोल,
> चालीस हजार लै पठान धायो तुरकी।
> भूषन भनत जाकी दौरि ही को सोर मच्यो,
> एदिल की सीमा पर फौज आनि ढुरकी॥
> भयो है उचाट करनाट-नरनाहन को,
> डोलि उठी छाती गोलकुण्डा ही के धुर की।
> साहि के सपूत सिवराज वीर तैंने तब,
> बाहु-बल राखी पातसाही बीजापुर की॥[2]

ऐतिहासिक विवेचन : सन् १६७६ ई० के १८ अगस्त को दिलेरखाँ ने बीजापुर राज्य के ऊपर चढ़ाई की। मसऊद ने निरुपाय हो शिवाजी के पास हिन्दूराव नामक दूत द्वारा यह करुण निवेदन भेजा कि, "इस राज्य की हालत आप से छिपी नहीं है, रुपये नहीं हैं, रसद नहीं है—किले के बचाव के लिये कुछ भी सामान नहीं है, मुगल शत्रु प्रबल और हमेशा लड़ने के लिए तैयार है। आप इस वंश के दो पुश्त के नौकर हैं। इन सुलतानों के हाथ से आपने मानमर्यादा पाई है, अतएव इस राजवंश के लिए दूसरों की अपेक्षा आपको ज्यादा दुखदर्द होना चाहिए। आपकी सहायता बिना हम लोग इस देश और किले की रक्षा करने में असमर्थ हैं।

---

[1] **शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० १२२ एवं १२३**

[2] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४७५**

नमकहलाली कीजिये। हम लोगों के पक्ष में आइए। आप जो चाहेंगे हम देंगे।" इस पर शिवाजी ने बीजापुर की सहायता की। शिवाजी ने धन एवं सेना दोनों से ही बीजापुर की रक्षा की। दिलेरखाँ अपने इस अभियान में असफल हुआ।[1]

तथ्य इतिहास के अनुकूल हैं।

४. २. १. १२. **शिवाजी का आतंक**—भूषण ने शिवाजी के आतंक का वर्णन बड़े विस्तार से किया है। देश और विदेश में शिवाजी की धाक थी। इस वर्णन में अनेक देशी राज्यों एवं विदेशी राज्यों का उल्लेख कवि ने किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यदि इस आतंक वर्णन का विश्लेषण किया जाय तो वर्णन यथार्थ लगता है। औरंगजेब को दक्षिण में बार-बार सूबेदारों को बदलना पड़ता था। इसका कारण यह था कि जो सूबेदार दक्षिण में नियुक्त होकर आता था, वह शिवाजी पर नियन्त्रण करने में असमर्थ रहता था। अतः जब वह लौट कर जाता तो शिवाजी से आतंकित होकर जाता। दक्षिण की सूबेदारी पाने से सभी घबराते थे। सूबेदारों की बेगमें भी अपने पतियों को दक्षिण में जाने की सलाह नहीं देती थीं। दक्षिण में नियुक्त होकर जो सूबेदार आता उसे शिवाजी के कोप का भाजन बनना पड़ता। इस बात की चर्चा अन्य प्रान्तों में रहने वाले मुगल सरदार भी करते थे। अतः भारत के अन्य प्रदेशों में भले ही शिवाजी की पहुँच हुई हो या नहीं हुई हो, उसके आतंक की कथा सर्वत्र फैल गई थी। स्वयं औरंगजेब भी आतंकित रहता था तो और बादशाहों एवं सूबेदारों की स्थिति के सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इस सम्बन्ध में एक दो उदाहरण दिए जा रहे हैं।

(१) कत्ता के कसैया महावीर सिवराज तेरी,
रूम के चकत्ता लौ हू संका सरसात है।
कासमीर काबुल कलिंग कलकत्ता अरु,
कुल करनाटक की हिम्मत हेरात है॥
बिकट बिराट बंग व्याकुल बलख वीर,
बारहो बिलाइत सकल बिलखात है।
तेरी धाक धुंधरी धरा में अरु धाम धाम,
अंधाधुंध आँधी सी हमेस हहरात है॥[2]

\+ \+ \+

---

[1] **शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० १५६ एवं १५७**

[2] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४६१**

(२) तेरी धाक ही तें नित हबसी फिरंगी औ,
बिलाइती बिलन्दे करैं वारिधि-विहरनो ।
भूषन भनत बीजापुर भागनेर दिल्ली,
तेरे बैर भयौ उमरावन को मरनो ।।
बीच-बीच उहाँ केते जोर सों मुलुक लूटे,
कहाँ लगि साहस सिवाजी तेरो बरनो ।
आठो दिगपाल त्रास आठ दिसि जीतिबे कों,
आठ पातसाहन सों आठो जाम लरनो ।।[1]

मुगलों की सेना में कई प्रान्तों के एवं विदेशी जातियों के लोग भी थे । 'बारहो बिलाइत सकल बिलखात है ।' से तात्पर्य इतना ही है कि सब देशों के सैनिक बिलखते हैं । नुसरती ने अलीनामे में मुगल सेना का विस्तार से वर्णन करते हुए सेना में पाये जाने वाले देशी और विदेशी जातियों, प्रान्तों एवं सम्प्रदायों का भी उल्लेख किया है । उसके अनुसार—"मुगल सेना में कितने ही मुसलमान एवं हिन्दू थे । मुसलमानों में चघट्टी, विझलवाश, उझवक, कन्धारी, नजली, काबुली, काश्मीरी, खुरासानी, इस्पहानी, दमावन्दी, दामधानी, सब्जवारी, बुखारी, हिराती, तूसी, लारी, तुर्की, कर्जी, रूमी, समरकन्दी शिराझी, जहरूमी, हवेजाई, हिरवी, दमकरी, समजतानी, थे । ये लोग युद्ध के लिये भूखे और फिरने वाले थे । इनके सिवा रोहिले, पंजाबी, शिसौदे, कछवे, कापर, चंवार, मुरजबंसी, शिरसाट, गोहील, पवार, अमर, देसरे, चन्दरावत, चन्देल, सींधलसूम, तबसे, खंची (खबसी), पूंझेल, मोरे, छटवे, झाले, सोलंकी, परमार, हाले, गोरे, कदम, कोरकारे, चावरे, हारे, बंस, घेलाटे, धांदले, तोमल (तोमर), सोरे, पाछल, फिरे, अछे, अखले, भटे, टांक, भाटे, वारले, थरांना, कस्मूनी, परकेचरे, गहरवार, लोदेल, जाधव, थंभर (तुवर), असील, दौरे, चौहान, राठौर, खाचर, अहीर, भील, गोंड, कनोजी, बगलाणी, बडारी, खानदेशी, बंगाली, कोट, मैसे आदि लोग थे ।"[2] भूषण ने भी इसी तरह मुगलों की सेना में पाये जाने वाले लोगों से सम्बन्धित स्थानों और उनकी जातियों का उल्लेख किया है । जैसे—

(१) मारे रन जोम कै जवान खुरासान केते,
काटि-काटि दाबि दाबि छाती थरकत हैं ।

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ४५४**

[2] **शिव-चरित्र-वृत्त संग्रह (दूसरा खण्ड : फारसी विभाग), गणेश हरि खरे, (अलीनामा से), पृ० ७१ और ७२**

रनभूमि लेटे वै चपेटे पठनेटे परे,
रुधिर लपेटे मुगलेटे फरकत हैं।[1]

(२) मोरंग कुमाऊँ आदि बाँधव पलाऊँ सबै
कहाँ लौं गनाऊँ जेते भूपति के गोत हैं।
भूषन भनत गिरि-बिकट-निवासी लोग,
बावनी बवंजा नवकोट धुंध जोत हैं।
काबुल-कंधार खुरासान जेर कीन्हें जिन,
मुगल पठान सेख सैयदहु रोत हैं[2]

(३) कारी भीति कालिंजर कँगूरे कनौज सदा,
सूरन के संका सरजा के करवाल की।
भूषन मिमार माड़े मालव मुलुक कोऊ,
झंपि सीर भीमर गहै न बात बाल की।
बिललाइ बिकल विलाइत को साह सुनि,
सिंहल ससंक बक लंक हहलति है।[3]
.................आदि-आदि।

देशी एवं विदेशी स्थानों के जो नाम आये हैं, वे या तो उन स्थानों से सेनाओं का सम्बन्ध था इस अर्थ में आये हैं, या उनका सम्बन्ध मुगल वंश से रहा है इस अर्थ में। शिवाजी की महत्ता का प्रतिपादन करने के लिए कवि ने मुगलों की महत्ता का प्रतिपादन किया है और फिर कहा है कि ऐसे बलशाली मुगल बादशाह को शिवाजी परास्त करने वाले हैं। मुसलमान हज के लिए मक्का जाया करते थे अतः उस नाते से या व्यापार के कारण भी अन्य देशों से सम्बन्ध बना हुआ था उस नाते से यात्रियों का आना-जाना होता था। ये यात्री अपने साथ शिवाजी की आतंकपूर्ण कथाएँ अपने साथ ले जाते थे। ऐसी स्थिति में शिवाजी की ख्याति केवल भारतवर्ष में ही उन दिनों में नहीं थी, बल्कि आसपास के देशों में भी लोग शिवाजी को जानते थे। इन दिनों में विदेशी लोग यहाँ बस गये थे। पुर्तगाली अंग्रेज, फ्रांसीसी एवं डच लोगों से भी शिवाजी सम्पर्क में आये। इन विदेशी शक्तियों को प्रथमतः प्रोत्साहन मुगलों की ओर से ही मिला। यहाँ अधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है। कहने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि देशी एवं विदेशी शक्तियाँ शिवाजी से आतंकित रहती थीं।

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४५१
[2] वही, छं० सं० ४४५
[3] वही, छं० सं० ४८६

भूषणनिर्दिष्ट कतिपय
भारतीय ग्राम और नगर
अ र ब
श्रीनगर
काश्मीर
दिल्ली
यमुना
गंगा
कन्नौज
नेपाल
आसाम
जोधपुर
आमेर
आगरा
गुजरात
चंबल
ग्वालियर
कालिंजर
काशी
चित्तौड़
उज्जैन
खजुआ
कलकत्ता
नर्मदा
भड़ोच
झारखंड
सूरत
साल्हेर
देवगिरी
चाँदा
कल्याण
लोहगढ़
अहमदनगर
चौल
पूना
रायगढ़
सिंहगढ़
परेंडा
गोलकुंडा
राजगढ़
बीदर
दाभोल
जावली
सतारा
बीजापुर
शृंगारपुर
पन्हाला
कुड़ाल
भटकल
बिदनूर
चिंजी
तंजौर
मदुरा

४. २. १. १३ **घटनाओं का तिथिक्रम**—अब शिवाजी से सम्बन्धित प्रमुख घटनाओं का विवरण तिथियों के क्रम से दिया जा रहा है। भूषण ने घटनाओं से सम्बन्धित तिथियों का उल्लेख नहीं किया है। अतः तिथियों का उल्लेख शिवकालीन शकावली के आधार पर किया जा रहा है। विवरण इस प्रकार है :—

क्रम संख्या	घटनाएँ	तिथियाँ	शिवराजभूषण छन्द संख्या	प्रकीर्ण रचनाएँ छन्द संख्या
१	(पुरन्धर किले में) बीजापुरी वजीर फत्तेखान को शिवाजी ने खदेड़ दिया।	१६४९ ई०	२२१	
२	चन्द्रराव मोरे को नष्ट कर जावली पर अधिकार कर लेना।	१५ जनवरी १६५६ ई०	१८८	४३९
३	रायगढ़ किले पर अधिकार और वहाँ निवास करना।	अप्रैल १६५६ ई०	१३	
४	अहमदनगर के स्थान पर नौशेरीखाँ को पराजित करना।	४ जून १६५७ ई०	६४, २८४	
५	अफजलखान-वध।	१० नवम्बर १६५९ ई०	३८, ५९, १४५, १५६, २२१, २३३, ३१५, ३५४ और ३८४	४३६, ४३९ और ४७४
६	शिवाजी ने पन्हाला किला जीत लिया (प्रथम वार)।	२८ नवम्बर १६५९ ई०	१८९	
७	शिवाजी ने रुस्तमेजमाखाँ को लूट लिया।	२८ दिसम्बर १६५९ ई०	२२१	४३६
८	करनाटक के स्थानों पर आक्रमण एवं लूट।	जनवरी—फरवरी १६६० ई०	१८९, २३८	

क्रम संख्या	घटनाएँ	तिथियाँ	शिवराजभूषण छन्द संख्या	प्रकीर्ण रचनाएँ छन्द संख्या
९	शिवाजी ने कारतलब खाँ को लूटा।	२ फरवरी १६६१ ई०	९४	
१०	शिवाजी ने शृंगारपुर जीत लिया।	२९ अप्रैल १६६१ ई०	१८८	
११	शिवाजी ने पूने में शाईस्तखाँ की दुर्दशा की।	५ अप्रैल १६६३ ई०	३४, ७२, ९४ १५६, १७४, २९८, ३०१, ३०४, ३१५ और ३९१	४६४
१२	जसवन्तसिंह ने सिंहगढ़ किले को घेरा, जिसमें उसको हार कर घेरा उठा लेना पड़ा।	नवम्बर १६६३ से अप्रैल १६६४ ई० तक	३४, २८६ और ३४१	४६४
१३	सूरत की लूट (प्रथम लूट)	जनवरी ६ से १० तक १६६४ ई०	१८२, ३१२ और ३३२	४७२, ४७३ और ५०५
	(द्वितीय लूट)	३ एवं ४ अक्तूबर १६७० ई०		
१४	खवासखाँ कुडाल नामक स्थान पर चढ़ आया। शिवाजी ने उसका सामना किया, जिसमें वह परास्त हुआ।	अक्तूबर १६६४ ई०	३०६	
१५	जयसिंह के साथ सन्धि या पुरन्धर की सन्धि	जून १६६५ ई०	१९३ और ३७०	
१६	शिवाजी की औरंगजेब से भेंट।	१२ मई १६६६ ई०	३३, १९९, १७९, १८६, १९१, २४२, २९२, ३४९ और ३८२	४४२, ४४३ और ४५५

क्रम संख्या	घटनाएँ	तिथियाँ	शिवराजभूषण छन्द संख्या	प्रकीर्ण रचनाएँ छन्द संख्या
१७	कैद से छुटकारा।	१७ अगस्त १६६६ ई०	७४, १३५ और १७९	४७६ और ५०१
१८	उदैभानु राठौर का संहार कर सिंहगढ़ किले पर विजय प्राप्त करना।	४ फरवरी १६७० ई०	९२, २३६ और २६२	
१९	लोहगढ़ किले पर विजय प्राप्त करना।	१३ मई १६७० ई०	२३६	
२०	साल्हेर का युद्ध	फरवरी १६७२ ई०	९०, ९४, ९८, १४०, १४५, २०२, २२१, २५४, २६७, ३०९, ३३३, ३३४ और ३७२	४१७ और ४३६
२१	शिवाजी ने जवारि और रामनगर पर विजय प्राप्त की।	जून १६७२ ई०	१५४ और १८८	
२२	शिवाजी ने पन्हाला किला जीत लिया (द्वितीय बार)	६ मार्च १६७३ ई०	९८, १४५, १६१, ३३५, ३३६, ३७५, ३८४ और ३९६	४३९ और ५०३
२३	शिवाजी ने तिलंगाने को लूटा।	अक्तूबर–नवम्बर १६७२ ई०	३३५	
२४	करनाटक पर आक्रमण जिंजी एवं तंजौर।	मई १६७७ ई०, जुलाई १६७७ ई०		४२४ और ४३५
	मदुरा नरेश को आतंकित करना।	जुलाई १६७७ ई०		

क्रम संख्या	घटनाएँ	तिथियाँ	शिवराजभूषण छन्द संख्या	प्रकीर्ण रचनाएँ छन्द संख्या
२५	शेरखाँ लोदी को परास्त कर करनाटक के गढ़ों पर विजय प्राप्त की।	२६ जून १६७८ ई०		४६८
२६	मुगलों के विरुद्ध शिवाजी ने बीजापुर की सहायता की।	अक्तूबर-नवम्बर १६७६ ई०		४७५

४. २. २. औरंगजेब

औरंगजेब ने अपने पिता को कैद किया, दारा को पकड़ कर आगरे के किले में चौक में गड़वा दिया, मुराद के साथ कुरान की कसम खाकर भी उसे धोखा दिया और शाहशुजा को भगा दिया। इतने अनर्थों के बाद वह बादशाह हुआ। बाबर, हुमायूँ और अकबर बाहशाहों ने हिन्दू और मुसलमानों की तथा वेद और कुरान की सीमाएँ बाँध दी थीं। इन पुराने बादशाहों में हिन्दुओं के प्रति प्रेम था। जहाँगीर और शाहजहाँ उस समय के गवाह हैं किन्तु अब तो काशी का प्रभाव नष्ट हो गया और मथुरा में रब की दुहाई फेर दी गई। देवी देवताओं की मूर्तियाँ खुदवा डाली गई हैं। चारों वर्ण दिल में डरे हुए हैं। अधिक क्या? औरंगजेब का चरित्र वास्तव में—"सौ-सौ चूहे खाइ के बिलाइ बैठी तपके"—कहने योग्य है।[1]

ऐतिहासिक विवेचन : राज्यारोहण से पूर्व उत्तराधिकारी बनने के लिए औरंगजेब ने जो युद्ध किया था उसकी ओर कवि ने संकेत किया है। वह इतिहास के अनुकूल है।[2] पिता के साथ औरंगजेब ने जो दुर्व्यवहार किया था, वह उसकी समकालीन जनता को बहुत ही अनुचित एवं न्यायविरुद्ध जान पड़ा। उस युग की सामाजिक मर्यादा को इस प्रकार तोड़ने के कारण जनता के हृदयों में औरंगजेब के विरुद्ध बहुत ही तीव्र नैतिक रोष उठ खड़ा हुआ था।[3] इन्द्र विद्यावाचस्पतिजी ने भूषण कवि का उद्धरण देते हुए लिखा है कि—"भूषण कवि ने शिवाबावनी में

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १९७, ४३८, ४४६, ४४७, ४४८, ५४१ और ५४२**

[2] **औरंगजेब, यदुनाथ सरकार, अध्याय ४, पृ० ७१ से १२० देखिए**

[3] **वही, पृ० १४९**

औरंगजेब के बारे में निम्नलिखित पद्य में : "हाथ तसबीह.........तपके"—छं० सं० ५४२) सर्वसाधारण के भावों को प्रकाशित किया है। सामान्य जनता का यही विचार था कि औरंगजेब ने राज्यलोभ से सम्बन्धियों का संहार किया है और उसका खुदा या इस्लाम की दुहाई देना छलछंद का दूसरा रूप है।[1] ९ अप्रैल १६६९ ई० को उसने (औरंगजेब ने) एक आम हुक्म दिया कि काफिरों (हिन्दुओं) के सब शिक्षालय और मन्दिर गिरा दिए जावें....इस आज्ञा के अनुसार उसकी कुदाल सोमनाथ के दूसरे मन्दिर, बनारस में विश्वनाथजी के मन्दिर और मथुरा में केशवरायजी के मन्दिर जैसे बड़े मन्दिरों पर भी पड़ी।[2]

तथ्य इतिहास से साम्य रखते हैं।

४. २. २. १. अन्य स्फुट उल्लेख—इन उल्लेखों के अतिरिक्त औरंगजेब सम्बन्धी अनेक उल्लेख शिवाजी की विरोधी शक्ति के रूप में हुए हैं, जिनकी चर्चा शिवाजी सम्बन्धी विवरण लिखते हुए कर दी गई है। स्वतंत्र रूप से प्राप्त कुछ स्फुट उल्लेखों को नीचे लिखा जा रहा है।

(१) कुतुबशाही राजा ने मुगलों को रामगिरि सौंपा।

> भूषन भनत साहिनगरी कुतुबसाहि,
> दैकर गँवाई रामगिरि से गिरीस को।[3]

ऐतिहासिक विवेचन : औरंगजेब ने गोलकुण्डा पर १६५६ ई० में आक्रमण किया था। इस समय कुतुबशाह ने अपने बचाव की दृष्टि से सीधे दिल्ली (शाहजहाँ) से बात की जिसके अनुसार मुहम्मद सुलतान के साथ अब्दुल्ला कुतुब-शाह की लड़की का विवाह हुआ। गोलकुण्डा के सुलतान को युद्ध हानि और शेष कर के रूप में लगभग १ करोड़ रुपयों के साथ रामगिरि का जिला मुगलों को सौंप देना पड़ा। २१ अप्रैल १६५६ ई० को मुगल सेना पीछे हटी।[4]

तथ्य इतिहास के अनुकूल हैं।

(२) बीदर, कल्याण और परेण्डा किले आदिलशाही बादशाह ने सिर झुकाकर मुगलों को दिए।

---

[1] मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके करण, इन्द्र विद्यावाचस्पतिजी, पृ० १८८

[2] औरंगजेब, यदुनाथ सरकार, पृ० १९४

[3] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १९३

[4] औरंगजेब, यदुनाथ सरकार, पृ० ४५

बेदर कल्यान दै परेंडा ऐसे कोट साहि,
एदिल गँवाए हैं नवाए निज सीस कौं।[१]
+ + +
बेदर कल्यान घमसान कै छिनाय लीन्हें,
जाहिर जहान उपखान यही चलही।[२]

ऐतिहासिक विवेचन : बेदर, कल्याण और परेंडा किले बीजापुर के आदिल-शाही बादशाह के थे। (इस समय दिल्ली का बादशाह शाहजहाँ था और औरंगजेब दक्षिण में सूबेदार होने के नाते रहता था) औरंगजेब ने शाहजहाँ से आज्ञा प्राप्त कर बीजापुर पर आक्रमण किया। सब से पहले उसने बीदर जिले पर विजय प्राप्त की (२९ मार्च १६५७ ई०)। इसी तरह उसने २७ अप्रैल १६५७ ई० को कल्याणी भी ले लिया। इसके बाद बीजापुर के बादशाह ने सीधे दिल्ली के बादशाह से बात कर सुलह कर ली जिसके अनुसार बीदर, कल्याण और परेंडा किले मुगलों को मिल गए और इन किलों के आसपास का भाग भी मुगलों को मिला।[३]

तथ्य इतिहास के अनुकूल हैं।

(३) खजुए के युद्ध का उल्लेख मात्र हुआ है।
दारा की न दौरि यह, खजुए की रारि नाहिं।[४]

ऐतिहासिक विवेचन : खजुआ के युद्ध में शाह शुजा की हार हुई और वह भाग गया। यह युद्ध ५ जनवरी १६५९ ई० को हुआ था।[५]

(४) बहादुरखाँ दक्षिण की मुहीम संभालने के लिए भेजा गया।
औरंग जौ चढ़ि दक्षिन आवै तौ वोऊ सिधारै यौं ह्वै बिनु कप्पर।
दीनौ मुहीम को भार बहादुर छावो गहै क्यों गयंद को टप्पर।[६]
+ + +
या पूना में मति टिकौ खानबहादुर आय।
ह्यांई साइतखान कों दीन्हीं सिवा सजाय।[७]

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १९३
२ वही, छं० सं० ४६७
३ औरंगजेब, यदुनाथ सरकार, पृ० ४५ से ५० तक
४ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४३८
५ औरंगजेब, यदुनाथ सरकार, पृ० ११० से ११३ तक
६ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३०१
७ वही, पृ० ३९१

ऐतिहासिक विवेचन : जून १६७२ ई० में शाहजादा मुअज्जम की जगह पर बहादुरखाँ दक्षिण का हाकिम नियुक्त हुआ। शाहजादा और महाबतखाँ दोनों उत्तर में बुला लिए गए।[1]

तथ्य इतिहास के अनुकूल हैं।

महाराजा छत्रसाल बुन्देला के सम्बन्ध में ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत कम सामग्री मिलती है। उनकी वीरता के वर्णनों से कवित्त और सवैये रंगे हुए हैं।

४. २. ३. छत्रसाल बुन्देला

किन्तु किसी घटना पर विशेष विस्तार के साथ लिखा हुआ कुछ नहीं मिलता। महाराजा छत्रसाल बुन्देला ने मुगल सेनापतियों का सामना किया और उन्हें समय समय पर परास्त किया। इस तरह उन्होंने धीरे-धीरे अपना राज्य स्थापित कर लिया। कवि ने केवल उन प्रमुख सेनापतियों का नाम लिया है और कहा है कि छत्रसाल ने इन सब से लोहा लिया था। उल्लेख इस रूप में है—महाराज छत्रसाल ने तहव्वरखान को हराया, अनवरखाँ का घमण्ड युद्ध में दूर किया, सदरुद्दीन बह-लोल और अब्बुसमद उनसे डरकर भाग गए। शेर अफगन उनके द्वारा परास्त हुआ। मुहमद अमीखाँ की सेना और खजाने को छत्रसाल ने लूट लिया। मुहमदखाँ बंगश के साथ बुढ़ापे में युद्ध कर छत्रसाल ने उसे परास्त किया। बाजीराव पेशवे ने मुगलों के विरुद्ध छत्रसाल की सहायता की।[2] छत्रसाल के सम्बन्ध में यही ऐतिहा-सिक विवरण मिलता है।

तहवरखान हराय, ऐड़ अनवर कि जंग हरि।
सुतरुदीन बहलोल, गये अब्दुल्ल समद मुरि।
महमुद को मद मेटि, सेर अफगनहिं जेर किय।
अति प्रचंड भुजदंड, बलन केहीं न दंड दिय।
भूषन बुँदेल छत्रसाल डर रंग तज्यो अवरंग लजि।
झुक्के निसान सक्के समर (सो) मक्के तक्क तुरक्क भजि।[3]

और भी—

वैस बुढ़ापे की भूख बढ़ी गयौ बंगस बंस-समेत चबाई।
खाए मलिच्छन के छोकरा पै तऊ डोकरा कों डकार न आई।[4]

---

[1] शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० ६७

[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५१३, ५१४, ५१८ और ५३०

[3] वही, छं० सं० ५१३

[4] वही, छं० सं० ५१८

ऐतिहासिक विवेचन : तहव्वरखान—१६७६ ई० में राजपूताने में तब चल रहे मुगल-राजपूत युद्ध के समय औरंगजेब ने तहव्वरखान को छत्रसाल का दमन करने के लिए भेजा। तहव्वरखान ने सेना एकत्र कर सावर पर आक्रमण कर दिया। इस समय सावर में छत्रसाल के विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं किन्तु बुन्देलों ने तहव्वर खान का डटकर सामना किया। बुन्देलों के भयंकर आक्रमण ने तहव्वरखान को पीछे हटने पर विवश कर दिया। उसने दो बार और आक्रमण किया किन्तु दोनों ही बार उसकी हार हुई। अन्त में मुँह की खाकर उसे अपनी बची सेना के साथ भागना पड़ा।[1]

सदरुद्दीन—छत्रसाल ने नवम्बर १६७६ ई० के आसपास एरच और उसके आस-पास के इलाकों को लूटा। इसी समय उन्होंने धामोनी भी लूटा। यहाँ का स्थानीय फौजदार सदरुद्दीन कुछ नहीं कर सका। नाराज होकर औरंगजेब ने उसका मनसब कम कर दिया।[2]

अब्बुसमद—छत्रसाल के विरुद्ध बाद में अब्बुसमद को भेजा गया। वह सेना लेकर शादीपुर पहुँचा। बुन्देलों को उसने पराजित कर भगा दिया। किन्तु छत्रसाल इससे विशेष प्रभावित नहीं हुए। उनका आक्रमण यथावत् जारी रहा।[3]

शेख अनवर—बाद में महाराजा छत्रसाल की टक्कर शेख अनवर नामक एक शाही पदाधिकारी से खैरागढ़ में हुई जिसमें वह बुरी तरह पराजित हुआ और भागने का प्रयत्न करते समय बुन्देलों के हाथ बन्दी हुआ। शेख अनवर ने तब छत्रसाल को दो लाख रुपए दिए और किसी तरह मुक्त होने का प्रयत्न किया। खैरागढ़ के निकटवर्ती परगनों पर भी छत्रसाल का अधिकार हो गया।[4]

सदरुद्दीन एवं बहलोल—औरंगजेब ने छत्रसाल से बहुत परेशान हो जाने के बाद १४ अप्रैल १६८० ई० को धामोनी के फौजदार सदरुद्दीन को छत्रसाल का विद्रोह दबाने के आदेश भेजे। सदरुद्दीन ने पहले छत्रसाल को मुगलों की अधीनता स्वीकार कर लेने का सुझाव भेजा और ऐसा न करने पर भयंकर आक्रमण की धमकी दी। छत्रसाल ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। इसलिए अन्त में वह अपनी बड़ी सेना सहित छत्रसाल से युद्ध करने आया। भारी युद्ध हुआ।

---

1. **महाराजा छत्रसाल बुन्देला, डाक्टर भगवानदास गुप्त, पृ० ४८ और ४६ देखिए**
2. **वही, पृ० ५०**
3. **वही, पृ० ५१**
4. **वही, पृ० ५१**

श्री छत्रसाल बुन्देला

साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को

—भूषण

छत्रसाल स्वयं घायल हो गये। सदरुद्दीन के कई प्रमुख सेनानायक मारे गये। सदरुद्दीन स्वयं बन्दी हुआ। चौथ देने पर उसे छुटकारा मिला।[1]

शाही इलाकों पर छत्रसाल के लगातार आक्रमणों से बहलोलखाँ नामक एक अन्य सेनापति का क्रोध भड़क उठा और वह नौ हजार सैनिकों की सेना के साथ धामोनी से मुड़िया दुह की ओर बढ़ा........इस सेनापति के साथ छत्रसाल ने घोर युद्ध किया। बहलोल ठहर नहीं सका। चौथे दिन वह अपनी बची-खुची सेना लेकर लौट गया। इस युद्ध में बहलोल को कई घाव लगे थे, जिनके कारण शीघ्र ही धामोनी में उसकी मृत्यु हो गई। बहलोलखाँ के इस युद्ध के पश्चात् ही नवम्बर १६८० ई० के अन्त में छत्रसाल ने खिमलासा और गिरधल्ला लूटा।[2]

शेर अफगन—मार्च १६९९ ई० में राणोदे के फौजदार शेर अफगन ने छत्रसाल के विरुद्ध चढ़ाई की और वह छत्रसाल के सैनिक केन्द्र सूरजमऊ तक जा पहुँचा। यहाँ युद्ध में बुन्देले पराजित हुए और छत्रसाल ने इस समय किले में शरण ली। शेर अफगन ने भुना बरना के निकट छत्रसाल पर फिर आक्रमण किया। इस मुठभेड़ में ७०० बुन्देले मारे गए। मुगलों के भी कई सरदार काम आए। छत्रसाल घायल हो गए। वे भाग गए। अन्त में विजय छत्रसाल बुन्देले की ही हुई। युद्ध में एक गोली लग जाने से शेर अफगन छत्रसाल के हाथ में पड़ गए। भागते समय वे उसे उठा लाए। शेर अफगन की हालत बिगड़ते देखकर छत्रसाल ने उसके पुत्र जाफरअली को लिखा—'तुम्हारे पिता में बहुत ही कम जीवन शेष है। उसे वापिस ले जाने के लिये अपने सेवक भेज दो', पर शेर अफगन को ले जाने के लिये जाफर अली के सैनिक आए तब तक वह दूसरे लोक को प्रयाण कर चुका था।[3]

मुहम्मदखाँ बंगश—मुहम्मदखाँ बंगश अफगान था। वह इलाहाबाद का सूबेदार था। छत्रसाल के विरुद्ध इसे प्रारम्भ से सफलताएँ मिलीं। प्रथमतः छत्रसाल के साथ इस सेनापति का संघर्ष १७२०–१७२४ ई० तक चलता रहा। १७२४ ई० में इसने अपने १५००० सैनिकों के साथ छत्रसाल से युद्ध किया। बुन्देलों ने भी जमकर ६ मास तक उनका सामना किया। कुछ अन्य कारणों से बंगश ने युद्ध स्थगित कर छत्रसाल से सन्धि कर ली। और छत्रसाल से शाही प्रदेशों पर आक्रमण न करने का वचन ले वह चला गया।

१७२६ ई० में जब हिरदेशाह ने रीवाँ राज्य पर आक्रमण करके लगभग सम्पूर्ण बघेलखण्ड पर अधिकार कर लिया तो बंगश फिर दूसरी बार १७२६ ई० में

---

[1] **महाराज, छत्रसाल बुन्देला, डाक्टर भगवानदास गुप्त, पृ० ५२**
[2] **वही, पृ० ५३ और ५४**
[3] **वही, पृ० ६४**

बुन्देलों का दमन करने के लिये आया। यह संघर्ष १७२९ ई० तक चलता रहा। बुन्देलों की हार होने लगी। इस युद्ध में अन्त में बाजीराव पेशवे ने समय पर छत्रसाल की सहायता की। १२ मार्च १७२९ ई० को पेशवा बाजीराव के (प्रथम बाजीराव) नेतृत्व में मराठों की सेना बुन्देलखण्ड पहुँच गई। इससे बंगशों की विजय पराजय में परिणत हो गई।[1]

यद्यपि छत्रसाल के सम्बन्ध में कवि ने ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण नहीं दिया है किन्तु जिन मुगल सेनापतियों के नाम कवि ने दिये हैं, वे सब इतिहास के अनुकूल हैं। छत्रसाल का उनसे सामना हुआ था। अत: तथ्यों की दृष्टि से भूषण के कथन प्रामाणिक हैं।

भूषण ने बूँदी नरेश हाड़ा छत्रसाल के यश का भी वर्णन किया है। उन्हें दिल्ली की ढाल के रूप में स्मरण किया गया है। शाहजहाँ के बीमार होने पर

४. २. ४. छत्रसाल हाड़ा

राजगद्दी के लिये दारा और औरंगजेब में युद्ध हुआ तो इस समय हाड़ा छत्रसाल ने दारा का साथ दिया। स्वामीभक्त हाड़ा ने इस युद्ध में अपने प्राणों की बाजी लगा दी। लड़ते हुए वे मारे गए।

ऐतिहासिकता—सामूगढ़ का युद्ध मई १६५८ ई०, इस युद्ध में खेत रहने वाले वीर सेनापतियों में ५२ लड़ाइयों का विजेता बूँदी नरेश राव छत्रसाल हाड़ा विशेष उल्लेखनीय था। धरमत और सामूगढ़ की दो लड़ाइयों में हाड़ा राजा घराने के कुल मिलाकर कोई १२ राजपुत्र काम आए। अपने सैनिकों को लेकर इस वंश के प्रत्येक घराने के अधिपति ने युद्ध क्षेत्र में स्वामि-भक्ति का स्पष्ट प्रमाण दिया।[3]

तथ्य इतिहास के अनुकूल हैं।

शाहू से सम्बन्धित चार कवित्त मिलते हैं, जिनमें उसकी प्रशस्ति है। शाहू का प्रभाव उत्तर भारत में दूर-दूर तक फैला हुआ था। सक्खर, भक्खर और मकरान

४. २. ५. शाहू

नगर तक उसकी पहुँच है। एक ओर गंगा और दूसरी ओर गुजरात तक उसकी सेना पहुँचती है। वे स्वयं सितारा में रहते थे किन्तु उनके दल की धाक दूर-दूर तक थी। बलख बुखारा, मुलतान एवं काबुल तक उनके नाम की पहुँच है। निजामवेग (संभवत: निजामुल्मुल्क) ने इन्हें शुभ लग्न लिखकर भेजा अर्थात् आक्रमण

---

[1] महाराज छत्रसाल बुन्देला, डाक्टर भगवानदास गुप्त, पृ० ७५ से ९६ तक

[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५२०, ५२१ और ५२३

[3] औरंगजेब, यदुनाथ सरकार, पृ० ८९

के लिए उत्तेजित किया और तदनुसार शाहू ने अपना प्रभाव सर्वत्र फैलाया। दिल्ली सितारे की दुलहिन है अर्थात् दिल्ली सितारे से परास्त है।[१]

ऐतिहासिकता : शाहू का राज्याभिषेक १७०८ ई० में हुआ। उनकी राजधानी सातारा थी। शाहू का प्रभाव उत्तर भारत में दूर-दूर तक था। सम्राट् फर्रुखसियर को विपदकाल में सहायता करने की उत्कष्ट इच्छा से प्रेरित होकर ही शाहू ने पेशवा बालाजी विश्वनाथ को १७१८ ई० में सब से पहली बार सेना सहित दिल्ली रवाना किया था········१७१९ ई० में शंकरजी सैयद के प्रतिनिधि होकर सातारा आए। उसने शाहू के मन्त्रियों से सलाह की और पारस्परिक सहयोग की योजना बनाई और अपने मालिक के जरिये मराठों और सम्राट् के बीच एक रक्षात्मक सन्धि का प्रस्ताव रखा। इस तरह उसने अन्त में शाहू को तीन बड़ी सनदें दिला दीं—स्वराज्य की सनद, चौथ की सनद और सरदेशमुखी की सनद। पहले तो पेशवा से इन दोनों की प्रतिज्ञा करवा दी गई और बाद को दिल्ली में १७१९ ई० में सम्राट् फर्रुखसियर द्वारा इनकी पुष्टि करा दी गई········१७२९ ई० में बाजीराव ने गिरिधर बहादुर, दयाबहादुर और मुहम्मदखाँ बंगश के विरुद्ध जो सफलताएँ प्राप्त कीं, उनसे सम्राट्, उसके दरबारियों तथा राजपूत राजाओं को ऐसा जबरदस्त धक्का लगा कि सरकार की ओर से मराठा सरदारों की यथार्थ शक्ति एवं इरादों का पता लगाने के लिए राजदूत सातारा में मराठा राजा के पास विशेष रूप से भेजे गए।[२]

१७२८ ई० में निजाम के साथ पालखेड़ में बाजीराव की मुठभेड़ हुई। यहाँ बाजीराव ने अपनी विपक्षी के ऊपर चौथ और सरदेशमुखी लगाई और उसे कम से कम कुछ वर्षों के लिये ठीक कर दिया।[3]

शाहू का प्रभाव उत्तर भारत में दूर-दूर तक फैला हुआ था यह तथ्य इतिहास के अनुकूल ही है।

अन्य राव-राजाओं में बाजीराव[४] सलंकी,[५] अवधूतसिंह,[६] जयसिंह,[७]

---

[१] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५२६, ५२७, ५२८ और ५२९

[२] मराठों का इतिहास, सरदेसाई, पृ० ९४ से १०८ तक

[३] वही, पृ० १०७

[४] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५३० और ५३१

[५] वही, छं० सं० ५३२

[६] वही, छं० सं० ५३३

[७] वही, छं० सं० ५३४

रामसिंह,[१] अनिरुद्धसिंह,[२] रावबुद्ध,[३] कुमाऊँ-नरेश,[४] गढ़वाल-नरेश,[५] दाराशाह[३] और भगवन्तराय[७] हैं। कवि ने इन राव-

४. २. ६. अन्य राव-राजा राजाओं की प्रशस्ति में एक-एक दो-दो छन्द लिखे हैं। इनमें ऐतिहासिक दृष्टि से कोई विवरण नहीं मिलता। कुमाऊँ-नरेश और गढ़वाल नरेश के तो कवि ने नाम भी नहीं दिए हैं। इन प्रशस्तियों में कवि का एक ही लक्ष्य है और वह है हिन्दू-धर्म की रक्षा में जिसने कुछ किया है, उसकी प्रशस्ति गाना। इन छन्दों में अनेक संदिग्ध हैं और विवरण पीछे दिया गया है।

४. ३. निष्कर्ष

भूषण की वाणी अपने नायक शिवाजी और छत्रसाल बुन्देला की यशोगाथा लिखने में थकती नहीं। उन्होंने अपने नायक से सम्बन्धित प्रमुख घटनाओं पर ही विस्तार से लिखा है, यह विस्तार भी विवरणात्मक या वर्णनात्मक न होकर संश्लिष्ट रूप में हुआ है। एक ही घटना पर अनेक कवित्त और सवैये लिखे गये हैं और कुछ के केवल उल्लेख मात्र हैं। किन्तु जो भी ऐतिहासिक चित्र काव्य में चित्रित हुआ है, वह सत्य है—स्थल और नाम, दोनों दृष्टि से। भूषण ने सन् संवत् नहीं दिया है। कुछ ऐतिहासिक उल्लेख तो ऐसे हैं, जो ऐतिहासिक ग्रन्थों में नहीं मिलते किन्तु तत्कालीन कवि परमानन्द के शिवभारत काव्य में मिल जाते हैं। यदुनाथ सरकार ने भूषण के काव्य को ऐतिहासिक दृष्टि से अनुपयोगी माना है।[८] इसका कारण यही है कि इतिहास उसमें बिखरा हुआ है। ऊपर इतिहास का जो रूप खड़ा किया गया है उसकी तुलना ऐतिहासिक ग्रन्थों से की गई है। इसे देख लेने से स्पष्ट हो जाता है कि भूषण का काव्य इतिहास से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाला है। जिन विद्वानों ने भूषण के काव्य का अध्ययन इस दृष्टि से किया है, उन्होंने भूषण के काव्य की ऐतिहासिकता को प्रामाणिक रूप में स्वीकारा है। इस दृष्टि से प्रामाणिक मानने वाले

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द संख्या ५३५

२ वही, छन्द संख्या ५३६

३ वही, छन्द संख्या ५३७ और ५३८

४ वही, छन्द संख्या ५३९

५ वही, छन्द संख्या ५४०

६ वही, छन्द संख्या ५४३

७ वही, छन्द संख्या ५४४ और ५४५

८ "हिन्दी में हमें भूषण ग्रन्थावली मिलती है, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से वह किसी भी काम की नहीं है। इतिहासकारों ने खोज के बाद यह निश्चित कर दिया है कि शिवाजी की मृत्यु के कोई दो वर्ष बाद भूषण का जन्म हुआ था।"
— शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० २११

विद्वानों में पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र,[१] श्री शं० ना० जोशी[२] एवं डा० टीकमसिंह तोमर[३] हैं।

भूषण की दृष्टि अपने नायकों पर अत्यधिक केन्द्रित है, यहाँ तक कि वह नायकों के अन्य सहयोगियों और परामर्शदाताओं को भूल ही जाता है। उनकी आँखों के आगे सदैव छत्रपति शिवाजी या छत्रसाल बुन्देला ही घूमते रहते हैं। छत्रसाल बुन्देला की तुलना में कवि ने छत्रपति शिवाजी पर ही अधिक लिखा है। शिवराज भूषण ग्रन्थ के अलंकारों के सारे उदाहरण शिवाजी पर ही घटित किये गये हैं। छत्रसाल पर उनकी दृष्टि बाद में गई। ऐतिहासिक दृष्टि से भी छत्रसाल का काल शिवाजी के बाद ही आता है। शिवाजी से प्रेरित होकर ही छत्रसाल ने उत्तर में अपना राज्य स्थापित किया था।[४]

एक शंका मन में उठती है कि जहाँ भूषण विरोधी दल के सेनानायक और परामर्शदाताओं के नामों का प्रामाणिक रूप में उल्लेख करते हैं, वहाँ वे अपने नायक के पक्ष के नामों को क्यों भुला देते हैं ? जहाँ अफजलखान, खवासखान, शाईस्तखान, नौशेरीखान, कारतलबखान, बहादुरखान, दिलेरखान, फतेखान, तहव्वरखान, अब्बुसमद, सदरुद्दीन, बहलोलखान, शेर अफगन, जयसिंह, जसवन्तसिंह, रामसिंह, अमरसिंह आदि अनेक नामों का उल्लेख उन व्यक्तियों के प्रसंगानुकूल घटनाओं के साथ कवि करता जाता है, वहाँ दादाजी कोण्डदेव, तानाजी मालुसरे, नेताजी पालकर, बाजीप्रभु, आदि अनेक नामों को वे क्यों भुला देते हैं ? शिवाजी की वंशावली अवश्य मिलती है, एक ओर माल-मकरन्द (मालोजी) और शाहजी का नाम है तो दूसरी ओर संभार्जा और शाहूजी का नाम भी है किन्तु शिवाजी के साथ कार्य करनेवालों में, उनके साथ कन्धे से कन्धा भिड़ानेवालों में से किसी भी व्यक्ति का नाम नहीं मिलता। किसी घटना में आवश्यक होने पर भी वहाँ भूषण ने किसी और का नाम न लेकर शिवाजी का ही नाम लिया है, मानो वे ही सब कुछ हैं— साधारण सिपाही, सेनापति, मन्त्री, और राजा भी। सिंहगढ़ की विजय का प्रसंग है किन्तु तानाजी का नाम नहीं है, उदयभानु का अवश्य है।[५] इसके उत्तर में हम इतना ही कह सकते हैं कि कवि की दृष्टि अपने नायक पर अत्यधिक केन्द्रित है और उसे सर्वत्र वे ही दिखाई देते हैं।

---

१ यद्यपि भूषण ने शिवाजी का चरित्र यथाक्रम नहीं लिखा तथापि उनकी रचना में ऐसे सूक्ष्म संकेत हैं जिनका इतिहास से पूरा साम्य है।
—भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १२४

२ सम्पूर्ण भूषण, पं० रामचन्द्र गोविन्द काटे, इस पुस्तक में श्री शं० ना० जोशी का लेख, "ऐतिहासिक उल्लेख परिचय" देखिए।

३ हिन्दी वीरकाव्य, डा० टीकमसिंह तोमर, पृ० २३७

४ महाराज छत्रसाल बुन्देला, डा० भगवानदास गुप्त, पृ० ३६, ३७

५ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ९२

पंचम अध्याय

भूषण की राष्ट्रीयता

भूषण की राष्ट्रीयता

५.१. राष्ट्र, राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय भावना

राष्ट्र शब्द से हमें जो बोध होता है उसके मूल में किसी देश की राजनैतिक एकता का भाव है। श्री नर्मदेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा है—"राष्ट्र के लिए एक निश्चित भूखण्ड का होना अनिवार्य है, जिसके आधार पर वह अपने राजनैतिक अस्तित्व का बोध करता है, उसके अपने आन्तरिक लगाव का अनुभव करता है, इसी को केन्द्र मानकर भाषा, धर्म, संस्कृति, आर्थिक-सामाजिक और शासकीय व्यवस्था का राष्ट्रीय स्तर निर्माण होता है। इन सबके मूल में एकीकरण की भावना प्रधान होती है। इस प्रकार प्राकृतिक भौगोलिकता, एक इतिहास, एक भाषा, समान साहित्य और संस्कृति एवं समान मैत्री अथवा शत्रुता इन पाँचों सिद्धान्तों पर एक मत रहने की इच्छा से संगठित जनसमूह को राष्ट्र कहते हैं।"[1] राष्ट्र के सम्बन्ध में ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह आधुनिक राजनैतिक विचार-धारा का परिणाम है। आज भी अनेकों राष्ट्रों के साथ यह परिभाषा ठीक नहीं है क्योंकि ये राष्ट्र राजनैतिक रूप से जाग्रत नहीं हुए हैं। किन्तु जो जाग्रत हुए हैं वहाँ इस प्रकार की विचारधारा का विकास हो रहा है। विश्व के इतिहास में इस प्रकार की भावना का उदय सर्वप्रथम फ्रांस की राज्यक्रान्ति के समय हुआ। इसी क्रान्ति ने स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व का पाठ विश्व को पढ़ाया। तब से यूरोप का राजनैतिक मानचित्र बदलता ही गया। भारत में इस प्रकार की विचार-धारा का विकास १८५७ ई० की क्रांति के बाद ही हुआ है। इस राष्ट्रीयता ने तब से अनेक मोड़ लिए हैं। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि शृंखलाओं से जूझते हुए यह राष्ट्रीयता की भावना पनपती रही है और इसी के अनुसार हमारी धारणा और अभिव्यक्ति के रूप भी बदलते रहे हैं।

राष्ट्रीय एकता में राजनैतिक एकता का भाव है। यह भाव भावात्मक एकता पर आधारित है। यह भाव कई रूपों में अभिव्यक्त होता है। सब से प्रथम

---

[1] राष्ट्र की उत्पत्ति और भारतीय राष्ट्रीयता।
—श्री नर्मदेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, त्रिपथगा, जनवरी १९६२, पृ० २५

भौगोलिक एकता का भाव है। राष्ट्र का अस्तित्व किसी न किसी भूखण्ड पर ही होगा। इस निश्चित भूखण्ड के प्रति अनुराग, श्रद्धा और भक्ति का भाव रखना राष्ट्रीय भावना का द्योतक है। गंगा, यमुना और हिमालय के प्रति भारतीय जनता में जो रागात्मक भाव हैं, वह उनके क्षेत्र से सम्बन्ध रखने वाले राष्ट्रीय भाव ही है। 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" जो कहा गया है, उसमें भौगोलिक एकता का भाव ही है। यहाँ भावना वस्तुगत है। इसी से कहा जा सकता है कि राष्ट्र की कल्पना भावगत और वस्तुगत दोनों हैं।

देश प्रेम के साथ देश की भाषा के प्रति रागात्मक भाव का रहना स्वाभाविक है क्योंकि व्यक्तियों को एक सूत्र में भावात्मक रूप में बाँधने का कार्य भाषा ही कर सकती है। उसी के द्वारा देश की सभ्यता और संस्कृति का परिरक्षण होता है। इस प्रेम को प्रदर्शित करना राष्ट्रीय भावना को प्रदर्शित करना है। "एक राष्ट्रभाषा हो हिन्दी, एक हृदय हो भारत जननी" यह कथन राष्ट्र में भाषा का क्या स्थान होता है, इसे स्पष्ट करने वाला है। आज संसार में अनेकों राष्ट्र ऐसे हैं, जहाँ एक से अधिक भाषाओं का व्यवहार होता है। स्वयं भारतीय संविधान ने १४ भाषाओं को स्वीकार किया है। भाषा सम्बन्धी समस्या देश में अब भी बनी हुई है और इसका हल इतना सरल नहीं है। इस पर भी राजनैतिक काम-काज के लिए भाषा सम्बन्धी एकता को स्थापित करने और भावात्मक एकता को बनाए रखने की दृष्टि से हिन्दी को यह पद प्राप्त हुआ है। यहाँ इतना ही कहना अभिप्रेत है कि भाषा का राष्ट्रीय चेतना में महत्वपूर्ण स्थान होता है।

राष्ट्रीय भावना एक सूक्ष्म दृढ़ रागात्मिका वृत्ति है। अहं से उठकर समष्टि के हित की ओर बढ़ने की भावना इस वृत्ति में है। इस प्रकार की आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक भावना बाह्य साधनों और सुरक्षा का प्रबन्ध करने वालों से पूर्णतया अभिव्यक्त नहीं हो सकती। राष्ट्रीय भावना का आधार आध्यात्मिक रूप से जाग्रत रहना है। इस प्रकार की भावना ही समष्टि की पूरी कल्पना करा सकती है। सामूहिकता का भाव इसमें है। राष्ट्र का आधार अनेक स्थानों पर जातिगत भावना रही है। मैक्विर के अनुसार राष्ट्रवाद का आधार "कम्यूनिटी सेंटीमेंट" अर्थात् जातिगत भावना है। मैक्विर के अनुसार यह कहा जा सकता है कि जब सांस्कृतिक और आध्यात्मिक भावनाओं के एकीकरण की नैतिक अभिव्यंजना होती है तभी राष्ट्रीय भावना प्रस्फुटित होती है। इसके लिए देश की समस्त जनता को एक दिशा में सोचना, विचारना और सर्व सामान्य प्रश्नों का हल खोजना आवश्यक है।[१]

---

[१] "Communities for all their external marks are not objective things, they are spiritual realities."

—प्रस्तुत उद्धरण मैक्विर की सोसायटी पुस्तक का है। इसे "राजनीति और दर्शन"—डाक्टर विश्वनाथप्रसाद वर्मा की पुस्तक से उद्धृत किया गया है।

धर्म का राष्ट्रीय भावना से गहरा सम्बन्ध है। सच तो यह है कि धर्म की एकता की भावना ने ही भारतीय संस्कृति को अब तक जीवित रखा है। धर्म नैतिक कर्तृत्व का जनक है और धार्मिक नियमों का नैतिक अनुवर्तन वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन को संगठित तथा शक्तिशाली बनाता है। "मानव को क्षुद्रता तथा स्वार्थ के अतिक्रमण का संदेश तथा विशाल वृत्तों से तादात्म्य प्राप्त करानेवाला कर्मयोग का सन्देश भी धर्म से हो प्राप्त होता है। जब धर्म अहंभावोत्क्रमणकारी आत्मप्रसारणात्मक कर्मयोग का उपदेश देता है तब राष्ट्रवाद का वह व्यापक धरातल प्रस्तुत करता है। राष्ट्रवाद का अर्थ है विशाल समष्टि के साथ संसर्जनात्मक तादात्म्य। इस प्रकार का तादात्म्य तभी संभव है जब हम क्षुद्रता का अतिक्रमण करें। जब देश के सम्मान और उसकी गरिमा की रक्षा के लिए युद्ध-क्षेत्र में नवयुवक अपने प्राणों का उत्सर्ग करता है, तब वह धार्मिक यज्ञ का अनुष्ठान कर रहा होता है। इस प्रकार समष्टि हित की संसिद्धि के लिए आत्म-बलिदान की शिक्षा देकर धर्म राष्ट्रीय उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। जब इस आत्म-बलिदान की भावना का अभाव हो जाता है, तब जाति राक्षसिकता, तामसिकता से ग्रस्त होकर अवनति की ओर वेग से अग्रसर होती है............धर्म जातीय संस्कृति का परिरक्षण कर राष्ट्रवाद का ठोस आधार पुष्ट करता है।"[1] आक्टन ने धार्मिक भावना को राष्ट्रीय भावना से व्यापक माना है। उसके अनुसार राष्ट्रवाद विनाशकारी सिद्धान्त है। क्योंकि वह मानवतावाद का विरोधी है।

धर्म के सम्बन्ध में एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि राष्ट्रीय भावना में धर्म का अर्थ व्यापक मानव-धर्म से है, जो सामूहिक उत्थान और सामूहिक विकास में विश्वास करता है। मजहब और फिरके आदि से संकुचित अर्थ के रूप में इसको नहीं लेना चाहिए।

भौगोलिक एकता, भाषा सम्बन्धी एकता, सांस्कृतिक एकता और धार्मिक एकता ये सब राष्ट्रीय भावना को पुष्ट करनेवाले विविध रूप हैं। वास्तव में ये सब राष्ट्रीयता की भूमिका प्रस्तुत करते हैं। इसी भूमिका के आधार पर राजनैतिक रूप से जब कोई देश एकता के सूत्र में बद्ध हो जाता है, तो वहाँ राष्ट्रीय भावना प्रबल हो जाती है। राजनैतिक एकता की महत्ता भी कम नहीं है।

राजनैतिक एकता ही अन्य प्रकार की एकताओं का संरक्षण करती है। एच० जी० वेल्स ने कहा है कि राष्ट्र को हम एक ऐसा समूह, संगठन या जमघट कह सकते हैं, जो विदेशी मामलों में एक होकर रहना चाहता है। वह सामूहिक रूप से अपनी आवश्यकताओं, इच्छाओं और गौरव को साधारण मानवीय भलाई की

---

[1] **राजनीति और दर्शन, डा० विश्वनाथप्रसाद वर्मा, पृ० २२१**

तुलना में अधिक महत्वपूर्ण समझता है।[१] उक्त कथन आज की दृष्टि से सत्य है क्योंकि राष्ट्रीयता का बोध अब इसी रूप में हो रहा है। अठारहवीं शताब्दी तक राष्ट्रीय भावना का सम्बन्ध मूलतः सांस्कृतिक भावना से ही रहा है। राजनैतिक प्रधानता के अवसर पर स्वतंत्र राज्य की माँग करना राष्ट्र का आवश्यक कार्य हो जाता है। बहुत से राष्ट्र जो साँस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विकसित हुए हैं और जिन्हें राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं है, वे स्वतंत्रता की माँग करते हैं और अपनी संस्कृति के आधार पर एक होकर रहना चाहते हैं। तात्पर्य यह कि राष्ट्रीय भावना का सम्बन्ध सांस्कृतिक भावना से ही है। इस प्रकार की भावना में राजनीति का प्रवेश आधुनिक युग में हुआ है और वह भी उसकी सुरक्षा के लिए। मूलतः देश की राष्ट्रीय भावना सांस्कृतिक भावना से पुष्ट राजनैतिक एकता का भाव है, जिसका लक्ष्य सामूहिक उत्थान और कल्याण है।

५.२. भूषण की राष्ट्रीय भावना की पृष्ठभूमि

भूषण के काव्य को राष्ट्रीय काव्य कहा जा सकता है क्योंकि राष्ट्रीय-साहित्य की प्रायः सभी विशेषताएँ उस काव्य में मिलती हैं। किसी देश की राष्ट्रीय भावना का सम्बन्ध उस देश की भौगोलिक एकता, भाषा की एकता, सांस्कृतिक एकता, धार्मिक एकता और राजनैतिक एकता पर निर्भर करती है अतः किसी कवि की राष्ट्रीयता पर विचार करने से पूर्व उस देश विशेष की इन परिस्थितियों का अध्ययन कर लेना आवश्यक हो जाता है। फिर राष्ट्रीयता का सम्बन्ध देश की प्राचीन संस्कृति से अधिक होता है। अतः इन सब का आकलन करने से पूर्व किसी कवि की राष्ट्रीयता पर विचार नहीं किया जा सकता। भूषण का युग सत्रहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। इस युग की राष्ट्रीय भावना पर प्राचीन भारत की राष्ट्रीय परम्परा का जो प्रभाव था, उसका अध्ययन कर लेना भी एक प्रकार से आवश्यक है क्योंकि राष्ट्रीय साहित्य अतीत की संस्कृति का गुणगान ही नहीं करता बल्कि उसकी सुरक्षा का आग्रह भी करता है। अतः उस मूलभूत संस्कृति का विवेचन करना और प्राचीन भारत की विशेषताओं का दिग्दर्शन

---

[१] "We may suggest that a nation is in effect any assembly, mixture or confusion of people, which is either afflicted by or wishes to be afflicted by a foreign office of its own, in order that it should behave collectively as if its needs, desires and vanities were beyond comparison more important than the general welfare of humanity."

—*The Outline of History* by H. G. Wells, p. 992

करना भी आवश्यक है। इसी दृष्टि से भूषण की राष्ट्रीय भावना की पृष्ठभूमि नीचे दी जा रही है।

राष्ट्रीय भावना का उदय विश्व के इतिहास में सर्वप्रथम भारत में ही हुआ। राष्ट्र का सब से प्रथम उपादान है भौगोलिक सीमा का ज्ञान और उसके प्रति अनुराग। ये दोनों ही बातें हमें प्राचीन साहित्य में मिलती हैं, जो तत्कालीन राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करती हैं।

५. २. १ प्राचीन भारत की राष्ट्रीयता का स्वरूप

भारत में प्रायः सभी लोग देश की भौगोलिक एकता को स्वीकार करते थे। राधाकुमुद मुकर्जी ने लिखा है—"एक जाति के रूप में भारतवासियों ने अपने मातृदेश के भौतिक व्यक्तित्व को बहुत पहले अनुभव कर लिया था। उन्हें वह आवश्यक मूर्त्त आधार पहले ही प्राप्त हो चुका था जिस पर राष्ट्रवाद की भावना का निर्माण किया जा सकता था।"[१] भौगोलिक एकता का अनुभव करते हुए यहाँ के निवासी अपनी मातृभूमि से प्रेम करते थे। स्वयं अथर्ववेद में मातृभूमि के प्रति ६३ भावुकतापूर्ण प्रार्थनाएँ हैं। देशानुराग देश भक्ति की भावना तो थी ही इसके साथ-साथ इस देश के निवासियों में आत्मसम्मान का भाव भी था। राष्ट्रीय भावना में आत्मसम्मान का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यही भावना उनमें और भावनाओं को बल देती है। राधाकुमुद मुकर्जी मनुस्मृति का आधार देते हुए लिखते हैं—"हिन्दू अपने अन्तस्तल में यह विश्वास करते हैं कि उनका देश ईश्वर द्वारा विशेष रूप से चुना गया देश है, जहाँ लोग अन्तिम मोक्ष के योग्य बनने के लिए पैदा होते हैं। यह उस विषय में राष्ट्रीय विश्वास को निरूपित करती है और मनुस्मृति का वह सन्दर्भ काव्य का रूपक मात्र नहीं है बल्कि सारे देश में व्याप्त और गहराई से अनुभव की जाने वाली राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति है। मातृभूमि को उसके सन्तान सब जगह स्वर्ग से भी अधिक पवित्र और स्वयं देवताओं के निवास के योग्य समझते हैं।"[२]

प्राचीन काल का भारत वर्णाश्रम की व्यवस्था में विश्वास करने वाला था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब के अपने-अपने कर्म निश्चित थे। समाज व्यवस्था इसी प्रकार की थी। सामाजिक और धार्मिक नियमों के विधाता ब्राह्मण लोग थे और ये इस मामले में राजा महाराजाओं का हस्तक्षेप नहीं चाहते थे। राजा महाराजा उनकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखते थे। राजा का धर्म ब्राह्मणों की सेवा करना व उन्हें इच्छित वस्तुएँ देकर प्रसन्न करना था। ऐतरेय ब्राह्मण में (ऐ० ब्रा०, ८, १) कहा गया है कि जो नृपति ब्राह्मणों की श्रेष्ठता स्वीकार नहीं करेगा वह नष्ट हो जायगा। ऐसी स्थिति में यह माना जा सकता है कि समाज में

---

१ **हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद, राधाकुमुद मुकर्जी, पृ० ४८**

२ **वही, पृ० २८**

यह वर्ग शक्तिशाली था। सामाजिक विधान के बनानेवाले और धर्मशास्त्र के रचयिता यही लोग थे। इस काल की राष्ट्रीय भावनाओं को पुष्ट करने में इस वर्ग का महत्वपूर्ण योग रहा। समाज के सभी वर्गों के द्वारा इनका आदर होता था। ये एक राज्य से (इन दिनों के राज्य छोटे-छोटे होते थे। महाभाष्य में निम्न देशों के नाम आये हैं—अजमीढ़, अंग, अम्बष्ठ, अवन्ति, इक्ष्वाकु, उशीनर, ऋषिक, कडेर, कलिंग, कश्मीर, काशि, कुन्ति, कुरु, केरल, कोशल[1]........आदि-आदि) दूसरे राज्य में जाते और सब जगह दान-दक्षिणा पाते थे। प्रायः ये लोग धर्म का प्रचार करते, अध्ययन और अध्यापन का काम करते या वैयक्तिक साधना। इस वर्ग ने धर्म के आधार पर भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना के विकास में अपना योग दिया है।

प्राचीन भारत की राष्ट्रीय भावना में धर्म का तत्त्व ही प्रबल था। फिर ये धर्म हिन्दू हो, बौद्ध हो या जैन (उन दिनों भारत के यही प्रमुख धर्म थे। इनमें हिन्दू धर्म का स्थान अधिक महत्वपूर्ण था। राजा महाराजाओं द्वारा इन धर्मों को प्रश्रय मिलता था। विश्वामित्र के आदेश पर महाराजा दशरथ को अपने लाड़ले राम को उनके साथ भेजना पड़ा। वशिष्ठ की आज्ञा से राजा दशरथ कार्य करते थे। ईश्वरसिंह वैस ने लिखा है—"प्राचीन भारत का राजा सामाजिक व धार्मिक संस्थाओं की मुहर मात्र होता था। किसी भी सुधार या मान्यताओं की स्थापना राजा के हाथ में नहीं होती थी और न ही यह राज्य के कार्यक्षेत्र में शामिल होती थी।"[2]

राजनैतिक दृष्टि से भारत एक न होने पर भी सांस्कृतिक दृष्टि से एक था। बात यह थी कि भारतीय संस्कृति ने राजनैतिक भावना को उतना अधिक महत्त्व नहीं दिया (जितना आज दिया जा रहा है)। धर्म और संस्कृति के सम्बन्ध में भारत का दृष्टिकोण प्रारम्भ से ही बड़ा व्यापक रहा है। जीवन में उन्हीं का महत्त्व है। भारतीय जनता इस लोक की अपेक्षा परलोक की या मुक्ति की अधिक चिन्ता करती आई है। जीवन के विश्वासों के आधार भौतिकता की तुलना में आध्यात्मिकता के अधिक रहे हैं। इसी से उपनिषदों की रचना भारत में सम्भव हो सकी। राधाकुमुद मुकर्जी ने ठीक ही लिखा—"भारत का भारतवासियों की मातृभूमि के रूप में विकास ब्रह्माण्ड के उस प्रक्रम के अनुसार ही हुआ है, जो ब्रह्म को घट में और घट को ब्रह्म में प्रकट करता है। यहाँ कोई ऐसी संकीर्ण संस्कृति नहीं है जो सार्वभौमिकता

---

[1] धर्मशास्त्र का इतिहास, डा० पांडुरंग वामन काणे, (हिन्दी समिति प्रकाशन), पृष्ठ ६४, —उक्त पुस्तक में इनके अतिरिक्त प्राचीन भारत के अनेक राज्यों के नाम दिए हुए हैं।

[2] प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, ईश्वरसिंह वैस, सरिता, फरवरी १९६२, पृ० ७६

से रहित हो और न कोई ऐसी कल्पित संस्कृति है जो आश्रयहीन और इसीलिए निष्फल हो।"[१]

भारत की भौगोलिक एकता का उल्लेख पुराणों में है। भारतवर्ष हिमालय और दक्षिणी समुद्रों के मध्य के सारे भूभाग को बताया गया है। इस देश भर में जगह-जगह तीर्थ स्थान हैं। यह यहाँ की जनता के धार्मिक उत्साह का परिणाम है। मुकर्जी ने लिखा है—"तीर्थयात्रा की संस्था अन्ततोगत्वा मातृ-भूमि के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति है, यह देश की पूजा की लाक्षणिक हिन्दू रीतियों में से एक है।"[२] तीर्थ स्थानों का जाल भारत भर में उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम चारों ओर फैला हुआ है। ये इस बात का द्योतक है कि भारत की जनता अपनी मातृभूमि के प्रति पूज्य भाव रखती थी। धार्मिक पुण्य, आध्यात्मिक लाभ के साथ-साथ स्थान-प्रेम भौगोलिक महत्त्व की दृष्टि और कलात्मक अभिव्यक्ति के तत्व भी इसके कारणीभूत हैं।

राष्ट्रीय भावना के प्रसार में, राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति में धर्म और संस्कृति के परिरक्षण में भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत भाषा भारतीय भाषाओं की जननी है और यही संसार की सर्वप्रथम समृद्ध भाषा है। इस भाषा के साहित्य में भारतीय राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति हुई है। भारतीय दृष्टि से धर्म, अर्थ काम और मोक्ष जीवन के लक्ष्य माने गये, इनमें से प्रत्येक विभाग का अपना अपना साहित्य विकसित हुआ है। संस्कृत भाषा केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, विचार विनिमय वाणिज्य-व्यवसाय की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण रही। इसे साहित्यिक, धार्मिक महत्त्व तो प्राप्त था ही, लौकिक महत्त्व भी प्राप्त था। इसमें जो कुछ लिखा गया, वह देश भर में प्रामाणिक माना गया। संस्कृत की प्रामाणिकता पर आज भी भारतीय जनता की आस्था है। इस भाषा की महत्ता का ज्ञान इससे भी किया जा सकता है कि भारत की आधुनिक भाषाओं में तमिल को छोड़कर अन्य सभी भाषाओं में संस्कृत की गहरी जड़ें जमी हुई हैं। एक दृष्टि से यदि इन भाषाओं में से संस्कृत को हटा दिया जाय तो इनका अस्तित्व क्या रहेगा ? संस्कृत के बाद प्राकृत भाषाओं और तत्पश्चात अपभ्रंश एवं देशी भाषाओं ने भी संस्कृत से शक्ति प्राप्त कर देश की परम्परा को बनाए रखने में एवं राष्ट्रीय भावना के वहन में अपना योग दिया है।

प्राचीन भारत की राष्ट्रीय भावना की विशेषताओं को अब संक्षेप में इस प्रकार से कहा जा सकता है—

---

१ **हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद, राधाकुमुद मुकर्जी, पृ० ६०**

२ **वही, पृ० ७६**

(१) भौगोलिक एकता की अनुभूति राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक में थी।

(२) भारत भूमि के प्रति अनुराग, श्रद्धा और भक्ति का भाव यहाँ के निवासियों में था और साथ ही उससे सम्बद्ध होने के कारण आत्माभिमान का भाव भी।

(३) राष्ट्रीय दृष्टि से धर्म और संस्कृति का स्थान राजनीति से ऊँचा था। एक प्रकार से राजा लोग इसके संरक्षक मात्र थे।

(४) तीर्थ स्थानों की संस्था भारत की राष्ट्रीय भावना की मूर्त्त और सजीव अभिव्यक्ति रही जिसमें आत्मकल्याण, मानवमात्र के कल्याण के साथ-साथ देशानुराग और भौगोलिक-एकता का भाव भी निहित था।

(५) राष्ट्रीय भावना के परिरक्षण और प्रसारण में संस्कृत भाषा का महत्त्व पूर्ण योग रहा और इसके पश्चात् इसी की परम्परा में चलने वाली प्राकृत और अपभ्रंश भाषा ने भी समयानुसार अपने उत्तरदायित्व को संभाला।

प्राचीन काल की राष्ट्रीय भावना में समय और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन हुआ। यद्यपि राष्ट्रीय भावना के मूल तत्त्व वही रहे किन्तु उस पर राजनीति का रंग धीरे-धीरे चढ़ने लगा। यवनों, शकों-कुषाणों, हूणों-किरातों, अरबों-तुरकों तथा मुगलों के क्रम-क्रम से आक्रमण इस देश पर होते रहे। ये आक्रमण भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से हुए और इनकी प्रतिक्रिया भी भिन्न-भिन्न रूपों में हुई जिसके विस्तार में जाने की यहाँ आवश्यकता नहीं है।

५. २. २. मध्यकालीन राष्ट्रीय भावना का स्वरूप

यहाँ इतना ही कहना अभिप्रेत है कि इन आक्रमणों के फलस्वरूप जब-जब भी यहाँ की राष्ट्रीय भावना को हानि पहुँचने की आशंका हुई तब-तब उसके प्रतिकार की चेष्टा देश भर में हुई है। यह पहले ही कह दिया गया है कि अब तक राष्ट्रीय भावना में राजनीति का स्थान इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था। डाक्टर पाण्डुरंग वामन काणे ने भी इस संबंध में लिखा है—"धार्मिक दृष्टि से (राजनीतिक दृष्टिकोण से नहीं) सभी ग्रन्थकारों ने भारतवर्ष या आर्यावर्त के प्रति भावात्मक सम्बन्ध जोड़ रखा था और सारे राष्ट्र को एक मान रखा था, इस तथ्य को स्वीकार करने में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। आज हम 'राष्ट्रीयता' शब्द का जो अर्थ लगाते हैं, उसके अनुसार प्राचीन भारतीय राष्ट्रीयता में हम शासन सम्बन्धी अथवा राजनीतिक तत्त्व का अभाव पाते हैं।"[१] मध्यकाल में भी भारत में राष्ट्रीय भावना का स्वरूप प्रायः पुराना ही रहा। बाहर से होने वाले आक्रमणों के फलस्वरूप जो प्रतिक्रिया हुई वह सामाजिक,

---

[१] **धर्मशास्त्र का इतिहास, डा० पाण्डुरंग वामन काणे, (द्वितीय भाग), पृ० ६४२**

धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में ही हुई। इस प्रतिक्रिया का उद्देश्य केवल राष्ट्रीय भावना की सुरक्षा मात्र था। जब सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रतिक्रिया से बाह्य शक्ति को हटाना कठिन हो गया तब फिर देश को राजनीति की ओर ध्यान देने की आवश्यकता भी हुई। इस्लाम की गद्दी दिल्ली में दृढ़ता के साथ स्थापित हो गई थी। यद्यपि ये पहले राजनीतिक रूप से स्थापित हुई थी और जिसमें यहाँ की जनता ने विशेष आपत्ति नहीं मानी थी तथापि कालान्तर में इस गद्दी पर विराजने वाले कुछ बादशाह ऐसे भी हुए जिन्होंने यहाँ की राष्ट्रीय भावना के मूल-भूत तत्त्वों को हानि पहुँचाने की कोशिश की। अलाउद्दीन खिलजी इसी प्रकार का बादशाह था। बाद में औरंगजेब के समय में ये स्थिति चरमावस्था पर पहुँच गई। ऐसी स्थिति में सामाजिक और धार्मिक प्रतिक्रिया राजनीतिक शक्ति के अभाव में कुछ नहीं कर सकती थी अतः इस समय राष्ट्रीय स्तर पर राजनैतिक प्रतिक्रिया का होना युग की आवश्यक माँग या पुकार थी। इस प्रकार की प्रतिक्रिया मध्यकाल के इतिहास में सर्वप्रथम महाराष्ट्र में हुई और इसके नेता छत्रपति शिवाजी थे। इस प्रतिक्रिया में योग देने वाले बुन्देले, जाट, राजपूत, सिक्ख आदि भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित थे।

मध्यकाल में राजनैतिक व्यवस्था का मुख्य आधार व्यक्तिवादी निरंकुश राजतन्त्र था। ऐसी व्यवस्था में शासक ही राष्ट्र का भाग्य विधाता होता था। सारे अधिकार उसी में केन्द्रित रहते थे। उसकी दृष्टि यदि समन्वयवादी नहीं रहती तो शासक और शासित का सम्बन्ध शोषक और शोषित का रह जाता। औरंगजेब ने अपने अधिकारों का अनुचित लाभ उठाया और यहाँ की जनता के विश्वासों पर कुठाराघात किया। इन परिस्थितियों पर प्रथम अध्याय में प्रकाश डाला गया है। यहाँ केवल इन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया का उल्लेख किया जा रहा है। व्यक्ति-वादी राजतन्त्र पर भारत की जनता का विश्वास तो था ही, जिसमें दिल्ली का बादशाह तो ईश्वर के रूप में पूजा जाता था। वही भारत का सम्राट् कहलाता था। जनता की इस भावना की अभिव्यक्ति पण्डितराज जगन्नाथ द्वारा हुई है। उन्होंने अपनी पुस्तक भामिनी विलास में लिखा है—"दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा।" ऐसी स्थिति में छोटे-मोटे कारणों के होने पर प्रतिक्रिया देश भर में सम्भव नहीं थी। इस बड़ी शक्ति ने जब भारत की राष्ट्रीय भावना को हानि पहुँचाने का प्रयत्न किया तो उसकी प्रतिक्रिया देश भर में निम्न रूप में हुई।

औरंगजेब के पूर्व ही अकबर के शासनकाल से ही या उससे कुछ पूर्व ही भक्ति की लहर देश के कोने-कोने में फैल गई थी। सन्तों, साधुओं, आचार्यों और भक्तों ने देश को मध्यकाल में यह समझाने का प्रयत्न किया कि भारत सांस्कृतिक दृष्टि से एक है। शंकराचार्य का नाम इनमें प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। बाद में भक्तों ने केवल उत्तर में ही नहीं, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र आदि दक्षिणी भागों में

भी आचार्यों के इन विचारों को काव्य के माध्यम से जनता तक पहुँचाया । ज्ञान और भक्ति की तुलना में भक्ति को श्रेष्ठता का पद मिला । मानस के उत्तरकाण्ड और विनयपत्रिका में तुलसी ने इस पर विशेष प्रकाश डाला है । इसी तरह सूर का भ्रमरगीतसार भी भक्ति को महत्त्व देता है । इस काल में आते-आते औरंगजेब ने देश में जागी हुई—भगवद्भक्ति की दृष्टि से—जनता की भावनाओं पर कुठाराघात किया तो जनता पर इसकी प्रतिक्रिया हुई ही, सन्त समाज भी इससे आन्दोलित हुआ । उन्होंने भी यह अनुभव किया कि अब "हरि-स्मरण" से कुछ नहीं होगा । महाराष्ट्र में समर्थ रामदास ने दासबोध की रचना नए आलोक में युग की परिस्थितियों के अनुरूप की और पंजाब में गुरु गोविन्दसिंह ने नानक के दर्शन की व्याख्या इसी दृष्टिकोण से की । इन्होंने राजनैतिक जाग्रति को महत्त्व दिया और इसी दृष्टि से कर्त्तव्यों की व्याख्या की ।

यहाँ समर्थ रामदास के सम्बन्ध में लिखना उचित होगा क्योंकि इन्हीं के उपदेशों और आदर्शों का व्यवहृत रूप हमें छत्रपति शिवाजी में मिलता है, वे छत्रपति के गुरु थे । समर्थ रामदास का जन्म १६०८ ई० में हुआ और उनकी मृत्यु १६८२ ई० में हुई । समर्थ की मुख्य रचनाएँ—करुणाष्टक, लघुरामायण, पुराना दासबोध और दासबोध हैं । इनमें दासबोध उनकी श्रेष्ठ रचना है । इसके अतिरिक्त तीर्थाटन और धर्मोद्धार पर भी इनकी स्फुट रचनाएँ मिलती हैं । समर्थ ने तीर्थाटन देश भर में किया था । कहते हैं उत्तर भारत में आपने लगभग सात वर्ष तक निवास किया । हिन्दी की लोकप्रियता से आप प्रभावित थे । आपने इस भाषा के भविष्य का स्वप्न तभी देख लिया था । आपकी कुछ स्फुट रचनाएँ हिन्दी में भी मिलती हैं जिनमें भगवद्भक्ति और हिन्दू-मुस्लिम एकता का भाव है ।

समर्थ रामदास के दासबोध की विशेषताओं के सम्बन्ध में प्रो० भी० गो० देशपाण्डे ने लिखा है—"दासबोध में अन्य सन्तों के ग्रन्थों की अपेक्षा अध्यात्म के साथ समयानुकूल एवं आवश्यक व्यावहारिक, सामाजिक, राजनैतिक, क्षत्रियधर्म, उत्तमपुरुष, प्रयत्न, प्रारब्ध, स्वधर्मपालन, सयानपन, मूर्खता या जड़ता, निस्पृहता, चातुर्य, उत्तम काव्य के लक्षण इत्यादि जन जीवन सम्बद्ध विषयों का सरल और सुबोध वर्णन है जो पढ़ते ही बनता है ।[1] समर्थ ने राजनीति पर बहुत बल दिया । उन्होंने अनुभव कर लिया था कि जब तक राजनैतिक जाग्रति नहीं होगी तब तक धर्म और संस्कृति की रक्षा संभव नहीं है ।—"उनकी दृष्टि में राजनीति का अर्थ है सामाजिक प्रपंच, लोक व्यवहार और सामाजिक कार्य जिसमें आज की राजनीति पूरी समा जाती है । इसी अर्थ में आपने दासबोध में सत्ताईस स्थलों पर राजनीति का

---

[1] मराठी का भक्ति साहित्य, प्रो० भी० गो० देशपाण्डे, पृ० २०६

उल्लेख किया।"[1] राजनीति के क्षेत्र में वे उग्र प्रगतिशील थे। समर्थ के इस स्वप्न को शिवाजी ने चरितार्थ किया।

समर्थ रामदास ने जो क्रान्तदर्शिता दक्षिण में दिखाई, वही क्रान्तदर्शिता उत्तर में सिक्खों के दसवें गुरु गोविन्दसिंह ने दिखाई। आपका जन्म १६६६ ई० में हुआ और मृत्यु १७०८ ई० में हुई। तत्कालीन राष्ट्रीय नवोत्थान में आपने बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया। आपके समान पंजाब में उन दिनों कोई राजनैतिक नेता नहीं था। "गुरु गोविंद-सिंहजी धार्मिक नेता तो थे ही, साथ ही महान अपूर्व राष्ट्रीय भी थे....इन्होंने सिक्खों को बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार का अमृत पिलाया। इन्होंने आध्यात्मिक उप-देशों द्वारा सिक्खों के व्यक्तिगत अहंभाव को नष्ट कर दिया। इन्होंने सिक्खों के सम्मुख सेवा, त्याग और राष्ट्रप्रेम के आदर्श रखे।[2] श्री कनिंघम महोदय ने गुरु नानक की सफलता के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा है कि इसी प्रेरणा को बाद में गुरु गोविन्द-सिंह ने पल्लवित किया।—"यह सुधार नानक के लिए अवशिष्ट था। उन्होंने इसी आधार पर अपने सच्चे सिद्धान्तों का सूक्ष्मता से साक्षात्कार किया और ऐसे व्यापक सुधार से अपने धर्म की नींव डाली, जिसके द्वारा गुरु गोविन्दसिंह ने अपने देशवासियों का मस्तिष्क नवीन राष्ट्रीयता से उत्तेजित कर दिया और उन सिद्धान्तों को व्याव-हारिक रूप दिया कि छोटी और बड़ी जाति तथा उनके धर्म समान हैं। इसी भाँति राजनैतिक सुविधाओं की प्राप्ति में भी सभी की समानता है।"[3] इस सम्बन्ध में श्री रामधारीसिंह दिनकर लिखते हैं—"औरंगजेब की धर्मान्धता पर सब से विलक्षण टीका यह हुई कि उसके अन्याय से आहत होकर गुरु नानक का चलाया हुआ सिक्ख सम्प्रदाय, जो शान्त भक्तों का सम्प्रदाय था खुलकर सैनिकों का सम्प्रदाय हो गया।"[4]

कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि मुस्लिमों के आगमन के बाद प्रथम तो उत्तर भारत में राष्ट्रीय भावना का ह्रास हो गया—मुस्लिमों के दबाव के कारण। राष्ट्रीय प्रतिक्रिया पहले सामाजिक क्षेत्र में हुई। इसके प्रवर्तक कबीर आदि सन्त कवि थे। प्रतिक्रिया का दूसरा रूप सांस्कृतिक उत्थान का था। इसके मुख्य प्रवर्तक गोस्वामी तुलसीदासजी थे। कबीर ने एक प्रकार से अनुभव किया था कि मुसलमान अब विदेशी नहीं हैं, वे यहीं के हैं और उन्हें यहीं के होकर रहना चाहिए—यहाँ की

---

१ **मराठी का भक्ति साहित्य, प्रो० भी० गो० देशपाण्डे, पृ० २१७**

२ **श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन, डाक्टर जयराम मिश्र, पृ० २६, २७**

३ **हिस्ट्री ऑफ दी सिक्खस्, कनिंघम, पृ० ३८, ३६**
—(डा० जयराम मिश्र की पुस्तक से उद्धृत)

४ **संस्कृति के चार अध्याय, रामधारीसिंह दिनकर, पृ० ३६४**

राष्ट्रीय भावना को अपनाकर रहना चाहिए। इसी में उन्होंने देश का कल्याण समझा था। मुसलमानों में कुछ तो समन्वयवादी हुए जैसे अकबर किन्तु उनके द्वारा जब संकीर्ण मार्ग अपनाया गया तो देश में राजनैतिक जाग्रति की आवश्यकता का अनुभव कर कुछ प्रवर्तक खड़े हुए। समर्थ रामदास और गुरु गोविन्दसिंहजी ने इसी प्रकार की जाग्रति को महत्व दिया।

५. ३. भूषण की राष्ट्रीय भावना के आलम्बन

भूषण के काव्य में राष्ट्रीय भावना की जो अभिव्यक्ति हुई है, उसके मुख्य आधार उस युग के दो प्रमुख इतिहास प्रसिद्ध वीरनायक छत्रपति शिवाजी और महाराजा छत्रसाल बुन्देला हैं। उन्होंने युग में राष्ट्रीय भावना के जिस आदर्श रूप को अपनाया और अपने कार्यों द्वारा युग में चेतना जाग्रत की उसका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

छत्रपति शिवाजी का जन्म १६२७ ई० में महाराष्ट्र में हुआ। उन्होंने वहीं पर अपने राज्य की स्थापना की फिर भी उनकी दृष्टि में सम्पूर्ण भारतवर्ष एक था।

५. ३. १. राष्ट्रीय नेता छत्रपति शिवाजी

उनकी चेतना, उनका कर्म, उनका आदर्श एवं उनके विचार सभी राष्ट्रीय स्तर के थे। उन्होंने दिल्ली की उस महान् शक्ति का सामना किया, जिसने यहाँ की मूलभूत राष्ट्रीय भावना के आधारों को नष्ट करने का प्रयत्न किया और इस प्रयत्न में उन्हें सफलता भी मिली। उनकी सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि औरंगजेब कभी सुख की नींद नहीं सो सका।

तुलसी की राम राज्य की जो कल्पना थी और कलियुग की जिन विशेषताओं का उल्लेख उन्होंने किया था, कुछ इसी से मिलती जुलती कल्पना समर्थ रामदास की भी थी। उन्होंने भी औरंगजेब के अत्याचार का वर्णन कलियुग की विषमता के रूप में चित्रित किया है। वर्णाश्रम व्यवस्था फिर स्थापित होनी चाहिए, गौ, ब्राह्मण और तीर्थस्थानों की रक्षा होनी चाहिए एवं राज्य का भार क्षत्रिय को संभालना चाहिए, ये समर्थ के स्वप्न थे। छत्रपति शिवाजी भारत के इस प्राचीन राज्य पद्धति के और प्राचीन आदर्शों के पूरे समर्थक थे। भारतवर्ष के इतिहास में प्राचीनता का समर्थन करने वाला और उन आदर्शों के आगे नतमस्तक होकर उनका पालन करने वाला मुसलमानों के आगमन के बाद कोई राजा नहीं हुआ। वे क्षत्रिय थे। उनका वंश बप्पा रावल से चला आया है। सभासद बखर के परिशिष्ट में श्री वि० स० वाकसकर ने छत्रपति शिवाजी की वंशावली बप्पा रावल से दी है।[1] प्रसिद्ध इतिहासकार

---

[1] **सभासद बखर, सं० वि० स० वाकसकर, परिशिष्ट ३, पृ० ११३**

सरदेसाई ने भी उनके क्षत्रिय होने का दावा किया है।[1] क्षत्रिय वंश के अनुकूल छत्रपति शिवाजी का आचरण भी था। उन्होंने अपना गुरु समर्थ रामदास को बनाया। राज्य से भी बढ़कर वे अपने गुरु को मानते थे। कहते हैं कि एक बार शिवाजी ने अपना सारा राज्य, गुरु को भिक्षा में लिखकर दान दिया। समर्थ को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने उसे लौटाते हुए कर्त्तव्य पालन का उपदेश दिया।

शिवाजी की दृष्टि समस्त भारतवर्ष पर थी। सर देसाई का कथन है कि शिवाजी जयसिंह के अनुरोध से औरंगजेब से मिलने के लिए गए तो उसके पीछे उनका उद्देश्य और ही था। वे लिखते हैं कि—"शिवाजी की उत्कट इच्छा थी कि वे अपनी आँखों से देखें कि सम्राट और उसके दरबार की शान शौकत कैसी है? किन-किन बातों के कारण वे इतने शक्तिशाली हैं? और उन्हें अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्वयं किस तरह का आचरण करना चहिए।"[2] दूसरी बात यह है कि शिवाजी ने सब कुछ अपनी आँखों से देख यह अनुभव तो प्राप्त किया किन्तु वहाँ उन्हें बुरी तरह फँस जाना पड़ा। किसी प्रकार छुटकारा हुआ तो वे सीधे घर की ओर नहीं लौटे बल्कि लौटते हुए मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, प्रयाग, बनारस आदि बहुत से पवित्र स्थानों के दर्शन किये। एक प्रकार से उन्होंने देश का भ्रमण कर देश की परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त किया। इस भ्रमण के पीछे एक निश्चित योजना थी। सर देसाई लिखते हैं कि— 'इस बात से यह मालूम पड़ता है कि शिवाजी की योजना में एक अखिल भारतीय आन्दोलन शामिल था।"[3]

शिवाजी के राज्याभिषेक का कार्य वाराणसी के प्रसिद्ध वेदमूर्ति विद्वान गागाभट्ट द्वारा सम्पन्न हुआ। गागाभट्ट के सम्बन्ध में सभासद बखर का कथन है कि ये बड़े पंडित, चार वेदों के जानकार, छः शास्त्रों के योगाभ्यास से सम्पन्न, ज्योतिषी, मांत्रिक, सर्वविद्यानिपुण और कलियुगी ब्रह्मदेव थे।[4] ये स्वयं शिवाजी की कीर्ति सुनकर दक्षिण चले आए थे और इन्हीं की प्रार्थना से शिवाजी ने राज्याभिषेक परम्परानुसार करने का निश्चय किया था। गागाभट्ट का कहना था कि चार पादशाहियों को दबाने की शक्ति होने पर भी और अपने पास पौन लाख घोड़ा लष्कर होने पर भी, गढ़-कोटों के होते हुए भी सिंहासन का न होना शोभा नहीं देता। इसी से उन्होंने विधि-संस्कार के साथ यह कार्य सम्पन्न किया।[5] ध्यान देने की बात यह

---

1 मराठों का इतिहास, गोविन्द सखाराम सरदेसाई, पृ० ५८
2 वही, पृ० ७२
3 वही, पृ० ७३
4 सभासद बखर, सं० वि० स० वाकसकर, पृ० ७८
5 वही, पृ० ७८

है कि इतिहास में राज्याभिषेक का प्रसंग—प्राचीन परम्परा से सम्बन्ध रखनेवाला—दूसरा नहीं मिलता। डा० पाण्डुरंग वामन काणे ने अपने धर्मशास्त्र के इतिहास में राज्याभिषेक के प्रसंग में शिवाजी के राज्याभिषेक का उल्लेख किया है।[१] किसी और राजा के राज्याभिषेक का उल्लेख (मुसलमानों के आगमन के बाद) उसमें नहीं मिलता। ये स्वयं इस बात का प्रमाण है कि छत्रपति के द्वारा प्राचीन भारत की राष्ट्रीय परम्परा फिर से जीवित हो रही थी। सर देसाई ने छत्रपति के राज्याभिषेक के सम्बन्ध में लिखा है—"उन्होंने ठीक उत्तर वैदिक कालीन क्षत्रिय प्रथा के अनुसार सावधानी के साथ, बनारस के प्रसिद्ध भट्ट परिवार के एक पंडित के निर्देशन में अपना राज्याभिषेक बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न करवाया और उन सभी रीतियों तथा शान शौकत का अनुसरण किया जो अशोक, चन्द्रगुप्त अथवा हर्षवर्धन के समय पाई जाती थीं। शिवाजी के पूर्वज चित्तौड़ के क्षत्रिय वंश के थे, जो अपने को रामचन्द्रजी का वंशज मानते थे।"[२]

शिवाजी का नाम उन्हीं दिनों केवल महाराष्ट्र में ही नहीं उत्तर भारत और सुदूर दक्षिण में भी प्रसिद्ध था। मुगलों की ओर से जो सेनापति दक्षिण आये उन्हें तो उन्होंने हराया ही किन्तु जयसिंह के साथ सन्धि करने पर जब वे बादशाह से मिलने आगरा गये और वहाँ गोसलखाने में (एकान्त स्थल में, जहाँ उनकी भेंट निश्चित की गई थी) भी खुल्लमखुल्ला सम्राट् का विरोध किया। इस सम्बन्ध में सर देसाई का कथन है कि—"सर्व शक्तिमान् सम्राट् को खुल्लमखुल्ला ललकारना और बन्दीगृह में चमत्कारी ढंग से भाग निकलना—ये दो ही बातें ऐसी थीं जिनके कारण वे तुरन्त भारत भर में मुगल साम्राज्य के एक दुर्निवार शत्रु के रूप में प्रसिद्ध हो गये और यह समझा जाने लगा कि हिन्दू राष्ट्र की मुक्ति के लिए जरूर ही उन्हें ईश्वर की ओर से प्रेरणा मिली है।"[३]

शिवाजी का खुले रूप में वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार करना, राजगुरु के आदेशों को पालना, क्षत्रिय होने का दावा करना, ये सब बातें उनके राजनैतिक आदर्श को प्राचीन भारत की राष्ट्रीय भावना से सम्बद्ध करने वाली हैं और इसी के आधार पर ये निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनकी दृष्टि सम्पूर्ण भारत पर थी। जिन क्षेत्रों तक उनकी पहुँच नहीं हो सकी वहाँ पर भी इस आदर्श का, जो पालन करने वाले थे उनसे उन्होंने दोस्ती की।

मिर्जा राजा जयसिंह को शिवाजी ने एक पत्र लिखा था। पत्र काफी लम्बा है। उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—"ओ महाराज, यद्यपि आप एक बड़े क्षत्रिय

---

१ **धर्मशास्त्र का इतिहास, पांडुरंग वामन काणे, दूसरा भाग, पृ० ६१२**

२ **मराठों का इतिहास, गोविन्द सखाराम सरदेसाई, पृ० ६७, ६८**

३ **वही, पृ० ६२**

हैं तथापि अपनी शक्ति का प्रयोग बाबर के वंश की वृद्धि के लिए करते आए हैं और रक्तवर्ण वाले मुसलमानों को विजयी बनाने के लिए हिन्दुओं का खून बहा रहे हैं। क्या आप इस बात को नहीं समझ पा रहे हैं कि इस तरह से आप पूरे जगत के सामने अपनी कीर्ति को कलंकित कर रहे हैं! यदि आप मुझे जीतने के लिए आए हैं, तो मैं आपकी राह में अपना सिर बिछा देने के लिए तैयार हूँ, पर चूँकि आप सम्राट् के प्रतिनिधि होकर आए हैं, इसलिए मैं इस बात का निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि आपके साथ कैसा व्यवहार करूँ? यदि आप हिन्दू-धर्म की ओर से लड़ें तो मैं आपके साथ सहयोग करने और आपकी सहायता करने के लिए तैयार हूँ। आप वीर एवं पराक्रमी हैं। एक शक्तिशाली हिन्दू राजा की हैसियत से, आपके लिए सम्राट् के विरुद्ध नेतृत्व ग्रहण करना ही शोभा देता है। आइए हम लोग चलें और दिल्ली के ऊपर विजय प्राप्त कर लें। हमारा मूल्यवान रक्त अपने प्राचीन धर्म की रक्षा और अपने प्यासे पूर्वजों को सन्तुष्ट करने के लिए बहे। यदि दो दिल मिल सके तो वे कठोर से कठोर अवरोध को तोड़कर फेंक देंगे। मुझे आपसे किसी प्रकार की शत्रुता नहीं है और मैं आपके साथ लड़ने का इच्छुक नहीं हूँ। मैं आपके पास अकेले आने और भेंट करने के लिए तैयार हूँ। तब मैं आपको वह पत्र दिखाऊँगा जो मैंने शाईस्तखाँ की जेब से जबरदस्ती निकाल लिया था। यदि आप मेरी शर्तें स्वीकार नहीं करते तो मेरी तलवार उद्यत है।"[1]

भूषण के दूसरे नायक महाराजा छत्रसाल बुन्देला से छत्रपति शिवाजी की भेंट हुई थी। इतिहास में इस भेंट का प्रामाणिक रूप से उल्लेख हुआ है। कहते हैं

५. ३. २. शिवाजी और छत्रसाल

छत्रसाल और अंगद जयसिंह की सेना में (जो शिवाजी के विरुद्ध सम्राट् की ओर से दक्षिण जा रही थी) नियुक्त हो गए। वीरता प्रदर्शन के उपरान्त भी उन्हें सम्राट् की ओर से कोई मनसब नहीं मिला। पुरन्दर के घेरे में (मई १६६५ ई०) इन्होंने बड़ी वीरता दिखाई। बीजापुर के आक्रमण में भी (दिसम्बर १६६५ ई० से फरवरी १६६६ ई०) भाग लिया। किन्तु वे मुगलों से असन्तुष्ट हो गए। वे अनुभव करते थे कि उनकी सेवाओं का यथेष्ट पुरस्कार उन्हें नहीं मिला है। छत्रपति शिवाजी ने मुगलों के विरुद्ध जो सफलताएँ प्राप्त कीं उनसे भारत के हिन्दू अनुप्राणित हो उठे थे। छत्रसाल भी उनसे प्रभावित हुए। इसलिए शिकार का बहाना कर वे मुगल सेना से निकल भागे और दक्षिण पहुँच कर शिवाजी से उन्होंने भेंट की। इस भेंट के सम्बन्ध में डाक्टर भगवानदास गुप्त लिखते हैं कि—"छत्रसाल की प्रबल आकांक्षा शिवाजी के पास रहकर मराठों के स्वतन्त्रता संग्राम में योग देने की थी। परन्तु शिवाजी उनसे सहमत नहीं हुए। वे सारे भारत

---

[1] **मराठों का इतिहास, गोविन्द सखाराम सरदेसाई, पृ० ६९**

में हिन्दू पद पादशाही स्थापित करने के स्वप्न देख रहे थे, अत: महत्त्वाकांक्षी छत्रसाल को अपने यहाँ रहने देकर स्वराज्य के प्रयत्नों को दक्षिण तक ही सीमित रखना उन्हें अभीष्ट नहीं था। इसीलिए उन्होंने छत्रसाल को बुन्देलखण्ड लौटकर मुगलों के विरुद्ध वहाँ भी स्वतन्त्रता संग्राम कर स्वयं उसका नेतृत्व करने की मंत्रणा दी।"[1] गोरेलाल तिवारी ने भी इस भेंट का उल्लेख करते हुए छत्रपति शिवाजी द्वारा छत्रसाल बुन्देला को दिए गए उपदेश को इस प्रकार लिखा है—"हे पराक्रमी राजा, तुम अपने शत्रुओं का नाश करो, और विजय प्राप्त करो। अपने देश पर अधिकार करके फिर उस पर अपना राज्य जमाओ........जब तुम्हारे ऊपर मुगल लोग आक्रमण करेंगे तब मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। और तुम्हारे स्वतन्त्र होने का प्रण रखूँगा। जब-जब मुगलों ने मुझसे युद्ध किया, देवी भवानी ने मेरी सहायता की........सेना तैयार करो और मुसलमानों को बुन्देलखण्ड से मार भगाओ। सदा अपने हाथ में नंगी तलवार रखते हुए युद्ध के लिए तत्पर रहो। ईश्वर अवश्य ही तुम्हें विजय देगा। गो-ब्राह्मण का पालन करना, वेदों की रक्षा करना और समर भूमि में शौर्य दिखलाना ही क्षत्रियों का धर्म है। इसमें यदि मृत्यु हुई तो स्वर्ग मिलता है और यदि विजय हुई तो राज्य और अमर कीर्ति मिलती है। इसीलिए तुम अपने देश में जाकर विजय प्राप्त करो।"[2] सरदेसाई ने भी लिखा है—"बुन्देला राजा छत्रसाल उनके (शिवाजी के) मित्र थे, उनसे सलाह लेने के लिए दक्षिण आए थे। शिवाजी के आगरे से निकल भागने के बाद उत्तरी भारत के चारण और कवि विशेष रूप से उनके दरबार में आए और उनका संरक्षण प्राप्त किया। ये सारी बातें शिवाजी के कार्य की अखिल भारतीय प्रवृत्ति की ओर संकेत करती हैं।"[3] यहाँ पर सरदेसाई ने चारण और कवि उत्तर भारत से शिवाजी के दरबार में आए ऐसा कहा है। उनमें भूषण कवि भी हो सकता है। यह बात तो निश्चित रूप से कही जा सकती है कि भूषण शिवाजी के दरबार में शिवाजी के आगरे से लौटने के बाद ही आए।

छत्रसाल बुन्देला ने शिवाजी के पास से लौटकर उन्हीं आदर्शों का निर्वाह किया और जीवन भर मुगल शक्ति का विरोध करते रहे। अन्त में उन्होंने अपना राज्य भी स्थापित कर लिया। छत्रपति शिवाजी ने स्वयं राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग ही नहीं लिया बल्कि साथ-साथ अपने जैसे और वीरों को प्रेरणा देकर उनको भी आगे बढ़ाया। शिवाजी के सम्बन्ध में एक बात और स्पष्ट हो जानी चाहिए और वह यह कि उनका विरोध औरंगजेब से राजनैतिक नहीं धार्मिक था। वह भी

---

१ महाराज छत्रसाल बुन्देला, डाक्टर भगवानदास गुप्त, पृ० ६६, ६७

२ बुन्देलखण्ड का इतिहास, गोरेलाल तिवारी, (प्रथम संस्करण) पृ० १७६, १७७

३ मराठों का इतिहास, गोविन्द सखाराम सरदेसाई, पृ० ७१

इसलिए कि हिन्दुओं की स्थिति दयनीय हो गई थी । सरदेसाई भी लिखते हैं— "परन्तु यह आदर्श राजनैतिक नहीं, धार्मिक था । शिवाजी तथा उनके अनुयायियों की प्रणाली का मुख्य उद्देश्य था—मुसलमानों के धार्मिक अत्याचारों अथवा हस्त-क्षेप के बिना हिन्दुओं के धार्मिक रीतिरिवाजों के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना, दिल्ली के सिंहासन पर हिन्दू सम्राट् बैठाने का वहाँ कोई इरादा नहीं था ।"[१] शिवाजी के कार्यों का मूल्यांकन उनके गुरु समर्थ रामदास ने भी किया है । १६८० ई० में छत्रपति शिवाजी की मृत्यु हुई । शिवाजी का स्थान संभाजी ने लिया । संभाजी को उद्बोधनार्थ समर्थ रामदास ने एक कविता लिखी है । इसमें उन्होंने शिवाजी के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए संभाजी को उन्हीं के पथ पर चलने के लिए कहा है । उनकी "आनन्दवनभुवन" नाम की एक कविता और है जिसमें उन्होंने स्वीकार किया है कि शिवाजी के प्रताप से "आनन्दवनभुवन" हो गया है । औरंगजेब डूब गया है । म्लेच्छों का संहार हो गया है । अब स्नान संध्या और जप-तप की छूट मिल गई है । पाखण्ड दूर हो गया है । शुद्ध अध्यात्म को प्रोत्साहन मिला है । इस कविता द्वारा यह ज्ञात होता है कि शिवाजी ने अपने जीवन काल में जो कार्य किया उसका मूल्य उनके युग में ही तत्कालीन कवियों ने ही नहीं सन्त साधुओं ने भी किया । भूषण के काव्य के एकमात्र प्रमुख आलम्बन यही थे । इन्हीं को आधार बनाकर कवि ने राष्ट्रीय काव्य की रचना की ।

५.४. भूषण की राष्ट्रीय भावना का स्वरूप एवं सीमाएँ

भूषण का काव्य राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त करनेवाला काव्य है । इसमें देश की संस्कृति और परम्परा के प्रति दृढ़ आस्था का भाव मिलता है । जब भारतवर्ष अपने गौरव और विशेषताओं को विस्मरण करने लगा तो कवि ने एक ऐसे नायक का गुणगान किया जिसमें उसने उन आदर्शों को मूर्त रूप में देखा । किसी जाति को एक करने के लिए देश की सभ्यता और संस्कृति का गुणगान कर उसके प्रति जनजीवन में मोह पैदा किया जाता है और उसकी सुरक्षा में सामूहिक हित या कल्याण का भाव रखते हुए जो आगे बढ़ते हैं, संघर्ष करते हैं और विजयी बनते हैं वे जनता के श्रद्धाभाजन बनते हैं और इस नाते कवि के काव्य का आलम्बन भी बनते हैं । जननायक को काव्य का नायक बनाकर कवि जनवाणी को ही एक प्रकार से अभिव्यक्ति देता है । भूषण ने यही किया है । राष्ट्रीय काव्य के अन्तर्गत वीरों के गान, युद्धगीत, लोकगीत, आत्म बलिदान की गाथाएँ, संस्कृति और सभ्यता का गुणगान, मातृभूमि के प्रति प्रेम की भावना से सम्बन्धित काव्य आदि आते हैं । भूषण का काव्य इन्हीं सीमाओं के भीतर आता है । भूषण के राष्ट्रीय काव्य का विवेचन नीचे किया जा रहा है ।

---

[१] **मराठों का इतिहास, गोविन्द सखाराम सरदेसाई, पृ० ७१**

राष्ट्रीय साहित्य का सम्बन्ध अपने युग की चेतना से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाला होता है। जब तक किसी जाति या संस्कृति का अन्य जाति या संस्कृति से संघर्ष नहीं होता तब तक इस प्रकार की रचनाएँ नहीं लिखी जातीं। भूषण के काव्य में अपने युग के संघर्ष की अभिव्यक्ति हुई है। उनका काव्य युग की चेतना को वाणी देने वाला है।

५. ४. १. युग चेतना का प्रकाशन

डाक्टर देवराज लिखते हैं—"जब आलोचक उनका (कलाकृतियों का) सम्बन्ध युगजीवन से जोड़ता है तो हमें रसानुभूति के साथ यह चेतना भी होती है कि उन कृतियों का ऐतिहासिक रंगमंच पर होने वाले विराट् परिवर्तनों से सम्बन्ध है। निश्चय ही यह चेतना हमें साहित्य और युग दोनों को समझने में सहायता देती है।"[1] उक्त कथन भूषण के काव्य पर पूर्णतः घटित होता है। भूषण की कृतियों में अपने युग का इतिहास अपने विराट् परिवर्तन के साथ चित्रित है। ऐतिहासिक दृष्टि से जिन-जिन पात्रों और प्रसंगों का उल्लेख भूषण की रचनाओं में हुआ है उनकी प्रामाणिकता इतिहास ग्रन्थों से सिद्ध हो जाती है। कवि ने इतना ही किया है कि इतिहास को कथाक्रम से सन्-संवत् के अनुसार नहीं लिखा, इसीलिए पाठकों को भूषण की ऐतिहासिक घटनाओं की या पात्रों की प्रामाणिकता पर सन्देह हो सकता है। भूषण इतिहास लिखने नहीं बैठे थे फिर भी चूँकि युगजीवन से वे उपेक्षित नहीं रह सकते थे इसलिए इतिहास उनके काव्य का विषय हो गया। राष्ट्रीय साहित्य का सम्बन्ध अपने युग के वर्तमान इतिहास से होता है। वह सदैव वर्तमान की चिन्ता करता है। उसके आदर्श की जड़ें प्राचीन में होती हैं किन्तु उसकी दृष्टि सदैव वर्तमान पर रहती है। इस दृष्टि से देखने पर भूषण के काव्य को राष्ट्रीय काव्य कहना पड़ेगा।

राष्ट्रीय साहित्य सामाजिक जीवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखनेवाला होता है। वह युग की हलचलों को प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत करता है। भूषण के काव्य में युग का जो प्रतिबिम्ब मिलता है वह तत्कालीन समाज की विषम परिस्थितियों का ज्ञान कराता है। इस सम्बन्ध में पीछे विस्तार से लिखा गया है। यहाँ इतना ही कहना अभिप्रेत है कि राष्ट्रीय कवि युग की ज्वलंत समस्याओं से मुख मोड़कर मौन नहीं रह सकता और भूषण तो ऐसा कदापि नहीं कर सकते थे। उन्होंने अपने समय के धार्मिक अत्याचारों का उल्लेख किया है। तीर्थस्थानों को नष्ट होते हुए देख उनकी वाणी मौन नहीं रह सकती थी। ऐसे समय में सारे आदर्शों को एक ओर रख कर्म में प्रवृत्त होने की आवश्यकता होती है। युग की इस माँग पर जो नायक कर्म में प्रवृत्त होकर उन तीर्थ स्थानों की रक्षा करता है, वह जनता का श्रद्धाभाजन बनता है। भूषण ने ऐसे ही नायक की प्रशंसा की है। शिवाजी के सम्बन्ध में लिखते हुए यह

---

[1] **आधुनिक समीक्षा, डा० देवराज, पृ० २०, २१**

कह दिया गया है कि आगरे से लौटते हुए वे सीधे नहीं लौटे बल्कि उत्तर भारत के प्रमुख तीर्थ स्थानों की यात्रा के उपरान्त लौटे। मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, प्रयाग, बनारस आदि बहुत से तीर्थ स्थानों की उन्होंने यात्रा की थी। एक प्रकार से शिवाजी ने इस तीर्थयात्रा में उत्तर भारत की परिस्थितियों का पूरा परिचय प्राप्त कर लिया और इसी से प्रेरणा ग्रहण कर वे प्राचीन भारत की राष्ट्रीय भावनाओं के मूर्त आधार तीर्थ स्थानों की रक्षा में प्रवृत्त हुए। भूषण ने ही नहीं समर्थ रामदास और तत्कालीन अन्य कवियों ने जैसे शिवभारतकार परमानन्द कवि ने भी इसी तरह लिखा है। स्वयं शिवाजी के अपने युग में संस्कृत, मराठी और हिन्दी तीनों भाषाओं में शिवाजी की महिमा और उनके राष्ट्रीय कर्मों पर काव्य रचे गये हैं।

राष्ट्रीय कवि की दृष्टि क्षेत्र विशेष तक ही सीमित नहीं रहती, वह सारे देश की भलाई की दृष्टि रखता है। भूषण ने शिवाजी की प्रशंसा इसलिए नहीं की कि वे महाराष्ट्र के हैं बल्कि इसलिए कि उनकी दृष्टि मथुरा और वृन्दावन पर भी है, बनारस आदि तीर्थ-स्थानों पर भी है और इन तीर्थ स्थानों को नष्ट करनेवाले को उन्होंने जेर किया है। कवि की ये पंक्तियाँ—

"कासी हू की कला गई मथुरा मसीत भई,
सिवाजी न होतो तो सुनति होती सबकी।[1]

—स्पष्ट रूप से कहती हैं कि शिवाजी ने मुगलों के अत्याचार को थामने में कितनी रोक लगाई थी। इन तीर्थ स्थानों के संदर्भ में शिवाजी का नाम आना ही इस बात का प्रमाण है कि कवि की दृष्टि में—राष्ट्रनायक की दृष्टि में—भारतवर्ष एक है। राजनैतिक स्वतंत्रता भले ही वे प्राप्त न कर सके (दिल्ली पर) किन्तु फिर भी उन्होंने औरंगजेब का ध्यान सदा अपनी ओर रखा और उसके अत्याचारों का विरोध कर उसमें कमी लाने का प्रयत्न किया और उसमें उन्हें सफलता मिली है। औरंगजेब ने अपने अन्तिम वसीयतनामे में लिखा है—"एक क्षण की असावधानी के फलस्वरूप अनेक वर्षों तक अपमान भुगतना पड़ता है। मेरी ही लापरवाही से वह नराधम शिवा निकल भागा और (उसका परिणाम यह हुआ कि) मुझे जीवन के अन्त तक (मराठों के विरुद्ध) कड़ी मिहनत करनी पड़ी।"[2]

दूसरी बात यह है कि भूषण ने स्वयं देश भर का भ्रमण किया था। उन्हें उत्तर और दक्षिण दोनों स्थानों की परिस्थितियों का पूरा ज्ञान था। उन्होंने उस युग के प्रायः सभी ऐतिहासिक व्यक्तियों की चर्चा की है, जिन्होंने देश की राष्ट्रीय भावना की सुरक्षा में योग दिया है। आँखें उनकी हमेशा शिवाजी की

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४४७**

[2] **औरंगजेब, यदुनाथ सरकार, पृ० ४९८, ४९९**

ओर ही रहीं किन्तु अन्यों की उपेक्षा उन्होंने नहीं की। वास्तव में वे राष्ट्रीय नेता शिवाजी को ही मानते थे किन्तु छत्रसाल बुन्देला को भी उन्होंने महत्व दिया और उनकी भी सराहना की। इन दो नायकों के अतिरिक्त उनकी प्रकीर्ण रचनाओं में साहूजी बाजीराव, सुलंकी, अवधूतसिंह, अनिरुद्धसिंह, जयसिंह, रामसिंह, रावबुद्ध, कुमाऊँ-नरेश, गढ़वाल-नरेश, दाराशाह और भगवन्तराय पर भी एक-एक दो-दो कवित्त कवि ने लिखे हैं। इन सब की वीरता का उल्लेख कवि ने इन कवित्तों में किया है। दारा की प्रशंसा कवि ने इसीलिए की कि उसने यहाँ की राष्ट्रीय भावना को हानि नहीं पहुँचाई। कहते हैं दारा ने मथुरा के मन्दिर में जंगला लगवाया था जिसे बाद में औरंगजेब ने हटा दिया। इसी दारा की सहायता महाराजा छत्रसाल हाड़ा ने की थी। उस समय हाड़ा ने जो वीरता दिखाई उसका वर्णन कवि ने किया है। (भू० मि० छं० सं० ५१३)। दारा के समर्थन में भूषण की राष्ट्रीय दृष्टि काम करती है। दूसरी ओर कवि ने स्वयं मुगल सम्राट् को ललकारा भी है। उसी के धर्म की दुहाई देते हुए उसके कर्मों की व्याख्या की है।

—(भू० मि० छं० सं० ५४२)

राष्ट्रीय साहित्य में एक ओर जहाँ प्राचीन संस्कृति और धर्म से प्रेरणा ग्रहण की जाती है, वहाँ वर्तमान की यथार्थ परिस्थितियों का दयनीय और करुण चित्रण भी उसमें होता है और ऐसी अवस्था में कवि उनको ललकारता है या उद्‌बोधित करता है जिनसे वह राष्ट्र की रक्षा की अपेक्षा करता है। बहुत से राजपूत राजाओं ने औरंगजेब का आश्रय ग्रहण किया था। इस सम्बन्ध में भूषण उनकी स्थिति का परिचय इस रूप में देता है—

अटल रहे हैं दिगअंतन के भूप,
　　धरि रैयत को रूप निज देस पेस करिकै।
राना रह्यौ अटल बहाना धरि सुलह को,
　　बाना धरि भूषन कहत गुन भरिकै।
हाड़ा राठवर कछवाहे गौर और रहे,
　　अटल चिकत्ता की चमाऊ धरि डरिकै।
अटल सिवाजी रह्यौ दिल्ली को निदरि,
　　धीर धरि ऐड़ धरि गढ़ धरि तेग धरिकै ॥[1]

और इसका मुख्य कारण भूषण ने आपस की फूट कहा है। यदि आपस में सबका मेल होता तो देश का इतना पतन क्यों होता?

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १२०**

"आपस की फूट ही तें सारे हिन्दुवान टूटे,
टूट्यौ कुल रावन अनीति अति करते।"[१]

उसी युग में विदेशी शक्तियाँ भी अपना पैर जमा रही थीं। मुगलों ने इन शक्तियों को प्रोत्साहन दिया। उन्होंने भविष्य की ओर से एक प्रकार से आँखें मूँद ली थीं। शिवाजी ने इन विदेशी शक्तियों के इरादों को ताड़ लिया था और जब जब भी अवसर मिला उन्होंने इनको खदेड़ा और अपनी अधीनता स्वीकार करवाई। ये शक्तियाँ समुद्री बेड़े में प्रवल थीं इसलिए छत्रपति ने भी अपना बेड़ा बनवाया। भूषण ने सूरत की लूट का वर्णन किया है और स्थान-स्थान पर इस बात का उल्लेख किया है कि विदेशी लोग शिवाजी से आतंकित रहते थे :—

तेरी धाक ही तें नित हबसी फिरंगी औ।
बिलाइती बिलंदे करैं बारिधि-बिहरनो॥
भूषन भनत बीजापुर भागनेर दिल्ली।
तेरे बैर भयौ उमरावन को मरनो॥[२]

विदेशी शक्तियाँ शिवाजी को नजराना भेजती थीं। मराठों ने इन शक्तियों को कुचलने में अपनी ओर से कोई कमी नहीं की। शिवाजी की दूरदर्शिता का परिणाम था कि अंग्रेजी राज्य की स्थापना महाराष्ट्र में पहले नहीं हो सकी। सरदेसाई लिखते हैं कि—"भारत की विभिन्न जातियों में से अकेले मराठों ने मुगलों की बढ़ती हुई शक्ति का संगठित रूप में सब से जबरदस्त विरोध किया और अन्त में उसको कुचल डाला। इस क्रिया की प्रगति में उन्होंने जिस योग्यता, तल्लीनता, धैर्य एवं निर्णय का परिचय दिया उसके कारण उन्हें बिना किसी कठिनाई के भारत का हितैषी कहा जा सकता है। उन्होंने अपने ढंग से और उस समय की रीति के अनुसार देश के कल्याण के लिए, एक भारतीय शक्ति जो कुछ कर सकती थी वही सब किया। यदि उनको एक संगठित पश्चिमी शक्ति का मुकाबला न करना पड़ता तो इस बात की पूरी सम्भावना थी कि वे भारत में एक हिन्दू राज्य स्थापित कर लेते।"[३] आगे उन्होंने और लिखा है—"मराठों को कम से कम इस बात का श्रेय देना ही पड़ेगा कि उन्होंने पश्चिमी भारत पर अंग्रेजों का आक्रमण लगभग ५० वर्षों के लिए टाल दिया।"[४] मराठों की दूरदर्शिता का इससे

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४७७

२ वही, छं० सं० ४५४

३ मराठों का इतिहास, गोविन्द सखाराम सरदेसाई, पृ० ३०

४ वही, पृ० ३१

ज्ञान होता है। शिवाजी को इस आधार पर भी राष्ट्रनायक घोषित किया जा सकता है।

इस तरह हम देखते हैं कि भूषण के काव्य में उस युग की व्यापार चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। इस चेतना में देश के जागरण का भाव है और उसके प्राचीन आदर्शों की दुहाई दी गई है।

राष्ट्रीय साहित्य का सम्बन्ध अपने युग की ज्वलन्त समस्याओं से होता है अतः उसमें युग जीवन का इतिहास अंकित होना स्वाभाविक ही है। किन्तु इस इतिहास की व्याख्या कवि अपने दृष्टिकोण से करता है। इसी में कवि के व्यक्तित्व और उसकी निजी प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति मिलती है। भूषण के काव्य में अपने युग का जो इतिहास मुखरित हुआ है, उसमें उसकी व्याख्या कवि ने अपने ढंग से राष्ट्रीय हितों को दृष्टि में रखते हुए की है।

५. ४. २. इतिहास की व्याख्या

कवि जब इतिहास को अपने काव्य का विषय बनाता है तो इतिहास के दो रूप उसके सामने हो सकते हैं। एक अतीत का इतिहास और दूसरा कवि के अपने युग के वर्तमान का इतिहास। अतीत के इतिहास का उपयोग कवि अपने युग जीवन के सन्दर्भ में ही करता है। इसके द्वारा वह अतीत के गौरव का गान कर उन्हीं आदर्शों की स्थापना के प्रति आग्रह करता है। एक प्रकार से इसमें जागरण का भाव होता है। किन्तु जब कवि अपने युग से इतिहास का चित्रण करता है तो इसमें वह युग की यथार्थ पृष्ठभूमि को अपनाता है। वह घटने वाली घटनाओं का सम्बन्ध जन-जीवन से जोड़ता है और राष्ट्रीय हित को दृष्टि में रखते हुए उनकी व्याख्या करता है। साथ ही साथ अतीत के इतिहास से वर्तमान के (कवि के अपने युग के) इतिहास से सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न भी करता है। वह उनकी तुलना करता है। इस तुलना में समता और विषमता दोनों पर वह प्रकाश डालता है। समता में राष्ट्रीय गौरव को अभिव्यक्ति मिलती है और विषमता में युगजीवन की समस्याओं को अभिव्यक्ति मिलती है। एक में आदर्श का भाव होता है और दूसरे में यथार्थ का। भूषण के काव्य में इतिहास को इसी रूप में अभिव्यक्ति मिली है।

भूषण ने इतिहास के नाम पर प्राचीन भारत की राष्ट्रीय विशेषताओं पर प्रकाश डाला है। इन्हीं विशेषताओं के संदर्भ में कवि ने छत्रपति शिवाजी के कर्मों की व्याख्या की है। अतीत की तुलना में कवि की दृष्टि वर्तमान पर ही अधिक रही है। इतिहास में भी भूषण ने प्रायः उन्हीं प्रसंगों का बार-बार उल्लेख किया है, जिनमें राष्ट्र नायकों के कर्म सौंदर्य पर प्रकाश पड़ता है। चाहे छत्रपति शिवाजी हो या महाराजा छत्रसाल बुन्देला या अन्य कोई पात्र, सभी का उल्लेख उन्हीं प्रसंगों को

लेकर हुआ है, जहाँ वे राष्ट्रीय भावना की सुरक्षा में कर्मरत हैं। "अफजलखान-वध" "परनाले की विजय", "शाईस्तखाँ की हार", "शिवाजी की औरंगजेब से भेंट" आदि जितने भी ऐतिहासिक प्रसंग आए हैं, इन प्रसंगों के वर्णनों में व्यक्ति शिवाजी की वीरता का वर्णन तो है ही किन्तु इसके साथ-साथ उन प्रसंगों के वर्णनों में जनभावनाओं को भी अभिव्यक्ति मिली है। "अफजलखान-वध" पर मराठी में काफी गीतों और पोवाड़ों (वीर गीतों) की रचनाएँ हुई हैं। शिवाजी की यह प्रथम विजय थी और इस विजय का महत्व मराठों की राज्यस्थापना में उतना ही है जितना अंग्रेज की राज्यस्थापना में प्लासी के युद्ध का है। शाईस्तखाँ को हरा देने से शिवाजी का आतंक सब जगह फैल गया। इस आतंक का वर्णन भूषण ने बड़े विस्तार से किया है। शिवाजी की औरंगजेब से जो भेंट हुई, इस प्रसंग पर कवि ने अनेक कवित्त और सवैये लिखे हैं। शिवाजी ने शत्रु के दरबार में शत्रु की सीमा में रहते हुए शत्रु का विरोध किया। यह एक प्रकार से शत्रु को ललकारना ही हुआ। दिल्ली के सम्राट को (औरंगजेब को) ललकारना साहस का ही काम था। इसीलिए इस प्रसंग पर कवि ने बड़ी रुचि दिखाई और बड़ी सजीवता के साथ इसका वर्णन किया। राष्ट्र-नायक के आत्मसम्मान के रूप में मानो देश का आत्मसम्मान जाग उठा है। शत्रु का मुख पीला कर देने में कितना आनन्द और उत्साह है। सिंह को मानो सिंह की माँद में ही डरा दिया गया हो। पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

सारी पातसाही के अमीर जुरि ठाढ़े तहाँ,
लायकै बिठायो कोऊ सूबन के नियरे।
देखिकै रसीले नैन गरब-गसीले भए,
करी न सलाम न बचन बोले सियरे।
भूषन भनत जबै धर्‌यो कर मूठ पर तबै,
तुरकन के निकसि गए जियरे।
देखि तेग-चमक सिबा को मुख लाल भयौ,
स्याहमुख नौरँग सिपाहमुख पियरे॥[1]

राष्ट्रीय साहित्य में परम्परा के प्रति मोह होता है। वह वर्तमान की अपेक्षा भूत की अधिक चिन्ता करता है। केवल चिन्ता ही नहीं करता बल्कि उसकी सुरक्षा का आग्रह भी करता है। राष्ट्रीय साहित्य एक प्रकार से पुनर्जागरण का साहित्य होता है। जब देश या जाति अपने गौरव को भूलने लगती है या उसका पतन होने लगता है या उसकी आत्मा को जबरदस्त धक्का

५. ४. ३. परम्परा में आस्था

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४५५

लगता है तो राष्ट्रीय साहित्य का सर्जन होना अत्यावश्यक हो जाता है। यही साहित्य उनमें सामूहिक उत्थान का भाव पैदा कर सकता है। अतीत की गौरव गाथाएँ उनमें फिर आत्माभिमान का भाव जाग्रत करती हैं। खोया हुआ बल उन्हें प्राप्त होता है और वे फिर आगे बढ़ने में समर्थ होते हैं।

वास्तव में मध्ययुग में गोस्वामीजी ने सांस्कृतिक पुनरुत्थान का महत्कार्य सम्पन्न किया। गोस्वामीजी ने ही सही अर्थों में भारतीय संस्कृति की आत्मा प्रस्तुत की है। भूषण ने केवल इस संस्कृति से प्रेरणा ग्रहण की है। विनयपत्रिका का प्रथम पद और शिवराज भूषण का प्रथम कवित्त गणेशजी की स्तुति से ही सम्बन्ध रखनेवाले हैं। बाद में भूषण ने अनेक देवी देवताओं का उल्लेख किया है। अवतारों के भी उल्लेख हैं। उनकी कथा के विस्तार में जाने की कवि ने आवश्यकता नहीं समझी। यह तो गोस्वामी जी का काम था। भूषण ने केवल उन अवतारों के महत्कार्यों का उल्लेख किया है और उन महत्कार्यों की कोटि में शिवाजी के कार्यों की गणना की है। उपमानों के रूप में इन अवतारों के उल्लेख हुए हैं। भूषण का प्रसिद्ध कवित्त इसी प्रकार की भावना का द्योतक है :—

इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व ज्यौं अंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल राज है।
पौन वारिबाह पर संभु रतिनाह पर,
ज्यौं सहसबाहु पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुम दंड पर चीता मृग झुंड पर,
भूषन वितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यौं म्लेच्छ बंस पर सेर सिवराज है॥[1]

यहाँ प्रायः प्रसिद्ध अवतारों का उल्लेख है। उपमान लोकप्रिय और धार्मिक भावनाओं से सम्बद्ध हैं अतः शिवाजी को उनकी कोटि में रखना जनता को यह विश्वास दिलाना है कि धर्मरक्षा का काम शिवाजी उसी शक्ति के साथ कर रहे हैं। शिवाजी को स्पष्टतः अवतारी पुरुष घोषित किया गया है :—

दशरथ राजा राम भौ बसुदेव के गोपाल।
सोई प्रगट्यौ साहि के, श्री सिवराज भुआल।
उदित होत सिवराज के, मुदित भए द्विज-देव।
कलिजुग हट्यो मिट्यो सकल, म्लेच्छन को अहमेव॥[2]

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५०
२ वही, छं० सं० ११ और १२

गीता के निम्नलिखित श्लोक भी यही कहते हैं—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।[१]

भूषण के काव्य में परम्परा के प्रति पूर्ण आस्था दिखाई गई है। भूषण की शिवाजी के सम्बन्ध में यही धारणा है कि म्लेच्छों का संहार कर धर्म की स्थापना करने के लिए उनका अवतार हुआ है। देवी-देवताओं के उल्लेख, पौराणिक उपमानों के प्रयोग, ब्राह्मण और गौ की रक्षा, चोटी जनेऊ की महत्ता आदि आदर्शों की स्थापना के वर्णन उनके परम्परा से सम्बद्ध विचार हैं। राष्ट्रीय कवि प्रायः परम्परा में आस्था तो रखता है किन्तु उस आस्था पर कुठाराघात को वह सहन नहीं कर सकता। जब ऐसा होने लगता है तो वह बड़ा कट्टर हो जाता है। भूषण में भी यही कट्टरता है। शिवाजी की प्रशंसा व्यक्ति की प्रशंसा नहीं है और न यह किसी आश्रयदाता की प्रशंसा के समान है, जो उस काल के अन्य कवि किया करते थे। प्राकृत जनों का गुणगान कर वाणी को लांछित करना कवि उद्देश्य नहीं था। व्यास और वालमीकि ने जैसे अपनी वाणी को पवित्र किया उसी तरह भूषण ने भी अपनी वाणी को पवित्र रखने का प्रयत्न किया।

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी।
राम जुधिष्ठिर के बरने बलमीकिहु व्यास के संग सुहानी।।
विक्रम भोजहु के गुन गाय के भूषन पावनता जग जानी।
पुन्य पवित्र सिवा सरजै बरम्हाय पवित्र भई बर बानी।।[२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भूषण की कविता भारत की प्राचीन संस्कृति और धर्म से प्रेरणा ग्रहण करती है और इसके आधार पर वह राष्ट्र को सचेत करना चाहती है कि इस प्रकार की संस्कृति का पोषण छत्रपति शिवाजी कर रहे हैं।

राष्ट्रीय साहित्य में चेतना का भाव होता है और चेतना का प्रतिफलन कर्म में होता है। 'अकर्मण्यता से चेतना का कोई सम्बन्ध नहीं है। कर्म की तत्परता के लिए उत्साह चाहिए। इसीलिए राष्ट्रीय साहित्य प्रायः वीर रस प्रधान होता है। वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। इस दृष्टि से भूषण के

५. ४. ४. उत्साह की व्यंजना

[१] श्रीमद्भगवद्गीता, ४ था अध्याय, श्लोक संख्या ७ और ८

[२] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २५३

काव्य पर विचार किया जाय तो उत्साह की व्यंजना सर्वत्र मिलेगी। भूषण में निर्जीवता नहीं है। उसमें सजीवता, स्फूर्ति चेतना और उमंग का भाव है। रामायण में राम और रावण का संघर्ष है तो यहाँ शिवाजी और औरंगजेब का संघर्ष है। राम के साथ सहृदयों का मन जैसे रहता है, उसी प्रकार इस संघर्ष में पाठकों का मन शिवाजी के साथ ही रहता है। जब भूषण कहता है—

मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह,
बैरि पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद राखि तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में॥[१]

तो स्पष्ट हो जाता है कि उसमें कितना उत्साह है। मुगलों को मीड़ डालना और पातसाहों को मरोड़ देना और बैरियों को पीस देना—ये सारी बातें वह ऐसे कह देता है जैसे शिवाजी के लिए शत्रुओं को हरा देना कठिन नहीं—बाएँ हाथ का खेल है। इन सब को दबाए शिवाजी अपने हाथ में जनता के लिए बरदान लिए खड़े हैं। राजाओं की मर्यादा का पालन वे अपनी तलवार के बल के आधार पर करते हैं। मन्दिरों में देवताओं की उन्होंने रक्षा की है। इस तरह उन्होंने स्वधर्म को बचा लिया।

भूषण की कविता वीर रस प्रधान है, एक ओर जहाँ नायक में वह उत्साह की प्रबलता दिखाता है, वहाँ दूसरी ओर प्रतिनायक में भय का वर्णन करता है। प्रतिनायक की इस स्थिति का वर्णन नायक के उत्साह को बढ़ानेवाला ही होता है। औरंगजेब की बेचैनी और भय का मनोवैज्ञानिक चित्र देखिए :—

काहू के कहे सुने तें जाही ओर चाहैं
ताही ओर इकटक घरी चारिक चहत हैं।
कहे तें कहत बात कहे तें पियत खात,
भूषन भनत ऊँची साँसन जहत हैं।
पौढ़े हैं तो पौढ़े बैठे बैठे खरे खरे हम
को हैं कहा करत यों ज्ञान न गहत हैं।
साहि के सपूत सिव साहि तव बैर इमि,
साहि सब रातौ दिन सोचत रहत हैं॥[२]

---

[१] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४२०

[२] वही, छं० सं० ३६०

और यही भय जब शत्रु के मन में स्थान ग्रहण कर लेता है तो उसी को आतंक कहा जाता है। देशी और विदेशी दोनों शक्तियाँ शिवाजी से आतंकित रहती थीं। शिवाजी का यह सारा उत्साह जिन कर्मों के लिए था वे कर्म राष्ट्र के कर्म थे इसलिए इन कर्मों की अभिव्यक्ति में नायक के उत्साह की अभिव्यक्ति हुई है। इस उत्साह में जनभावना का सहयोग था अतः जनता के उत्साह की अभिव्यक्ति भी काव्य में हुई है।

५. ५. भूषण की राष्ट्रीय भावना—प्रश्न एवं समाधान

भूषण का काव्य अपने समय की आवश्यकता से लिखा गया है अतः इसे सामयिक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। सामयिक साहित्य का मूल्य अपने समय में जितना होता है, उतना युगान्तर में नहीं। एक प्रकार से उसका मूल्य ऐतिहासिक ही है। किन्तु इस प्रकार के साहित्य के सम्बन्ध में डाक्टर देवराज ने लिखा है—"वह साहित्य जो ऐतिहासिक महत्व को प्राप्त करता है, स्वभावतः युगजीवन के तत्वों से ग्रथित होता है—वह अपने समय के सामाजिक यथार्थ को प्रकट या प्रतिफलित करता है। साथ ही वह युगजीवन का निर्देश भी करता है। वह युगजीवन को बदल देने का अस्त्र भी बन जाता है।"[१] डाक्टर देवराज ने इस बदलने की प्रेरणा का सम्बन्ध कलाकार और जनता के बदले हुए यथार्थ से जोड़ा है। भूषण के काव्य में ये विशेषताएँ पाई जाती हैं। वह अपने युगजीवन के तत्वों से ग्रथित है। युग के संदर्भ को समझे बिना उस काव्य की महत्ता का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

काव्य युग की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। युग का प्रभाव दो रूपों में होता है—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष। काव्य में जहाँ व्यक्ति की भावात्मक समस्याओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होती है वहाँ सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति भी होती है। प्रथम यदि मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणात्मक काव्य है तो द्वितीय सामाजिक काव्य है। राष्ट्रीय काव्य सामाजिक काव्य का ही एक अंग है। वैयक्तिक समस्याओं को लेकर लिखे जाने वाले काव्य पर युग की छाप इतनी प्रत्यक्ष रूप में नहीं पड़ती जितनी सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखे जाने वाले काव्य पर। राष्ट्रीय काव्य में इस दृष्टि से युग का यथार्थ होता है। भूषण काव्य में युग के यथार्थ का चित्रण हुआ है। वह मनोविश्लेषणात्मक या मनोवैज्ञानिक काव्य नहीं है। वह सामाजिक काव्य है। समाज की बाह्य परिस्थितियों का चित्रण उसमें हुआ है।

भूषण का काव्य सामयिक होने पर भी उसका मूल्य तात्कालिक नहीं है। वैसे तो प्रत्येक युग में जो साहित्य लिखा जाता है वह सामयिक ही होता है और

---

१ **आधुनिक समीक्षा, डाक्टर देवराज, पृ० १८**

प्रायः हम युग की समस्याओं को लेकर प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होने वाले काव्य को ही सामयिक काव्य कहते हैं किन्तु सार्वजनीन भावनाओं को व्यक्त करने वाला काव्य भी—चाहे वह किसी रूप में हो—युगधर्म से भिन्न नहीं होता। इतना ही होता है कि ऐसे काव्य पर युगधर्म की छाप अप्रत्यक्ष रूप से पड़ती है। भूषण का काव्य सामयिक होने पर भी उसमें मानव जीवन के एक ऐसे पक्ष का चित्रण उसमें हुआ है जिसका मूल्य युगान्तर में भी हो सकता है। वह पक्ष है युग की आवश्यकता और तदनुकूल कर्म में रत नायक के गौरव का गान। जब तक नायक का नाम इतिहास में अमर रहेगा और वह अपने चारित्रिक गुणों से जन-मन को आन्दोलित करता रहेगा तब तक उससे सम्बन्धित काव्यकृति का प्रभाव भी जन-मानस पर पूर्ववत् बना रहेगा। और रचयिता का कृतित्व भी अमर रहेगा, फिर भूषण के काव्य में शुष्क इतिहास नहीं है। उसमें इतिहास की स्थूल रेखाओं को मानव जीवन के हितों को लक्ष में रखकर जनभावनाओं की अभिव्यक्ति की गई है।

सामयिक और शाश्वत शब्द सापेक्ष है। सामयिक साहित्य का मूल्य क्षणिक ही होगा, ऐसी बात नहीं। सामयिक समस्या को लेकर लिखी गई रचना मनुष्य के हृदय को छू सकती है या वह भावनाओं को उद्बुद्ध करने में समर्थ है तो उनका मूल्य युगान्तर में भी होता है। भूषण का काव्य यदि आज भी पढ़ा जाय तो उसमें उद्बोधन का भाव मिलेगा। उसमें ओजस्विता और ललकार भी है। अतः उसका मूल्य सामयिक मात्र नहीं है। एक बात है, वह है उस काव्य से तादात्म्य स्थापित करने के लिए युग के संदर्भ की जानकारी। किन्तु इसका भी एक समाधान है। जैसे रामायण और महाभारत के पात्रों के परिचय की किसी को आवश्यकता नहीं है (विशेष रूप से भारतीय को) उसी तरह भारत का साधारण पढ़ा लिखा व्यक्ति शिवाजी और औरंगजेब के इतिहास से परिचित होता है। अतः भूषण के काव्य को समझने में युग के संदर्भ की जानकारी साधारण रूप से सभी को होती है। अतः भूषण के काव्य का रसास्वादन आज भी किया जा सकता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भूषण के सम्बन्ध में अपने इतिहास ग्रन्थ में लिखा है—"भूषण ने जिन दो नायकों की कृति को अपने वीर काव्य का विषय बनाया वे अन्याय दमन में तत्पर, हिन्दू धर्म के संरक्षक, दो इतिहास प्रसिद्ध वीर थे। उनके प्रति भक्ति और सम्मान की प्रतिष्ठा हिन्दू जनता के हृदय में उस समय भी थी और आगे भी बराबर बनी रही या बढ़ती गई। इसी से भूषण के वीर रस के उद्गार सारी जनता के हृदय की सम्पत्ति हुए। भूषण की कविता कवि-कीर्ति-सम्बन्धी एक अविचल सत्य का दृष्टान्त है। जिसकी रचना को जनता का हृदय स्वीकार करेगा उस कवि की कीर्ति तब तक बनी रहेगी जब तक स्वीकृति बनी रहेगी।"[१] शुक्लजी की ये पंक्तियाँ भूषण का

---

१ **हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, (नौवाँ संस्करण), पृ० २५५**

उचित मूल्यांकन करती हैं और अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें राष्ट्रीय कवि घोषित कर देती हैं। राष्ट्रीय कवि का सब से पहला कर्त्तव्य है जनता के हृदय को पहचानना, उनकी सामयिक समस्याओं को यथार्थ रूप में चित्रित करना और इन समस्याओं के हल करने वालों को प्रोत्साहन देना और उनका यशोगान कर जनभावना को अभिव्यक्ति देना। ये सारी विशेषताएँ भूषण में एक साथ मिल जाती हैं। अतः भूषण का काव्य राष्ट्रीय तो है ही किन्तु साथ ही साथ वह सामयिक मात्र नहीं है, उसका मूल्य आज भी पूर्ववत् है, आगे भी वह मूल्य तब तक बना रहेगा जब तक नायकों की स्वीकृति जनमानस में बनी रहेगी।

हिन्दू संस्कृति के अनुसार राष्ट्रीयता का जो रूप हो सकता है, उसी की अभिव्यक्ति भूषण के काव्य में हुई है। अतः उसे आज का व्यक्ति सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय काव्य कहने में हिचकिचाएगा। एक हद तक वह उसे जातीय काव्य कहना उचित समझेगा। किन्तु वास्तविकता यह है कि राष्ट्रीयता का सम्बन्ध देश के सांस्कृतिक विश्वासों से अधिक होता है और इनका सम्बन्ध धर्म से रहने के कारण राष्ट्रीयता का आधार धर्म भी रहता आया है। साहित्य कोश के अन्तर्गत वह समस्त साहित्य लिया जा सकता है जो किसी देश की जातीय विशेषताओं का परिचायक हो। इस प्रकार के साहित्य में जाति का समस्त रागात्मक स्वरूप, उसके उत्थान-पतन आदि का विवरण आ सकता है। इसका होना एक प्रकार से अनिवार्य ही है।"[१] भूषण के काव्य को इस दृष्टि से राष्ट्रीय काव्य कहना उचित होगा।

मध्यकाल तक धर्म और राजनीति में धर्म का स्थान राजनीति से ऊँचा रहता आया है। धार्मिक नेताओं के अधिकार राजनैतिक नेताओं से अधिक रहे हैं। ऐसी स्थिति में उस युग की राष्ट्रीयता धर्म से ही अनुप्राणित होती थी। भूषण के युग में तो स्वयं दिल्ली के शासक ने (औरंगजेब ने) तलवार के बल पर धार्मिक विश्वासों पर कुठाराघात करना चाहा अतः भूषण को भी प्रतिक्रिया के रूप में धर्म को ही राष्ट्रीयता का आधार बनाना पड़ा है। भूषण की इन सीमाओं को समझ कर ही हम उसकी राष्ट्रीय भावना की प्रशंसा कर सकते हैं। आज की राजनैतिक भावना में धर्म का भाव गौण होता जा रहा है। अब धर्म का सम्बन्ध वैयक्तिक मात्र रह गया है। अतः इस दृष्टि से भूषण के काव्य पर जो दृष्टिपात करेगा वह उसे जातीय काव्य कहना ही उचित समझेगा।

५. ६. निष्कर्ष

भूषण का उदय मध्यकाल में हुआ। इस काल की राष्ट्रीय भावना में सांस्कृतिक चेतना के साथ-साथ राजनैतिक चेतना भी सम्मिलित है। मुसलमानों के आगमन

---

[१] **साहित्य कोश, (प्रथम संस्करण), पृ० ६५३**

के बाद भारत की राष्ट्रीय भावना का ह्रास हो गया था। उनके अत्याचारों से दबी हुई भावना प्रतिक्रिया के रूप में जाग्रत हुई। ये जाग्रति सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक रूप में क्रमशः होती गईं। अन्त में इसकी परिणति राजनैतिक जाग्रति के रूप में हुई। सामाजिक जाग्रति का नायक इस युग में कबीर हुआ जिसने सारे पाखण्ड और बाह्याचारों को अपनी तीव्र वाणी से निषेध कर समाज को एक स्तर पर एक परमात्मा की छत्रछाया में लाने का प्रयत्न किया। सामाजिक सुधार के साथ-साथ धार्मिक भेदभाव को भुलाने के प्रयत्न भी इस युग में हुए। इस प्रयत्न में कबीर और अकबर दोनों ने महत्वपूर्ण कार्य किए। एक प्रकार से कबीर वह प्रथम व्यक्ति है जिसने बाहर से आने वाली जाति को भारतीय स्वीकार कर लिया। कबीर की घोषणा ने मुसलमानों का विदेशी जामा उतार दिया और उन्हें भारतीयता का पद प्रदान कर दिया गया। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रही है। राजनैतिक स्तर पर इसी कोटि का काम अकबर ने किया। दूसरी ओर भक्ति की लहर दक्षिण से उत्तर में आई। गोस्वामीजी ने भारत की प्राचीन संस्कृति को—संस्कृत भाषा का सहारा न लेकर—जनभाषा का सहारा ले फिर से जीवित करने का प्रयत्न किया। तुलसी का दृष्टिकोण भारत की व्यापक राष्ट्रीय भावना को व्यक्त करने वाला है। बाद में जब शासकों का दृष्टिकोण एकांगी हो गया और भारत की मूलभूत राष्ट्रीय भावना को कुचलने के प्रयास तलवार के बल पर होने लगे (औरंगजेब के काल में) तो राजनैतिक जाग्रति का होना युग की आवश्यक माँग हो गई। गुरु गोविन्दसिंह और समर्थ रामदास ने राष्ट्रीय नवोत्थान में राजनैतिक चेतना को महत्व दिया। इन्हीं के स्वप्नों को साकार करने वाले छत्रपति शिवाजी हुए और इन्हीं के प्रभाव से महाराजा छत्रसाल बुन्देला ने भी मुगल शक्ति का विरोध कर भारत की राष्ट्रीय भावना की रक्षा की। इस समय और भी छोटे-मोटे राव-राजाओं ने इस राजनैतिक जाग्रति में योग दिया। इतिहास में एक नया मोड़ इस युग में आता है। इस विराट् परिवर्तन को भूषण ने अपने काव्य का विषय बनाया। भूषण का काव्य भारत की प्राचीन संस्कृति, विशेषतः हिन्दू-संस्कृति के अनुसार राष्ट्रीयता का जो रूप हो सकता है, उससे सम्बन्ध रखने वाला है। गोस्वामीजी ने जिस राष्ट्रीय दृष्टिकोण को मानस में साकार किया उससे कवि ने केवल प्रेरणा ग्रहण की है। वह वर्णाश्रम व्यवस्था को व्यावहारिक रूप में देखना चाहता है और इसे व्यावहारिक रूप में बनाए रखने में सहायक नायक की कीर्ति का गान कर वह अपनी वाणी को पवित्र करता है। भूषण की राष्ट्रीयता का सब से बड़ा प्रमाण यही है कि वह अपने समय की परिस्थितियों का ज्ञान रखता है, ज्ञान रखकर उनसे उदासीन नहीं रहता, उन समस्याओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है और सब से बढ़कर प्रस्तुत करते समय राष्ट्र की मान्य मान्यताओं की वह दुहाई देता है, अवतारों का उल्लेख करता है और यह सब

कुछ वह सहज ढंग से ओजस्वी भाषा में कहना जानता है। काव्य की उपयोगिता से वह परिचित है, इसीलिए वह कहता है—

"पुन्य पवित्र सिवा सरजै बरम्हाय पवित्र भई बर बानी।"[१]

और यों भी कहता है—

"जे सोहात सिवराज कों ते कवित्त रसमूल।
जे परमेस्वर पै चढ़ैं, तेई आछे फूल।"[२]

---

[१] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० २५३

[२] वही, छं० सं० ३८७
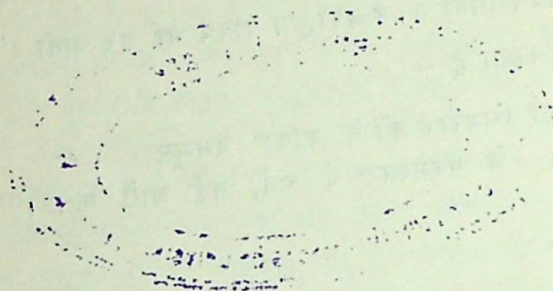
षष्ठ अध्याय

वीर काव्य और भूषण
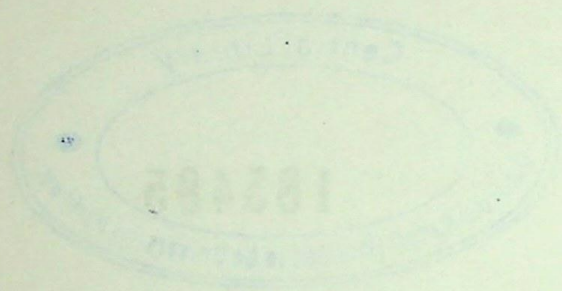
वीर काव्य और भूषण

६. १. वीर काव्य एवं उसका लक्ष्य

वीर काव्यों का जन्म युग की यथार्थ पृष्ठभूमि में होता है और युग का यथार्थ अपने समय के संघर्ष से होता है—चाहे वह फिर सामाजिक संघर्ष हो, धार्मिक संघर्ष हो या राजनैतिक संघर्ष हो। इसीलिए वीर काव्यों का नायक युग की हलचलों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाला होता है। सभ्यता का आदिकाल प्रायः संघर्ष काल रहा है, अतः विश्व की प्रायः सभी भाषाओं में आदिकालीन साहित्य में वीरगाथात्मक प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि वीर पुरुषों के द्वारा ही किसी देश का उत्थान हुआ है। मानव जाति ने जो कुछ सीखा और पाया है, वह संघर्ष काल में ही। युद्धों ने ही उन्हें जीना सिखाया है। डाक्टर ताराचन्द अपने निबन्ध "इतिहास और साहित्य" में लिखते हैं कि—"हमारे उद्देश्य, आदर्श, मूल्य और परमार्थ इतिहास में प्रकट होते हैं। व्यक्ति और समाज के जीवन में, हमारी इच्छाओं और आकांक्षाओं में, हमारी चेष्टाओं में, हार-जीत में, उन्नति-पतन में इनका प्रादुर्भाव होता है। इतिहास का ज्ञान आध्यात्मिक प्रेरकों का ज्ञान है। इतिहास को जानना अपने को जानना है और इस जानने से बढ़कर किसी ज्ञान का मूल्य नहीं। इतिहास की खोज आत्मा की जिज्ञासा है।"[१] दूसरे शब्दों में युग का यथार्थ इतिहास से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखता है। प्रायः वीर काव्यों में युग का यथार्थ ही अधिक मुखर हुआ है। डाक्टर उदयनारायण तिवारी लिखते हैं कि—"भारतीय वीर काव्यों की यह विशेषता है कि उसके प्रणयन में ऐतिहासिक तथ्यों का सहारा लिया गया है और एक प्रकार से यह कहा जा सकता

---

[१] अनुसन्धान की प्रक्रिया, सं० डा० सावित्री सिन्हा एवं डा० विजयेन्द्र स्नातक, डा० ताराचन्द का लेख, "इतिहास और साहित्य", पृ० १६४

है कि वीर काव्य की पृष्ठभूमि में ऐतिहासिक सामग्री पर कल्पना का आवरण चढ़ाया गया है।[1]

वीर काव्यों में कर्मों की व्याख्या युग के सन्दर्भ में होती है। कर्म समाज का पोषक है, अतः वीर काव्यों का लक्ष्य समाज का उद्धार होता है। शुक्लजी के अनुसार वीर काव्य आनन्द की साधनावस्था का काव्य है।[2] वीर काव्यों द्वारा समाज में मानव धर्म की स्थापना होती है। धर्म से तात्पर्य—"वह व्यवस्था या वृत्ति जिससे लोक में मंगल का विधान होता है, अभ्युदय की सिद्धि होती है धर्म है।"[3] समाज का संगठन जिन आदर्शों के आधार पर हुआ है, वे आदर्श आज हमारे सम्मुख नहीं हैं। आज का मानव आदिकालीन मानव की तुलना में अपने को अपूर्ण और असन्तुष्ट मानता है। सामाजिक सीमाओं और उसके नियन्त्रण में वह अपने आपको जकड़ा हुआ अनुभव करता है। उसमें स्वाभाविक रूप से विकसित होने की क्षमता नहीं रह गई है। जीवन के मुक्त विकास में वह सर्वथा अक्षम हो रहा है। यही कारण है कि पुरातन आदर्शों के स्थान पर नवीन आदर्शों की वह किसी प्रकार उपेक्षा नहीं कर पाता। फलस्वरूप वह समाज की विषमता से आक्रान्त है साथ ही भीतर ही भीतर उसका मानव विस्फोट करता रहता है। अतः आज के मानव को दो प्रकार से लड़ना पड़ रहा है। एक समाज से दूसरे अपने आप से। समाज के भीतर भी आदर्शों को लेकर जो संघर्ष चला करते हैं, उनमें भी मूलतः व्यक्तिगत स्वार्थों की हानि एवं पूर्ति का ही आधार प्रमुख रहा करता है। ध्यान से देखा जाय तो हमारे यहाँ समाज की लड़ाइयों में कुछ थोड़े से व्यक्तियों का स्वेच्छाचार उन लड़ाइयों का कारण रहा है। इसीलिए जहाँ कहीं वीर रस की झलक, जाग्रति एवं परिपुष्टि हिन्दी कविता में मिलती है, वहाँ उसका आधार व्यक्तिगत विस्फोट ही रहा है। सामाजिक विस्फोट अपेक्षाकृत कम है। पौराणिक युग में जो युद्ध हुए वे पृथ्वी, समाज और सम्पत्ति कुल मिलाकर राज्य को लेकर ही हुए यह कहना कठिन है। उस समय के युद्धों में नारी का भाग भी प्रधान रहा है और नारी

---

[1] **वीर काव्य, डा० उदयनारायण तिवारी, पृ० २ (दो शब्द से)**

[2] **"(कुछ कवि) आनन्द की साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर पीड़ा, बाधा, अन्याय, अत्याचार आदि के दमन में तत्पर शक्ति के संचरण में भी—उत्साह, क्रोध, करुणा, भय, घृणा इत्यादि की गतिविधि में भी पूरी रमणीयता देखते हैं। वे जिस प्रकार प्रकाश को फैला हुआ देखकर मुग्ध होते हैं उसी प्रकार फैलने से पूर्व उसका अन्धकार हटाना देखकर भी। ये ही पूर्ण कवि हैं क्योंकि जीवन की अनेक परिस्थितियों के भीतर भी ये सौन्दर्य का साक्षात्कार करते हैं।" —रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५६**

[3] **रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६०**

हरण की घटनाओं का आधार व्यक्तिगत ही है। किन्तु इसी तर्क के आधार पर प्राचीन आदर्श व्यक्तियों के संघर्ष को वैयक्तिक या व्यक्तिवादी कह देना भूल होगी क्योंकि समाज की किसी भी प्रकार की व्यवस्था में, यहाँ तक कि श्रमिक राज्य व्यवस्था में भी विशिष्ट व्यक्ति कुछ ही होंगे। वे अपने विशिष्ट गुणों के कारण सम्पूर्ण राष्ट्र के पूजनीय होंगे और ऐसी स्थिति में उन व्यक्तियों के सुख दुख राष्ट्र के सुख दुख माने जाएँगे। इसीलिए प्राचीन आदर्श व्यक्तियों को हमें उस समाज के बीच रखकर देखना होगा तभी हम उन व्यक्तियों की वीरता और आदर्श का मूल्य कर पायेंगे। साहित्य में जो चित्र उपस्थित होंगे वे व्यक्ति विशेष के ही होंगे, सामान्य के नहीं किन्तु ये विशेष व्यक्ति समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले होंगे। समाज में चाहे जिस प्रकार की व्यवस्था हो और उसका संगठन चाहे जिन आदर्शों के आधार पर बना हुआ हो, उसके कर्णधार वीर व्यक्ति होते हैं उनको समाज आदर्श व्यक्ति मानता है। इन व्यक्तियों पर जाति और समाज यहाँ तक कि राष्ट्र भी न केवल उस युग विशेष में उन पर गर्व करता है बल्कि आगे भी गर्व करता रहता है। वीर काव्यों से मानव समाज को सतत प्रेरणा मिलती रहती है और वह गन्तव्य की ओर बढ़ना सीखता है। युग चेतना में समय-समय पर वीर नायकों ने अपना जो योगदान दिया है, उनके साथ वह अपने युग की परीक्षा करता है और आगे बढ़ता है।

६. २. भारतीय वीर काव्यों की परम्परा और भूषण

समाज के उद्भव के साथ ही "वीर-पूजा" भाव का उद्भव हुआ है। महापुरुषों का यश अनादि काल से गाया गया है। वीरत्व लौकिक गुण है, कारण इसका रूप लोक के सम्पर्क में आने पर ही व्यक्त होता है। वीर पूजा की मनोवृत्ति मनुष्य की सामाजिक मनोवृत्ति है। इस मनोवृत्ति की परम्परा आदिकाल से ही मिलती है।

६. २. १. वैदिक युग

वेदों में देवताओं के स्तोत्रों का संग्रह है। इन देवताओं में प्रमुख अग्नि, इन्द्र तथा वरुण हैं। वैदिक कवियों ने प्राकृतिक देव शक्तियों को अपने ही जीवन के चश्मे से देखा है। आर्यों के प्रत्येक कार्य में प्राकृतिक देव शक्तियाँ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर सहयोग करती देखी जाती हैं। इन्द्र की स्तुतियों में यत्र-तत्र वीरता की गाथा गाई गई है। प्रसिद्ध जर्मन लेखक विंटरनित्ज ने लिखा है—"उनकी (वेद के प्राचीन भाष्यकारों की) दृष्टि में यदि इन्द्र एक महान शक्तिशाली अधिदेव है तो वृत्र उतना ही भयानक एक दैत्य जिसे वे श्यामवर्ण आदिवासियों के रूप में चलता फिरता पाते हैं, क्योंकि—इन्द्र के ये युद्ध वेदों में केवल वृत्र के साथ ही नहीं अन्यान्य दैत्यों के साथ भी होते है। (इन्द्र और वृत्र के) ये संग्राम जैसे आर्यों और अनार्यों के बीच हुए युद्ध की ही एक प्रतिच्छाया हों। इन्द्र, सो, योद्धाओं का, वीरों का, देवता

है और ऋग्वेद में आई उसकी कम से कम २५० स्तुतियों में यदि हम उसका कुछ सही, सजग रूप पा सकते हैं तो इसी एक युद्ध-प्रिय देवता के रूप में ही [1] इन्द्र की वीरता को प्रामाणित करता हुआ ऋग्वेद के दूसरे मण्डल का एक गीत इस प्रकार है ।

जो, पैदा होते ही, सब देवताओं को बुद्धि और बल में मात दे गया,
जिसकी प्रभुता और पौरुष के सम्मुख दोनों लोक थर्राते हैं :
—वही हमारा इन्द्र है,
जिसने काँपती धरती को थाम लिया,
जिसने पर्वतों को स्थिर कर दिया,
जिसने अन्तरिक्ष की अनन्त
रिक्तता को यूँ ही माप डाला,
जिसने आसमान को गिरने से रोक दिया·······
हमारा इन्द्र तो वो है ।
वृत्र को मारकर जिसने सात सिन्धुओं को मुक्त करा दिया,
वल की गुफा से जो गौओं को बाहर निकाल लाया,
दो बेजान पत्थरों को रगड़ कर जो आग पैदा कर सकता है,
जो युद्ध में सदा विजयी ही हुआ है,·······
हमारा इन्द्र तो वो है । आदि-आदि·······[2]

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी ऐतिहासिक और लौकिक आख्यान मिलते हैं । इनमें सृष्टि के विकास क्रम, आर्यों के सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्यों तथा आर्येतर जातियों के संघर्ष की कहानी मिलती है । पुरुरवा तथा उर्वशी का आख्यान (शतपथ ब्राह्मण), शुनःशेप का आख्यान (ऐतरेय ब्राह्मण) तथा देवासुर संग्राम की कथा (शतपथ ब्राह्मण एवं ऐतरेय ब्राह्मण) आदि आख्यानों और कथाओं में भी वीर भावना को स्थान मिला है । इस सम्बन्ध में विंटरनित्ज ने लिखा है—"इस प्रकार के आख्यानसूक्त भारतीय साहित्य में जहाँ तहाँ प्रकीर्ण उपलब्ध होते हैं—विशेषतः महाभारत में, पुराणों में तथा बौद्ध साहित्य में, इस प्रकार के कितने ही उपाख्यान भरे पड़े हैं जो अंशतः महाकाव्य कहे जा सकते हैं और अंशतः कथावस्तु । यह सम्वाद-साहित्य वस्तुतः भारत की प्राचीन वीर-गाथाकाव्य हैं जिसके उदाहरण हमें अन्य देशों के साहित्य में भी मिलते हैं । इन वीर-गाथाओं में नाटकीय तथा आख्यान तत्व का होना यह सिद्ध करता है कि ये महाकाव्य साहित्य तथा नाटकीय साहित्य का मूल स्रोत है ।"[3]

---

[1] **प्राचीन भारतीय साहित्य, विंटरनित्ज (अनुवादक : लाजपतराय), पृ० ६३**
[2] **वही, पृ० ६४**
[3] **वही, पृ० ७९, ८०**

लौकिक संस्कृत में रामायण एवं महाभारत का उल्लेख किया जा सकता है। वैदिक साहित्य में प्राप्त वीर गाथाओं की लौकिक परिणति महाकाव्यों के कथानक के रूप में हुई है। रामायण आदर्शवादी वीरकाव्य है। इसका कथानक अर्धमानवीय और अर्ध दैवी है। यहाँ इन्द्र का रूप राम ने लिया है और वृत्र का रावण ने। महाभारत में शुद्ध मानवीय संघर्ष की कथा है किन्तु अर्जुन की भ्रान्त वीरता का चरम परिष्कार भगवान कृष्ण की दिव्य वाणी के द्वारा ही होता है। यद्यपि अर्जुन में दिव्य तत्त्व मुखर नहीं है फिर भी यह प्रभाव डाला गया है कि अर्जुन की वीरता का रहस्य कृष्ण ही है। रामायण की तुलना में यह अधिक यथार्थवादी है। पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है—"आर्य सभ्यता के विकास काल में जब देव-दानवों का (अर्थात् देव और असुर संस्कृतियों का) संघर्ष हो रहा था तब महर्षि बाल्मीकि ने देवपक्ष का विजयघोष करने वाले रामायण महाकाव्य का निर्माण किया। वेदव्यास ने द्वापर के अन्त में कुरुक्षेत्र संग्राम का स्मारक महाभारत ग्रन्थ रचा, जो कलियुग का अग्रदूत, अत्यन्त दुखान्त सृजन है। महाभारत के गीता प्रकरण में महाकवि ने आँसू पोंछने की चेष्टा न की होती तो उसका अध्ययन करने का साहस एक व्यक्ति भी न कर सकता........रामायण और महाभारत के महाकाव्य हमारे विचार से, जगत्तत्व के दो विपरीत चक्र हैं विपरीत होते हुए भी समान, तराजू के तुले हुए पलड़ों की भाँति। ये दोनों चक्र क्रमशः आशा-निराशा, विकास-ह्रास, और उत्पत्ति प्रलय के हैं जो दोनों विपरीत, किन्तु सम हैं। सम न होते तो सृष्टिचक्र न चलता। रामायण सृष्टि की आशा है, महाभारत निराशा।"[1] रामायण और महाभारत दोनों ही वीर रस की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। वैसे विद्वानों ने रामायण को करुण रस का काव्य और महाभारत को शान्त रस का काव्य कहा है किन्तु दोनों में ही युद्ध का, संघर्ष का वर्णन बड़े विस्तार से मिलता है। इन युद्धों में भाग लेने वाले नायकों में वीरश्री की भावना का सुन्दर विकास दिखाया गया है। बाद में लिखे गये भारतीय साहित्य पर इन दोनों काव्यों का प्रभाव बराबर बना रहा है। इन्हीं नायकों की वीरता का वर्णन बाद के कवियों ने भी किया है।

६. २. २. महाकाव्य काल

वीर रस की दृष्टि से परवर्ती संस्कृत साहित्य में कालिदास का रघुवंश विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रघुवंश के वीरों के वर्णनों में राजाओं के जीवन के प्रायः सभी अंगों का समावेश है। कालिदास के आदर्श राजा आत्म-निर्भर, तेजस्वी पुरुष-पुंगव हैं, सफल कर्मठ शासक हैं और प्रायः उन सभी गुणों से भूषित हैं जो जेता जाति की संस्कृति को व्यक्त कर सकते हैं। हिन्दू संस्कृति का गौरवपूर्ण और प्रौढ़ वर्णन कालिदास के काव्यों में मिलता है।

६. २. ३. परवर्ती संस्कृत साहित्य

---

[1] **हिन्दी साहित्य, २०वीं शताब्दी, पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ० ४२**

वीरता का वह ओजस्वी और आत्मसम्मान से युक्त वर्णन बाद के महाकाव्यों में कम ही मिलता है। भारवि का किरातार्जुनीय, भट्टनारायण का वेणी संहार आदि रचनाएँ भी वीरकाव्यों की परम्परा में उत्कृष्ट कही जा सकती हैं।

६. २. ४. प्राकृत साहित्य

प्राकृत में भी रामायण और महाभारत की परम्परा के काव्य लिखे गये हैं। प्रबन्ध काव्यों में "पउम चरित्र" पुराणों के ढंग पर लिखा हुआ महाकाव्य है। "सेतुबन्ध" कालिदासोत्तर संस्कृत महाकाव्यों की कृत्रिम शैली में लिखा हुआ काव्य है। प्राकृत के इन काव्यों का प्रभाव परवर्ती संस्कृत और अपभ्रंश काव्यों पर भी पड़ा। चरित काव्य का पहला रूप संस्कृत में ही बाण के हर्षचरित के रूप में मिलता है किन्तु चरित काव्यों का वास्तविक प्रणयन प्राकृत से ही शुरू होता है। "सेतुबन्धु" वीर रस प्रधान काव्य है किन्तु उसमें इसके साथ-साथ शृंगार के विलासादि का वर्णन भी है। वाक्पतिराज "गाउडवाहो" पहला चरितकाव्य है जिसमें कवि ने आश्रयदाता राजा के शौर्य को काव्य का विषय बनाया है। इन चरितकाव्यों में अनेक राजाओं, धर्म वीरों और युद्ध वीरों के चरितों की रचना हुई है।

६. २. ५. अपभ्रंश साहित्य

अपभ्रंश साहित्य में प्रधान रूप से शृंगार, वीर और शान्त रस की रचनाएँ लिखी गई हैं। सौंदर्य वर्णन में शृंगार, पराक्रम और युद्ध वर्णन में वीर और संसार की असारता और नश्वरता आदि के वर्णन में शान्त रस दृष्टिगोचर होता है। प्रधानता शान्त रस की ही दिखाई देती है। अपभ्रंश में चरितकाव्यों की रचनाएँ अधिक लिखी गई हैं। इन चरित ग्रन्थों में महापुरुषों का चरित्र अंकित हुआ है। अधिकांश चरितकाव्य प्रेमाख्यानक या प्रेमपरक काव्य हैं। वीर रस शृंगार रस का सहायक होकर ही आया है। अपभ्रंश में वीर रस की अभिव्यक्ति प्रायः मुक्तकों में ही हुई है, वैसे शारंगधर का "हम्मीररासो" वीरगाथा का सुन्दर काव्य माना गया है, पर वह अब नहीं मिलता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में इसके कुछ उद्धरण दिए हैं जो उन्हें प्राकृत-पिंगल-सूत्र में देखने को मिले।[१] वीर रस इतिहास की दृष्टि से ये उद्धरण बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इस युग के अपभ्रंश तथा हिन्दी प्रबन्ध और मुक्तक काव्यों के अनुशीलन से पता लगता है कि उस समय शृंगार और वीर रस एक दूसरे से घुल-मिल गए थे। अपभ्रंश काव्य में जो वीर रसात्मक मुक्तक मिलते हैं, वे सम्पूर्ण पूर्ववर्ती काव्य परम्परा से भिन्न हैं। श्री जितेन्द्रनाथजी पाठक लिखते हैं—"अपभ्रंश साहित्य के अवतरण से पूर्व भारतीय साहित्य में मुक्तक काव्य में वीर रस को उपजीव्य नहीं बनाया गया था। यह

---

[१] **हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, (नौवाँ संस्करण), पृ० २५ और २६**

अपभ्रंश साहित्य में सम्पूर्णतया एक नई बात थी जिसकी हिन्दी की राजस्थानी शाखा में अत्यन्त समृद्ध विकास हुआ। अवश्य ही संस्कृत प्रबन्धों में वीर रस का वर्णन हुआ है पर वह विशेषतः कथात्मक और प्रशंसामूलक है। पाली और प्राकृत जैसी पूर्ववर्ती लोक भाषाओं में धर्मनीति और शृंगार से सम्बद्ध साहित्य का सृजन तो हुआ पर वीर रसात्मक मुक्तक काव्य का नहीं। अपभ्रंश का यह नूतन चरण है, जिसका विकास हिन्दी में हुआ है।"[1] हेमचन्द्र ने एक बड़ा भारी व्याकरण-ग्रन्थ "सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन" लिखा है। उसमें उन्होंने उदाहरणों के रूप में कुछ वीर रसात्मक मुक्तक दोहे भी लिखे हैं।

६. २. ६. हिन्दी साहित्य आदि काल

हिन्दी के आदिकाल को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने वीर गाथा काल कहा है। इस युग का यह नामकरण ही इस युग की प्रवृत्ति को स्पष्टतः व्यक्त कर देने में समर्थ है। इस युग में प्रबन्ध और मुक्तक दोनों रूपों में वीर रस की रचनाएँ लिखी गई हैं। परम्परा की दृष्टि से इस युग की प्रवृत्ति पर अपभ्रंश का सीधा प्रभाव हिन्दी पर दिखाई देता है—भाषा और विषय दोनों दृष्टि से। प्रबन्ध काव्यों में रासो ग्रन्थ आते हैं। "रासो" नाम के सम्बन्ध में अनेक व्युत्पत्तियाँ दी गई हैं। 'राजसूय', रहस्य', 'रसायण' आदि अनेक शब्दों से रासो का विकास कहा गया है। किन्तु रासो साहित्य के इतिहास और भाषाशास्त्र के ध्वनिविकास के नियमों को देखते हुए इनमें से कोई ग्राह्य नहीं है। रासो नाम का विकास रास और रासक से हुआ है। रासो या रासक एक अति प्राचीन भारतीय नृत्य रहा है, जिसका सम्बन्ध कृष्णलीला से भी रहा है। रास और रासो ग्रन्थ बारहवीं शती विक्रमी से मिलने लगते हैं। फलतः इस समय के नाट्यशास्त्र और छन्दशास्त्र के ग्रन्थों से उपर्युक्त दोनों काव्यधाराओं की उत्पत्ति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।[2] रासो काव्यों में अपभ्रंश और हिन्दी दोनों भाषाओं की रचनाएँ मिलती हैं। मुंजराज और सन्देश रासक अपभ्रंश रचनाएँ हैं तो पृथ्वीराज रासो, वीसलदेवरासो, खुमानरासो आदि हिन्दी रचनाएँ हैं। इन पर अपभ्रंश का प्रभाव है। यह प्रारम्भिक हिन्दी का समय था। इन रासो ग्रन्थों में जहाँ एक ओर ऐतिहासिक महापुरुषों का चित्रण है वहाँ दूसरी ओर राम का अवतारी चरित्र भी उनमें मिलता है। इन ग्रन्थों में पृथ्वीराज रासो प्रमुख है। डाक्टर पारसनाथ तिवारी लिखते हैं—"इसमें (पृथ्वीराज रासो में) अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहाण के जीवन वृत्त के साथ सामन्ती वीर युग की सभ्यता, रहन सहन, मान मर्यादा, खान-पान तथा अन्य जीवन विधियों का इतना ब्योरेवार और सही वर्णन

---

[1] हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास, श्री जितेन्द्रनाथ पाठक, पृ० २२६

[2] हिन्दी साहित्य कोश, (प्रथम संस्करण) पृ० ६५६

हुआ है कि इसमें तत्कालीन समग्र युगजीवन अपने समस्त गुण दोषों के साथ यथार्थ रूप में चित्रित हो उठा है........युग प्रवृत्ति के अनुसार सब से अधिक उभार मिला है युद्ध, विकास, भोगविलास तथा मृगया के ही वर्णनों को और यही कारण है कि पृथ्वीराज रासो में चारित्र्य की वह गरिमा नहीं आ पाई है जो आदर्श महाकाव्य के लिए आवश्यक है।"[१] चन्दबरदाई के लिखे इस महाकाव्य में वीर और शृंगार रस दोनों का वर्णन हुआ है। इस युग के काव्यों में वीररस के साथ-साथ शृंगार रस को भी महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। इस युग की वीर भावना में राजस्थान की नारियों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। अपभ्रंश और हिन्दी दोनों ही काव्यों में (हिन्दी से तात्पर्य यहाँ डिंगल की रचनाएँ) वीर रमणियों की भावनाओं की जैसी अभिव्यक्ति हुई है, वह विश्व साहित्य में बेजोड़ है।

इस युग में जो युद्ध हुए वे आपस में हुए और बाहर से आने वाली विदेशी शक्तियों से भी। इस युग के राजा, सेनानायक एवं शिक्षित सैनिक योग्य, शूर तथा वीर होते थे और तुलना में विदेशी आक्रमणकारियों से किसी प्रकार कम नहीं थे। सिन्ध में दाहिर और उसकी रानियों के युद्ध, पंजाब में अजयपाल और अनंगपाल के युद्ध, तुर्कों और अफगानों के साथ पहले के चौहान राजा और पृथ्वीराज के युद्ध तथा चंदेलों का तुर्कों के साथ युद्ध शूरता और वीरता के प्रमाण हैं। तत्कालीन रासो ग्रन्थों में इसे अभिव्यक्ति मिली है। डिंगल के कवियों के सम्बन्ध में मेनारियाजी लिखते हैं—"डिंगल के कवि वीरों के देश में पैदा हुए थे। वीरता के वायुमण्डल में पले थे और स्वयं वीर भी होते थे। इसीलिए अपनी कविता में भी वास्तविकता का जीवन फूँक सके हैं। इसके विपरीत संस्कृत आदि के कवि रणांगन की कटाकटी से कोसों दूर किसी शान्त वातावरण में रहते और सुनी सुनाई बातों के आधार पर वीर रस के चित्र अंकित करने की कोशिश करते थे। कारण उनकी अनुभूति को प्रत्यक्षानुभव का सहारा तनिक भी न होता था। अतएव योद्धा जिस समय शत्रु पर वार करता है, उसकी तलवार बिजली के समान दिखाई पड़ती है, वीर गण पहाड़ों की तरह उठ खड़े हुए हैं इत्यादि ऊपरी बातों का वर्णन तो उन्होंने किया पर वीर वीरांगनाओं के हृदय के गम्भीरतर भावों का विश्लेषण उनसे न हो सका। डिंगल के कवियों ने इन मनोभावों को भी व्यक्त किया है और ऐसी सरल भाषा में इतनी सरलता के साथ कि पढ़ते ही मन मुग्ध हो जाता है।"[२]

हिन्दी साहित्य में बाद का युग भक्ति साहित्य का है। इस युग के काव्यों में

६. २. ७. भक्ति साहित्य

वीर काव्यों की परम्परा में गोस्वामीजी का 'रामचरितमानस' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें तुलसी ने राम को वीर आदर्श नायक के रूप में

---

[१] हिन्दी साहित्य कोश, (प्रथम संस्करण), पृ० ५८०

[२] डिंगल में वीर रस, मोतीलाल मेनारिया, पृ० २४, २५

चित्रित किया है। तुलसी के राम का प्रभाव हिन्दू जनता पर व्यापक रूप में पड़ा है। भारतीय संस्कृति के अनुसार उदात्त एवं आदर्श नायक की कल्पना को तुलसी ने राम के रूप में प्रस्तुत किया है। वीरता का यह आदर्श बाद के वीर काव्यों के रचयिताओं ने भी अपनाया है।

भूषण से पूर्व वीर काव्यों की परम्परा का यह अति संक्षिप्त विवरण है। भूषण के समय में भी अनेक वीर काव्य लिखे गए। ये वीर काव्य अनेक पद्धतियों के हैं। इनकी विभिन्न शैलियाँ हैं। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस युग के वीर काव्यों की पाँच पद्धतियाँ मानी हैं। वे इस प्रकार हैं[1]—

६. २. ८. भूषण का युग

(१) **शुद्ध वीर काव्य।**
(२) रासो पद्धति का शृंगार मिश्रित वीर काव्य।
(३) वीर देव काव्य या भक्ति भावित वीर काव्य।
(४) अनूदित वीर काव्य (महाभारत जैसे वीर काव्यों का अनुवाद)
(५) दरबारी कवियों का प्रकीर्ण वीर काव्य।

भूषण का काव्य इन पद्धतियों में प्रथम पद्धति के अन्तर्गत आता है। मिश्रजी ने भूषण के काव्य को शुद्ध वीर काव्य कहा है।[2] भूषण के काव्य की विशेषताएँ दिखलाने से पूर्व इस युग की अन्य पद्धतियों का संक्षिप्त विवरण देना उपयुक्त होगा। विवरण इस प्रकार है :

६. २. ८. १. रासो पद्धति का शृंगार मिश्रित वीर काव्य—इस पद्धति का काव्य लिखने वालों में जोधराज, चन्द्रशेखर और सूर्यमल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जोधराज की रचना 'हम्मीररासो', चन्द्रशेखर की रचना 'हम्मीरहठ' और सूर्यमल की 'वंशभास्कर' इस पद्धति की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

रासो ग्रन्थों के समान हम्मीररासो ग्रन्थ की रचना जोधराज ने की है। यह काव्य प्रबन्धात्मक ढंग से लिखा गया है। भाषा, छन्द, कथानक, युद्ध, प्रेम आदि का चित्रण रासो के ढंग का है। डाक्टर टीकमसिंह तोमर ने लिखा है—"हम्मीर-रासो के चरित्र-चित्रण में कवि ने रासो परम्परा का अनुसरण किया है। स्त्री को ही युद्ध का कारण माना। कवि को शृंगारिक विचारधारा-वर्णन का अवसर प्राप्त हो गया है। फल यह हुआ है कि पात्रों के शृंगार-सम्बन्धी गुणों को दिखलाने

---

[1] **हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, शृंगारकाल, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ७००**
[2] **वही, पृ० ७००**

में कवि ने अधिक समय नष्ट किया है। पर आशा आदि राजपूत रमणियों के चरित्रों से नारी-वीर-भावना का चित्रण करने में कवि पर्याप्त मात्रा में सफल हुआ है।"[१] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी लिखा है—"प्राचीन वीरकाल के अन्तिम राजपूत वीर का चरित जिस रूप में और जिस प्रकार की भाषा में अंकित होना चाहिए था उसी रूप और उसी प्रकार की भाषा में जोधराज सफल हुए हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।"[२] चन्द्रशेखर की रचना हम्मीरहठ भी इसी ढ़ंग का काव्य है। कथानक हम्मीररासो से मिलता जुलता है। शुक्लजी ने इसे भी रासो पद्धति का काव्य कहा है।[3] वंशभास्कर में बूँदी के राजवंश का विस्तार से वर्णन किया गया है। यह भी इसी ढंग का काव्य है।

६. २. ८. २. **वीर देव काव्य या भक्ति भावित वीरकाव्य**—इस प्रवृत्ति की अधिकांश रचनाएँ वीर केसरी हनुमान को आधार बनाकर लिखी गई हैं। इनके अतिरिक्त दुर्गा, नृसिंह, कालिका आदि देवी देवताओं के यशोगान में लिखे गए काव्य इसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत आते हैं। मनियारसिंह की हनुमत छबीसी, गणेश की हनुमत पच्चीसी, भगवन्तराय खीची की हनुमत पचीसी, खुमान का हनुमान-नखशिख, हनुमान पंचक और हनुमान पचीसी, साथ ही इस कवि के नृसिंह-चरित्र और नृसिंह-पचीसी इसी प्रकार के काव्य हैं।

६. २. ८. ३. **अनूदित वीर काव्य (महाभारत जैसे वीरकाव्यों का अनुवाद)**—महाभारत को आधार बनाकर उसके अनुवाद के रूप में कुछ काव्य लिखे गए हैं। बहुतों ने स्वतन्त्र रूप से उसके प्रसंगों को लेकर फुटकल रूप में छन्द जोड़े हैं। किसी किसी ने उसके पर्वों का अनुवाद प्रस्तुत किया है। कुलपति का द्रौणपर्व, गणेशपुरी का कर्ण पर्व इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। महाभारत का पूरा अनुवाद करने वालों में सबलसिंह का नाम उल्लेखनीय है। शुक्लजी ने इनके सम्बन्ध में लिखा है—"इन्होंने सारे महाभारत की कथा दोहों चौपाइयों में लिखी है। इनका महाभारत बहुत बड़ा ग्रन्थ है········ये वास्तव में अपने महाभारत के लिए ही प्रसिद्ध हैं। उसमें यद्यपि भाषा का लालित्य या काव्य की छटा नहीं है पर सीधी सादी भाषा में कथा अच्छी तरह कही गई है।"[४]

६. २. ८. ४. **दरबारी कवियों का प्रकीर्ण वीर काव्य**—ऐतिहासिक पात्रों पर लिखने वाले कवि प्रायः दरबारी कवि हैं। दरबारी कवियों का यह वर्ग जो अपने आश्रयदाता को काव्य का विषय बनाकर कविता करते थे, इनमें कुछ कवि

---

१ हिन्दी वीरकाव्य, डाक्टर टीकमसिंह तोमर, पृ० ७३

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (नौवां संस्करण), पृ० ३५१

3 वही, पृ० ३६०

४ वही, पृ० ३२६, ३२७

प्रसिद्ध हैं और इनकी प्रसिद्धि का कारण उनकी अपनी कविता ही नहीं बल्कि ऐतिहासिक व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रभाव भी है। इस प्रकार की कविता लिखने वाले बहुत से कवियों की प्रतिभा का अपव्यय ही हुआ है। इस बात की ओर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने संकेत किया है—"ऐसी पुस्तकों में सर्वप्रिय और प्रसिद्ध वे हीं हो सकी हैं जो या तो देवकाव्य के रूप में हुईं अथवा जिनके नायक कोई देश प्रसिद्ध वीर या जनता के श्रद्धाभाजन रहे हैं। जैसे शिवाजी, छत्रसाल, महाराणा प्रताप आदि। जो पुस्तकें यों ही खुशामद के लिए, आश्रित कवियों की रूढ़ियों के अनुसार लिखी गईं, जिनके लिए जनता के हृदयों में कोई स्थान न था, वे प्राकृतिक नियमानुसार प्रसिद्धि प्राप्त न कर सकीं। बहुत सी तो लुप्त हो गईं। उनकी रचना में तो सच पूछिए तो कवियों ने अपनी प्रतिभा का अपव्यय ही किया। उनके द्वारा कवियों को अर्थ सिद्धी भर प्राप्त हुई, यश का लाभ न हुआ।"[1] डाक्टर टीकमसिंह तोमर ने अपने शोध प्रबन्ध "हिन्दी वीर काव्य" में १६००–१८०० विक्रम संवत के बीच लिखे गए वीर काव्यों का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने जिन प्रसिद्ध वीर काव्यों का विवेचन किया है, वे निम्न लिखित हैं—[2]

१. केशव : वीरसिंहदेव चरित और रतन बावनी
२. जटमल : गोरा बादल की कथा
३. भूषण : शिवा बावनी, शिवराज भूषण, छत्रसाल दशक एवं स्फुट पद
४. मान : राजविलास
५. गोरेलाल : छत्रप्रकाश
६. श्रीधर : जंगनामा
७. सदानन्द : राजा भगवन्तसिंह
८. सूदन : सुजान चरित्र
९ गुलाब : करहिया का रायसौ
१०. पद्माकर : हिम्मतबहादुर-बिरुदावली, जगद्विनोद, प्रतापसिंह विरुदावली
११. जोधराज : हम्मीररासो

इनके अतिरिक्त उन्होंने १६००–१८०० वि० सं० के मध्य के अन्य कवियों की सूची उनकी रचनाओं के नाम के साथ दी है। सूची में इस प्रकार की ५२

---

[1] **हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (नौवाँ संस्करण), पृ० ३२४**

[2] **हिन्दी वीर काव्य, डाक्टर टीकमसिंह तोमर, पृ० १७**

रचनाएँ और हैं।[1] ये सभी रचनाएँ ऐसी हैं जिनके नायक इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति नहीं हैं इसलिए इन रचनाओं को महत्व प्राप्त नहीं हुआ है। इस प्रकार की बहुत सी रचनाएँ लुप्त हो गई होंगी।

रासो ग्रन्थों में भी और इस काल के वीर काव्यों में भी कवियों ने ऐतिहासिक पात्रों को प्रायः अपने काव्य का नायक बनाया है। किन्तु इनमें कुछ अन्तर है। रासो ग्रन्थों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में, विशेषतः पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में अब तक मतभेद बना हुआ है और ये मतभेद प्रायः इतिहास को लेकर ही हैं। रासो ग्रन्थों के रचयिताओं ने ऐतिहासिक पात्र और उससे सम्बन्धित प्रमुख घटनाओं को अपने काव्य का विषय बनाया किन्तु घटनाओं के संयोजन में, वर्णन क्रम में अपनी कल्पना से पूरा-पूरा काम लिया है। तथ्यों से कुछ हटकर अपनी इच्छानुसार पात्रों को दैवी और पौराणिक नायक के रूप में चित्रित करने का प्रयास भी वे बराबर करते रहे हैं। डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने ठीक ही लिखा है—"वस्तुतः इस देश के इतिहास को ठीक आधुनिक अर्थ में कभी नहीं लिया गया। बराबर ही ऐतिहासिक व्यक्ति को पौराणिक या काल्पनिक कथानायक बनाने की प्रवृत्ति रही है। कुछ में दैवी शक्ति का आरोप करके पौराणिक बना दिया गया है जैसे उदयन, विक्रमादित्य और हाल। जायसी के रतनसेन, रासो के पृथ्वीराज में तथ्य और कल्पना का—फैक्टस् और फिक्शन का—अद्‌भुत योग हुआ है। कर्मफल की अनिवार्यता में, दुर्भाग्य और सौभाग्य की अद्‌भुत शक्ति में और मनुष्य के अपूर्व शक्ति भाण्डार होने में दृढ़ विश्वास ने इस देश के ऐतिहासिक तथ्यों को सदा काल्पनिक रंग में रंगा है। यही कारण है कि जब ऐतिहासिक व्यक्तियों का चरित्र लिखा जाने लगा तब भी इतिहास का कार्य नहीं हुआ। अन्त तक ये रचनाएँ काव्य ही बन सकीं, इतिहास नहीं।"[2] इस युग में कुछ वीर काव्य रासो पद्धति के लिखे गए हैं, जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है। उन्हें छोड़कर दरबारी प्रकीर्ण काव्य जो लिखा गया, उनमें इतिहास से काव्य का पूरा-पूरा समन्वय मिलता है। बात इतनी ही है कि रचनाएँ प्रबन्धात्मक ढंग से नहीं लिखी गईं, उनमें इतिहास बिखरे हुए रूप में मिलता है। इतिहास से विरोध उसमें नहीं है। पीछे "भूषण के काव्य में इतिहास" वाले अध्याय में इस सम्बन्ध में विस्तार से लिखा गया है। तोमरजी ने भी अपने ग्रन्थ में इस युग के वीर काव्यों की ऐतिहासिकता पर विस्तार से विचार किया है। इसे देखने से इस बात का ज्ञान होता है कि इस युग के कवि जिन्होंने रासो पद्धति को छोड़कर प्रकीर्ण रूप से वीर काव्यों की रचनाएँ की हैं, उनमें काव्य और इतिहास की पूर्ण मैत्री है।

---

[1] **हिन्दी वीरकाव्य, डाक्टर टीकमसिंह तोमर, पृ० १८, १९, २०**

[2] **हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ७१**

६. २. ८. ५. **शुद्ध वीर काव्य** —दरबारी प्रकीर्ण काव्य लिखने वालों में दो प्रकार के कवि हुए हैं। एक वे हैं, जिनके नायक इतिहास प्रसिद्ध वीर हैं। इनको आधार बनाकर लिखे गए काव्यों में जनता को आन्दोलित करने की शक्ति है। दूसरे वे हैं, जिनमें कवियों की अर्थ सिद्धी भर हुई है। इस प्रकार के कवियों की प्रतिभा का अपव्यय ही हुआ है। भूषण का काव्य प्रथम कोटि का है। इस कोटि के काव्य को शुद्ध वीर काव्य कहा गया है। इसका कारण यह है कि इसमें नायक की वीरता का वर्णन और उसके कर्मों की व्याख्या का विवेचन ही अधिक हुआ है। प्राय: वीर काव्यों में वीर रस के साथ-साथ शृंगार आदि रस अंगी रस बनकर आए हैं। भूषण के काव्य में शृंगार रस का विवेचन बिलकुल नहीं है। उनका नायक किसी से प्रेम करता हुआ नहीं दिखाया गया है। वह सदा अन्याय दमन में तत्पर दिखाया गया है। अत: इस दृष्टि से काव्य को हम शुद्ध वीर काव्य कह सकते हैं। भूषण के काव्य का विवेचन विस्तार के साथ नीचे किया जा रहा है।

६. ३. भूषण की वीर भावना एवं नायक परिकल्पना

भूषण के काव्य में वीर भावना की अभिव्यक्ति हुई है। इस वीर भावना का सम्बन्ध भूषण के नायक से है क्योंकि भूषण ने अपने नायक में जिस वीर भावना को अभिव्यक्त किया है. वह उस युग की वीरता का आदर्श और उदात्त रूप है।

प्राय: वीर नायक उन्हें कहा गया है, जिन्होंने किसी राज्य की स्थापना की है, जो किसी युग की सभ्यता और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले महापुरुष हैं, जिन्होंने मानवता का सन्देश दिया है या मानवता की रक्षार्थ अपना जीवन लगा दिया है। संक्षेप में वीर पुरुष आदर्श पुरुष को कहा गया है। वीरता के आदर्श युगानुरूप बदलते रहे हैं। महाकाव्यों में जिन वीर नायकों के चरित्रों का गुणगान किया गया है, वे अपने युग की सभ्यता और संस्कृति को मूर्त करने वाले आदर्श रूप हैं। उनसे न केवल वह युग विशेष प्रभावित हुआ है बल्कि बाद में आने वाले युगों में भी जब तक उन आदर्शों की मान्यता बनी रही है तब तक उन वीर नायकों की और उनसे सम्बन्धित वीर काव्यों की मान्यता बनी हुई है और आगे भी जब तक मान्यता बनी रहेगी तब तक उन नायकों का गुणगान होता रहेगा। किसी जाति या देश की या राष्ट्र की संस्कृति का ज्ञान हमें उस जाति, या राष्ट्र के साहित्य में वर्णित वीर नायकों के आदर्श रूपों द्वारा होता है। अत: यह कहा जा सकता है कि वीर काव्यों द्वारा युग की सभ्यता और संस्कृति का ज्ञान होता है।

भूषण ने अपने नायक छत्रपति शिवाजी में भारत के प्राचीन वीर नायकों की परिकल्पना की गई है और स्थान-स्थान पर उपमानों के द्वारा यह व्यक्त किया है कि शिवाजी भारत की प्राचीन संस्कृति के समर्थक और उसके रक्षक रहे हैं। जैसे—

(१) तेरौं करवार भयौ दच्छिन कौं ढाल भयौ,
हिन्द कौं दिवाल भयौ काल तुरकन कौं।[1]

(२) दच्छिन-नाइक एक तुही, भुवि-भामिनी कौं अनुकूल ह्वै भावै।
दीनदयाल न तो सो दुनी, अरु म्लेच्छ के दीनहिं मारि मिटावैं।[2]

\+ + +

(३) को दाता को रन चढ़ौ, को जग-पालनहार।
कबि भूषन उत्तर दियौ, सिव नृप हरि-अवतार॥[3]

\+ + +

(४) दारुन दइत हरनाकुस बिदारिबे कौं,
भयौ नरसिंह रूप तेज बिकरार है।
भूषन भनत त्यौं ही रावन के मारिबे कौं,
रामचन्द्र भयौ रघुकुल-सरदार है॥
कंस के कुटिल बल-बंसन बिधंसिबे कौं,
भयौ जदुराय बसुदेव को कुमार है।
पृथ्वी-पुरहूत साहि के सपूत सिवराज,
म्लेच्छन के मारिबे कौं तेरो अवतार है॥[4]

\+ + +

(५) उदित होत सिवराज के मुदित भए द्विजदेव।
कलिजुग हट्यो मिट्यो सकल म्लेच्छन को अहमेव॥[5]

उपर्युक्त उद्धरणों को देख लेने से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि भूषण ने यह दिखलाया है कि राम और कृष्ण ने धर्म रक्षार्थ जो कार्य किया है वही कार्य छत्रपति शिवाजी भी कर रहे हैं। राम का संघर्ष रावण से था और कृष्ण का कंस से उसी तरह शिवाजी का संघर्ष औरंगजेब से है। शिवाजी की तुलना उन श्रेष्ठ नायकों से की गई है और यह कहा गया है कि इस युग में (भूषण के अपने युग में) तुम ही (शिवाजी ही) अब इस कार्य को कर रहे हो। किन्तु यह केवल तुलना है। वास्तव में युगों में बहुत अन्तर है और तदनुसार परिस्थितियों में भी। राम और

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ६८
[2] वही, छन्द सं० १६७
[3] वही, छन्द सं० ३८५
[4] वही, छन्द सं० ३६५
[5] वही, छन्द सं० १२

रावण के युद्ध से महाभारत काल का युद्ध भिन्न है और छत्रपति शिवाजी और औरंगजेब का युद्ध इन से और भिन्न है। अतः इन वीर नायकों के भिन्न-भिन्न रूपों की कतिपय विशेषताओं पर विचार कर लेना समीचीन होगा।

आदिम युग में वीरता का सम्बन्ध शारीरिक वीरता से वह भी व्यक्तिगत वीरता से अधिक रहा होगा। जो वीर एवं पराक्रमी होता था वही धरती का उपभोग कर सकता था। 'वीर भोग्या वसुन्धरा' कहा भी गया है। महाकाव्य काल की वीरता का आदर्श सामाजिक आदर्श को लिए हुए है। इनमें एक व्यक्ति के माध्यम से सामूहिक उद्वेग को व्यंजना मिली है। महाकाव्यों का लोकनायक अपनी वैयक्तिक वीरता का साहस प्रदर्शन करते हुए भी सामूहिक प्रतिनिधित्व का उत्तर-दायी होने के कारण प्रतिक्षण मर्यादित रहता है। राम की तरह शिवाजी भी एक प्रकार से सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण से प्रतिक्षण मर्यादित रहते हैं। उनका व्यक्तिगत शौर्य व्यक्तिगत स्वार्थों की तुलना में अन्याय दमन में अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। जैसे राम ने अनेक राक्षसों का वध करके धर्म की रक्षा की उसी तरह शिवाजी ने भी मुगलों के और बीजापुर के अनेक सेनानायकों का घमण्ड चूर किया है।

महाभारत काल के व्यक्ति जन-नायक होते थे। इस युग के वीरों में सेना-नायकों का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है। सेना कितनी है, इसकी कोई चिन्ता नहीं की जाती थी। कौन लड़ने आ रहा है यह जानना ही काफी था। भीष्म, द्रोण, भीम और अर्जुन आदि इसी प्रकार के वीर व्यक्ति थे। इस युग के वीरों में शौर्य उनके चरित्र का अंग होता था। वीर व्यक्ति युद्ध की कला के ज्ञाता होते थे। वे निर्भीक एवं मरण को पर्व मानने वाले होते थे। प्रतिशोध की भावना इस युग के नायकों में विशेष रूप से देखने को मिलेगी और सच कहा जाय तो यह भावना उनके उत्साह को बढ़ाने वाली होती थी। इसी आधार पर वे उद्दीप्त हुआ करते थे एवं अपने चरित्रगत बल पर विजेतव्य को जीतने चल पड़ते थे। युद्ध आदि जो होते, उनमें एक प्रकार से व्यक्तिगत वीरता का प्रदर्शन ही अधिक होता। महाभारत में कई द्वन्द्व युद्धों का वर्णन है। अतः यह कहा जा सकता है कि द्वन्द्व युद्ध तत्कालीन युद्ध प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। महाभारत की वीरता सजीव वीरता है।

भूषण के नायक छत्रपति शिवाजी में भी महाभारत युग की वीरता के गुण मिलते हैं। यद्यपि उनकी नीति परिस्थिति के अनुरूप बदलने की रही है किन्तु फिर भी उनके शारीरिक शौर्य, चरित्रगत वीरता और अदम्य साहस का परिचय स्थान-स्थान पर मिलता है। भूषण ने तत्सम्बन्धी घटनाओं का बड़े विस्तार से वर्णन किया है। उदाहरण के लिए 'अफजलखान-वध' का प्रसंग लिया जा सकता है। अफजलखान ने प्रण किया था कि वह शिवाजी को पकड़ कर लाएगा। इसी इरादे

से वह आया था। शिवाजी ने यहाँ कूटनीति से काम लेते हुए भी अपने साहस का पूर्ण परिचय दिया है। अफजलखान के वास्तविक इरादे का उन्होंने पहले ही पता लगा लिया और फिर वे उससे उसी रूप में मिलने गए जैसे वह चाहता था। (अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध उन्होंने कर लिया था) जब उनके साथ शत्रु पक्ष की ओर से धोखा हुआ तो उन्होंने भी उसका उसी रूप में प्रतिकार किया और उसी स्थल पर अफजलखान का वध कर दिया। इस वध का वर्णन करते हुए भूषण ने महाभारत के पात्रों द्वारा शिवाजी और अफजलखान की तुलना की है, जो वास्तव में उचित ही है—

वहै है सिवाजी जिहि भीम लौं अकेले मार्‌यौ,
अफजल-कीचक सौं कीच घमसान कै ॥[1]

भीम और कीचक का द्वन्द्व युद्ध हुआ था। उसी तरह अफजलखान और शिवाजी का भी एक प्रकार से द्वन्द्व युद्ध हुआ। इसी तरह से अन्य प्रसंगों में भी हम देखते हैं कि छत्रपति शिवाजी युद्ध के क्षेत्र में स्वयं आगे आगे रहते थे। शाईस्तखाँ पर आक्रमण करते समय स्वयं शिवाजी रात के समय उसके डेरे के भीतर गए और शत्रु के पास पहुँच कर अपनी तलवार के वार से शाईस्तखाँ की अंगुलियाँ काट डालीं।

औरंगजेब के दरबार में उपस्थित होने पर जब उन्हें उचित सम्मान नहीं मिला तो शत्रु के घर में शत्रु का अपमान करने में बिल्कुल नहीं हिचकिचाए यह उनके अदम्य साहस का उदाहरण है। शिवाजी की वीरता चरित्रगत वीरता थी। दूसरी बात जैसे महाभारत काल की वीरता में यही देखा जाता था कि सेनानायक कौन है ? उसी तरह इस युग में भी सेनानायकों का ही महत्व था। भूषण ने शत्रु पक्ष के सेनानायकों का नाम तो दिया है किन्तु शिवाजी के पक्ष में केवल शिवाजी का नाम ही दिया है। इसका कारण यही है कि उनकी दृष्टि अपने नायक पर अत्यधिक केन्द्रित थी। महाभारत युग के नायक की कतिपय विशेषताओं के मिलने पर भी शिवाजी की वीरता भीष्म, द्रोण या अर्जुन की सी वीरता नहीं है। इसका कारण युगों का अन्तर है।

रामायण और महाभारत के पात्रों की वीरता में विशेष रूप से सामाजिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति मिली है। धार्मिक आदर्शों और मर्यादा का उल्लेख भी उसमें है। आगे चलकर वीरकाव्यों की विषय-वस्तु का आधार जब इतिहास बना तो उन पर भी यह पौराणिक प्रभाव वैसे ही बना रहा। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में चरित काव्यों की रचनाएँ हुईं। इनमें जिन ऐतिहासिक पात्रों का चरित्र चित्रण किया गया है। उनमें मुख्यतः प्रेम, वीरता, धर्म या वैराग्य भावना का

---

१ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३१५**

समन्वय मिलता है। प्रायः सभी काव्यों में कोई न कोई प्रेम कथा अवश्य मिलती है। उस युग की वीरता के सम्बन्ध में श्री जितेन्द्रनाथ जी पाठक लिखते हैं—"(इस युग में) राजनीति और कूटनीति का आगमन होता है। वीरता संगठित रूप में प्रकट होती है। प्रत्येक सम्राट् के लिए मन्त्री परिषद् की आवश्यकता होती है और शासक की वैयक्तिक और चरित्रगत वीरता की आवश्यकता नहीं रह जाती। इस युग में जो साहित्य रचित हुआ है वह प्रायः शान्ति युग का साहित्य है, जिसमें वीरत्व-व्यंजक भाव-चित्रण का अभाव-सा है। प्रायः वीरता प्रशंसात्मक होकर वर्णित हुई है। इस प्रकार इस युग में व्यक्तिगत और चरित्रगत वीरता का सर्वथा अभाव न होते हुए भी आरोपित और मौखिक वीरता का वर्णन दिखलाई पड़ता है।"[1] इस युग के अधिकांश कवि दरबारी कवि थे और उन्होंने अपने नायकों की प्रशस्तियाँ गाई हैं। इन नायकों के साथ भूषण के नायक की तुलना करने पर बहुत अन्तर मिलेगा। भूषण का नायक प्रेमी के रूप में नहीं दिखलाया गया है। शिवाजी के युद्धों में किसी रमणी को पाने का प्रयत्न नहीं है। प्रायः युद्ध और श्रृंगार का मेल रहा है। रामायण में सीता और महाभारत में द्रौपदी युद्ध का कारण रही हैं और बाद में ऐतिहासिक आधार को वस्तु बनाकर लिखे गये काव्यों में भी वीर और श्रृंगार रस दोनों साथ-साथ मिलते हैं। यहाँ तक कि दोनों एक दूसरे के प्रेरक भी रहे हैं। भूषण का काव्य इनसे भिन्न है। इसमें इस प्रकार की भावना नहीं है। अतः इस काव्य को शुद्ध वीर काव्य कहा जा सकता है। भूषण का नायक सदैव कर्म में रत दिखाया गया है या उसके कर्मों के प्रभाव का वर्णन किया गया है। नायक के कर्म के पीछे जो प्रेरणा कार्य करती रही है, वह है अन्याय और अत्याचार जिसे वह देख नहीं सकता। शिवाजी की वीरता व्यक्तिगत वीरता होते हुए भी संगठन की वीरता है। शिवाजी का दल मजबूत था इसीलिए वे अपने उद्देश्य में सफल हो सके।

राजपूतों की वीरता भिन्न कोटि की है। उनमें वीरता का कोई अभाव नहीं था किन्तु वास्तविकता यह है कि उस वीरता का कोई ऊँचा आदर्श उनके सम्मुख नहीं रहा। विवाह जैसा मंगल कार्य भी युद्ध के बिना नहीं होता था। कर्नल जेम्स टॉड ने राजपूतों की वीरता के सम्बन्ध में लिखा है—"राजपूतों के जीवन के साथ सिद्धान्तों का अटूट सम्बन्ध है, जिनका प्रयोग वे युद्ध के समय अपने शत्रुओं के साथ भी करते हैं और युद्ध समाप्त हो जाने के बाद उन सिद्धान्तों और नैतिक व्यवहारों का समर्थन करते हैं। लड़ाकू राजपूतों में उनके पूर्वजों के गुणों का जितना सामंजस्य मिलता है, उतना अन्यत्र न मिलेगा·······संसार की किसी भी जाति ने स्त्रियों का उतना आदर नहीं किया जितना राजपूतों ने किया है·······राजस्थान

[1] **हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास, श्री जितेन्द्रनाथ पाठक, पृ० २२४**

के बहुत से युद्ध केवल स्त्रियों के कारण हुये।........राजपूतों के शौर्य और विक्रम में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। उसके साथ जिसने राजस्थान का सच्चा इतिहास देखा है, वह राजपूत स्त्रियों के श्रेष्ठ चरित्र की प्रशंसा करेगा।........ राजस्थान के इतिहास में जितनी प्रशंसा राजपूतों की की जा सकती है उतनी ही प्रशंसा की अधिकारिणी यहाँ की राजपूत स्त्रियाँ हैं। इसमें किसी का मतभेद नहीं हो सकता........राजपूतों के जीवन में लड़ने और युद्ध करने के सिवा और कुछ न था। जिन्दगी की दूसरी बातों का उसे ज्ञान भी न था। उनके जीवन में इसी एक बात को महत्त्व दिया जाता था। युद्ध करने की योग्यता और कुशलता उनके जीवन की प्रतिभा थी।........जन्म और मृत्यु को वे अधिक महत्व न देते थे .... अपने प्राणों की वलि दे देना, साधारण बातों में मरना और मार डालना अथवा इसके लिए भयानक आक्रमण कर देना वे लोग अपने जीवन की साधारण बात समझते थे।"[1] राजपूतों में हम वीरता की कोई कमी नहीं पाते, नैतिकता में भी वे पीछे नहीं हैं किन्तु फिर भी उनको पराजित होना पड़ता है। इसका मुख्य कारण उनमें संगठन की कमी का होना है। इस युग की वीरता वैयक्तिक वीरता थी। इस व्यक्तिगत वीरता का उपयोग सामूहिक कर्तव्य की ओर से आँख मूँदे हुए था, दूसरे शब्दों में व्यक्तिगत कर्त्तव्य या समन्वय सामूहिक और राष्ट्रीय कर्त्तव्य के साथ ठीक तरह से नहीं हुआ। इसलिए व्यक्तिगत क्षेत्र में अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए भी सामूहिक क्षेत्र में इस युग का व्यक्ति असफल रहा। व्यक्तिगत वीरता के आदर्श नायक रासो ग्रन्थों के नायक हैं। विशेषतः पृथ्वीराज चौहान इस युग का आदर्श नायक है।

छत्रपति शिवाजी की वीरता व्यक्तिगत वीरता तो है ही किन्तु इसके साथ-साथ उस वीरता का एक लक्ष्य भी है। वे किसी लक्ष्य को सम्मुख रखकर कार्य में अग्रसर होते हैं। यदुनाथ सरकार ने छत्रपति शिवाजी के सम्बन्ध में इतिहास में उनका स्थान निर्धारित करते हुए लिखा है—"शिवाजी का चरित्र अनेक सद्गुणों से भरा था। उनकी मातृभक्ति, सन्तान प्रीति, इन्द्रिय-निग्रह, धर्मानुराग, साधु-सन्तों के प्रति भक्ति, विलासवर्जन, श्रमशीलता और सब सम्प्रदायों के प्रति उदार भाव उस युग के अन्य किसी राजवंश में ही नहीं, अनेक गृहस्थ घरों में भी अतुलनीय था। वे अपने राज्य की सारी शक्ति लगाकर स्त्रियों की सतीत्व-रक्षा करते, अपनी फौज की उद्दण्डता का दमन करके सब धर्मों के उपासना-घरों और शास्त्रों के प्रति सम्मान दिखलाते और साधु-सन्तों का पालन पोषण करते थे। वे स्वयं निष्ठावान भक्त हिन्दू थे, भजन और कीर्तन सुनने के लिए अधीर रहते थे, साधु-संन्यासियों की पद-सेवा करते थे और गो-ब्राह्मण प्रतिपालक थे। युद्ध-यात्रा में कहीं 'कुरान' मिलने

---

[1] **राजस्थान का इतिहास, जेम्स टॉड, पृ० ३०६, ३१०, ३३० और ३४०**

से उसे नष्ट या अपवित्र न करते, बल्कि बड़े यत्न से रख देते और पीछे किसी मुसलमान को दान कर देते थे। मस्जिद और इस्लामी मठ (खानका) पर वे कभी आक्रमण न करते थे। कट्टर मुसलमान इतिहासकार खाफीखाँ ने भी शिवाजी का उल्लेख करते समय लिखा था—"काफिर जहन्नुम में गया। परन्तु उसने भी शिवाजी के सच्चरित्र, पर-स्त्री को माता के समान मानना, दया दाक्षिण्य और सब धर्मों को समान प्रतिष्ठा से देखना, आदि दुर्लभ गुणों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।"[१] यदुनाथ सरकार ने शिवाजी के जिन सद्गुणों की चर्चा की है और उनकी चरित्रगत वीरता को दिखलाया है, भूषण ने भी उन्हीं गुणों की चर्चा की है।

(१) वेद राखे विदित पुरान परसिद्ध राखे,
राम-नाम राख्यो अति रसना सुघर में।[२]

\+ + + +

(२) राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा में धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी में।[३]

\+ + + +

(३) वेद पुरानन की चरचा अरचा दुज-देवन की फिर फैली।[४]

\+ + + +

(४) रज-लाज राजत आज है महाराज श्री सिवराज में।[५]

—आदि-आदि।

तात्पर्य यह है कि छत्रपति शिवाजी की वीर भावना के पीछे सामाजिक और धार्मिक आदर्श था, जब कि राजपूतों की वीरता के पीछे कोई व्यापक आदर्श नहीं था। दूसरी बात भूषण के युग में ऐसे वीरों की आवश्यकता थी जो विरोधी शक्ति का सामना उनके छल-छन्दों को समझकर उसी रूप में कूटनीति को अपनाते हुए करना चाहिये था। शिवाजी ने यही किया। शिवाजी का लक्ष्य ऊँचा रहा किन्तु उसको प्राप्त करने में उन्होंने साम, दाम, दण्ड और भेद सभी प्रकार की नीति को अपनाया। इसके अभाव में वे सफल भी न होते। मध्यकाल का इतिहास एक प्रकार से इस्लाम का हिन्दू-धर्म के साथ संघर्ष का इतिहास है। राजबली पाण्डेय ने लिखा है—"भारत ही ऐसा देश था जहाँ इस्लाम को सतत संघर्ष का सामना करना पड़ा

---

[१] शिवाजी, यदुनाथ सरकार, पृ० १८८ और १८९
[२] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४२०
[३] वही, छन्द सं० ४२१
[४] वही, छं० सं० २६८
[५] वही, छं० सं० २१६

और लगभग एक हजार वर्ष के आक्रमण और शासन के बाद भी भारत के विजय और धर्म परिवर्तन में उसे आंशिक सफलता ही मिली। संसार के इतिहास में एक बड़ी महत्व की घटना है। स्पेन के दक्षिणी छोर से लेकर चीन की दीवार तक इस्लाम की जेहादी सेना ने पूर्ववर्ती धर्म और सामाजिक ढाँचे को पूर्णतः नष्ट कर दिया और अब उनका अवशेष केवल भूखनन से ही प्राप्त होता है। पश्चिमोत्तर अफ्रीका, मिस्र, अरब, असीरिया, ईराक, ईरान, अफगानिस्तान और मध्य एशिया सभी पूर्णतः इस्लाम के सामने परास्त हुए। परन्तु भारत में यह घटना नहीं हुई। भारत के सभी राजवंश नष्ट नहीं हुए और राजवंशों के पराजित और नष्ट होने पर भी जनता की अपनी सामाजिक और धार्मिक जीवन के प्रति आस्था और आग्रह बना रहा।"[१] धर्म और संस्कृति की इस ज्योति को जलाए रखने में एक ओर जहाँ मध्यकाल के आचार्यों ने जैसे शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य आदि ने कार्य किया है, वहाँ इस युग के भक्त और सन्त कवियों ने भी महत्कार्य किया है। हिन्दू राजवंश इनसे प्रेरित होकर धर्म और संस्कृति की रक्षा करते थे। पराजित होने पर भी और अधीनता स्वीकार करने पर भी हिन्दू राजवंशों में पुनः संघर्ष की भावना बराबर बनी रही। सांस्कृतिक दृष्टि से उन्होंने अपने को पूर्णतः पराजित नहीं होने दिया। छत्रपति शिवाजी का गौरव इसी में है कि उन्होंने नए राज्य की स्थापना भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए की। राष्ट्र की मूल सांस्कृतिक भावनाओं की रक्षा में उन्होंने अपना जीवन लगा दिया। यही कार्य छत्रसाल बुन्देला ने भी किया। शारीरिक वीरता के साथ-साथ कूटनीति और दूरदर्शिता को अपनाने वाले वीर ही इस युग में सफल हो सकते थे।

संक्षेप में वीरता के आदर्श समय के अनुसार बदलते रहे हैं, किन्तु एक बात जो हमेशा मान्य रही वह यह कि उन्हीं वीर नायकों को आदर्श माना गया, जिन्होंने लोकधर्म के रक्षार्थ अपना जीवन अर्पित किया। जहाँ भी वैयक्तिक वीरता लोकधर्म के उपयोगी सिद्ध नहीं हुई, उस वीरता की प्रशंसा नहीं हुई। भूषण ने अपने युग में ऐसे ही वीर का गुणगान कर अपने युग की वीर भावना को अभिव्यक्ति दी है।

६. ४. भूषण का वीर काव्य : स्वरूप एवं वैशिष्ट्य

भूषण के वीर काव्य को पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने शुद्ध वीर काव्य कहा है। इस काव्य का अपना स्वरूप एवं वैशिष्ट्य है। इसकी विवेचना नीचे की जा रही है।

---

3 **हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग १, सम्पादक, राजबली पाण्डेय, पृ० ४२**

वीर काव्यों में कवियों की प्रेरणा का आधार प्रायः वीर नायक रहे हैं। यह बात किसी भी वीर काव्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। कवि के मन में जब तक किसी नायक के प्रति श्रद्धा नहीं होगी, तब तक वह उसे अपने काव्य का विषय नहीं बना सकता। कवि पहले नायक के गुणों पर मुग्ध होता है, उसके कर्मों से प्रभावित होता है, उन कर्मों की सार्थकता को समझता है, सार्थकता को समझते हुए युग की माँग के अनुरूप उनका मूल्यांकन करता है, इस मूल्यांकन में जब वह नायक को अपने अनुकूल अनुभव करता है तब वह उसे काव्य का विषय बनाता है। वीर पूजा मनुष्य की सामाजिक मनोवृत्ति है। वीर काव्यों के रचयिताओं की यह मनोवृत्ति बड़ी प्रबल होती है। काव्य रचना में कवि अपनी इसी मनोवृत्ति का परिचय देता है। भूषण को काव्य की प्रेरणा अपने नायक से मिली है। उन्होंने कहा भी है—

६. ४. १. प्रेरणा

सिव चरित्र लखि यौं भयौ कबि भूषन के चित्त।
भाँति-भाँति भूषननि सों भूषित करौं कवित्त॥[1]

उद्देश्य का सम्बन्ध कवि की निजी मान्यताओं और उसके अपने आदर्श से होता है। कवि जो कुछ अपने काव्य में कहना चाहता है उसकी कल्पना वह पहले ही कर लेता है। उसी कल्पना को साकार करने के लिए वह किसी माध्यम की खोज में रहता है। वीर काव्यों का सम्बन्ध चूँकि सामाजिक आदर्श से होता है अतः कवि ऐसे नायक को ही अपने काव्य का विषय बनाता है, जिसके द्वारा वह उन आदर्शों की स्थापना कर सकता है। वीर नायकों के माध्यम से ही कवि अपने उद्देश्य के अनुरूप काव्य की रचना में प्रवृत्त होता है। वीर नायकों का चरितगान करने के पीछे कवि का उद्देश्य यह भी रहता है कि वह अपने अन्तरतम में सांस्कृतिक संकट का अनुभव करता है। इस सांस्कृतिक संकट को दूर करने के लिए वह सांस्कृतिक मान मूल्यों के अनुसार किसी आदर्श नायक का गान प्रस्तुत कर समाज में वह फिर से उन सांस्कृतिक मान मूल्यों की स्थापना करना चाहता है। भूषण ने अपने अन्तरतम में अपने युग के सांस्कृतिक संकट को अनुभव किया था। इस संकट को दूर करने का मार्ग कवि ने यही समझा कि इस संकट को दूर करने में प्रवृत्त अपने युग के श्रेष्ठ पुरुषों का चरितगान कर उनकी लोकप्रियता को वाणी दे। कवि ने अपने युग की सामाजिक मनोवृत्ति के अनुकूल नायकों का गुणस्तवन किया है। तुलसी ने जैसे राम का चरित्र उपस्थित कर भारतीय समाज

६. ४. २. उद्देश्य

---

१ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३४८**

के एक आदर्श नायक की अवतारणा की उसी तरह भूषण ने शिवाजी की अवतारणा युगानुरूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया।

वीर नायक के सम्बन्ध में पीछे विस्तार से लिखा गया है। यहाँ इतना ही कहना अभिप्रेत है कि भूषण के वीर काव्य में नायक ही सब कुछ है। काव्य में आए अन्य पात्र नायक के गौरव को बढ़ाने के लिए ही हैं।

६. ४. ३. नायक

इनमें प्रतिनायक औरंगजेब और उसके समर्थक हैं। प्रतिनायक पक्ष के कर्म जहाँ असत् का आधार लेकर चलते दिखाए गए हैं, वहाँ नायक के कर्म सत्य का आधार लेकर। इसीलिए नायक सर्वसाधारण की अनुभूति का पात्र हो सका है। नायक और प्रतिनायक के संघर्ष की अभिव्यक्ति काव्य में हुई है। इस काव्य में किसी नायिका की योजना नहीं है।

डाक्टर धर्मवीर भारती ने लिखा है—"मध्ययुग में साहित्यकार मानवीय नियति से अपना लगाव और उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए जिन माध्यमों का आश्रय ग्रहण करता था, वे माध्यम उसके लिए भी उतने ही सार्थक थे जितने जनता के लिए, अतः उसे अपने दायित्व की दिशा खोजने और उसे जनता तक पहुँचाने में उतनी कठिनाई नहीं अनुभव होती थी। वे माध्यम थे वीर पूजा और धर्म। या तो उनका नायक कोई ऐसा महामानव पुरुष होता था जो समस्त मूल्यों को, मर्यादाओं को निज में समाहित किये रहता था, जनता उसे आदर की दृष्टि से देखती थी और उसी के सुख-दुख से अपनी नियति को अनिवार्यतः आबद्ध मानती थी। या फिर धर्म को पीठिका के रूप में ग्रहण किया जाता था और प्रभु को जाति की नियति के प्रति संवेदनशील दिखाकर, उनके किसी अवतार के माध्यम से मर्यादाओं का विधान होता था, मूल्यों की नवनव स्थापना होती थी।"[1] भूषण ने भी मध्ययुग की प्रवृत्ति के अनुकूल वीर पूजा और धर्म के माध्यम को अपनाकर मानव मूल्यों की स्थापना की है। उनका नायक अवतार है। भूषण ने अपने नायक की तुलना अनेक अवतारों से की है—

दारुन दइत हरनाकुस बिदारिबै कौं,
भयौ नरसिंह रूप तेज बिकरार है।
भूषन भनत त्यौंहीं रावन के मारिबैकौं,
रामचन्द भयौ रघुकुल-सरदार है॥

[1] **मानव मूल्य और साहित्य, डाक्टर धर्मवीर भारती, पृ० ७१**

कंस के कुटिल बल-बंसन विधंसिबे कौं,
भयौ जदुराय बसुदेव को कुमार है।
पृथी-पुरहूत साहि के सपूत सिवराज,
म्लेच्छन के मारिबे कौ तेरो अवतार है ॥[1]

अवतार प्रतीकों के पीछे कवि का जो चिन्तन रहता है, वह उसकी आस्था और विश्वास का परिणाम होता है। एक प्रकार से अवतार-प्रतीकों में प्रतीकात्मक ढंग से युग विशेष की आवश्यकताएँ, विवशताएँ तथा रुदन-क्रन्दन और हर्षोल्लास समाहित रहते हैं। अवतार प्रतीकों द्वारा कवि जब अपने नायक का परिचय देता है तो यही समझना चाहिए कि वह पौराणिकों के द्वारा नायक को अधिक परिचित बनाना चाह रहा है, पारस्परिक मानवीय मूल्यों में आस्था और विश्वास को प्रकट कर उसकी सुरक्षा का आग्रह कर रहा है; और सामूहिक चेतना को जाग्रत कर रहा है। भूषण ने अपने नायक को अवतार मानकर अपने युग की सामूहिक चेतना को जाग्रत करने का प्रयत्न किया है, साथ ही परम्परित सांस्कृतिक मान मूल्यों में आस्था प्रकट कर उस विश्वास को बनाए रखने का प्रयत्न किया है।

६. ४. ४. परिस्थिति योजना

कवि अपने काव्य की रचना करते समय कथा की जिस पृष्ठभूमि को अपनाता है या वह अपने नायक का चित्रण करने के लिए जिन घटनाओं का ब्यौरा उपस्थित करता है या वातावरण की जो रेखाएँ वह खींचता है, उनको परिस्थिति योजना के अन्तर्गत रखा जा सकता है। वीर काव्य पौराणिक वस्तु को आधार बनाकर भी लिखे गए हैं। कई वीर काव्यों का आधार ऐतिहासिक भी है। हिन्दी के वीर काव्यों का आधार प्रायः ऐतिहासिक ही है। वातावरण का रेखांकन कवि वस्तु के अनुसार ही करता है। वीर काव्यों की वस्तु का आधार काल्पनिक भी रहा है और इसका वातावरण वस्तु की कवि कल्पना के अनुसार रहा है।

भूषण कवि के वीर काव्य की वस्तु का आधार ऐतिहासिक ही है। किन्तु यह इतिहास दैवी आरोपों और काल्पनिक तत्त्वों से बचा हुआ है। पीछे भूषण के काव्य में इतिहास की प्रामाणिकता पर विचार किया गया है। भूषण के काव्य में प्रबन्धात्मकता नहीं है अतः किसी घटना का वर्णन कवि ने वर्णनात्मक ढंग से नहीं किया है। घटनाओं का उल्लेख मुक्तक रूप में एवं उन घटनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया के रूप में या यों कहें कि कवि ने घटनाओं के युगीन प्रभाव को संश्लिष्ट ढंग से व्यक्त किया है। ऐसी स्थिति में युगजीवन के इतिहास को यथार्थ रूप में जाने बिना कवि के तात्पर्य को समझना

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३९५**

कठिन हो जाता है। एक कारण यह भी है कि कवि अलंकार ग्रन्थ की रचना करना चाहता है अतः ग्रन्थ का क्रम अलंकारों के अनुसार है, कवि पहले अलंकारों की व्याख्या दोहों में प्रस्तुत करता है और तदनन्तर उसके उदाहरणों में शिवचरित्र का बखान करता है, ऐसी स्थिति में अलंकारों के कटघरे में कवि को अपने नायक को काव्य से भूषित करना पड़ा है। इसी से वातावरण के रेखांकन में कवि क्रम नहीं रख पाया है। इस पर भी मुक्तक पद्धति में कवि ने घटनाओं को अनुस्यूत कर नायक का गुणस्तवन किया है।

काव्य की शैली बहुत कुछ कवि के निजी व्यक्तित्व पर निर्भर रहती है। भूषण के काव्य पर भूषण के व्यक्तित्व का प्रभाव है। इस पर अधिक विस्तार से आगे लिखा गया है। संक्षेप में भूषण की शैली उदात्त, उद्‌बोधनात्मक, आलंकारिक और ओजस्वी है। उसमें घुमाव फिराव नहीं है। वह प्रत्यक्ष धारा के समान बहती चलती है। काव्य में मुक्तक पद्धति अपनाई गई है, इससे शैली में सजावट आ गई है और व्यंजना शक्ति भी बढ़ी है।

६. ४. ५. शैली

भूषण ने शिवराज भूषण ग्रन्थ वास्तव में अलंकार-ग्रन्थ लिखा। काव्य के कथानक की अपेक्षा कवि का ध्यान अलंकारों पर अधिक रहा है। इन लक्षणों के उदाहरणों के रूप में ही शिवाजी सम्बन्धी ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख हो गया है। भूषण के वीर काव्य का वैशिष्ट्य इसी में है कि अलंकार ग्रन्थ होते हुए भी यह प्रधान रूप से वीर काव्य हो गया है। प्रस्तावना और उद्देश्य को पढ़ने और देखने से इसमें प्रबन्धात्मकता का किंचित आभास होता है किन्तु सारा काव्य प्रकीर्ण रूप में मुक्तक पद्धति से ही लिखा गया है।

६. ४. ६. वैशिष्ट्य

भूषण को छोड़कर प्रायः सभी अन्य कवियों ने मुक्तक की अपेक्षा प्रबन्धात्मक ढंग को ही अधिक अपनाया है। इससे वे अपने नायक की कथा को विस्तार से और कथात्मक प्रवाह के साथ लिख सके हैं। राष्ट्रीय काव्य को लिखने के लिए जिस शैली और पद्धति की आवश्यकता है, वह उनमें नहीं है। एक बात ध्यान रखने योग्य यह है कि भूषण के काव्य को छोड़कर अन्य काव्यों को (इस युग के वीर काव्यों को) बिना इतिहास ज्ञान के पढ़कर समझा जा सकता है जब कि भूषण के काव्य को बिना इतिहास ज्ञान के अच्छी तरह समझा नहीं जा सकता। केवल अलंकारों का ज्ञान तो होगा किन्तु जिस घटना की ओर कवि संकेत कर रहा है, उसको समझने में कठिनाई होगी और जब वस्तु स्थिति का ज्ञान ही नहीं होगा तो काव्य में अभिव्यक्त भाव-प्रवाह को कैसे समझा जायगा। यह ठीक है कि भूषण का नायक अपने युग में ख्यात था और आज भी ख्यात है, साथ ही एक निश्चित धारणा

उस नायक के प्रति भारतीय जनता में है, फिर भी उसके ऐतिहासिक सूक्ष्म संकेतों को समझने की आवश्यकता है। जब तक वस्तु और वातावरण का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर लिया जाता तब तक काव्य में अभिव्यक्त आशय के साथ पाठक का पूर्ण हृदयंगम नहीं हो सकता। मुक्तक काव्य का आनन्द बहुत कुछ प्रसंग-विधान और सन्दर्भ में निहित रहता है। और भूषण के काव्य में ये प्रसंग इतिहास से आए हैं अतः इनकी जानकारी आवश्यक है। यही नहीं किसी भी वीर काव्य को समझने के लिए उस युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक होता है। भूषण के वीर काव्य का वैशिष्ट्य इसी में है कि वह कल्पना और दैवी भावनाओं की तुलना में ऐतिहासिक यथार्थ पृष्ठभूमि को लेकर चलता है और इतिहास के प्रसंगों का मुक्तक पद्धति से ओजस्वी शैली में वर्णन करता है।

वीर काव्यों का उद्देश्य समाज के आदर्श और महापुरुषों का चरित्र लिखना और इसके द्वारा अपने युग के आदर्शों की स्थापना करना होता है। कवि उन आदर्शों को वीर नायक में साकार कर दिखाता है, इससे न केवल उस युग को प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा मिलती है बल्कि आगे आने वाले युगों को भी दिशा का निर्देश मिलता है। सभ्यता के पथ पर वीर काव्य एक माइलस्टोन का काम करते हैं। वीर काव्यों के नायक के आदर्श को देखने से और उस आदर्श की प्रतिष्ठा करने में जिस समाज की पृष्ठभूमि का ज्ञान होता है, उसे देखने से किसी युग की सभ्यता कितनी आगे बढ़ी हुई थी इसका ज्ञान होता है। इतिहास यह काम नहीं कर सकता। ऐतिहासिक तथ्यों को काव्य सजीव ही नहीं बनाता बल्कि इसके साथ-साथ वह उसका पूर्ण तादात्म्य भी कराता है। भूषण का वीर काव्य इस दृष्टि से अपने युग को साकार करने वाला ही नहीं, अपितु अपने युग की सामयिक समस्याओं का ज्ञान कराने वाला भी है। वह सभ्यता के इतिहास में युग की प्रगति कराने वाला एक स्तम्भ है। इतिहास में अनेक राजाओं के नाम मिलते हैं किन्तु उनमें सभी पर काव्य नहीं लिखे गए, जिन पर लिखे भी गए हैं, उनमें सभी को जनता के हृदय ने स्वीकार नहीं किया। यह संयोग भूषण के काव्य में हुआ है। भूषण के नायक की मान्यता आज भी पूर्ववत् है—लोकप्रिय है इसीलिए भूषण का काव्य भी लोकप्रिय है।

६.५. निष्कर्ष

भारतीय साहित्य में वीरकाव्यों की परम्परा वैदिक युग से लेकर अब तक मिलती है। वीरता के रूप और उनके आदर्श युगानुरूप बदलते रहे हैं और उनकी अभिव्यक्ति वीर काव्यों में समय-समय पर होती रही है। वीर काव्यों के नायक एक प्रकार से अपने युग की सभ्यता और संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले होते हैं।

किसी जाति या राष्ट्र की प्रगति का ज्ञान उस जाति या राष्ट्र के वीरकाव्यों का अध्ययन करने से होता है। रामायण, महाभारत, रघुवंश, हर्षचरित, गाउडवाहो, हम्मीररासो, पृथ्वीराजरासो आदि काव्यों में वीर नायकों के जो चरित्र चित्रित हैं और उनकी जो विशेषताएँ बतलाई गई हैं, इनको पढ़ने से भारतीय सभ्यता और संस्कृति का ज्ञान होता है। भूषण का वीरकाव्य भी इसी परम्परा में लिखा गया है। वह अपने युग के आदर्श नायकों के चरित्र को प्रस्तुत करने वाला है। वीरकाव्यों के लिखने में कवियों ने पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक एवं कुछ ने मिश्रित आधारों को अपनाया है। भूषण के युग में जो वीरकाव्य लिखे गए उन में मूलतः युग का इतिहास ही अधिक मुखर हुआ है। रासो काव्यों में इतिहास और कल्पना का मेल तो है ही उन पर पौराणिक छाप भी है। साथ ही उस वीरता के मूल में शृंगारी भावना भी है। भूषण के वीरकाव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें कल्पना और पुराण की तुलना में इतिहास से ही अधिक सहायता ली गई है। कल्पना का प्रयोग कवि ने उतना ही किया है जिससे कोई कवि किसी तथ्य को प्रकाश में ला सकता है और पौराणिक पात्रों का कवि ने उपमानों के रूप में प्रयोग किया है काव्य का मूल आधार शुद्ध ऐतिहासिक है। दूसरी बात भूषण का वीरकाव्य शृंगारी भावना से बचा हुआ है और वह वास्तव में शुद्ध वीरकाव्य कहलाने का अधिकारी है। तीसरी बात, इस वीरकाव्य में यथार्थ की पृष्ठभूमि का चित्र होते हुए भी देश की संस्कृति और गौरव का गान है और इस नाते वह राष्ट्रीय कहलाने का अधिकारी भी है। वास्तव में इन्हीं विशेषताओं के कारण भूषण का वीरकाव्य हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

सप्तम अध्याय

भूषण का आचार्यत्व

भूषण का आचार्यत्व

७.१. भूषण के आचार्यत्व का क्षेत्र

भूषण का काव्यशास्त्र सम्बन्धी एक ही ग्रन्थ मिलता है और वह है 'शिवराजभूषण'। यह अलंकार प्रधान ग्रन्थ है। रस के सम्बन्ध में उन्होंने कोई ग्रन्थ नहीं लिखा किन्तु फिर भी उनके काव्य में रस की सृष्टि हुई है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि रस के सम्बन्ध में उनकी जानकारी थी। इसकी पुष्टि प्रधान रूप से उनके नायिका भेद सम्बन्धी कुछ स्फुट छन्दों को देखकर होती है। श्रृंगार रस के इन छन्दों में नायिकाओं का चित्र खींचते हुए भूषण ने अन्त में नायिकाओं के लक्षण की ओर संकेत भर किया है। सम्भवतः नायिका भेद पर भूषण ने कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा हो किन्तु अब हमें इसके केवल ४० छन्द ही मिलते हैं।[1] अतः भूषण का क्षेत्र प्रधान रूप से अलंकारों का ही है। काव्य के अन्य अंगों पर उनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है।

७.२. आचार्यत्व के विवेचन के आधार

संस्कृत साहित्य में भरत मुनि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक काव्य शास्त्र पर लिखे गए ग्रन्थों में अलंकारों को किसी न किसी रूप में स्थान मिला है। भरत मुनि ने केवल चार अलंकारों का उल्लेख किया है किन्तु अप्पयदीक्षित तक आते-आते इनकी संख्या १२३ हो गई। संस्कृत में अलंकार सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य भामह, दंडी और उद्भट हैं। इनको आधार मानकर अलंकारों का विवेचन करने वाले आचार्य हिन्दी में अकेले केशवदास हुए हैं। चिन्तामणि से लेकर पद्माकर तक हिन्दी के आचार्यों के आधार ग्रन्थ प्रायः जयदेव का चन्द्रालोक और अप्पयदीक्षित का कुवलयानन्द रहे हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"हिन्दी के अलंकार ग्रन्थ चन्द्रालोक और कुवलयानन्द के अनुसार निर्मित हुए हैं। कुछ ग्रन्थों में काव्य-

---

[1] भूषण. पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५४६ से ५८५ तक

प्रकाश और साहित्य दर्पण का भी आधार पाया जाता है। काव्य के स्वरूप और अंगों के सम्बन्ध में हिन्दी के रीतिकार कवियों ने संस्कृत के इन परवर्ती ग्रन्थों का मत ग्रहण किया। इस प्रकार दैवयोग से संस्कृत साहित्य-शास्त्र के इतिहास की एक संक्षिप्त उद्धरणी हिन्दी में हो गई।''[१] आचार्य शुक्ल का कथन बिल्कुल ठीक है। भूषण का अलंकार ग्रन्थ भी जयदेव का चन्द्रालोक और अप्पयदीक्षित के कुवलयानन्द को आधार मानकर ही चलता है। किन्तु भूषण ने इसके साथ-साथ कुछ ऐसे अलंकारों का उल्लेख भी किया है, जो उक्त दोनों ग्रन्थों में नहीं मिलते। जैसे—मालोपमा, सामान्यविशेष और पुनरुक्तिवदाभास। इनका आधार साहित्य-दर्पण और हिन्दी के पूर्ववर्ती आचार्य हैं। भूषण अपने भाई मतिराम से भी बहुत प्रभावित जान पड़ते हैं। नीचे इन आधारों को सप्रमाण लिखने की चेष्टा की गई है।

चन्द्रालोक में ८ शब्दालंकार जिनमें छेकानुप्रास, वृत्त्यानुप्राय, लाटानुप्रास, स्फुटानुप्रास और अर्थानुप्रास स्वतंत्र अलंकार माने गए हैं और ९५ अर्थालंकार, इस तरह कुल १०३ अलंकार मिलते हैं। इनमें से १५ अलंकार शिवराज भूषण में नहीं मिलते।[२] इन्हें छोड़ कर अन्य अलंकारों पर दृष्टि डालें तो कई दृष्टियों से शिवराज भूषण चन्द्रालोक का अनुसरण करता हुआ जान पड़ता है। भूषण ने कुछ ऐसे अलंकारों का उल्लेख किया है जो चन्द्रालोक में तो हैं किन्तु समसामयिक किसी भी अलंकार ग्रन्थ में नहीं हैं। इस प्रकार के अलंकार तीन हैं—(१) प्रतीपोपमा (२) ललितोपमा और (३) भाविक छवि। यहाँ तीनों की तुलना स्वतंत्र रूप से चन्द्रालोक से की जा रही है।

७.२.१. चन्द्रालोक और शिवराज भूषण

(१) **प्रतीपोपमा** : चन्द्रालोक में प्रतीपोपमा और प्रतीप भिन्न अलंकार माने गए हैं।[३] भूषण ने वर्णन तो इस प्रकार किया है कि प्रतीपोपमा प्रतीप का भेद जान पड़े किन्तु नाम प्रतीपोपमा लक्षण वाले दोहे में दिया है।[४] और ग्रन्थालंकार सूची में

---

[१] हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, (नौवाँ संस्करण), पृ० २३३

[२] (१) स्फुटानुप्रास, (२) अर्थानुप्रास, (३) पुनरुक्तिप्रकाश, (४) स्तबकोपमा, (५) सम्पूर्णोपमा, (६) विकस्वरः, (७) उदार सारः, (८) रसवत्, (९) प्रेयः, (१०) उर्जस्वि, (११) समाहितं, (१२) भावोदय (१३) भाव सन्धि, (१४) भावशबलता, (१५) संसृष्टि।

[३] "विख्यातस्योपमानस्य यत्र स्यादुपमेयता" (प्रतीपोपमा अलंकारः), "प्रतीपमुपमानस्य हीनत्वमुपपेयतः" (प्रतीपालंकारः), जयदेव, चन्द्रालोक पंचम मयूख, पृ० २० और १०९

[४] जहँ प्रसिद्ध उपमान कौं करि बरनत उपमेय।
तहँ प्रतीप उपमा कहत भूषन ग्रन्थ प्रमेय॥
—भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३७

प्रतीप का उल्लेख करते हुए प्रतीप-उपमा भिन्न रूप से भी लिखा है ।[1] और तो और प्रतीपोपमा का लक्षण चन्द्रालोक का अनुवाद ही जान पड़ता है :

जहँ प्रसिद्ध उपमान कौ करि बरनत उपमेय ।
तहिं प्रतीप उपमा कहत भूषन ग्रन्थ-प्रमेय ।।[2] —भूषण

विख्यातस्योपमानस्य यत्र स्यादुपमेयता ।।[3] —जयदेव

(२) **ललितोपमा** : चन्द्रालोक में ललितोपमा का लक्षण इस प्रकार दिया गया है :

उपमाने तु लीलादिपदाढ्ये ललितोपमा ।[4] —जयदेव

भूषण का लक्षण भी इसी प्रकार का है—

जहिं समता कौं दुहुन की लीलादिक पद होत ।
ताहि कहत ललितोपमा सकल कविन के गोत ।।[5] —भूषण

अर्थात् जिस स्थान पर उपमेय और उपमान की समता देने को लीलादिक पद आते हैं, वहाँ ललितोपमा होता है, ऐसा सब कवियों का मत है । कुवलयानन्द में ललितोपमा के स्थान पर पदार्थवृत्ति निदर्शना का उल्लेख मिलता है ।[6] अप्पयदीक्षित ने लिखा है—"इयं पदार्थ वृत्ति निदर्शना ललितोपमा जयदेवेन व्याहृता ।[7] अर्थात् इस पदार्थवृत्ति निदर्शना को जयदेव ने ललितोपमा माना है । भूषण ने कुछ आगे बढ़कर लीलादिक पद की व्याख्या करते हुए उसकी स्थितियाँ भी बतलाई हैं । वह इस प्रकार हैं—

बहसत निदरत हसत जहिं छबि अनुसरण बखान ।
सत्रु मित्र तहिं औरऊ लीलादिक पद जान ।।[8]

(३) **भाविक छवि** : भूषण ने भाविक छवि का लक्षण इस प्रकार दिया है—

---

१ उपमा अनन्वै कहि बहुरि उपमा-प्रतीप प्रतीप, छं० सं० ३९९ वही पुस्तक

२ वही, छं० सं० ३७

३ चन्द्रालोक, जयदेव, पंचम मयूख, छं० सं० १४

४ वही, छं० सं० १५

५ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५१

६ पदार्थवृत्तिमप्येके वदन्त्यन्वा निदर्शनाम् । त्वन्नेत्र युगलं धत्ते लीलां नीलाम्बुज जन्मनोः, छं० सं० ५४, कुवलयानन्द, (सम्पादक एवं टीकाकार, डा० भोलाशंकर व्यास)

७ वही, पृ० ७२

८ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५२

जहँ दूरस्थित बस्तु को देखत बरनत कोइ :
भूषन भूषनराज यौ, भाविक-छवि है सोइ ।[१]

जयदेव का लक्षण इस प्रकार है—

देशात्मविप्रकृष्टस्य दर्शनं भाविकच्छविः ।[२]

वास्तव में भूषण ने भाविक छवि कोई नया अलंकार नहीं लिखा । यह तो जयदेव का अनुकरण ही है। उदाहरणों में अन्तर अवश्य है। जयदेव ने दूरस्थित नायिका के हृदय में नायक निवास बतलाया है।[३] जब कि भूषण ने शिवाजी के दूरस्थित सैनिकों की सूरत को सूरत नगर में दिखलाया है।[४] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[५] और पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र[६] ने भी "भाविक छवि" को नया अलंकार स्वीकार नहीं किया । उसे भाविक का ही एक रूप माना है।

चन्द्रालोक की तरह भूषण ने भी विरोध तथा विरोधाभास दोनों को स्वतन्त्र अलंकार माना है और लक्षणों में ज्यों का त्यों अनुवाद सा लगता है—

विरोध : विरोधोऽनुपपत्तिश्चेद्गुणद्रव्यक्रियादिषु ।[७] (जयदेव)

द्रव्य क्रिया गुन में जहाँ, उपजत काज-विरोध ।
तासों कहत विरोध हैं, भूषन सुकबि सुबोध ।[८] (भूषण)

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ३११

२ चन्द्रालोक, जयदेव, पंचम मयूख, छं० सं० ११४

३ त्वं वसन् हृदये तस्याः साक्षात्पंचेषुरीक्षसे, वही, छं० सं० ११४

४ साहितनै सिव साहि भई भूषन यौ तुव धाक घनेरी ।
रातिहुँ द्यौस दिलीस्वर के तुव सैन की सूरति-घेरी ।।
—भूषण, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० ३१२

५ "भूषण का 'भाविक छवि' एक नया अलंकार सा दिखाई देता है, पर है, वास्तव में संस्कृत ग्रन्थों के 'भाविक' का ही एक दूसरा या प्रवर्धित रूप । 'भाविक' का सम्बन्ध कालगत दूरी से है, इसका देशगत से बस इतना ही अन्तर है।" —हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, (नौवाँ संस्क०), पृ० २३५

६ "एक दूसरा अलंकार है 'भाविक छवि' इसका लक्षण है दूरस्थित वस्तु को सम्मुख देखना । भाविक अलंकार में समय की दूरी है और भाविक छवि में स्थान की दूरी । वस्तुतः यह भाविक छवि, भाविक का ही अंग है, उससे भिन्न नहीं ।" —भूषण, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० २३

७ चन्द्रालोक, जयदेव, पंचम मयूख, छं० सं० ७४

८ भूषण, पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, छं० सं० १६४

विरोधाभास : श्लेषादि र्भूविरोधश्चेद्विरोधाभासता मता ।[१] (जयदेव)

जहँ बिरोध सो जानियै, साँच विरोध न होइ ।
ताहि बिरोधाभास कहि, बरनत हैं सब कोई ।[२] (भूषण)

चन्द्रालोक के कारणमाला अलंकार के लक्षण में 'गुम्फ' शब्द का प्रयोग किया गया है । भूषण ने कारणमाला का नाम ही गुम्फ रख दिया है । वास्तव में दोनों का लक्षण एक ही है । नाम में भेद अवश्य है किन्तु लक्षण वही है और वह जयदेव से प्रभावित है । देखिए—

कारणमाला : गुम्फः कारणमाला स्याद्यथाप्राक्षान्तकारणैः[3] (जयदेव)

पूरब पूरब हेतु कै, उत्तर उत्तर हेत ।
या बिधि धारा बरनियै, गुम्फ कहत कवि-नेत ।।[४] (भूषण)

अर्थात् पहले कही गई वस्तु को पीछे कही गई वस्तु का अथवा पीछे कही गई वस्तु को पहले कही गई वस्तु का कारण बनाकर एक धारा की तरह वर्णन करना गुम्फ अलंकार कहलाता है ।

अलंकारों के भेदों की दृष्टि से देखें तो अपह्नुति के सभी भेद भूषण में मिलते हैं । चन्द्रालोक में हेतु-अपह्नुति नहीं है जब कि भूषण ने इसका भी उल्लेख किया है । अतिशयोक्ति के भेद दोनों में समान हैं । इसी तरह दीपक और दीपकावृत्ति चन्द्रालोक और भूषण दोनों में मिलते हैं । रूपक और उत्प्रेक्षा के भेदों में दोनों में अन्तर है ।[५] जयदेव ने श्लेष के भेद—खण्डश्लेषः, भंगश्लेषः और अर्थश्लेषः दिया है जब कि भूषण ने श्लेष का कोई भेद नहीं दिया । आक्षेपालंकार के जयदेव ने दो भेद किए हैं—(१) आक्षेपः (२) गूढ़ाक्षेप ।भूषण ने इसे ही प्रथम और द्वितीय आक्षेप माने हैं । लक्षणों में समानता है ।

---

१ चन्द्रालोक, जयदेव, पंचम मयूख, छं० सं० ७५

२ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १६६

चन्द्रालोक, जयदेव, पंचम मयूख, छं० सं० ८७

४ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० २१२

५ चन्द्रालोक में रूपक के भेद : सोपाधि रूपकं, सादृश्य रूपकं, आभास रूपकं और रूपित रूपकं ।
शिवराजभूषण में रूपक के भेद : न्यून और अधिक ।
चन्द्रालोक में उत्प्रेक्षा के भेद : उत्प्रेक्षा और गूढ़ोत्प्रेक्षा ।
शिवराज भूषण में उत्प्रेक्षा के भेद : वस्तुत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा, हेतुत्प्रेक्षा और गुप्त उत्प्रक्षा ।

(१) आक्षेप : आक्षेपस्तु प्रयुक्तस्य प्रतिषेधो विचारणात् ।[१] (जयदेव)
पहिलें कहियै बात कछु, ताको पुनि प्रतिषेध ।
ताहि कहत आक्षेप हैं, भूषन सुकबि सुमेध ।[२] (भूषण)

(२) गूढ़ाक्षेप : गूढ़ाक्षेपो विधौ व्यक्ति निषेधि चास्फुटे सति ।[३] (जयदेव)
जेहि निषेध आभास ही, भनि भूषन सो और ।
कहत सकल आक्षेप हैं, जे कबि-कुल-सिरमौर ।[४] (भूषण)

शिवराज भूषण के अन्य बहुत से अलंकार चन्द्रालोक का अनुवाद या उसकी छाया से लगते हैं । कुछ उदाहरण :—

उपमा : उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः ।[५] (जयदेव)
जहाँ दुहुँन की बरनियै, सोभा लसत समान ।।
उपमा भूषन ताहि कौं भूषन कहत सुजान ।[६] (भूषण)

परिणाम : परिणामोऽनयोर्यस्मिन्नभेदः पर्यवस्यति ।[७] (जयदेव)
जहिं अभेद करि दुहुन सौं करत और है काम ।
भनि भूषन सब कहत हैं तासु नाम परिनाम ।[८] (भूषण)

सहोक्ति : सहोक्तिः सहभावश्चेद्भासते जनरंजनः[९] । (जयदेव)
वस्तुन को भासत जहाँ, जन-रंजन सह-भाउ ।
ताहि कहत सहउक्ति हैं भूषन जे कविराउ ।[१०] (भूषण)

चन्द्रालोक और शिवराजभूषण के लक्षणों की समानता के सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है । जयदेव ने लक्षण-उदाहरण-समन्वय की एक शैली का संस्कृत में प्रचार किया, जिसको अप्पय दीक्षित ने "लक्ष्य-लक्षणश्लोक" नाम से अभिहित किया है । इसकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं ।[७]

---

१ चन्द्रालोक, जयदेव, पंचम मयूख, छं० सं० ७२
२ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं०१६०
३ चन्द्रालोक, जयदेव, पंचम मयूख, छं० सं० ७३
४ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १६२
५ चन्द्रालोक, जयदेव, पंचम मयूख, छं० सं० ११
६ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३२
७ चन्द्रालोक, जयदेव, पंचम मयूख, छं० सं० २२
८ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ६३
९ चन्द्रालोक, जयदेव, पंचम मयूख, छं० सं० ६०
१० भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १३६
११ हिन्दी अलंकार साहित्य, डा० ओउम्प्रकाश, पृ० ५३

(क) संक्षिप्त अविकसित लक्षण ।

(ख) लघुतम छन्द ।

(ग) एक श्लोक में ही लक्षण तथा लक्ष्य का समावेश ।

(घ) स्वरचित उदाहरण ।

(च) वृत्ति (गद्य) का नितान्त अभाव ।

भूषण में इस दृष्टि से कुछ विशेषताएँ पाई जाती हैं। किन्तु चन्द्रालोक का वह पूरी तरह से अनुसरण नहीं कर सका है। जयदेव ने अलंकारों के लक्षण एक-एक पंक्तियों में दिये हैं जब कि भूषण ने अलंकारों के लक्षण, दोहे की दोनों पंक्तियों में दिये हैं। वैसे देखा जाय तो भूषण ने भी बहुत से स्थानों पर अलंकारों के लक्षण एक-एक पंक्ति में ही दिये हैं। दोहे की दूसरी पंक्ति में केवल कथन को पुष्ट किया है या औरों द्वारा समर्थित बतलाया है या 'ऐसा कहते हैं' कहा है। जैसे :—

निदर्शना : भूषन ताहि निदर्सना, कहत बुद्धि है ओप।[1]

सहोक्ति : ताहि कहत सहउक्ति हैं, भूषन जे कविराउ।[2]

व्यतिरेक : भूषन कबि कोविद सकल ताहि कहत व्यतिरेक।[3]

जयदेव की अपेक्षा भूषण के पास लक्षणों को विस्तार से लिखने की सुविधा थी किन्तु भूषण ने उसका उपयोग नहीं किया है। लक्षण तो उसने जयदेव की तरह दोहे की प्रथम पंक्ति में ही दिए हैं किन्तु दूसरी पंक्ति में वह जयदेव की तरह उदाहरण नहीं देना चाहता अतः 'कबि कोविद सकल ताहि कहत', 'ताहि कहत सहउक्ति', 'कहत बुद्धि दै ओप' आदि कहकर भूषण ने दोहे को पूर्ण किया है। कहीं-कहीं लक्षण अस्पष्ट हो गये हैं। जयदेव की संक्षिप्तता और कसावट उसमें नहीं है। जैसे—

विरोधाभास : जहँ विरोध सो जानियै, साँच विरोध न होइ।
ताहि विरोधाभास कहि बरनत हैं सब कोइ॥[4]

यहाँ लक्षण में आभास की ओर संकेत नहीं है।

परिणाम : जहिं अभेद करि दुहुन सौं करत और है काम।
मनि भूषन सब कहत हैं तासु नाम परिनाम।[5]

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १२७

[2] वही, छं० सं० १३६

[3] वही, छन्द संख्या १३३

[4] वही, छन्द संख्या १६६

[5] वही, छन्द संख्या ६३

जहाँ उपमान से उपमेय एक रूप होकर अपना कार्य करे वहाँ भूषण के अनुसार परिणाम अलंकार होता है। इसमें उपमान स्वयं किसी काम करने में असमर्थ होने के कारण उपमेय के साथ एक रूप होकर उस काम को करता है अथवा उपमेय के करने का काम उपमान करता है। रूपक की तरह इस अलंकार में उपमान और उपमेय की एकरूपता नहीं दिखाई जाती अपितु उपमेय को उपमान में परिणत कर उसके द्वारा उस कार्य के किये जाने का भी वर्णन होता है। भूषण का लक्षण स्पष्ट नहीं है।

जयदेव ने अनुमान अलंकार वहाँ माना है जहाँ कार्य से कारण का अनुमान किया जाता है।[१] जब कि भूषण ने इसकी दो स्थितियाँ बतलाई हैं। एक वहाँ जहाँ कार्य से कारण का ज्ञान हो और दूसरी जहाँ कारण से कार्य का ज्ञान हो।[२] प्रथम भेद के उदाहरण पर जयदेव का प्रभाव दिखाई देता है।

अस्ति किंचिद्, यद् अनया मां विलोक्य स्मितं मनाक्।[३]

चित्त अनचैन आँसू उमगत नैन देखि लोग कहैं बैन आजु कहियत काहि नै।
भूषन कहत बूझै आये दरबार तें यौं कंप बार-बार क्यौं सम्हार तन नाहिनै।
सीनो धकधकत पसीनौ आयौ अंगन में, हीनो भयौ रूप न चितोत बाँएँ दाहिनै।
सूबन के जेतवार सिवा पर सूबेदार जानियत कीनौ तुम्हैं अवरँग साहि[४] नै।।

७. २. २. कुवलयानन्द और शिवराजभूषण

भूषण ने कुछ ऐसे अलंकारों का उल्लेख किया है जो चन्द्रालोक में नहीं मिलते। इस प्रकार के अलंकार निम्नलिखित हैं :

(१) मालोपमा, (२) सामान्य विशेष, (३) मिथ्याध्यवसित, (४) अनुज्ञा, (५) लेश, (६) विशेष, (७) लोकोक्ति, (८) छेकोक्ति, (९) निरुक्ति, (१०) हेतु, और (११) पुनरुक्तिवदाभास।

इनमें से तीन अलंकार मालोपमा, सामान्यविशेष और पुनरुक्तिवदाभास कुवलयानन्द में भी नहीं मिलते। बाकी आठ अलंकारों पर कुवलयानन्द का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कुछ उदाहरण :—

---

१ अनुमानं च कार्यादेः कारणाद्यवधारणम् :
—चन्द्रालोक, जयदेव, पंचम मयूख, छं० सं० ३६

२ भूषन कहिबे जु कछु है परै चिन्ह तें जानि।
ताहि कहत अनुमान हैं ग्रन्थनि को मत मानि।।
—भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द संख्या ३२४

३ चन्द्रालोक, जयदेव, पंचम मयूख, छं० सं० ३६

४ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३२५

(१) मिथ्याध्यवसित : किंचिन्मिथ्यात्वसिद्धयर्थं मिथ्यार्थान्तर कल्पनम् ।[1]
(अप्पय दीक्षित)

झूठ अरथ की सिद्धि कौं, झूठो बरनत आन ।
मिथ्याध्यवसिति ताहि कों, भूषन कहत सुजान ।।[2] (भूषण)

(२) अनुज्ञा : दोषस्याभ्यर्थनानुज्ञा तत्रैव गुण दर्शनात् ।[3] (अप्पय दीक्षित)

जहाँ सरस गुन देखि कै, करै दोष की हौस ।
ताहि अनुज्ञा होत है, भूषण कवि इहि रौस ।।[4] (भूषण)

(३) लेश : लेशः स्याद्दोषगुणयोर्गुण दोषत्वकल्पनम् ।[5] (अप्पयदीक्षित)

जहिं बरनत गुन दोष कै, जहाँ दोष गुन रूप ।
भूषन तासों लेस कहि, गावत हैं कबि भूप ।[6]

इसी तरह विशेष, लोकोक्ति, छेकोक्ति, निरुक्ति एवं हेतु अलंकार कुवलयानन्द के अनुसार ही लिखे गये हैं। भूषण की इनमें कोई मौलिकता नहीं है। प्रतीप अलंकार के भेद चन्द्रालोक में नहीं मिलते। भूषण ने इसके भेद कुवलयानन्द के आधार पर ही लिखे हैं। लक्षणों में समानता है।

(१) प्रथम प्रतीप : प्रतीपमुपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम् ।[7] (अप्पय दीक्षित)

जहिं प्रसिद्ध उपमान कौं करि बरनत उपमेय ।
तहिं प्रतीप उपमा कहत भूषन ग्रन्थ-प्रमेय ।[8] (भूषण)

(२) द्वितीय प्रतीप : अन्योपमेयलाभेन वर्ण्यस्यानादरश्च तत् ।[9]
(अप्पय दीक्षित)

करत अनादर बर्न्य कौ पाय और उपमेय ।
तासौं कहत प्रतीप हैं भूषन कबि करि भेय ।[10] (भूषण)

---

[1] कुवलयानन्द, अप्पय दीक्षित, छं० सं० १२७
[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० २४८
[3] कुवलयानन्द, अप्पय दीक्षित, छं० सं० १३७
[4] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० २५९
[5] कुवलयानन्द, अप्पय दीक्षित, छं० सं० १३८
[6] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० २६१
[7] कुवलयानन्द, अप्पय दीक्षित, छं० सं० १२
[8] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३७
[9] कुवलयानन्द, अप्पय दीक्षित, छं० सं० १३
[10] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४०

(३) तृतीय प्रतीप : वर्ण्योपमेयलाभेन तथान्यस्याप्यनादरः ।[१]

(अप्पय दीक्षित)

आदर घटत अवर्न्य को जहाँ बर्न्य के जोर ।
तृतिय प्रतीप बखानहीं तहँ कबिकुल-सिरमौर ।[२]

(भूषण)

(४) चतुर्थ प्रतीप : वर्णेनान्यस्योपमाया अनिष्पत्तिवचश्च तत् ।[३]

(अप्पय दीक्षित)

पाय बर्न्य उपमान कौ जहाँ न आदर और ।
ताहूँ कहत प्रतीप हैं भूषन कवि सिरमौर ।[४] (भूषण)

(५) पंचम प्रतीप : प्रतीपमुपमानस्य कैमर्थ्यमपि मन्वते ।[५] (अप्पय दीक्षित)

जहिं बरनत उपमेय कौं हीनौ करि उपमान ।
सोऊ कहत प्रतीप हैं भूषन सुकबि सुजान ।।[६] (भूषण)

प्रथम प्रतीप में "प्रतीप-उपमा" भूषण ने चन्द्रालोक के प्रतीपोपमा के अनुकरण पर ही लिखा गया ऐसा पहले ही कहा गया है । किन्तु वास्तव में वह कुवलयानन्द से अधिक प्रभावित है और प्रतीपोपमा प्रतीप का ही भेद माना गया है । और सब तो कुवलयानन्द का अनुसरण करते हुए दीखते ही हैं ।

७. २. ३. अन्य आधार

मालोपमा, सामान्यविशेष और पुनरुक्तिवदाभास तीनों अलंकार चन्द्रालोक और कुवलयानन्द दोनों में नहीं मिलते । मालोपमा का लक्षण साहित्य दर्पण का अनुकरण करता हुआ दीखता है :—

जहाँ एक उपमेय कौं होत बहुत उपमान ।
ताहि कहत मालोपमा भूषन सकल सुजान ।।[७] (भूषण)
मालोपमा यदेकस्योपमानं बहु दृश्यते ।[८] (साहित्य दर्पण)

---

१ कुवलयानन्द, अप्पय दीक्षित, छं० सं० १४
२ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३५१
३ कुवलयानन्द, अप्पय दीक्षित, छं० सं० १५
४ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४३
५ कुवलयानन्द, अप्पय दीक्षित, छं० सं० १६
६ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४४
७ वही, छन्द संख्या ४६
८ साहित्य दर्पण, दशम परिच्छेद, छं० सं० २६

बहुत सम्भव है कि भूषण ने अपने भाइं मतिराम के अनुकरण पर ही मालोपमा का लक्षण दिया हो ।

जहाँ एक उपमेय कौं, होत बहुत उपमान ।
ताहि कहत मालोपमा, कवि मतिराम सुजान ।[१] (मतिराम)

भूषण ने सामान्य-विशेष का लक्षण निम्न रूप में दिया है :—

कहिबे जहिं सामान्य है, कहै तहाँ जु बिसेष ।
सो सामान्य-बिसेष है, बरनत सुकवि असेष ।[२] (भूषण)

अर्थात् जहाँ सामान्य रूप से कोई बात कहनी हो वहाँ उसे विशेष रूप से कहा जाय तो वहाँ सामान्य-विशेष अलंकार होता है, ऐसा कवियों का मत है । इसका उदाहरण भूषण ने जो दिया है, वह स्पष्ट नहीं है । "शिवाजी का यश कठिन से कठिन कार्य कर डालता है जब कि अन्य राजा लोग साधारण सा कार्य नहीं कर पाते ।[3] राजाओं की दुर्बलता को सामान्य और शिवाजी के पराक्रम को विशेष रूप दिया गया है । पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे अप्रस्तुत का भेद विशेष निबन्धना कहा है ।[४]

पुनरुक्तिवदाभास तो निश्चित रूप से साहित्य दर्पण से प्रभावित है । लक्षणों में ही नहीं शब्दों में भी साम्य है ।

आपाततो यदर्थस्य पौनरुक्त्येन भासनम् ।[५]
भासत है पुनरुक्ति सो नहिं निदान पुनरुक्ति ।
पुनरुक्तिवदाभास सो, भूषन बरनत युक्ति ।।[६]

---

१ ललित ललाम, मतिराम

२ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १०६

3 और नृपति भूषन भनै, करै न सुगमौ आजु ।
साहितनै सिव सुजस कौं करे कठिनऊ काजु ।। —वही, छं० सं १११

४ "उन्होंने (भूषण) ने एक सामान्य-विशेष नामक अलंकार माना है जिसमें विशेष का कथन करके सामान्य लक्षित कराया जाता है । यह अलंकार प्राचीन अलंकारियों के प्रस्तुत प्रशंसालंकार की विशेष निबन्धना से भिन्न नहीं है । इसके उदाहरण भी वैसे स्पष्ट नहीं हैं जैसे होने चाहिए ।"
— भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० २३

५ साहित्य दर्पण, विश्वनाथ (विमला व्याख्या,) दशम परिच्छेद २

६ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३४२

७.३. रस विवेचन

रीतिकाल में रस और नायिका भेद से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थ लिखे गए हैं। रसों का निरूपण करने वाले आचार्यों में भी रसराज शृंगार का वर्णन करने वाले अधिक आचार्य हुए हैं और इनमें भी बहुत से ऐसे हैं जिन्होंने केवल नायक-नायिका-भेद वर्णन किया है। एक प्रकार से शृंगार रस का स्वतन्त्र रूप से वर्णन करने वाले ग्रन्थों में नायिका भेद का प्रसंग समाविष्ट हो ही जाता है। भूषण ने रस के सम्बन्ध में कोई सैद्धान्तिक विवेचन नहीं किया किन्तु शृंगार रस सम्बन्धी उनके ४० छन्द मिलते हैं। इनमें नायिकाओं के उदाहरण दिए गए हैं और किसी किसी छन्द की अन्तिम पंक्ति में उक्त प्रकार की नायिका का नाम दिया गया है। अतः इस आधार पर हम इतना कह सकते हैं कि भूषण अपने युग की प्रवृत्ति से प्रभावित थे। यद्यपि उनके काव्य का मुख्य रस, वीर रस है और आचार्यत्व की दृष्टि से उनका झुकाव अलंकारों की ओर है किन्तु रस के सम्बन्ध में भी (आचार्यत्व की दृष्टि से) उनकी जानकारी अच्छी थी। उनकी तीन रचनाएँ भूषण विलास, दूषण विलास और भूषण हजारा जो अब तक प्राप्त नहीं हो सकी हैं, सम्भवतः उनमें रस का विवेचन किया गया हो और ये ४० छन्द भी उन्हीं ग्रन्थों के हों। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र का तो अनुमान है कि यदि भूषण की समस्त रचनाएँ मिल जाएँ तो वे शृंगार रस के कवि ही सिद्ध होंगे।[3] अब तो हमें नायिका भेद से सम्बन्धित ४० छन्द ही मिलते हैं। इनका सम्बन्ध शृंगार रस से है। डाक्टर भगीरथ मिश्र ने रस निरूपण करने वाले आचार्यों को तीन भागों में विभाजित किया है।[४]

(क) प्रथम वर्ग : समस्त रसों का निरूपण करने वाले ग्रन्थ,
(ख) द्वितीय वर्ग : केवल शृंगार रस का निरूपण करने वाले ग्रन्थ, और
(ग) तृतीय वर्ग : केवल नायिका भेद पर लिखे गए ग्रन्थ।

इन तीन वर्गों में भूषण को तीसरे वर्ग में रखा जा सकता है क्योंकि उनके प्राप्त छन्दों के आधार पर इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि सम्भवतः उन्होंने नायिका भेद पर स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखा हो।

जैसा कि पहले ही कहा गया है कि नायिका भेद के सम्बन्ध में भूषण के कुछ स्फुट छन्द मिलते हैं। इन छन्दों में नायिकाओं के अनूठे चित्र हैं और अन्त में—किसी-किसी छन्द के—नायिका के उक्त प्रकार का नाम दिया गया है। जैसे—

७. ३. १. नायिका भेद

---

[१] बिहारी, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ६

[२] हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, सं० डा० नगेन्द्र, ३८६

बैठी संकेत किसोरी सखी बन,
सूनो बिलोकति ही बिलखानी।
पी बिन ती मृग-सावक नैनि न,
बोली कछू नत बोली थिरानी ।।
गुंजि उठे अलिपुंज तहाँ कबि,
भूषन स्रौन परी यह बानी।
सोच भिद्यो मन मोद ततच्छन,
लच्छन हौं मुगधा पहचानी ।।[१]

इसी तरह :—

कहै कवि भूषन भई है कुल भूषन ए,
भले गुन भामिनी तें उत्तम कहावही ।[२]
धीर-अधीर धरी कवि भूषन,
आँसू भरे दृग पावक ऐसी ।[३]
लच्छन समच्छ तहाँ धीरज अधीरज ह्वै,
मध्य घर मौन महा मोहन लगावती ।।[४]
मानिनी के मन में मनमोहन,
मोहन के मन मानिनी भावै ।
मान कियौ अनुमान बिलोकनि,
आन तिया कों जहाँ पिय ध्यावै ।।
कंत सुजान तहाँ कवि भूषन,
चूमन दै उहि कोप छिमावै।
केलि-कला हुलसी ततकाल,
मिली हँसि सो लघु मान कहावै ।[५]
लाल चहै चितचैन बिनै करि,
भाल में बंदन-चिन्ह लह्यौ है ।।
चन्दन-रेख ·री उर माँह लखें,
। कों तिय कोपु गह्यौ है।

---

[१] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५७२
[२] वही, छं० सं० ५८०
[३] वही, छं० सं० ५८४
[४] वही, छं० सं० ५८५
[५] वही, छं० सं० ५६६

सौति की साल बिसाल महा,
तहाँ देह दवानल दाह दयौ है।
मौन कियें अभिमान हियें कबि,
भूषन सो **गुरु मान कह्यौ** है।[१]

उपर्युक्त उद्धरणों में मुग्धा, उत्तमा, मानिनी, लघु मान, गुरु मान आदि के लक्षणों के संकेत कवि ने नायिकाओं के चित्र प्रस्तुत करते हुए दिए हैं। लघुमान और गुरुमान के लक्षण बिल्कुल स्पष्ट हैं। इन्हें देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि भूषण को नायिका भेद का पूरा ज्ञान था और उन्होंने अवश्य ही इस विषय पर किसी स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की होगी।

अन्य छन्दों में लक्षण तो नहीं मिलते किन्तु उदाहरण नायिकाओं के लक्षणों को ध्यान में रखकर ही दिए गए हैं, ऐसा जान पड़ता है। कुछ उदाहरण :—

और के धाम में स्याम बसे, सगरी रतिया तिय जागि बिताई।
आजु सखी लखि लालन सों हठ सी बतियाँ करिहौं कठिनाई॥
आयौ हरी कबि भूषन भोर तौ दूषन दैन कौ है ढिग ठाई।
राखि उसास कही न कछू असुवा जल सों अँखिया भरि आई॥[२]

—खण्डिता नायिका

जाति उहैं ब्रजचन्द-समीप जहाँ घन कुंज की कुंज-गली है।
चंदमुखी पहरें सित चोल हँसै हिय हू मुकता-अवली है॥
चन्दकला सी पुरी कवि भूषन वाहि चहूँ रुख चूनकली है।
चन्द-उदै तकि चन्दन देति न चन्द्रप्रभा सिवराज चली है॥[३]

—शुक्लाभिसारिका

बैठी गृहद्वार बारबारन बिसारति है,
बरस अनेक एक बासर गनावती।
आसन सुहात है न बासन तमोल चोवा,
बोलति न बैन नहीं भूषन बनावती॥
प्रेम के जनाएँ बहुर्‌यौ बिसेष पैयै बलि,
बस करि बालम बिरंचि कौं मनावती।
कहै कबि भूषन बिहाल तन कीने वहु,
बाला बिरहानल की ज्वाला सी जनावती॥[४]

—प्रोषितपतिका

---

१ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५६७**
२ **वही, छं० सं० ५७१**
३ **वही, छं० सं० ५८१**
४ **वही, छं० सं० ५६८**

इसी तरह के और भी उदाहरण मिलते हैं। प्रियतम की प्रतीक्षा में, प्रियतम के परदेश-गमन की स्थिति में, गुरुजन-परिजन से आँख बचाकर संकेत-स्थलों पर नायक से मिलती हुई नायिकाएँ, सुरति में रत नायिकाएँ, सहेलियों के साथ मनोविनोद करती हुई नायिकाएँ आदि भूषण के काव्य में चित्रित हुई हैं। नायिकाओं का यह चित्रण बड़ा ही सजीव एवं अनूठा है। इनके लक्षण कवि ने नहीं दिए हैं।

७.४. अलंकार विवेचन

भूषण ने अपने ग्रन्थ में अपने से पूर्व या तत्कालीन किसी आचार्य का उल्लेख नहीं किया है। किन्तु युग परम्परा के अनुसार वे जानते थे कि कवि बनने के लिए 'कवि-शिक्षा' प्राप्त करना जरूरी है। कविता चाहे अपनी रुचि के अनुसार लिखी जाय किन्तु कवियों ने जो पन्थ बना दिया है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। भूषण ने 'कबिन कौ पन्थ' अपनाया है।[1] यहाँ कबिन कौ पन्थ का तात्पर्य रीतिकालीन कवियों का आचार्यत्व की ओर प्रवृत्त होने से ही लेना चाहिए। भूषण वास्तव में अपने नायक छत्रपति शिवाजी के यश का वर्णन करना चाहते थे। अतः प्रकट रूप से उन्होंने अलंकार ग्रन्थ भले ही लिखा हो किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वह वीर रस प्रधान काव्य हो गया। यहाँ भी उन्होंने अपने मन की बात स्पष्ट कह दी है कि अलंकारों द्वारा वे शिव चरित्रको भूषित करना चाहते हैं।[2] अपने कथनानुसार भूषण ने अलंकारों के सभी उदाहरण शिव-चरित्र लिखने और शिवाजी का यश वर्णन करने में ही घटित किये हैं। भूषण अलंकारों को एक प्रकार से काव्य का आभूषण मानते हैं।

भूषण ने कुल १०५ अलंकारों का विवेचन किया है। इनमें १०० अर्थालंकार, ४ शब्दालंकार और एक उभयालंकार हैं। कवि ने स्वयं कहा है—

> युतचित्रसंकर एकसत भूषन कहे अरु पाँच।
> लखि चारु ग्रन्थन निज मतो युत सुकबि मानहु साँच ॥[3]

भूषण ने शब्दालंकारों की एक प्रकार से उपेक्षा की है। प्रायः आचार्यों ने शब्दालंकारों को प्रथम और बाद में अर्थालंकारों की विवेचना की है। किन्तु भूषण ने प्रथम अर्थालंकारों और बाद में शब्दालंकारों का विवेचन किया है। शब्दालंकारों में केवल चार अलंकारों का उल्लेख मिलता है। १. अनुप्रास २.

७. ४. १. शब्दालंकार

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २९

[2] वही, छं० सं० ३४८

[3] वही, छं० सं० ४०७

यमक ३. पुनरुक्तिवदाभास और ४. चित्र। इनमें छेकानुप्रास और लाटानुप्रास दोनों के लक्षण एक ही दोहे में दिए हुए हैं, जो सदोष हैं—

स्वर-समेत अच्छर कि पद, आवत सदृस प्रकास।
भिन्न अभिन्नन पद कह्यौ, छेक-लाट-अनुप्रास ।।[1]

दोष यहाँ पर यह है कि भूषण ने छेक और वृत्ति में भेद नहीं किया। दोनों को एक समान मान लिया गया है। उदाहरणों में वृत्यानुप्रास और छेकानुप्रास मिलते हैं। छेक में एक वर्ण की या अनेक वर्णों की एक ही बार आवृत्ति होती है जब कि वृत्यानुप्रास में एक या अनेक वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होती है। पुनरुक्तिवदाभास के सम्बन्ध में पीछे लिखा गया है। यमक का लक्षण 'भिन्न अरथ फिर-फिर जहाँ, ओइ अच्छर बृन्द'[2] दिया है। किन्तु उदाहरण को देखने से पता चलता है कि अर्थहीन पदों की आवृत्ति में भी भूषण यमक अलंकार मानते हैं।

चित्र अलंकार का लक्षण भूषण ने नहीं दिया है। केवल उसके एक भेद कामधेनु का नाम लिया है और अन्य का संकेत मात्र कर दिया है। पद्म-बन्ध, खड्ग-बन्ध आदि का उल्लेख भूषण ने नहीं किया है।

अनुप्रास के लक्षणों में दोष होने पर भी उदाहरण बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। अमृत-ध्वनि वाले सभी छन्द इसी अलंकार के उदाहरण रूप में दिए हैं। भूषण की अनोखी और वीर वाणी अनुप्रासों की छटा से सुशोभित है।

छेकानुप्रास का एक उदाहरण—

दिल्लिय दलनि गजाइ कै, सिव सरजा निरसंक।
लूटि लियौ सूरति सहर, बंकक्करि अति डंक ।।
बंकक्करि अति डंक्ककरि अस संक्ककरि खल।
सोचच्चकित भरोचच्चलिय बिमोचच्चख चल ।।
तट्ठट्ठइ मन कट्ठट्ठिक सो रट्ठट्ठिल्लिय।
सद्दद्दिसि दिसि भद्दवि भई रद्दद्दिल्लिय ।।[3]

लाटानुप्रास का उदाहरण—

औरन के जाँचे कहा, जौ जाँच्यौ सिवराज।
औरन के जाँचे कहा, जाँचें जाँच्यो सिवराज ।।[4]

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३३१
[2] वही, छन्द सं० ३४०
[3] वही, छन्द सं० ३३२
[4] वही छन्द सं० ३३९

भूषण ने लगभग १०० अर्थालंकार माने हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में ही भूषण ने लिखा है कि उपमा को सब से उत्तम देखकर सभी उसका सर्वप्रथम वर्णन करते हैं।[1] साहित्यदर्पणकार ने उपमा अलंकार के सम्बन्ध में लिखा है—"अथावसरप्राप्तेष्वर्थालंकारेषु प्राधान्यात्साद्दश्यमूलेषु लक्षितव्येषु तेषामप्युपजी व्यत्वेन प्रथममुपमाआह।"[2] अर्थात् शब्दालंकारों का निरूपण करने के बाद अर्थालंकारों का निरूपण अवसर प्राप्त है और उनमें भी प्रधान होने के कारण साद्दश्यमूलक अलंकारों का पहले निरूपण उचित है, अतः सबसे पहले साद्दश्यमूलक अलंकारों के प्राण भूत—उपजीव्य—उपमालंकार का निरूपण करते हैं। भूषण ने भी इसका उल्लेख सर्वप्रथम किया है और उसकी महत्ता की ओर संकेत किया है। किन्तु अन्य आचार्यों की तरह उपमा को अनेक अलंकारों का मूल नहीं बतलाया है। स्वभावोक्ति के सम्बन्ध में आचार्यों में मतभेद है। कुछ आचार्य इसे स्वीकार नहीं करते और कुछ ने जाति नाम रखा है। भूषण ने अपने लक्षण में केशव की तरह स्वभाव और जाति दोनों का प्रयोग किया है। कहा है—

७. ४. २. अर्थालकार

साँचो त्यौंही वरनियै, जैसो जाति सुभाव।
ताहि स्वभावोक्ति कहत, भूषन जे कविराव॥[3]

भूषण किसी सिद्धान्त की ओर झुकते हुए नहीं दिखाई देते।

भूषण के १०० अर्थालंकारों की सूची में भेदों की संख्या भी सम्मिलित है। भूषण ने जिन अलंकारों का विवेचन किया है, उनमें कुछ अलंकारों के सभी भेद बतलाये हैं, कुछ के कुछ ही भेद बतलाये हैं और कुछ के भेद छोड़ दिये हैं। इस प्रकार के अलंकार निम्नलिखित हैं :—

उत्प्रेक्षा के भेद—वस्तु, फल और हेतु, पर्यायोक्ति का द्वितीय भेद, विशेष का द्वितीय भेद और अर्थान्तरन्यास के सामान्य तथा विशेष भेद। जैसे उत्प्रेक्षा सम्बन्धी लक्षण वाले दोहे में तीनों भेदों का उल्लेख है किन्तु भेदों के स्वतन्त्र लक्षण नहीं मिलते।

आन बात में आन कौं जहिं संभावना होइ।
बस्तु हेतु फलयुत कहत उत्प्रेक्षा है सोइ॥[4]

---

[1] **भूषन सब भूषननि में उपमै उत्तम चाहि।**
यातें उपमा आदि दै, बरनत सकल निबाहि॥—वही छन्द सं० ३०

[2] **साहित्य दर्पण, (विमला व्याख्या), पृ० २६२ (चतुर्थ संस्करण)**

[3] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३०५**

[4] **वही, छन्द सं० ६१**

कतिपय स्थलों पर एक ही छन्द में दो-दो अलंकारों के लक्षण भी कवि ने दिये हैं—

(१) परिकर तथा परिकरांकुर

साभिप्राय बिसेषनि, परिकर भूषन जानि।
साभिप्राय बिसेष्य तें, परिकर-अंकुर मान।[१]

(२) मालादीपक तथा सार

दीपक एकावली मिले, मालादीपक होय।
उत्तर उत्तर उतकरष, सार कहत है सोय॥[२]

(३) लोकोक्ति एवं छेकोक्ति

कहनावति जो लोक की, लोक उक्ति सो जान।
जहाँ कहत उपमान ह्वै, छेकउक्ति सो मानि॥[३]

इसी तरह द्वितीय एवं चतुर्थ विभावना और छेक एवं लाटानुप्रास के लक्षण भी कवि ने एक-एक छन्द में ही दिये हैं।

भूषण के लक्षणों के सम्बन्ध में पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र लिखते हैं—"भूषण के लक्षण कई स्थानों पर अस्पष्ट और भ्रामक हैं। कहीं-कहीं तो उदाहरण भी नहीं बन पड़े हैं।[४] कतिपय लक्षण सदोष मिलते हैं जैसे पंचम प्रतीप। भूषण के लक्षण के अनुसार जहाँ उपमान को हीन बतलाकर उपमेय का वर्णन किया जायगा, वहाँ पंचम प्रतीप होगा।[५] जब कि कुवलयानन्द के अनुसार उपमान का कैमर्थ्य बताने पर पंचम प्रतीप होगा।[६] इसी तरह विरोधाभास के लक्षण में आभास का उल्लेख नहीं है। परिणाम, विरोध आदि के लक्षण भी सदोष हैं।

लक्षणों की तुलना में उदाहरण अधिक सदोष हैं। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने विकल्प के सम्बन्ध में लिखा है—'इसमें दो समान बल वाली विपरीत वस्तुओं के एक ही समय में एक स्थान पर घटित न हो सकने के कारण विकल्प करना

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १४४

२ वही, छन्द सं० २१७

३ वही, छन्द सं० २९९

४ वही, पृ० सं० २३

५ जहि बरनत उपमेय कौं, हीनौ करि उपमान।
सोउ कहत प्रतीप हैं, भूषन सुकवि सुजान॥ —वही, छन्द सं० ४४

६ प्रतीपमुपमानस्य कैमर्थ्यमपि मन्वते। —कुवलयानन्द, १९

पड़ता है; दो में से किसी एक के होने का अनिश्चय रहता है। इन्होंने लक्षण ठीक देते हुए भी उदाहरण ऐसा दिया जिसमें विकल्प न होकर निश्चय सा हो गया, जिसमें अलंकार बिगड़ गया—"भूषन गाय फिरौं महि में बनिहै चित चाह सिवाहि रिझाए।"[१] इसी तरह भ्रमालंकार का उदाहरण भी सदोष है। उदाहरण में कहा गया है कि 'शत्रु स्त्रियाँ, शाईस्तखाँ, करण, और भाऊ की दुर्गति देखकर अथवा सुनकर अपने पतियों की सुरक्षितता के प्रति भ्रम करती हैं कि वे वहाँ जाकर बचेंगे या नहीं।'[२] वास्तव में भ्रम अलंकार सादृश्यमूलक अलंकार है। इसमें भ्रम का आधार रूप-सौन्दर्य है और उपमेय उपमान भाव पर इसकी स्थिति निर्भर है।

उपमा के उदाहरण में औरंगजेब की हीनता को प्रदर्शित करते हुए भी भूषण ने उसे कृष्ण की उपमा दे दी है।

मिलत ही कुरुख चकत्ता को निरखि कीन्हो,
सरजा सुरेस ज्यों दुचित ब्रजराज को।[३]

यह उदाहरण मिश्रबन्धुओं वाली प्रति में मिलता है। मिश्रजी वाली प्रति में पाठभेद है। पाठभेद के कारण इस दोष का परिहार हो जाता है। मिश्रजी वाली प्रति में ये पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

मिलत ही कुरुख चिकत्ता कौ निरखि कीनौ,
सरजा साहस जो उचित ब्रजराज को।[४]

और यही उचित जान पड़ता है।

निदर्शना के प्रथम भेद के उदाहरण में अवतारों में और शिवाजी में भेद होने पर भी समता का आरोप किया गया है। इसमें दोनों वाक्यों में असमता नहीं है। जैसा पराक्रम मत्स्यादि अवतारों में है, वैसा ही पराक्रम शिवाजी में है। यहाँ उपमा की झलक है परन्तु निदर्शना में जो. सो आदि पदों द्वारा असम वाक्यों को सम किया जाता है। अतः उदाहरण सदोष हैं।[५] इसी तरह समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा, पर्यायोक्ति (द्वितीय). काकुवक्रोक्ति, फलोत्प्रेक्षा, काव्यलिंग, परिकर, विभावना (चतुर्थ), मिथ्याध्यवसित, निरुक्ति, प्रत्यनीक का दूसरा उदाहरण सभी सदोष हैं।[६]

ये सब कुछ होने पर भी भूषण के अनेक उदाहरण बहुत ही सुन्दर हैं। अलंकारों का वहाँ पर यथार्थ प्रयोग हुआ है। जैसे :—

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० सं० २३
२ वही छन्द सं० ७२ देखिये।
३ भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, शिवराज भूषण छन्द सं० ३४
४ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३३
५ वही, छन्द सं० ३६१

(१) अनन्वय

आजु गरीबनेवाज मही पर तो सो तुही सिवराज बिराजै ।[१]

(२) परिसंख्या

कंप कदली में, वारि बूँद बदली में,
सिवराज अदली के राज मैं यों राजनीति है ।[२]

(३) मालोपमा

इन्द्र जिम जंभ पर बाड़व ज्यौं अंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुलराज है।
पौन बारिबाह पर संभु रतिनाह पर,
ज्यौं सहस्रबाहु पर राम द्विजराज हैं।
दावा द्रुम-दंड पर चीता मृगझुंड पर,
भूषन बितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिम कंस पर,
यौं मलेच्छ-बंस पर सेर सिवराज है ।।[३]

(४) सहोक्ति

नैनन को नीर धीर छूटे एक संग छूटे,
सुख-रुचि, मुख-रुचि त्यौंही एक रंग ही ।[४]

(५) अपह्नुति

चमकती चपला न फेरत फिरंगैं भट,
इन्द्र कौ न चाप रूप बैरख समाज कौ।
धाए धुरवा न छाए धूरि के पटल मेघ,
गाजिबौ न साजिबौ है दुंदुभी-अवाज कौ।
भ्वैसिला के डरन डरानी रिपुरानी कहै,
पिय भजौ देखि उदौ पावस की साज कौ।
घन की घटा न गजघटनि सनाह साज,
भूषन भनत आयौ सैन शिवराज कौ ।।[५]

............आदि-आदि।

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५५
२ वही, छन्द सं० २२८
३ वही, छन्द सं० ५०
४ वही, छन्द सं० १३७
५ वही, छन्द सं० ७६

७. ४. ३. उभयालंकार उभयालंकार में केवल संकर अलंकार मिलता है। लक्षण इस प्रकार दिया गया है :—

भूषन एक कवित्त में भूषन होत अनेक।
संकर तासो कहत हैं जिन्हे कवित्त की टेक ॥[1]

भूषण ने जो लक्षण दिया है वह संकर और संसृष्टि के भेद को स्पष्ट नहीं करता। जहाँ पर तिल-तंडुल (तिल और चावल) की भाँति अलंकार मिले रहते हैं वहाँ संसृष्टि अलंकार होता है और जहाँ नीर-क्षीर की तरह मिले रहते हैं वहाँ संकर अलंकार होता है। भूषण का लक्षण संकर का न होकर उभयालंकार का लक्षण है। किन्तु उदाहरण संकर के न होकर संसृष्टि के हैं क्योंकि अलंकार वहाँ तिल तंडुल-न्याय से मिले हुए हैं।

७.५. मतिराम और भूषण

भूषण अपने भाई मतिराम से बहुत प्रभावित जान पड़ते हैं। मतिराम के ललित ललाम और भूषण के शिवराज भूषण दोनों के अलंकारों के लक्षणों में बहुत साम्य दिखाई देता है। ललित ललाम में मतिराम ने जहाँ अपना नाम लिखा है, वहाँ भूषण ने अपना नाम दिया है। ललित ललाम भूषण की रचना से पूर्व की रचना है।[2] अतः भूषण ने ही मतिराम का अनुकरण किया है, ऐसा कहा जा सकता है। कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं :—

(१) जाको बरनन कीजिए, सो उपमेय प्रमान।
जाकी समता दीजिए, ताहि कहत उपमान॥ —मतिराम

जाको बरनन कीजिए, सो उपमेय प्रमान।
जाके सम बरनन करैं, ताहि कहत उपमान॥ —भूषण

(२) जहाँ एक उपमेय कौं, होत बहुत उपमान।
तहाँ कहत मालोपमा, कवि मतिराम सुजान॥ —मतिराम

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३२८।

[2] इसकी (ललित ललाम) रचना संवत् १७१८ के बाद और संवत् १७२१ विक्रम के पूर्व हुई होगी। दूसरे शब्दों में ललित ललाम संवत् १७१८ और संवत् १७२१ विक्रम के बीच रचा गया होगा। इसके पश्चात् अर्थात् संवत् १७२२ के बाद इस ग्रन्थ का रचनाकाल इसलिए भी नहीं माना जा सकता क्योंकि भाऊसिंह बूँदी में नहीं रहे।"

—मतिराम कवि और आचार्य डा० महेन्द्रकुमार, पृ० ५०

जहाँ एक उपमेय कौं, होत बहुत उपमान।
ताहि कहत मालोपमा, भूषन सकल सुजान।। —भूषण

(३) जहाँ और संका भए, करत झूठ भ्रम दूरि।
भ्रान्तापह्नुति कहत हैं, तहाँ सुकवि मति भूरि।। —मतिराम

संक और की होत ही, जहिं भ्रम करियै दूरि।
भ्रान्तापह्नुति कहत हैं, तहिं भूषन कवि भूरि।। —भूषण

(४) जहाँ और की संक तें साँच छिपावत बात।
छेकापह्नुति कहत हैं, तहाँ बुद्धि अवदात।। —मतिराम

जहाँ और की संक तें साँच छिपावत बात।
छेकापह्नुति कहत हैं, भूषन मति अवदात।। —भूषण

........आदि-आदि

इसी तरह अन्य उदाहरण मिलेंगे।[१] इन उदाहरणों में अपने नाम के अन्तर के साथ कुछ शब्दों में तुक की दृष्टि से भूषण ने हेर-फेर कर दिया है, अन्यथा लक्षण वही लिखा हुआ है। डाक्टर ओउम्प्रकाश लिखते हैं—"नकल करने पर भी भूषण में वह सफाई नहीं है जो मतिराम में है, कारण बहुत से हो सकते हैं, जिनमें से मुख्य भूषण के काव्य का अक्खड़पन है। उल्लेख अलंकार के लक्षण में उल्लेख शब्द तीन बार आकर अरुचिकर बन जाता है—

कै बहुतै कै एक जहँ, एक वस्तु को देखि।
बहु विधि करि उल्लेख हैं, सो उल्लेख उलेख।। —भूषण

इसी प्रकार भूषण शब्द का अति प्रयोग भी पाठक के मन को विचलित कर देता है—कहीं यह कवि का नाम है, कहीं अलंकार का और कहीं केवल भरती का।"[२]

७.६. केशव और भूषण

डाक्टर विजयपालसिंह ने लिखा है—"केशव ने अपनी रचनाओं द्वारा परवर्ती हिन्दी आचार्यों एवं कवियों का मार्ग प्रदर्शन किया। भूषण, मतिराम, भिखारीदास, देव, पद्माकर आदि की कृतियाँ केशवदास से पूर्णरूपेण प्रभावित हैं।"[३] यह बात भूषण के लिए भी लागू है। डाक्टर साहब ने अर्थान्तरन्यास के लक्षणों में समानता दिखाई है। भूषण का विषाद केशव का परिवृत्त अलंकार का

---

१ हिन्दी अलंकार साहित्य, डा० ओउम्प्रकाश, पृ० १०१ और १०२

२ वही, पृ० १०२

३ केशव और उनका साहित्य, डा० विजयपालसिंह, पृ० ३६३

ही दूसरा रूप है। और केशव के विशेष अलंकार भूषण के द्वितीय विभावना का रूप लिए हुए हैं।[१] एक उदाहरण :—

केशव के परिवृत्त का लक्षण :—

और कछू कीजे जहाँ उपजि परै कछु और।
तासों परिवृत्त कहत हौं केशव कवि सिरमौर॥[२]

भूषण के विषाद का लक्षण :—

जहि चित-चाहे अरथ कौं, उपजे काज विरुद्ध।
ताहि विषादन कहत है, भूषन बुद्धि बिसुद्ध॥[३]

स्वभावोक्ति का लक्षण भी मिलता जुलता है :—

साँचो त्यौंही बरनियै, जैसो जाति-सुभाव।
ताहि स्वभावोक्ति कहत, भूषन जे कविराव॥[४]
जाको जैसो रूप गुन कहिजै तैसे साज।
तासों जाति सुभाव कहि, बरनत है कविराव॥[५]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि डाक्टर विजयपालसिंह का कथन बिल्कुल ठीक है। फिर दोहों में लक्षण लिखने की शैली केशव से ही प्रारम्भ हुई है। इसी को मतिराम आदि कवियों ने भी अपनाया। दोहों की प्रथम पंक्ति में लक्षण लिखते समय चाहे किसी आचार्य का अनुसरण भूषण ने किया हो किन्तु बाद की दूसरी पंक्ति में केशव का अनुसरण ही दीखता हैं। जैसे :—

तासों कहत बिरोध है, कविकुल सुबुधि सुधारि।[६] —केशव
तासों कहत बिरोध है, भूषन सुकबि सुबोध।[७] —भूषण

७. ७. निष्कर्ष

डाक्टर नगेन्द्र ने काव्यशास्त्र के क्षेत्र में आचार्यों को तीन वर्गों में विभाजित किया है।[८] इनमें प्रथम वर्ग उद्भावक आचार्यों का है, दूसरा वर्ग व्याख्याता

---

१ केशव और उनका साहित्य, डा० विजयपालसिंह, पृ० ३६३ और ३६४
२ कविप्रिया, केशवदास, तेरहवाँ प्रकाश, छन्द सं० ३९
३ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १९६
४ वही, छन्द सं० ३०५
५ कविप्रिया, केशवदास, नवम प्रभाव, छन्द सं० ८
६ वही, नवम प्रभाव, छन्द सं० २१
७ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १६४
८ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, सं० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ४९६, ४९७

आचार्यों का है और तीसरा वर्ग कवि शिक्षकों का है। इन वर्गों में हिन्दी के आचार्य प्रायः तीसरे वर्ग में ही आते हैं। भूषण भी इसी वर्ग के हैं। उन्होंने 'कबिन को पन्थ' अपनाकर ही काव्यशास्त्र की रचना की है। यद्यपि रस के सिद्धान्तों की उन्होंने कहीं चर्चा नहीं की किन्तु उनके शृंगार रस सम्बन्धी प्राप्त प्रकीर्ण छन्दों में नायिका भेद के लक्षणों की ओर कही-कहीं संकेत दिए गए हैं। इस आधार पर हम इतना कह सकते हैं कि शृंगार रस के सम्बन्ध में उनकी पूरी जानकारी थी। अलंकार शास्त्र तो उनका क्षेत्र ही था। इसी क्षेत्र में उन्होंने अपनी प्रतिभा दिखाई है। हिन्दी के गिने-चुने आचार्यों में भूषण का नाम आता है। यह ठीक है कि उन्होंने किसी मौलिक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया और यह भी ठीक है कि उन्होंने सिद्धान्तों की व्याख्या भी शास्त्रीय ढंग से नहीं की किन्तु इस बात का भूषण ने दावा भी कहाँ किया है ? वे तो अलंकारों की शास्त्रीय परम्परा को सरस रूप में अवतरित कर अपने नायक को अलंकारों से भूषित करना चाहते हैं। उन्होंने कहा भी है :—

सिव चरित्र लखि यौं भयौ कवि भूषन के चित्त।
भ ति-भाँति भूषननि सों भूषित करौं कवित्त॥[1]

और कवि अपने उद्देश्य में सफल हुआ है। अलंकारों से नायक को भूषित करते हुए उन्होंने अलंकारों के लक्षणों को केशव और मतिराम की शैली में दोहों के रूप में व्यक्त किया है। लक्षणों का मूल ढाँचा भले ही जयदेव और अप्पय दीक्षित का रहा हो किन्तु उसको प्रस्तुत करने का ढंग केशव और मतिराम का है। इस को अपनाते हुए कहीं-कहीं उन्होंने उनका अनुसरण भी किया है। यह सब कुछ होने पर भी भूषण के अपने निजी व्यक्तित्व की छाप भी उन पर है। काव्यशास्त्र की परम्परा को उन्होंने युगानुरूप स्वीकार किया और यह दिखला दिया कि इस क्षेत्र में भी वे सिद्धहस्त हैं। रस, विशेष रूप से नायिका भेद और अलंकार विवेचन के अतिरिक्त काव्य के अन्य सिद्धान्तों की उन्होंने विशेष रूप से चर्चा नहीं की किन्तु काव्य को पढ़ने से लगता है कि वे उनसे परिचित हैं। अन्त में हम यह कह सकते हैं कि कवि बनने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों में काव्यशास्त्र की जिस सामान्य जानकारी का अनुभव कवि लोग किया करते थे, उनसे भूषण की जानकारी अधिक ही थी। कवि एवं आचार्य दोनों में यदि निर्णय देना पड़े तो भूषण को कवि ही मानना उपयुक्त होगा। भूषण कवि हैं आचार्य नहीं।

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द स० ३४८**

अष्टम अध्याय

भूषण का काव्य-विवेचन

भूषण का काव्य-विवेचन

८.१. काव्य-विवेचन के आधार

किसी कवि के काव्य का विवेचन करने के लिए कवि के आशय एवं उसकी अभिव्यक्ति दोनों के बीच के परस्पर सम्बन्ध स्थापित करनेवाले पक्षों पर विचार करना होगा। कवि का जो आशय होगा, वही काव्य में अभिव्यक्ति होगा और इसी तरह कवि की अभिव्यक्ति में कवि का आशय निहित होगा। आशय एवं अभिव्यक्ति पार्वती परमेश्वर के समान एकरूप ही हैं। किन्तु काव्य का विवेचन करते समय हमें सुविधा के लिए दोनों पर अलग-अलग रूप से विचार करना आवश्यक हो जाता है। इसी को सरल शब्दों में काव्य का भावपक्ष एवं कलापक्ष कह सकते हैं। भावपक्ष के अन्तर्गत रस, कवि का आशय, कवि की अनुभूति, भाव-सौन्दर्य, भावनाओं का जीवन से सम्बन्ध या मूल्यांकन आदि का विवेचन किया जा सकता है और कलापक्ष के अन्तर्गत अलंकार, छन्द, वर्ण योजना, भाषा, मुहावरे, काव्य का गठन, काव्यरूप आदि का विवेचन किया जा सकता है, नीचे पहले भावपक्ष का तदनन्तर कलापक्ष का विवेचन किया जा रहा है।

८.२. रस विवेचन

भूषण के काव्य में प्रधान रूप से वीर रस अभिव्यंजित हुआ है। उनकी प्रसिद्ध रचना शिवराज भूषण एवं उनके प्रकीर्ण छन्दों में (उनके शृंगार रस सम्बन्धी ४० छन्दों को छोड़ दें तो) इसी रस की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त अन्य रस जैसे अद्भुत रस, भयानक रस, रौद्र रस, वीभत्स रस उनके काव्य में वीर रस के सहायक रस बन कर आये हैं। दूसरे शब्दों में कथित अन्य रस वीर रस के सहायक रस हैं या वीर रस को पुष्ट करने वाले रस हैं। कवि की मूल भावना नायक के कर्म-सौन्दर्य को उत्साहमय वाणी देना है।

भूषण के काव्य का अध्ययन रस की दृष्टि से करने पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उनकी रस ध्वनि में वीरता के उद्गार हैं। किन्तु इसके

साथ-साथ यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि यह ध्वनि वीरता की है। प्रत्यक्ष वर्णन, वीरता की दृष्टि से बहुत कम हुआ है। प्रायः सब कुछ अप्रत्यक्ष एवं संश्लिष्ट ढंग में ही कवि ने कह दिया है। भूषण के काव्य में ध्यान देने योग्य बात यह है कि उसने शिवाजी (आश्रय) के निजी भावों का, उनके द्वारा किये गये संगठन का या आयोजन का वर्णन प्रायः नहीं किया। यहाँ तक कि शिवाजी की ओर से किसी सरदार और सेनापति के नाम का भी कवि ने उल्लेख नहीं किया है। इसके विरुद्ध आलम्बन पक्ष (औरंगजेब का पक्ष) का वणन विस्तृत रूप में अनेक सरदारों और सामन्तों के नामों के साथ—शिवाजी से तत्सम्बन्धी घटनाओं के साथ—किया हुआ मिलता है। कवि शिवाजी के वीर कर्मों का उल्लेख तो करता है किन्तु उसकी दृष्टि सदैव शत्रु और प्रजा पर उन कर्मों के प्रभाव की ओर अधिक रही है और इसी का विस्तार काव्य में हुआ है। एक दृष्टि से यह प्रशस्ति काव्य भी है। किन्तु इसके साथ यह प्रशस्ति लोक-हृदय की भावभूमि पर आधारित होने के कारण लोकप्रिय प्रशस्तिमूलक काव्य हो गया है। तुलसी ने जैसे राम की स्तुति की है, वैसे ही भूषण ने शिवाजी की स्तुति की है, इससे एक बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि भूषण के काव्य में प्रत्यक्ष शिवाजी के व्यक्तित्व के वर्णन की अपेक्षा उनके व्यक्तित्व के प्रभाव का वर्णन ही अधिक हुआ है। दूसरे शब्दों में यह वर्णन वीर आदर्श की वीर पूजा के अनुकूल है। मिश्रबन्धुओं ने भूषण को वीर-काव्य का आचार्य कहा है।[1] फिर भी वीर रस के वर्णन के सम्बन्ध में दूसरे स्थान पर वे लिखते हैं—"शिवराज भूषण में कवि ने अलंकारों पर ही पूर्ण ध्यान दिया है, अतः युद्ध प्रधान ग्रन्थ होने पर भी पूर्ण वीर रस के उदाहरण इस ग्रन्थ में नहीं मिलते। हाँ, भयानक तथा रौद्र रस के उत्तम उदाहरण भी यत्र-तत्र देख पड़ते हैं, मुख्यतः भयानक रस के, जिस (रस) के वर्णन में भूषण महाराज बड़े पटु हैं। इन्होंने शिवाजी के दल का वर्णन इतना नहीं किया जितना कि शत्रुओं पर उसकी धाक का। इसी हेतु इनके ग्रन्थ में भयानक रस का बहुत अधिक समावेश है।"[2] भयानक रस का अत्यधिक वर्णन होने पर भी उस वर्णन से ध्वनि नायक के उत्कर्ष की ही निकलती प्रतीत होती है। अतः भयानक रस का वर्णन वीर रस का सहयोगी बनकर ही चित्रित हुआ है।

भूषण का काव्य प्रबन्ध काव्य नहीं, मुक्तक है। अतः शैली में वर्णनात्मकता नहीं है। संश्लिष्ट शैली में कर्मों की व्याख्या की गई है। अतः नायक का व्यक्तित्व प्रत्यक्ष रूप में चित्रित नहीं हुआ है। शिवाजी की प्रशस्तियों में जनभावना को स्थान मिला है। जनता की चित्तवृत्तियों को समझते हुए उन्हीं की वाणी में शिवाजी

---

[1] भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, (सातवाँ संस्करण, पृ० ५६

[2] वही, पृ० ३८

और औरंगजेब के उत्कर्ष-अपकर्ष को कहने की चेष्टा की गई है। वीर रस के शास्त्रीय विवेचन के अनुरूप वीर रस के प्रसंगों की विवेचना करना, भूषण के काव्य में, कठिन है। इसका कारण कवि की विशिष्ट शैली है। बात यह है कि शिवाजी (आश्रय) प्रत्यक्ष रूप में गोचर नहीं होते। उनके (शिवाजी के) व्यक्तित्व की छाया ही सर्वत्र दिखाई देती है और यह छाया भी भूषण की वाणी में। भूषण की वाणी, इस अर्थ में कि भावना, भूषण कवि की है, शिवाजी की नहीं। शिवाजी के भावों के वर्णन की अपेक्षा कवि ने अपने भावों का—जो कवि के साथ-साथ सर्व साधारण के भाव भी हैं—अधिक चित्रण किया है। इसीलिए यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि भूषण के काव्य में शुद्ध वीर रस का वर्णन वीरपूजा और वीर आदर्श के अनुकूल हैं।

८. २. १. वीर रस

भूषण का काव्य वीर रसात्मक और आनन्द की साधनावस्था का काव्य है। स्वयं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को ग्रहण करने वाले कुछ ऐसे कवि भी होते ,हैं जिनका मन सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष की ओर नहीं जाता, जैसे भूषण।"[1] रस सिद्धान्त के सम्बन्ध में यहाँ विस्तार से विवेचन करना नहीं है किन्तु यह बतलाना आवश्यक होगा कि कवि जिस मूल भावना का या शास्त्रीय शब्दों में "वीर रस का" विवेचन कर रहा है, उसका साधारणीकरण किस प्रकार होता है और यह साधारणीकरण केवल आलम्बन का होता है या सर्वांग का। डाक्टर नगेन्द्र ने लिखा है—"साधारणीकरण कवि की अपनी अनुभूति का होता है अर्थात् जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति की इस प्रकार अभिव्यक्ति कर सकता है कि वह सभी के हृदयों में समान अनुभूति जगा सके तो पारिभाषिक शब्दावली में हम कह सकते हैं कि उसमें साधारणीकरण की शक्ति वर्तमान है। अनुभूति सभी में होती है, सभी व्यक्ति उसे यत्किंचित् व्यक्त भी कर लेते हैं, परन्तु साधारणीकरण करने की शक्ति सब में नहीं होती। इसीलिए तो अनुभूति और अभिव्यक्ति के होते हुए भी सब कवि नहीं होते। कवि वह होता है जो अपनी अनुभूति का साधारणीकरण कर सके, दूसरे शब्दों में जिसे लोक-हृदय की पहचान हो।[2] भूषण के काव्य में साधारणीकरण कवि की अनुभूति का ही होता है। रसनिष्पत्ति से सम्बन्धित सभी अवयव कवि की अनुभूति से सम्बन्ध रखनेवाले हैं और कवि की अनुभूति अभिव्यक्ति के माध्यम से सर्वसाधारण तक पहुँचती है।

---

[1] रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५६

[2] रस सिद्धान्त, डा० नगेन्द्र, (प्रथम संस्करण, १९६४), पृ० २११

भूषण के काव्य में वीरता का आदर्श छत्रपति शिवाजी हैं। वे ही काव्य के नायक हैं। शास्त्रीय शब्दों में 'आश्रय' छत्रपति शिवाजी हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "मंगल का विधान करने वाले दो भाव बतलाए हैं—करुणा और प्रेम। इन दोनों में करुणा की गति रक्षा की ओर होती है.......लोक में प्रथम साध्य रक्षा है.......अतः साधनावस्था या प्रयत्नपक्ष को लेकर चलनेवाले काव्यों का बीज भाव करुणा है।"[1] वीर रस के नायक को कर्म की प्रेरणा लोक में अत्याचार को देखकर मिलती है और साथ ही अत्याचारी व्यक्तित्व को देखकर भी। एक ओर जहाँ उसकी दृष्टि समाज पर होती है तो दूसरी ओर उसकी दृष्टि सामाजिक धर्म को बाधित करनेवाले व्यक्तित्व पर भी होती है। एक का रूप उसमें करुणा का भाव जाग्रत करता है तो दूसरे का रूप उसमें क्रोध का भाव। करुणा की प्रतिक्रिया दया में होती है और क्रोध की प्रतिक्रिया अत्याचारी के दमन में। अतः वीर रस के नायक में वीरता के लिए कर्म की ओर प्रवृत्त होने में इन मूल भावों का होना आवश्यक सा हो जाता है। छत्रपति शिवाजी की वीरता के मूल में ये दोनों ही भाव हैं। जैसे :—

वेद राखे विदित पुरान परसिद्ध राखे,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिंदुन की चोटी रोटी राखी सिपाहिन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में।
मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में।[2]

शुक्लजी ने मंगल का विधान करनेवाले जिन दो मूलभावों का उल्लेख किया है—करुणा और प्रेम। उनमें से करुणा का भाव उक्त कवित्त में है। नायक में करुणा के साथ-साथ क्रोध का भाव भी दिखलाया गया है। सामाजिक अत्याचार को देखकर नायक को पीड़ित पात्रों के प्रति करुणा होती है और इसी तरह सामाजिक धर्म में बाधा पहुँचानेवाले पात्र के प्रति—अत्याचारी पात्र के प्रति—क्रोध आता है। ये दोनों ही भाव वीरता के प्रेरक हैं। उत्साह का वर्धन करने वाले हैं, नायक को कर्म के लिए प्रेरित करनेवाले हैं। वास्तव में कवित्त में न करुणा का वर्णन है और न ही क्रोध का बल्कि कवित्त में उस उत्साह का वर्णन है, जिसकी

---

[1] **रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६७**

[2] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४२०**

व्यंजना नायक के कर्मों में हो रही है। इस कवित्त की व्याख्या विस्तार से करना उपयुक्त होगा।

शिवाजी का उत्साह शिवाजी के कर्मों में व्यक्त हो रहा है। इस कवित्त में शिवाजी के कर्मों से सम्बन्ध रखने वाले पद निम्न प्रकार हैं :

(१) वेद राखे, "वेदों की रक्षा की"

(२) विदित पुरान परसिद्ध राखे, "प्रसिद्ध पुराणों की रक्षा की"

(३) राम नाम राख्यो अति रसना सु घर में 'घरों में राम नाम की रक्षा की"

(४) हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की, "हिन्दुओं की चोटी की एवं सिपाहियों की रोटी की रक्षा की"

(५) काँधे में जनेऊ राख्यो, "काँधे में जनेऊ की रक्षा की"

(६) माला राखी गर में 'गले में माला की रक्षा की"

(७) मीड़ि राखे मुगल, 'मुगलों को मीड़ रखा"

(८) मरोड़ि राखे पातसाह, "बादशाहों को मरोड़ रखा"

(९) बैरी पीसि राखे. "बैरियों को पीस दिया"

(१०) बरदान राख्यो कर में, "अपने हाथ में बरदान रखा"

(११ राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज, "शिवाजी ने अपनी तलवार के बल पर राजाओं की मर्यादाओं की रक्षा की"

(१२) देव राखे देवल, "मन्दिरों में देवताओं की रक्षा की"

(१३) स्वधर्म राख्यो घर में, "घरों में (अर्थात देश में) स्वधर्म की (अर्थात् प्रत्येक का वह मान्य धर्म जिसे लोग अपने घरों में अपना धर्म समझते थे। विशेष रूप से हिन्दू-धर्म होने पर भी स्वधर्म कहा जाने से अन्य धर्म अर्थ भी हो सकता है। घर में व्यक्ति जिसे अपना धर्म समझते हैं वह धर्म) रक्षा की"

वेद की रक्षा करने में, पुराणों की रक्षा करने में और इसी तरह विभिन्न पदों में शिवाजी के कर्मों का वर्णन है। यह वर्णन तथ्यपरक नहीं है। यदि तथ्यपरक होता तो काव्य न होता। प्रत्येक कर्म में "उत्साह" का भाव निहित है।

साहित्यदर्पणकार ने— 'कार्य करने में स्थिरतर तथा उत्कट आवेश को उत्साह कहा है।"[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उत्साह को—"साहसपूर्ण आनन्द की उमंग"[2] कहा है। कर्म में प्रवृत्त व्यक्ति के लिए क्रिया की सत्वरता का सजग भाव, कर्म की दृढ़ता या प्रयत्न पक्ष और भाव का विस्तार या औन्नत्य की भी आवश्यकता

---

[1] **कार्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते।**
—साहित्य दर्पण, तृतीय परिच्छेद, १७८

[2] **चिन्तामणि, भाग १, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६**

होती है। इस तरह उत्साह से युक्त यदि उपर्युक्त कवित्त के पदों को देखा जायगा तभी काव्य का आनन्द आएगा।

'वेद राखे' पद का विस्तृत अर्थ होगा—वेदों की मान्यताओं पर कुठाराघात हो रहा था। वेदों की रक्षा न होने से वेदों में आस्था रखने वाले दुखी हो गए थे। अतः छत्रपति शिवाजी ने वेदों की मान्यताओं में बाधक सभी कारणों को दूर कर अपने तेग-बल से वेदों की मान्यताओं की रक्षा की। वेद से सम्बन्धित संस्कारों को प्रोत्साहन दिया। यहाँ प्रेरक भाव "करुणा" का है। वेदों की रक्षा की आवश्यकता क्यों हुई ? इसलिए कि वेदों की मान्यताओं पर कुठाराघात हो रहा था। औरंगजेब के धर्मविरोधी अत्याचार से जनता पीड़ित थी। उन्हें अपने पूज्य ग्रन्थ वेदों का अनुगमन करना कठिन हो गया था। जनता के प्रति छत्रपति को करुणा हुई। यह करुणा अत्याचारी द्वारा पीड़ित देखकर, अत्याचार जनित दुख को देखकर, हुई। इस दुख को देखकर इसे दूर करने के लिए वेदों की रक्षा करना आवश्यक समझ कर छत्रपति ने वेदों की रक्षा की। वेदों की रक्षा कैसे की ? ऐसे कि इस में बाधक सभी कारणों को अपनी वीरता से दूर किया और खोई हुई प्रतिष्ठा फिर से स्थापित कर दी। इससे सम्बन्धित संस्कारों को प्रोत्साहन मिला। इसी प्रकार निम्नलिखित पदों की व्याख्या की जा सकती है—

(१) विदित पुरान परसिद्ध राखे, (२) राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में, (३) हिंदुन की चोटी राखी, (४) काँधे में जनेऊ राख्यो, (५) माला राखी गर में, (६) देव राखे देवल, और (७) स्वधर्म राख्यो घर में, (८) राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में,

"रोटी राखी है सिपाहिन की",—पद का विस्तृत अर्थ इस प्रकार होगा—रोटी शब्द सामान्य अर्थ में रोटी का बोध कराने वाला है किन्तु विस्तृत अर्थ में रोजी और भोजन की सामग्री का द्योतन करनेवाला है। कवि एक ओर शिवाजी के धर्म-रक्षक रूप का चित्र प्रस्तुत कर रहा है, वहाँ वह जीवन की यथार्थ समस्या—भोजन की समस्या—का हल प्रस्तुत करने वाले शिवाजी के व्यक्तित्व का भी उद्घाटन कर रहा है। छत्रपति शिवाजी सिपाहियों की रोटी की व्यवस्था करने वाले हैं। उन्हें काम देते हैं और साथ ही काम के पारिश्रमिक रूप में उन्हें रोटी देते है।

"मीड़ि राखे मुगल" पद का विस्तृत अर्थ इस प्रकार होगा—मुगल सत्ता अर्थात् औरंगजेब की सत्ता को छत्रपति शिवाजी ने मीड़ रखा। तात्पर्य यह कि उस महान् सत्ता को छत्रपति ने तृच्छ समझ कर मीड़ कर रख दिया। उस बड़ी हस्ती को कुछ नहीं समझा। इसी तरह 'मरोड़ि राखे पातसाह', 'बैरी पीसि राखे' पदों का अर्थ होगा।

'बरदान राख्यो कर में' पद का अर्थ होगा—छत्रपति शिवाजी समर्थ होने के नाते वे अपनी प्रजा को संतुष्ट रखने में समर्थ थे। जैसे देवता प्रसन्न होने पर बरदान देकर इच्छाओं को, मनोकामनाओं को पूर्ण करते हैं, उसी तरह छत्रपति शिवाजी भी बरदान को अपने हाथ में रखते हैं। जब चाहे तब वे शक्ति सम्पन्न होने के नाते प्रजा को बरदान देकर संतुष्ट कर सकते हैं। किसी को प्रसन्न करना उनके लिए सहज एवं स्वाभाविक बात थी।

'राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज'—पद का अर्थ होगा राजा लोग औरंगजेब के दबाव एवं अत्याचार से पीड़ित रहने के कारण अपने स्वाभिमान एवं मर्यादा को खो बैठे थे। उनका स्वाभिमान मुगलों ने खरीद लिया था। छत्रपति ने अपनी तलवार के बल से राजाओं के स्वाभिमान की रक्षा की।

ऊपर जो कवित्त के पदों का अर्थ दिया गया है उसको अब अलग-अलग न देखकर समग्र रूप में देखें तो दो प्रकार के विभिन्न चित्र दिखाई देते हैं।

प्रथम चित्र : वेद एवं पुरान (हिन्दू धर्म के मान्य ग्रन्थ) का सम्मान एवं उनका पठन-पाठन का होना। अति विस्तृत रूप में, वेदों की ध्वनियों का निनादित होना और उनसे सम्बन्धित संस्कारयुक्त जीवन बिताना, होगा। इसी के साथ-साथ हिन्दूधर्म के आचरण के अनुकूल सिर पर चोटी रखना, जनेऊ धारण करना, गले में माला पहनना, मन्दिरों में देवताओं की प्रतिष्ठा, देवताओं का पूजापाठ, राम नाम की महत्ता का बोध एवं रसना द्वारा रामनाम का घर-घर पाठ होना या राम नाम का जप सुनाई देना, आदि भारतवर्ष की हिन्दू संस्कृति के आदर्श मूल्यों के व्यावहारिक पक्ष को मूर्त करनेवाले चित्र हैं। समग्र रूप में लगता है कि छत्रपति शिवाजी ने हिन्दू धर्म के खोए हुए मूल्यों को प्रतिष्ठित कर दिया है। इन सब के साथ-साथ सबकी रोटी की व्यवस्था भी की।

द्वितीय चित्र : औरंगजेब जैसे मुगल सत्ताधारी को तुच्छ समझ कर शिवाजी ने उसे मीड़ दिया। यही नहीं अनेक बादशाहों को भी उन्होंने मरोड़ कर रखा। छत्रपति शिवाजी ने अपने लक्ष्य की पूर्ति में बाधा पहुँचाने वाले सभी बैरियों को पीस दिया, विरोधी शक्तियों को तुच्छ लेखा, उन्हें परेशान रखा, उनकी शक्तियों को नष्ट किया और अत्याचारी को सजा दी।

इस तरह उक्त कवित्त में दो प्रकार के चित्र मिलते हैं। प्रथम चित्र का प्रेरक भाव करुणा है और दूसरे चित्र का प्रेरक भाव क्रोध है। किन्तु ये दोनों ही भाव बीजरूप हैं। प्रत्यक्ष कवित्त में न करुणा दिखाई देती है और न ही क्रोध। कवित्त में नायक कर्म करता हुआ दिखाई दे रहा है। चाहे प्रथम चित्र हो या द्वितीय दोनों में नायक उत्साही दिखाई दे रहा है। वेद की रक्षा में जो उत्साह है, उतना ही उत्साह मुगलों को मीड़ने में है। कर्म का आनन्द, कर्म की उत्कटता, कर्म की

दृढ़ता, सभी उत्साहजन्य है। कवित्त का सारा आनन्द उत्साह में है और इस उत्साह को हटा देने से कवित्त तथ्यपरक हो जायगा। यों कहिए कि कवित्त का भाव सौन्दर्य नष्ट हो जायगा।

साधारणीकरण की दृष्टि से अब यदि इस कवित्त पर विचार किया जाय तो यही कहना उपयुक्त होगा कि कवि की अनुभूति का साधारणीकरण हो रहा है। कवि अपने नायक का चित्र प्रस्तुत करते समय या नायक के कर्म सौन्दर्य का परिचय देते समय, नायक से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। कवि की इस अनुभूति का तादात्म्य इसी नाते सहृदय-समाज से भी हो जाता है। इस सम्बन्ध में डाक्टर नगेन्द्र ने लिखा है—"संस्कृत-काव्य का नायक जैसे गुणों से विभूषित होता था कि उसके साथ तादात्म्य करना प्रत्येक सहृदय के लिए सहज और स्पृहणीय था। काव्य के मूल अर्थ की अभिव्यक्ति कवि प्रायः नायक के माध्यम से ही करता था, अर्थात् कवि स्वयं नायक से तादात्म्य स्थापित कर लेता था, अतः सहृदय-समाज का भी उसके साथ सहज तादात्म्य हो जाता था।"[१] नगेन्द्रजी ने संस्कृत काव्य के नायकों की बात कही है। भूषण के नायक छत्रपति शिवाजी भी संस्कृत काव्यों के नायक की तरह ही हैं। साथ ही कवि काव्य के मूल अर्थ की अभिव्यक्ति भी नायक के माध्यम से ही कर रहा है। भूषण की नायक के सम्बन्ध में जो अनुभूति है, वह नायक की सामाजिक मान्यता पर आधारित है। शुक्लजी के शब्दों में भूषण को लोक हृदय की पहचान थी। अतः कवि ने सर्वसाधारण की अनुभूति को अपनी अनुभूति बनाकर व्यक्त किया है।

अब कवित्त की अनुभूति के प्रवाह को देखा जाय। कवित्त में उत्साह का संचार एक पद से दूसरे पद में प्रवाहित होता जाता है। साहसपूर्ण आनन्द की उमंग को उत्साह कहा गया है। उत्साह क्रिया की सत्वरता का भाव है। उत्साह के अभाव में कर्म निर्जीव होगा। यों कहिए कि भावशून्य होगा। कवित्त में कर्म से सम्बन्धित विभिन्न पद ऊपर दिये गए हैं। कर्म का द्योतन कराने के लिए हर बार "राखे" राख्यो, एक ही क्रिया का प्रयोग हुआ है। क्रिया की दृष्टि से पद नीचे लिखे जा रहे हैं।

(१) वेद राखे : राखे 'रक्षा की'

(२) पुरान परसिद्ध राखे : 'राखे' रक्षा की इसी तरह 'राम नाम राख्यो, अति रसना सुघर में', 'हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की', 'काँधे में जनेऊ राख्यो, माला रखी गर में', 'बरदान राख्यो कर में', 'राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज', 'देव राखे देवल' और 'स्वधर्म राख्यो घर में' ....। इन सभी पदों में

---

[१] रस सिद्धान्त, डा० नगेन्द्र (प्रथम संस्करण १९६४), पृ० २०७

'रखना' क्रिया एक ही अर्थ में प्रयुक्त हुई है। किन्तु इन तीन पदों में यह क्रिया दूसरी क्रिया के साथ संयुक्त होकर आई है-- 'मीड़ि राखे', 'मरोड़ि राखे' और 'पीसि राखे'। यहाँ पर तीनों ही संयुक्त क्रियाओं में प्रधान क्रिया प्रथम है अर्थात् मीड़ना, मरोड़ना और पीसना क्रियाएँ प्रधान हैं और 'राखे' क्रिया सहायक रूप में क्रिया की पूर्णता का बोध कराने के लिए प्रयुक्त हुई है। करुणा के पक्ष में कवित्त का जो प्रथम चित्र बनता है उस के लिए राखे अकेली क्रिया अपने सीधे अर्थ में प्रयुक्त हुई है जब कि क्रोध के पक्ष में 'राखे' क्रिया दूसरी क्रियाओं के साथ संयुक्त रूप में प्रयुक्त हुई है। साथ ही इन संयुक्त क्रियाओं में प्रथम क्रियाएँ—मीड़ना, मरोड़ना और पीसना सभी अपने वाच्यार्थ में प्रयुक्त नहीं हुई हैं। इन सब की ध्वनि शत्रु को तुच्छ देखकर नाचीज कर देने की है। क्रियाएँ अपने आप में पूरे वाक्य का बोध करानेवाली होती हैं। बिहारी का कौशल इसमें ही था कि क्रियाओं को उसने अपने लघु छंद (दोहे) में बड़ी कसावट के साथ प्रयोग किया। प्रत्येक क्रिया एक समय वाक्य—कथन—का बोध कराती है। इन क्रियाओं में आशय की ध्वनि अपने आप व्यक्त होती है। जैसे :—

> कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
> भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सब बात॥[1]

बिहारी के दोहे में शृंगार रस का सौन्दर्य है। भूषण के कवित्व में वीर रस का सौन्दर्य है। यहाँ कवित्त में एक ही क्रिया के दोहराने में, अनुभूति वेगमय रूप में प्रवाहित होती प्रतीत होती है। एक ही भाव की उत्कटता विभिन्न व्यापारों द्वारा व्यक्त हो रही है। 'वेद राखे' के बाद में 'विदित पुरान परसिद्ध राखे' आता है। पहले राखे क्रिया में जो भाव (उत्साह का) व्यक्त हो रहा है, वह दूसरी बार 'राखे' क्रिया आने पर द्विगुणित हो जाता है। इसी तरह आगे जब वह क्रिया फिर दोहराई जाती है तो अनुभूति में प्रवाह आने लगता है। यों कहिये कि अनुभूति का प्रवाह एक क्रिया से दूसरी क्रिया में संचरित होने लगता है। अनुभूति का यह प्रवाह संगीतमय होकर प्रवाहित होता है। आरोह एवं अवरोह दोनों ही प्रकार का प्रवाह कवित्त में दृष्टिगोचर होता है। संगीत का यह आरोह बढ़ते-बढ़ते 'मीड़ि राखे' पर आकर अधिक गतिशील हो जाता है और इसके आगे 'मरोड़ि राखे' पर चरम बिन्दु पर पहुँच जाता है। इसके बाद 'पीसि राखे' से अवरोह होने लगता है और अन्त में 'स्वधर्म राख्यो घर में' पर आ जाता है। भाव की उत्कटता अनेक व्यापारों में एक ही क्रिया के दोहराने से संगीतमय रूप धारण कर लेती है।

---

[1] **बिहारी रत्नाकर, दोहा संख्या ३२**

इसी तरह अन्य कवित्तों की व्याख्या की जा सकती है, भूषण के काव्य से कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं, जिनमें वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है।

(१) कोप करि चढ़यौ महाराज सिवराज वीर,
धौंसा की धुकार तें पहार दरकत है।
गिरे कुंभि मतवारे स्रोनित फुहारे छूटे,
कड़ाकड़ छितिनाल लाखौं करकत है।
मारे रन जोम कै जवान खुरासान केते,
काटि काटि दाहि दाबें छाती थरकत है।
रनभूमि लेटे वै चपेटे पठनेटे परे,
रुधिर - लपेटे मुगलेटे फरकत है ॥[१]

(२) बंध कीन्हें बलख सों बैर कीन्हो खुरासान,
कीन्ही हवसान पर पातसाही पल ही।
बेदर कल्यान घमसान कै छिनाय लीन्हे,
जाहिर जहान उपखान यही चल ही।
जंग करि जोर सों निजामसाही जेर कीन्हीं,
रन में नमाए हैं बुंदेल छल-बल ही।
ताके सब देस लूटि साहिजी के सिवराज,
कूटी फौज अजौं मुगलन हाथ मलही ॥[२]

(३) अफजलखानजू को मारो मयदान जानै,
बीजापुर गोलकुण्डा डरायो दराज है।
भूषन भनत फराँसीस अँगरेज मारि,
हवसि फिरंगी मारे उलटि जहाज है।
देखत में रुस्तम को छिन में खराब कियो,
सलहेर-संगर की आवति अवाज है।
चौंकि चौंकि चकता कहत चहुँधा ते यारो,
लेत रहौ खबरि कहाँ लौं सिवराज है ॥[3]

इन तीनों ही कवित्तों में वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है। कवि की अनुभूति तीनों ही कवित्तों में विविध रूपों में व्यक्त हुई है। इन तीनों ही कवित्तों की विस्तृत

---

[१] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४५१

[२] वही, छन्द सं० ४६७

[३] वही, छन्द सं० ४३६

व्याख्या यहाँ सम्भव नहीं किन्तु कवित्तों में एक ही प्रकार की अनुभूति अलग-अलग लयों में बद्ध है, इसे दिखलाना उचित होगा।

प्रथम कवित्त में छत्रपति शिवाजी के क्रोध की प्रतिक्रिया का वर्णन है। कवि अपने नायक के क्रोध की प्रतिक्रिया का वर्णन बड़े उत्साह के साथ कर रहा है। क्रोध में आने पर शिवाजी शत्रु का बेहाल कर देते हैं। कवित्त में यह भावना लयबद्ध रूप में व्यक्त हुई है। इस लय का प्रवाह नीचे दिखलाया जा रहा है।

'कोप करि चढ्यौ' क्रुद्ध होकर चढ़ाई की। किसने? 'महाराज सिवराज बीर' वीर शिवाजी महाराज ने। कवित्त की पहली पंक्ति में कहा गया है कि महाराज शिवाजी, जो वीर है, कुपित होकर चढ़ाई करते हैं। तब क्या होता है? इसका उत्तर अगली पंक्तियों में दिया गया है। जब शिवाजी चढ़ाई करते हैं तो नगारा बजाया जाता है। बड़ी गर्जना के साथ चढ़ाई होती है। यह ध्वनि शिवाजी के साहस एवं उत्साह की अभिव्यक्ति है। यह ध्वनि कितनी जोर से होती है इसका आभास कराने के लिए कहा गया है कि नगारे की गर्जना से पहाड़ फटने लगते हैं यह ठीक है कि ध्वनि की गर्जना से पहाड़ नहीं फटते किन्तु इससे विराट् ध्वनि की श्रुतिमूलक संवेदना का आभास अवश्य होता है। दूसरी पंक्ति "धौंसा की धुकार तैं पहार दरकत हैं" में कवि ने चढ़ाई के पहले वेग का वर्णन किया है। आवाज ही इतनी बुलन्द है कि शत्रु काँप जाय। तीसरी पंक्ति 'गिरे कुंभि मतवारे स्रोनित फुहारे छूटे' में यह कहा गया है कि मतवाले हाथी गिरने लगे, खून के फुहारे छूटने लगे, इसी तरह आगे कहा गया है। छितिनालों (एक प्रकार की बन्दूक) के छूटने से कड़ाकड़ की ध्वनि निनादित होने लगी। छितिनालें भी एक दो नहीं, लाखों अर्थात् बहुत अधिक संख्या में। कहा है—'कड़ाकड़ छितिनाल लाखों करकत है।' इस पंक्ति में भी श्रुतिमूलक संवेदना का चित्र है। कड़ाकड़ एवं करकत दोनों ही ध्वन्यात्मक शब्द हैं और छितिनालों की गति का आभास ध्वन्यात्मक रूप में कराने वाले हैं। अब यदि आरम्भ से यहाँ तक क्रोध की भावना की प्रतिक्रिया का अवलोकन किया जाय तो वह युद्ध में विभिन्न व्यापारों में व्यक्त होती हुई दिखाई देती है। अगली पंक्ति में भावना की लय प्रवाह बड़े वेगमय शब्दों में व्यक्त होता दिखाई देता है। 'मारे रन जोम कै जवान खुरासान केते' युद्ध का उन्माद बढ़ा हुआ है और इस उन्माद के प्रवाह में न जाने कितने खुरासानी (मुगल पक्ष के खुरासानी सैनिक) मार डाले गये। बाद की पंक्ति में 'काटि काटि दाहि दाबें छाती थरकत है'। शिवाजी ने कितनों को काट-काटकर, दाह कर दबा दिया, उनकी (शत्रु की) छाती धड़क रही है। बाद की दो पंक्तियों में मुगल सैनिकों की दुर्दशा का चित्र (शिवाजी के कोप का सामना करने से उत्पन्न) ध्वन्यात्मक शब्दों में हुआ है। 'रनभूमि लेटे' अर्थात् मुगल सैनिक रन भूमि में लेटे हुए हैं (शिवाजी ने उन्हें रनभूमि में लिटा दिया) 'वै चपेटे पठनेटे परे' वै का अर्थ रनभूमि में लेटे हुए वे। वे कौन? 'चपेटे पठनेटे परे' पठनेटे अर्थात् पठान

लोग किन्तु पठान को पठनेटे कहा गया है। साथ ही यह पठनेटे चपेटे हुए हैं। चपेटे हुए अर्थात् दबाए हुए, चपेट में आये हुए, लेटे हुए पठान हैं। पठान शब्द में पठानों की वीरता का बोध होगा किन्तु पठनेटे में उनकी वीरता का बोध नहीं होता। पठनेटे शब्द में उनके शूद्रत्व का बोध ही होता है। इसी तरह आगे 'रुधिर लपेटे मुगलेटे फरकत है' पंक्ति में खून से लथ-पथ मुगल सैनिकों के विवश होकर बिखरे हुए पड़े रहने का बोध है। इस तरह कवित्त में शिवाजी के क्रोध की अभिव्यक्ति शत्रु-सेना पर जिस रूप में होती है, उस रूप में दिखलाई गई है। कवि की अनुभूति एक लय में व्यक्त होती है।

दूसरे कवित्त में स्थिति दूसरी है, यहाँ पर प्रथम छः पंक्तियों में शत्रु कितना प्रबल है इसकी अभिव्यक्ति हुई है और अन्तिम दो पंक्तियों में जैसे प्रबल शत्रु की शिवाजी ने जो स्थिति कर दी उसका वर्णन किया है। प्रथम छः पंक्तियों का प्रवाह अलग है और बाद की दो पंक्तियों का प्रवाह दूसरा है। कौन मुगल? वे मुगल, जिन्होंने (१) बलख को बन्ध किया, खुरासानियों से वैर किया (२) पल भर में हब्शियों पर पादशाही स्थापित कर ली। (३) गोलकुण्डा के कुतुबशाहियों से घमासान युद्ध कर बेदर और कल्याण किला छीन लिया और जिनकी वीरता की प्रसिद्धि इन उपाख्यानों के कारण ख्यात हो रही है, जिनकी वीरता जगजाहिर है, जिन्होंने निजामशाही सत्ता को जेर कर दिया यों कहिये कि मटियामेट कर दिया और जिनके आगे (मुगलों के छल-बल के कारण) वीर बुन्देले भी नत हो गये। ऐसे मुगलों के देश को शिवाजी ने लूट लिया, उनकी (मुगलों की) फौज को कूटा। अब भी मुगल हाथ मल रहे हैं।

तीसरे कवित्त में छत्रपति शिवाजी शत्रु (औरंगजेब) की दृष्टि में कैसे थे? इसका वर्णन है, शत्रु यदि भयभीत है, तो नायक की वीरता अपने आप सिद्ध हो जाती है। इस कवित्त का प्रवाह दूसरे ही ढंग का है। शिवाजी की वीरता उनके विभिन्न कार्यों में व्यक्त हुई है, उस वीरता से शत्रु त्रस्त है। अतः शत्रु उससे अपनी सुरक्षा चाहता है। किन्तु यह सुरक्षा सहज सम्भव नहीं, एक दो नहीं अनेक उदाहरण औरंगजेब के सामने हैं, जिसमें सारी सावधानी के बावजूद शिवाजी ने मात दे दी थी। प्रस्तुत कवित्त में अन्तिम दो पंक्तियों का प्रवाह सब से अधिक महत्वपूर्ण है और ऊपर छः पंक्तियाँ उस प्रवाह के वेग का विस्तार है। "चौंकि चौंकि चकता कहत चहुँधा ते यारो, लेत रहौ खबरि कहाँ लौं सिवराज है।" औरंगजेब रात दिन सशंकित रहता है। वह चौंक चौंक कर अपने आस पास के मित्रों से कहता है कि शिवाजी की खबर रखना। प्रश्न होता है क्यों खबर रखना? इसका उत्तर कवित्त की प्रथम छः पंक्तियों में है। जैसे—'अफजलखानजू को मारो मयदान जानै' कैसे शिवाजी की खबर रखना? जिसने अफजलखान को मैदान में मार दिया (भेंट करते समय, सारी सावधानी के

बावजूद अफजलखान को खतम कर दिया) इस घटना का सम्बन्ध अन्तिम दो पंक्तियों से है। औरंगजेब क्यों चौंकता है? क्योंकि उसे शिवाजी से सम्बन्धित अफजलखान वाली घटना का स्मरण हो आता है। जिसने अफजलखान को मैदान में ही मार दिया, जिसने गोलकुण्डा और बीजापुर को अधिक भयभीत रखा है, फ्रांसीसियों और अंग्रेजों को जिसने मारा है, हब्शियों और फिरंगियों की जहाजें जिसने उलट दी हैं, जिसने देखते-देखते खान रुस्तम को जेर कर दिया और तो और सल्हेर के युद्ध की याद जिसका नाम लेते ही आ जाती है (सल्हेर के युद्ध में मुगलों के बड़े-बड़े सेनापति मारे गये थे) ऐसे शिवाजी से औरंगजेब भयभीत रहते हैं। चौंकि चौंकि चकता कहत,—यहाँ पर चौंकने की बात यह है कि शिवाजी का नाम सुनते ही, उनके सम्बन्ध में ऊपर लिखित घटनाओं के याद आ जाते ही औरंगजेब चौंक जाते हैं? चौंकि चौंकि अर्थात् एक बार नहीं, बार-बार चौंकते हैं। जब याद आ जाती है चौंक जाते हैं और जब-जब चौंकते हैं अपने उमरावों से मित्रों से कहते हैं। क्या कहते हैं? यही कि उसकी (शिवाजी की) खबर लेते रहना। 'कहाँ लौं सिवराज है?" शिवाजी इस समय कहाँ हैं? कहाँ तक आ गये हैं? आदि-आदि।

भूषण के काव्य में वीर रस के साथ-साथ अन्य रसों का वर्णन भी हुआ है। उनमें भयानक रस, रौद्र रस, अद्‌भुत रस और वीभत्स रस के नाम प्रधान रूप से लिए जा सकते हैं। ये सभी रस काव्य में वीर रस के सहायक बन कर ही आये हैं। शृंगार रस का विवेचन भूषण के काव्य में स्वतन्त्र रूप से हुआ है। उसका वीर रस से विशेष सम्बन्ध नहीं है। शान्त रस सम्बन्धी भूषण का एक ही कवित्त मिलता है। इनका विवेचन नीचे किया जा रहा है।

८. २. २. अन्य रस

८. २. २. १. भयानक रस: भूषण के काव्य में भयानक रस का वर्णन बड़े विस्तार से किया गया है। किन्तु यह काव्य के नायक के पक्ष में न होकर प्रतिनायक के पक्ष में हुआ है। भयानक रस के मूल में शिवाजी के प्रताप का वर्णन ही किया गया है। पौरुष से उत्पन्न प्रसिद्धि शत्रु को सन्तप्त रखती है। यही प्रताप है। इससे प्रतिपक्षी का उत्साह दबता है।

छत्रपति शिवाजी की नीति सहसा आक्रमण की थी। इस नीति के कारण उन्होंने बीजापुर को नीचा दिखाया, अफजलखान का बध किया, शाईस्तखाँ की दुर्दशा की एवं अन्य सरदारों को भी भयभीत रखा। इन घटनाओं के कारण शत्रु शिवाजी को शैतान का अवतार समझते थे। कोई भी स्थान उनके (शिवाजी के) आक्रमण से सुरक्षित नहीं समझा जाता था। शत्रु की स्त्रियाँ बेचारी बड़ी डरी-डरी रहती थीं। बहादुरखाँ की पत्नी कहती है :—

पीय पहारन पास न जाहु यौं तीय बहादुर कौं कहैं सोखैं।
कौन बच्यौ है नवाब तुम्हैं भनि भूषन भ्वैसिला भूप के रोखैं॥[१]

स्वयं सरदार और सेनापति भी बादशाह से प्रार्थना करते हुए कहते हैं :—

दच्छिन के नाह सों जिन चूर करि,
अवरंगसाह जीत कहाए न बावरे।[२]

दिल्ली के उमराव दक्षिण की सूबेदारी पाने से घबराते थे—

दच्छिन को सूबा पाइ दिल्ली के उजीर तजी,
उत्तर की आसा जीव-आसा एक संग ही।[३]

क्योंकि सबको अफजलखान, शाईस्तखान और बहलोलखान की स्थिति का पूरा ज्ञान था—

अफजल की अगत सायस्तखाँ की अपत,
बहलोल की विपत डरे उमराव हैं।[४]

उमराव तो मनसब छोड़ कर मक्का जाना उचित समझते थे—

पक्का मतो करिकै मलेच्छ मनसबदार,
मक्का के उतर उतरत दरियाव है।[५]

औरंगजेब को इसीलिए बार-बार दक्षिण के सूबेदार बदलने पड़े।

सूखत जानि सिवाजू के तेज तें पान से फेरत औरँग सूबा।[६]

स्वयं आलमपनाह औरंगजेब शिवाजी के भय से शंकित रहते थे—

चौंकि-चौंकि चकता कहत चहुँधा तें यारो,
लेत रहौ खबरि कहाँ लौ सिवराज है।[७]

इस तरह भूषण के काव्य में शिवाजी के आतंक का या प्रभाव का वर्णन बड़ा प्रभावोत्पादक और सजीव हुआ है। विपक्षियों के भय का वर्णन अप्रत्यक्ष रूप

---

१ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ७२**
२ **वही, छं० सं० २४०**
३ **वही, छन्द सं० १३७**
४ **वही, छन्द सं० १५६**
५ **वही, छन्द सं० १५६**
६ **वही, छन्द सं० ४६४**
७ **वही, छं० सं० ४३६**

से नायक के उत्साह को बढ़ाने वाला हुआ है। इससे नायक की वीरता प्रकट होती है। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि भयानक रस, वीर रस का सहायक बन कर ही काव्य में व्यक्त हुआ है। शत्रु की भयपूर्ण अवस्था का वर्णन कवि ने अनेक रूपों में किया है। शत्रु-स्त्रियों की दुर्दशा, उनका बिलखना एवं घबराए रहने का वर्णन सब इसी रस (भयानक रस) के अन्तर्गत माने जा सकते हैं। दो उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं : –

(१) एकै भाजि सकत न चौकरी भुलाने ऐसे,
जैसे मृग-जूथ दपटत मृगराज के।
भूषन भनत एकै पच्छनि थकित भए,
पच्छी लौं सटपटात झपटत बाज के।
एकै सरजा के परताप यौं जरत,
तिन-पुंज ज्यों बरत परे मुख-दौ-दराज के।
मीरजादे मुरि जात खानजादे खपि जात,
साहजादे सूखि जात दौरे सिवराज के।[1]

(२) काहू के सुने तें जाही और चाहैं ताही,
ओर इकटक घरी चारिक चहत है।
कहे तें कहत बात कहे ते पियत खात,
भूषन भनत ऊँची साँसन जहत है।
पौढ़े हैं तो पौढ़े बैठे बैठे खरे खरे,
हम को हैं कहा करत यौं ज्ञान न गहत है।
साहि के सपूत सिव साहि तव बैर इमि,
साहि सब रातौ दिन सोचत रहत है।[2]

दोनों कवित्तों में भयपूर्ण अवस्था का वर्णन है। भयपूर्ण अवस्था का यह वर्णन, शत्रु ने जैसा अनुभव किया या भय की भावना उनमें जैसे व्याप्त थी, उसी तरह किया गया है।

प्रथम कवित्त में शिवाजी जैसे ही शत्रु पर झपटते थे या शत्रु की ओर दौड़ते थे या शत्रु पर आक्रमण करते थे, उस समय शत्रु कितना भयभीत हो जाता था उसका वर्णन है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भय के दो रूप बतलाए हैं (१) साध्य रूप (२) असाध्य रूप। साध्य प्रयत्न द्वारा दूर किया जा सकता है और असाध्य किसी प्रयत्न द्वारा भी असम्भव प्रतीत होता है।[3] इस कवित्त

---

1. भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द संख्या ४८६
2. वही, छं० सं० ३९०
3. चिन्तामणि भाग १, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १२४

में भय का वर्णन असाध्य रूप में ही हुआ है। शुक्लजी ने लिखा है—"क्लेश के कारण ज्ञान होने पर उसकी अनिवार्यता का निश्चय अपनी विवशता या अक्षमता की अनुभूति के कारण होता है। यदि यह अनुभूति कठिनाइयों और आपत्तियों को दूर करने के अनभ्यास या साहस के अभाव के कारण होती है, तो मनुष्य स्तम्भित हो जाता है और उसके हाथ पाँव नहीं हिल सकते।"[1] इस कवित्त की भयपूर्ण भावना इसी ढंग की है। 'एकै भाजिय सकत न चौकरी भुलाने ऐसे, जैसे मृग-जूथ दपटत मृगराज के' इन दो पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार होगा :— मृगराज के दपटते ही मृगसमूह अपनी चौकड़ी मारना भूल जाता है। उसी तरह शिवाजी के झपटते ही कुछ लोगों की (एक-एक की, किसी की) अवस्था ऐसे हो गई कि वे भागना भूल गए (जहाँ थे वहीं स्तम्भित रह गये)। हिरन बहुत तेज दौड़ता है। वह चारों पाँवों से एक साथ उछलते हुए दौड़ता है। इसी को चौकड़ी मारना कहते हैं। शत्रु (औरंगजेब के पक्ष के सैनिक) दौड़ने में हिरन से कम नहीं थे। मृगराज की गन्ध लगते ही हिरन हवा हो जाते हैं, उसी तरह शिवाजी के आगमन की झलक पाते ही शत्रु भी फरार हो जाते थे किन्तु छत्रपति शिवाजी ऐसे झपटे कि शत्रु अपने भागने की शक्ति (चौकड़ी मारने की, तेज दौड़ने की) भूल गये। भय के कारण उन्हें अपनी शक्ति का विस्मरण हुआ, विवश होकर उस हिरन की तरह खड़ा रहना पड़ा जो सिंह का शिकार बन जाता है। भय की अवस्था का दूसरा चित्र अगली पंक्तियों में है। बाज के झपटते ही छोटे पक्षी उड़ना भूल जाते हैं, वैसे ही कुछ लोग पक्षी की तरह उड़ कर भाग जाना चाहते रहे हों किन्तु शिवाजी तो बाज बने हुए थे। किसी को उड़ने का अवसर वे नहीं दे सकते थे। बाज की पकड़ में आया हुआ पक्षी उड़ना भूलकर सटपटाते रहता है। यों कहिए कि विवशता में पंख फड़फड़ाता रहता है। वैसे ही भय के कारण कुछ लोग बिल-बिलाकर रह गये : कुछ लोग शिवाजी के प्रताप से जलने लगे। (पौरुष से उत्पन्न प्रसिद्धि प्रताप है) ऐसे जलने लगे जैसे तृण समूह दौ के (तेज अग्नि के) मुख पर पड़ने से जलने लगता है। यह जलन की चरम सीमा है। शत्रु का जलना यहाँ वाच्यार्थ में न लेकर लक्षणार्थ में लेना चाहिए। शत्रु किससे जल रहे हैं? शिवाजी के प्रताप से जल रहे हैं, यह उत्तर होगा। अर्थात् दावाग्नि की ज्वाला में जलाने की जो शक्ति है, वही शक्ति शिवाजी के प्रताप में है। प्रताप इतना प्रज्वलित है, इतना प्रकाशमान है, इतना शक्तिशाली है कि इसके चपेट में जो आयेगा वह खाक हो जायगा। शत्रु इस आग के सम्मुख तृणवत् है। भस्म होते देर नहीं लगती। सार बात यह कि शिवाजी का प्रताप दावाग्नि सदृश है और शत्रु का तृणवत् है, जिनमें द्वितीय प्रथम का शिकार हो जाता है। भय की स्थिति का इसी से अनुमान लगाया

---

[1] **चिन्तामणि, भाग १, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १२४, १२५**

जा सकता है कि शत्रु को जैसे थे और जिस स्थिति में थे वैसी स्थिति में तृणवत् जल जाना पड़ा। आगे की दो पंक्तियाँ और भी महत्वपूर्ण हैं। शत्रु कितने निरर्थक और कमजोर सिद्ध हो रहे हैं ? यही इनमें कहा गया है। 'मीरजादे मुरि जात', 'खानजादे खपि जात' और 'साहजादे सूखि जात' ये तीनों कवित्त के प्रवाह में भाव सौन्दर्य को बढ़ाने वाले हैं। ऐसी अवस्था क्यों होती है ? उत्तर है—'दौरे सिवराज के' शिवाजी के दौड़कर चढ़ाई करने से मीरजादे अपनी मीरता भूल जाते हैं और मुड़ने के लिए विवश हो जाते हैं (ध्वन्यात्मक सौन्दर्य तो है ही साथ ही अर्थ सौन्दर्य भी है) मीर प्रधान अधिकारी को कहा जाता है। मीर अमीर (सामन्त) का लघु रूप है। मीर के पुत्र मीरजादे हुए और ये मीरजादे शिवाजी के आगे मीरता भूल जाते हैं। अधिकारी का पुत्र होने पर भी अधिकारों से वंचित है या विवश है। उन्हें चुपचाप मुड़ना पड़ रहा है। इसी तरह 'खानजादे खप रहे हैं' अर्थात् खानों के (मुगलों के उमरावों के पुत्र) पुत्र खप रहे हैं और शाहजादे सूख रहे हैं, बादशाह के पुत्र बादशाहत भूल गए। सार बात यह है कि साधारण सैनिक से लेकर मीरजादे, खानजादे और शाहजादे तक सभी शिवाजी से भयभीत हैं। यह भय की अवस्था ऐसी है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने आत्म-विश्वास को खो चुका है और अपनी रक्षा में असमर्थता का अनुभव कर स्तम्भित रह गया है।

दूसरे कवित्त में स्वयं बादशाह (औरंगजेब) के भयभीत रहने का वर्णन है। भयपूर्ण अवस्था में बादशाह जो अनुभव करते रहे हों वही कहा गया है यहाँ भी भय के असाध्य रूप का वर्णन है। बादशाह स्वयं अपना नियमित कार्य भी ढंग से कर पाने में असमर्थ हैं 'काहू के सुने तें' अर्थात् किसी के सुनने से ही औरंगजेब का ध्यान बँटता है और वह अपना कार्य करता है और वह भी उतनी ही देर तक जब तक उसका ध्यान आकर्षित किया जाता है। यदि उसे अपने आप पर छोड़ दिया जाए तो वह जो कुछ करता है वही करते रह जाता है। 'कहे तें कहत बात, कहे ते पियत खात' बात करने के लिए कहने से बात करते हैं और खाने पीने के लिए कहने से खान-पान करते हैं। अन्यथा अपनी अवस्था में तो ऊँची ऊँची साँस लेते रहते हैं (भय की अवस्था में साँस चलती रही है)। लेटे हैं तो लेटे हुए हैं, बैठे हैं तो बैठे हुए हैं और इसी तरह खड़े हैं तो खड़े हुए हैं। वे क्या कर रहे हैं, इसका उन्हें बिलकुल ज्ञान नहीं है। भूषण कवि का कहना है कि शिवाजी के बैरके कारण बादशाह की स्थिति बड़ी विचित्र हो गई है। उन्हें रात दिन चिन्तित रहना पड़ रहा है।

इस तरह भयानक रस का वर्णन काव्य में बड़े विस्तार से हुआ है, किन्तु जहाँ भी हुआ है वहाँ अप्रत्यक्ष रूप में शिवाजी की वीरता को सिद्ध करने के हेतु ही हुआ है। मूलरस वीर रस ही है।

८. २. २. २. रौद्र रस : प्रतिनायक के अत्याचारों को देख कर नायक का क्रोधित होना स्वाभाविक है। अतः ऐसे प्रसंग जहाँ भी आए हैं वहाँ नायक का चित्र रौद्र रूप में खींचा गया है। अभी ऊपर औरंगजेब की भयभीत अवस्था का उल्लेख किया गया। अब शिवाजी के रौद्र रूप को देखा जाय। क्रोध की सब से बड़ी विशेषता यह है कि दबाए दब नहीं सकता और जब तक क्रोध रहता है तब तक क्रोध जिस पर भी होता है, उस पर आक्रामक की स्थिति में होता है। यों कहिए कि क्रोध तत्काल प्रतिक्रिया के लिए उतावला हो जाता है। भयपूर्ण अवस्था में अपनी शक्ति में अविश्वास होता है, यहाँ तक कि जो शक्ति होती है, वह भी जाती रहती है किन्तु क्रोध की अवस्था में सारी शक्तियाँ जाग जाती हैं। आत्मविश्वास बढ़ा हुआ होता है। क्रोध अपने चरम रूप में अपनी पूरी शक्तियों का उपयोग करता है। यहाँ तक कि प्राणों का खतरा मोल ले सकता है। इस दृष्टि से शिवाजी के क्रोध का उदाहरण नीचे दिया जा रहा है।

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो छः-हजारिन के नियरे।
जानि गैरमिसिल गुसीले गुसा धारि मन,
कीन्हो ना सलाम न बचन बोले सियरे।
भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यौ,
सारी पातसाही के उड़ाय गए जियरे।
तमक तें लाल मुख सिवा को निरखि भए,
स्याहमुख नौरंग सिपाह मुख पियरे।[1]

प्रसंग शिवाजी-औरंगजेब भेंट का है। छत्रपति शिवाजी एक राजा होने के नाते भेंट के समय बादशाह से समान स्तर का व्यवहार चाहते थे। किन्तु बादशाह ने उनके साथ समुचित व्यवहार नहीं किया। उन्हें छः-हजारी मनसबदारी की कतार में खड़ा रहने के लिए कह दिया गया। छत्रपति इस अपमान को भला कैसे सह सकते थे ? यह बात उनकी प्रतिष्ठा के विपरीत थी। भूषण की इस सम्बन्ध में पंक्ति इस प्रकार है—'सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग' छत्रपति सब लोगों से ऊपर बैठने के योग्य थे। दरबार में उन्हें अन्य दरबारियों के स्तर पर नहीं बल्कि एक राजा होने के नाते उच्चासन (जो एक राजा दूसरे राजा को दे सकता है, समान स्तर का आसन) मिलना चाहिए था। ऐसे सम्मान पाने के योग्य छत्रपति को औरंगजेब ने 'ताहि खरो कियो छे हजारिन के नियरे'। इस अपमान को शिवाजी कैसे सह सकते थे ? 'जानि गैरमिसिल गुसीले गुसा धारि मन' उनके साथ अनुचित व्यवहार हुआ है, यह वे जान गये। इस अपमान को पी जाना उन्हें अच्छा नहीं

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४४३**

लगा। उन्हें तत्काल क्रोध आ गया। 'कीन्हो ना सलाम न वचन बोले सियरे' (यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि शिवाजी चारों ओर से शत्रु से घिरे हुए हैं। शत्रु के दरबार में हैं। अपनी सुरक्षा खतरे में है, ऐसा अनुभव कर रहे हैं।) शिवाजी ने स्थिति का अध्ययन किया। स्वाभिमान का भाव उनमें जागा और इसीलिए जब बादशाह की ओर से उन्हें उचित सम्मान नहीं मिला तो उन्होंने भी नियमतः सम्मानार्थ न सलाम किया (बादशाह को) और न ही शान्त शब्दों में कुछ कहा। यों कहिए बादशाह के भरे दरबार में बादशाह का (अपमान के उत्तर में) अपमान कर दिया। उनका (शिवाजी का) क्रोध उस समय देखते ही बनता था। 'भूषन भनत महावीर बलकन लाग्यौ' भूषण का कहना है कि उस समय महावीर (छत्रपति असाधारण वीर थे, शत्रु की दाढ़ में होने पर भी शत्रु को मात देने में समर्थ थे।) छत्रपति शिवाजी को क्रोध आ गया। इस क्रोध में उन्होंने वीरोचित गर्जना की। महावीर बलकने लगे। उनके क्रोध का परिणाम क्या हुआ? 'सारी पातसाही के उड़ाय गए जियरे'। यहाँ 'सारी पातसाही' का अर्थ है औरंगजेब (जो स्वयं पादशाह थे या बादशाह थे) एवं उसके समर्थक सभी दरबारी (जो उस समय दरबार में उपस्थित थे) स्वयं बादशाह चकित रह गया कि छत्रपति उसी के दरबार में उसका अनादर करे। दरबार में उपस्थित तो हो किन्तु शाही कायदे को भूल कर सलाम न करे। औरंगजेब के लिए यह अनोखा अनुभव था। साथ ही दरबारियों ने भी अब तक दरबार में ऐसा उदाहरण नहीं देखा था। अतः जब शिवाजी ने ऐसा किया तो सब दंग रह गए। (बादशाह एवं उसके सभी दरबारी) दंग ही नहीं रह गए (पहली प्रतिक्रिया दंग रहने की रही होगी) बल्कि यों कहिए कि सबका होश उड़ गया। अगली दो पंक्तियों में दरबार की स्तब्धता एवं शिवाजी, औरंगजेब तथा अन्य दरबारियों तथा सिपाहियों के मुख के भावों को कवि ने बड़े कौशल से व्यक्त किया है। शिवाजी का मुख उस समय क्रोध से तमतमा रहा था। क्रोध के कारण लाल हो रहा था। (अपनी सीमा में रह कर क्रोध करना और बात है और शत्रु की सीमा में रहकर क्रोध करना दूसरी बात है। शिवाजी के क्रोध की प्रशंसा इसी बात में है कि वे शत्रु की सीमा में रह कर क्रोध कर रहे हैं) इसकी प्रतिक्रिया बादशाह पर यह हुई कि अपमान से उसका मुख स्याह (काला) हो गया। साथ ही सिपाही लोग (जो बादशाह की सुरक्षा के लिए या आज्ञापालनार्थ उपस्थित थे) भी इस दृश्य को देखकर भौंचक्के रह गए, उनका मुख पीला हो गया। भूषण की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

> तमक तें लाल मुख सिवा को निरखि भए,
> स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे।

इसी तरह रौद्र रस के अन्य उदाहरण मिल सकते हैं। एक दो उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :

(१) बैर कियौ सिव चाहत हो तब लौ अरि बाह्य कटार कठैठौ।
यौं ही मलेच्छहि छोड़ै नहीं सरजा मन तापर रोस में पैठौ।
भूषन क्यौं अफजल्ल बचै अटपाउ कै सिंह को पाउ उमैठौ।
बीछू के घाउ घुक्यौई धराकहि तापर धोप-धका धरि बैठौ॥[1]

(२) कोप करि चढ़यौ महाराज सिवराज वीर,
धौंसा की धुकार तैं पहार दरकत है।[2]

इनमें 'कोप करि चढ़यौ' वाले कवित्त का अर्थ पीछे वीर रस वाले प्रसंग में लिख दिया गया है। ऊपर के सवैये का अर्थ विस्तार भय से नहीं लिखा जा रहा है। रौद्र रस का वर्णन जहाँ भी हुआ है, वह नायक के पक्ष में ही है और इससे नायक के साहस का परिचय मिलता है। रौद्र रस काव्य का मूल रस नहीं है। वह वीर रस को पुष्ट करने के लिए ही आया है।

८. २. २. ३. अद्भुत रस : भूषण के नायक ने कई आश्चर्यजनक कार्य किये हैं। उनके इस प्रकार के कार्यों से स्वयं शत्रु भयभीत है और रात-दिन इस चिन्ता में मग्न है कि किस प्रकार से अपनी रक्षा (शिवाजी से) करें ? यहाँ तक कि शिवाजी से रक्षणार्थ किये गये उपाय उन्हें निरर्थक जान पड़ते हैं। उन्हें शिवाजी के कार्य विचित्र एवं आश्चर्य में डालने वाले लगते हैं। प्रश्न है आश्चर्य किस बात का होता है ? आश्चर्य इस बात का कि शिवाजी के कारनामे शत्रु के तर्क से परे हैं। शिवाजी ऐसे कार्य करते हैं कि शत्रु उसका अनुमान भी नहीं कर सकते। परिणाम को देखकर ही कार्य समझ में आता है। कार्य को देखकर परिणाम की कल्पना पहले से नहीं की जा सकती। शिवाजी किस समय क्या करेंगे इसका अनुमान लगाना शत्रु के लिए बड़ा कठिन था ऐसी स्थिति में शत्रु शिवाजी को आश्चर्य चकित दृष्टि से देखते रह जाता था। इस सम्बन्ध में सब से अधिक आश्चर्य में डालने वाली घटना शिवाजी का आगरे से भाग जाने की घटना है। कड़ा पहरा होने पर भी शिवाजी भाग ही गए। उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :

(१) घिरे रहे घाट और बाट सब घिरे रहे,
बरस दिना की गैल छिन माँहि छ्वै गयो।
ठौर ठौर चौकी ठाड़ी रही असवारन की,
मीर उमरावन के बीच ह्वै चलै गयो।

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २३२**

[2] **वही, छन्द सं० ४५१**

देखे में न आयो ऐसे कौन जाने कैसे गयो,
दिल्ली कर मीड़ैं कर झारत कितै गयो।
सारी पातसाही के सिपाह सब सेवा सेवा करैं,
पर्‌यौ रह्यौ पलँग परेवा सेवा ह्वै गयो ॥[१]

(२) पौन हौ कि पंछी हौ कि गुटका कि गौन ही कि,
देखौ कौन भाँति गयौ करामात सेवा की।[२]

८. २. २. ४. **वीभत्स रस** : वीर रस के प्रसंगों में युद्ध का वर्णन यत्र-तत्र हुआ है। इनमें युद्ध-क्षेत्र के वर्णन में कालिका और भूत, भैरव का वर्णन भी हुआ है, साथ ही युद्धस्थल में पड़े हुए शवों के वर्णन में वीभत्स रस का ही वर्णन है। उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :—

(१) भूषन भनत भकरुंड रहे रुंड-मुंड,
भव के भुसुंड तुंड लोहू सों भरे रहे।
कीन्हों जस-पाठ हर पठनेटे ठाट पर,
काठ लौं निहारे कोस साठ लौं डरे रहे ॥[३]

(२) रनभूमि लेटे वै चपेटे पठनेटे परे,
रुधिर लपेटे मुगलेटे फरकत है।[४]

इस तरह वीर रस के साथ-साथ प्रमुख रूप से भयानक रस, रौद्र रस, अद्‌भुत रस एवं वीभत्स रस का वर्णन मिलता है। वीर रस के अतिरिक्त अन्य रस जो भी आये हैं, वे वीर रस के सहायक होकर ही आये हैं। शृंगार रस का वर्णन भूषण ने स्वतन्त्र रूप से किया है। वह रीतिकालीन कवियों की तरह नायिका भेद से सम्बन्धित हैं। इसका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

८. २. २. ५. **शृङ्गार रस** : रीतिकालीन कविता में इसी रस का विस्तार मिलता है। भूषण के भी प्रकीर्ण रूप में ४० छन्द मिलते हैं। इनमें संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं के प्रसंगानुकूल चित्र कवि ने खींचे हैं। भूषण ने वीर रस के लिए जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया उससे यहाँ की भाषा भिन्न हो गई है। देव, पद्‌माकर, मतिराम आदि कवियों ने शृंगार रस के वर्णन में जिस प्रकार की भाषा का व्यवहार किया है, प्रायः उसी तरह की भाषा भूषण ने भी शृंगार

---

[१] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४७६**
[२] **वही, छन्द सं० ५०१**
[३] **वही, छन्द सं० ५१६**
[४] **वही, छन्द सं० ४५१**

रस की कविता में अपनाई है। संयोग एवं वियोग दोनों अवस्थाओं के एक-एक उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :

संयोग पक्ष : दूरि चितै जहाँ मित्र कौ आनन कानन पास धर्यो बिबि पानी।
ऊभी तवै भुजमूल भवै कवि भूषन आँगन में अंगरानी।
अंग मरोरनि रंगभरी त्रिबली उवरीन अली पहिचानी।
नेह दिखाय बिचच्छन कौं गहि गाढ़े सखी निज अंक में आनी ॥[1]

(प्रस्तुत सवैये में बिहारी के दोहों का सा भाव है। दूर नायक को देखकर सखि से चुराकर नायिका ने नायक को त्रिबली दिखा ही दी। दिखाने में सहज भाव में अंगड़ाई ली गई उस में भावसौंदर्य देखा जा सकता है। मन का भाव शरीर में गतिशील हो जाता है। इस भाव को पहचानने में सखि कैसे चूक सकती थी ? उसने पहचान ही लिया नायिका ने अपना स्नेह जना दिया।)

वियोग पक्ष : बैठी गृहद्वार बारबारन बिसारति है,
बरस अनेक एक बासर गनावती।
आसन सुहात है बासन तमोल चोवा,
बोलति न बैन नहीं भूषन बनावती।
प्रेम के जनाएँ बहुर्यौं बिसेष पैंयै बलि,
बस करि बालम बिरंचि कौं मनावती।
कहै कवि भूषन बिहाल तन कीने बहु,
बाला बिरहानल की ज्वाला सी जनावती।[2]

(प्रस्तुत कवित्त में विरह में तड़पती नायिका का वर्णन किया है। नायिका को एक बासर काटना बरस काटने जैसे लग रहा है। न उसे आसन अच्छा लगता है न वस्त्र और न ही अन्य प्रसाधन के साधन। सारा समय बालम को कैसे बस में किया जाय (जिससे कि उसे वियोग न सहना पड़े) इसी चिन्ता में और ब्रह्मा को मनाने में बीत रहा है। बाला बिरहानल में ज्वाला सी हो रही है।)

शृंगार रस के जो छन्द प्राप्त हैं, उनमें संयोग पक्ष का वर्णन विरह की अपेक्षा अच्छे हैं। संयोग पक्ष के छन्द बड़े स्वाभाविक एवं भावों के उद्‌घाटन में अधिक अच्छे बन पड़े हैं। संयोग पक्ष का एक और उदाहरण देकर इस प्रसंग को समाप्त किया जाता है :—

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५६२**

[2] **वही, छन्द सं० ५६८**

अति सौंध भरी सुखमा सु खरी मुख ऊपर आइ रही अलकैं।
कवि भूषन अंग नवीन बिराजत मोतिन माल हिये झलकैं॥
उन दोउन की मनसा मन सी नित होत नई, ललना ललकैं।
भरि भाजन बाहर जात मनौ मुसुकानि किधौं छबि की छलकैं॥[1]

(प्रस्तुत सवैये में नायिका के सहज सुन्दर मुख का चित्र है। शोभा उसके मुस्कराने की है।)

८. २. २. ६ **रस विरोध एवं अविरोध :** साहित्य ग्रन्थों में रस विवेचन एवं अविरोध का उल्लेख हुआ है। वीर रस के साथ जिन रसों का विरोध नहीं है, वे हैं—शृंगार, अद्‌भुत और रौद्र।[2] अर्थात् वीर रस के साथ शृंगार, अद्‌भुत और रौद्र रस का वर्णन हो सकता है। साहित्य दर्पण ने वीर को शृंगार रस का विरोधी माना है।[3] विश्वनाथ ने भयानक और शान्त के साथ वीर का विरोध ठहराया है।[4] किन्तु पण्डितराज ने केवल भयानक के साथ।[5]

भूषण के काव्य में मूल रस वीर रस ही है। शास्त्रीय भाषा में भूषण के काव्य का अंगी रस वीर रस ही है। अंगी रस का प्रधान लक्षण है—बहुव्याप्ति।[6] अन्य सहायक लक्षणों में डाक्टर नगेन्द्र ने लिखा है—"मुख्यपात्र की—पुरुष अथवा नारी, जो भी कथा का नयन करे (भूषण के काव्य में मुख्य पात्र शिवाजी हैं और वे ही कथा का नयन कर रहे हैं।) उसकी—मूलवृत्ति का प्रतिफलन रहता है। तत्त्व-रूप में प्रबन्ध काव्य (भूषण का काव्य मुक्तक काव्य है किन्तु एक ही नायक का प्रधान रूप से चित्रण होने के नाते प्रबन्ध काव्य के गुण भी उसमें हैं। कम से कम नायक प्रबन्ध काव्यों के नायक के समान है।) का सम्पूर्ण विस्तार नायक की जीवन साधना का ही प्रसार होता है। जिस प्रकार जीवन साधना के दो पक्ष हैं—कर्म और भाव, इसी प्रकार कथानक के भी दो पक्ष हैं—घटना और भाव, और इन दोनों पक्षों का संचालन करती है नायक के चरित्र की मूलवृत्ति। यही मूलवृत्ति कर्म-पक्ष में चरम घटना और फलागम का निर्धारण करती है और भाव पक्ष में मूल भाव या अंगी रस का।"[7] एक तीसरा लक्षण यह बतलाया गया है—"अंगी

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४५६**
[2] **हिन्दी रस गंगाधर, पृ० १११**
[3] **साहित्य दर्पण, (विमला व्याख्या), तृतीय परिच्छेद, २५४, २५५, २५६**
[4] **वही, तृतीय परिच्छेद, २५४, २५५, २५६**
[5] **हिन्दी रसगंगाधर, पृ० १११**
[6] **रस सिद्धान्त, डाक्टर नगेन्द्र, पृ० २८७**
[7] **वही, पृ० २८७**

रस मूल उद्देश्य या फलागम का आस्वाद रूप होता है, या दूसरे शब्दों में, सारभूत प्रभाव का अभिव्यंजक होता है।[1] अंगी रस के बतलाये गये लक्षणों के आधार पर भूषण के काव्य में वीर रस ही अंगी रस होगा। वीर रस के साथ शृंगार रस नहीं मिलता। अतः साहित्यदर्पणकार के कथनानुसार वीर और शृंगार का विरोध हुआ है। भयानक रस और वीर रस में भी विरोध माना गया है। भूषण के काव्य में भयानक रस का वर्णन विस्तार से हुआ है किन्तु यह नायक के पक्ष में नहीं हुआ है, यह प्रतिनायक के पक्ष में (शिवाजी के शत्रु के पक्ष में) हुआ है। अतः यह वीर रस को पुष्ट करने में सहायक ही हुआ है। रौद्र और अद्भुत के साथ वीर रस का विरोध नहीं है अतः इनका वर्णन प्रसंगानुकूल हुआ है।

८.३. काव्य का दृष्टिकोण या मूल्यांकन

काव्य का मूल्यांकन करना बड़ा कठिन कार्य है किन्तु यदि इस प्रश्न पर विचार ही करना पड़ा तो निश्चित ही हमें काव्य में निहित भावनाओं पर विचार करना होगा। यह देखना होगा कि काव्य में निहित भावनाओं का जीवन से क्या सम्बन्ध है ? उन भावनाओं की युग के सन्दर्भ में, कवि के सन्दर्भ में एवं काव्य में आये पात्रों के सन्दर्भ में विवेचना करनी होगी। एक प्रकार से मूल्यांकन करते समय कवि के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास किया जायगा। सार बात यह है कि कवि का आशय समझा जाय और उस आशय में निहित उसके नैतिक आग्रह को जाना जाय। इसी से काव्य का मूल्यांकन किया जा सकता है।

काव्य की महत्ता काव्य में निहित मूल्य भावों के आधार पर ही जानी जायगी। मराठी के प्रसिद्ध समीक्षक बा० सी० मर्ढेकर के शब्दों में—"स्थूलतः मूल्यभाव यह तत् तत् मानवी व्यवहार क्षेत्रों में संगति उत्पन्न करने वाले तत्त्व रहते हैं। इन विविध मूल्यभावों में से कुछ की व्याप्ति संकुचित होती है, साथ ही सार्थक्य साधनात्मक होती है, तो कुछ की व्याप्ति कैवल्यात्मक (Absolute) एवं सार्थक्य स्वयं सिद्ध होती है। कुछ घटनाओं का मूल्य भाव उन घटनाओं से कुछ और, उन घटनाओं के व्यतिरिक्त, साध्य साधन में प्रतीत होता है और इन साधन साध्य सम्बन्ध के बाहर वह मूल्यभाव व्यर्थ सिद्ध होता है। विपरीत इसके कैवल्यपूर्ण मूल्यभाव घटनाओं के साधनों पर आधारित नहीं रहता और उनकी सार्थकता उन घटनाओं के बाहर रहने वाले साधनों पर अवलम्बित न रहकर उन घटनाओं के परिपाक में फलद्रूप रहता है।"[2] अब यदि इस दृष्टि से भूषण के काव्य पर विचार

---

[1] रस सिद्धान्त, डा० नगेन्द्र, पृ० २८८

[2] सौन्दर्य आणि साहित्य, बा० सी० मर्ढेकर, पृ० १६४ एवं १६५ (दूसरा संस्करण, १९६०)

किया जाय तो एक बात स्पष्ट है कि भूषण के काव्य में कैवल्यपूर्ण मूल्यभाव नहीं हैं। साधन एवं साध्य के बाहर मूल्य भाव खोजना व्यर्थ होगा। भूषण के काव्य में जो मूल्यभाव हैं, वे साधनात्मक कोटि के हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में भूषण का काव्य साधनावस्था का काव्य है, सिद्धावस्था का नहीं, प्रयत्न पक्ष का काव्य है, उपभोग पक्ष का नहीं।[१]

प्रश्न है भूषण का काव्य साधनात्मक कैसे ? साथ ही साध्य क्या है ? और इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध दिखलाया गया है ? इनके उत्तर में कवि की अनुभूति का नैतिक आग्रह क्या है ? मर्ढ़ेकर के शब्दों में कुछ मूल्यभावों की व्याप्ति संकुचित और साधनात्मक होती है, इससे भूषण के काव्य का सम्बन्ध क्या है ? आदि-आदि। इन प्रश्नों के उत्तर नीचे दिये जा रहे हैं।

भूषण के काव्य में प्रधान रूप से छत्रपति शिवाजी के कर्मों की व्याख्या तत्कालीन राष्ट्रीय सन्दर्भ में की गई है। अतः काव्य के साधनात्मक पक्ष पर विचार करते समय काव्य के नायक के साधनात्मक रूप पर विचार करना आवश्यक होगा। छत्रपति शिवाजी के कर्मों पर भूषण कवि रीझता है और उन कर्मों को नैतिक समर्थन देते हुए अपने काव्य को उन्हीं के लिए समर्पित करता है। कहा भी है—

> जे सोहात सिवराज को ते कवित्त रसमूल।
> जे परमेस्वर पै चढ़ै, तेई आछे फूल ॥[२]

छत्रपति शिवाजी का जीवन कर्मठ जीवन है। उनका सारा समय राज्य की स्थापना में बीता। एक साधारण जागीरदार के पुत्र होने पर भी उन्होंने एक ऐसे राज्य की नींव डाली जो मुगलों के बाद भारतवर्ष में सब से बड़ा राज्य रहा। यही नहीं अँग्रेजों को अन्तिम रूप में इसी शक्ति का सामना करना पड़ा। मराठों की पराजय के बाद ही ब्रिटिश सत्ता भारत में स्थापित हो सकी। उनके सम्बन्ध में ग्राण्ट डफ ने लिखा है—"शिवाजी वास्तव में एक महान् व्यक्ति थे, अपनी विलक्षण प्रतिभा एवं बुद्धिमत्तापूर्ण कार्यों से उन्होंने इतिहास में अपना सर्वोच्च स्थान बना लिया है। उनके चरित्र की रूपरेखा बनाने के लिए हमें उनके उत्थान की अल्प कड़ियों से चलना पड़ेगा। [भूषण कवि ने उन अल्प कड़ियों को जोड़ने में सहायता दी है और जो काम इतिहास नहीं कर सकता वह काम भूषण के काव्य ने किया है। क्योंकि इतिहास में शिवाजी के सम्बन्ध में चरित्र का भावमूलक रेखांकन सम्भव नहीं होता। काव्य में पात्र को—ऐतिहासिक पात्र को भी जीवन का अंग बनाकर, पात्र के चरित्र से सम्बन्धित भावनाओं का उद्घाटन किया जाता है। साथ ही यह

---

१ **रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५६, ५७ और ५८ देखिए**

२ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३८७**

भावना काव्य में सदैव के लिए सुरक्षित हो जाती है और सजग प्रेरणा का स्रोत बनी रहती है।] उन्होंने अपनी प्रगति का केन्द्र बनाया, जंगली इलाके के अर्धनग्न मावलियों से, जहाँ उन्होंने अपने आपको उनकी सहायता से सर्वप्रथम स्वत: प्रशासक बनने के स्वप्न देखे। परिस्थितियों की जटिलता उन्हें विचलित न कर सकी—विपरीत शक्तियों को अपने लिए सुविधाजनक बनाने में उनकी कुशलता देखते ही बनती है। असभ्य मावलियों में उत्साह कूट-कूट कर भर कर अपने को शक्तिशाली बनाने का जो तरीका उन्होंने खोजा, वह नया था और उस परिस्थिति के अत्यन्त अनुकूल था। हमें उनके अत्यन्त युद्धरत जीवन में भी उनके प्रशासनिक विभागों और उनके प्रधानों का अध्ययन करना चाहिये, जो उनकी सफलता के प्रमाण हैं। अपने को विपत्तियों से बचाये रखने के लिए उनकी कौशल भरी नीतियाँ हमारे सामने हैं, उन्होंने चाहे खुले मैदान को अपने अधिकार में करने की योजना बनाई हो, या किसी किले की, अपने सौ सवारों के नेतृत्व को सँभाला हो या पूरे देश का, उनमें कहीं भी कमी नहीं दिखाई पड़ती, उनकी आर्थिक पटुता किसी भी राजनैतिक नेता के लिए अनुकरण की वस्तु है, जो उनके चरित्र की एक महान् सफलता का द्योतक है। अपने जीवन की बड़ी से बड़ी लूट भी उनको अपने बनाये हुए नियमों से विलग न कर सकी।''[१] ग्राण्ट डफ की ये पंक्तियाँ छत्रपति के कर्मठ जीवन एवं उनके राजनैतिक व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाली हैं। छत्रपति शिवाजी ने साधना ही की है। उनका आनन्द साधनात्मक आनन्द है। शुक्लजी के शब्दों में वे प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले हैं। उन्होंने अपने जीवन काल में शान्ति का समय कम बिताया। उपभोग पक्ष की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। उपभोग के लिए उनके पास अवकाश कहाँ था? निरन्तर कर्म में रत रहने पर भी वे कर्म से विमुख नहीं हुए। कर्म का आनन्द साधनात्मक ही होता है और ऐसे कर्मों की व्याख्या या ऐसे कर्मों का सौन्दर्य कवि प्रकट करते हुए कवि साधनात्मक पक्ष पर ही प्रकाश डालता है। इसीलिए भूषण का काव्य साधनात्मक कोटि का है।

इस साधना का साध्य वही है, जो शिवाजी के जीवन का लक्ष्य था और शिवाजी की सफलता के परिणाम से उस युग की जनता पर जो प्रभाव पड़ा और आज भी शिवाजी का नाम जिस लिए लिया जाता है, वे सब शिवाजी के साध्य पर प्रकाश डालने वाले हैं। भूषण के इस सम्बन्ध में कहे गये कथन उदाहरण रूप में नीचे दिए जा रहे हैं :—

(१) आज गरीबनिवाज मही पर तो सो तुही सिवराज बिराजै।[२]

---

१ **मराठों का इतिहास, ग्राण्ट डफ (अनुवादक : कमलाकर तिवारी), प० १७१**

२ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५५**

(२) तिहुँ भुवन मैं भूषन भनै नरलोक पुन्य कि साज मैं।
नरलोक में तीरथ लसै महि तीरथों कि समाज मैं।
महि मैं बड़ी महि मैं भली महि मैं महारज-लाज मैं।
रज-लाज राजत आज है महाराज श्री सिवराज मैं॥[1]

(३) राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे बेद-विधि सुनी मै।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,
धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं।[2]

........आदि-आदि।

इस साध्य को प्राप्त करने के लिए ही छत्रपति साधना करते रहे और उसी साधनात्मक पक्ष का भावमूलक वर्णन भूषण के काव्य में है। छत्रपति साध्य को प्राप्त कर उसके उपभोग में लीन नहीं हुए। वे सतत साधनारत रहे। जनता का सन्तोष ही उनका आनन्द रहा है और यह कार्य सतत परिश्रम की अपेक्षा रखता था अतः छत्रपति इसी में लीन रहे। छत्रपति की साधना का प्रमुख भाग शत्रु का दमन करना था और देश में भारतीय संस्कृति के अनुकूल भावनाओं को पोषण प्रदान करना था। अतः भूषण के काव्य में छत्रपति द्वारा शत्रु को त्रस्त रखने का विस्तार से वर्णन हुआ है। आचार्य शुक्ल ने लिखा है—"दीन और असहाय जनता को निरन्तर पीड़ा पहुँचाते चले जानेवाले क्रूर आततायियों को उपदेश देने, उसके दया की भिक्षा माँगने और प्रेम जताने तथा उसकी सेवा-शुश्रूषा करने में ही कर्तव्य की सीमा नहीं मानी जा सकती, कर्मक्षेत्र का एकमात्र सौन्दर्य नहीं कहा जा सकता। मनुष्य के शरीर के जैसे दक्षिण और वाम दो पक्ष हैं वैसे ही उसके हृदय के भी कोमल और कठोर, मधुर और तीक्ष्ण, दो पक्ष हैं और बराबर रहेंगे। काव्य-कला की पूरी रमणीयता इन दोनों पक्षों के समन्वय के बीच मंगल सौन्दर्य के विकास में दिखाई पड़ती है।"[3] इस दृष्टि से भूषण के काव्य में कोमल और कठोर दोनों पक्ष हैं और इनमें भी कठोर पक्ष का वर्णन अधिक हुआ है। शुक्लजी ने यह भी लिखा कि—"यदि बीजभाव (शुक्लजी के अनुसार बीजभाव आश्रय का मूल प्रेरक भाव है, इसी भाव से घटनाचक्र को दिशा मिलती है और अनेक भावों के स्फुरण के लिए जगह निकल आती है) की प्रकृति मंगल विधायिनी होती है तो उसकी व्यापकता और निर्विशेषता के अनुसार सारे प्रेरित भाव तीक्ष्ण और कठोर होने पर भी सुन्दर होते हैं। ऐसे बीजभाव की प्रतिष्ठा जिस पात्र में होती है उसके

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २१६**

[2] **वही, छन्द सं० ४२१**

[3] **रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६४ और ६५**

सब भावों के साथ पाठकों की सहानुभूति होती है अर्थात् पाठक और श्रोता भी रसरूप में उन्हीं भावों को अनुभव करते हैं जिन भावों की वह व्यंजना करता है।"[१] भूषण के काव्य में बीजभाव (करुणा का ही है) आश्रय छत्रपति शिवाजी में है। कवि की अनुभूति का तादात्म्य नायक की अनुभूतियों से है और पाठक भी उसी अनुभूति का अनुभव करते हैं। प्रतिनायक के प्रति जो भाव कवि के हैं (छत्रपति शिवाजी के भी हैं) वही भाव पाठक भी अनुभव करते हैं। इसीलिए शिवाजी को क्रोध आता है तो उसके साथ-साथ कवि को भी एवं पढ़ने वाले पाठकों को भी क्रोध आयेगा। इस अनुभूति में सबका सहयोग मिलने से ये अनुभूति शुक्लजी के शब्दों में मंगल विधायिनी होगी।

आई० ए० रिचर्ड्स का कहना है कि—मूल्य प्रतिचेष्टा एवं प्रवृत्ति की सूक्ष्म विवृत्तियों में निहित है—यह बात समझने के बजाय हमने उसे अमूर्त उपचारों एवं सामान्य आचरण नियमों की अनुरूपता में देखने का प्रयत्न किया है। कलाकार सूक्ष्म विवृत्तियों में निष्णात होता है और वह ऐसी सामान्योक्तियों पर ध्यान नहीं देता जिनके विषय में वास्तविक व्यवहार में वह पाता है कि वे इतनी स्थूल हैं कि मूल्यवान और मूल्यहीन के बीच भेद नहीं कर पाती। इसी कारण नीतिवादी की प्रवृत्ति सदैव उसका अविश्वास या उपेक्षा करने की होती है। परन्तु चूँकि जीवन का सत्प्रवर्तन ऐसी सूक्ष्म प्रतिचेष्टाओं के सुनिर्देशन से ही सम्भव है जिन्हें कोई सामान्य आचार्यपरक सूक्तियाँ बाँध नहीं सकतीं, अतः नीतिवादी के द्वारा कला की यह उपेक्षा एक प्रकार की निर्योग्यता ही रही है। शैली ने दृढ़ता-पूर्वक कहा है कि नैतिकता का शिलान्यास धर्मोपदेशक नहीं, कवि करते हैं।"[२] यहाँ 'प्रतिचेष्टा' की व्याख्या अपेक्षित है। साथ ही 'प्रवृति की सूक्ष्म विवृति' भी व्याख्या की अपेक्षा रखती है। कवि भूषण ने किन सूक्ष्म विवृतियों को प्रवृत्त किया और उसकी प्रतिचेष्टाएँ क्या थीं ?

जैसे कि कहा गया है कि भूषण का काव्य साधनावस्था का काव्य है। अतः साधनावस्था में, (शिवाजी के कार्यों को भावात्मक रूप में लिखने में) कर्म की प्रतिचेष्टाओं में काव्य का मूल्य निहित है। और अधिक स्पष्ट करते हुए यह कहा जा सकता है कि कर्म के भावात्मक रूप की प्रवृत्ति जिस दिशा की ओर इंगित करती है या भावनाएँ प्रवृत्ति की जिन सूक्ष्म विवृतियों का उद्घाटन करती हैं, उनमें काव्य का मूल्य निहित है। यहाँ एक बात और स्पष्ट करना उचित होगा। साधना-त्मक कोटि के काव्य में—प्रयत्न पक्ष का वर्णन होगा। निश्चित ही ये काव्य संघर्ष

---

१ रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६५ एवं ६६

२ पाश्चात्य काव्य-शास्त्र की परम्परा, सम्पादिका : डा० (श्रीमती) सावित्री सिन्हा प्रस्तुत अंश के अनुवादक : श्री महेन्द्र चतुर्वेदी, पृ० २९३ एवं २९४

का चित्र उपस्थित करनेवाले होंगे। संघर्ष में दो दल होंगे और इन दोनों दलों की आपसी चेष्टाओं का चित्र भी काव्य में होगा। दोनों दलों की आपसी चेष्टाओं का चित्र उपस्थित करते समय कवि दोनों पक्षों के साथ समान रूप से अनुभूति नहीं रख सकता। वह तटस्थ नहीं रह सकता। तटस्थ रहना व्यावहारिक दृष्टि से पलायन करना ही है। अतः कवि संघर्ष का चित्र खींचते हुए जिस पक्ष में अपनी सहानुभूति प्रकट करता है और नैतिक दृष्टि से जिन अनुभूतियों का समर्थन करता है, उन्हीं में वह अपनी मूल्य भावनाओं को व्यक्त करता जाता है। तात्पर्य यह कि किसी घटना का भावमूलक वर्णन करते समय कवि श्रोताओं या पाठकों के हृदय में भावनाओं को जगाते समय भावनाओं को नैतिक दृष्टि से जिस दिशा की ओर इंगित करता जाता है, उन्हीं में कवि अपनी मूल्य भावनाओं को व्यक्त करता है। कवि का यह दिशा-संकेत रिचर्ड्स के शब्दों में "प्रवृत्ति की सूक्ष्म विवृति" है। वीर काव्यों में दो व्यवस्थाओं का संघर्ष दिखलाया जाता है। इनमें से एक व्यवस्था के प्रति क्रान्ति की भावना काव्य में होती है। भूषण के काव्य में इस सम्बन्ध में 'भूषण की राष्ट्रीयता' वाले अध्याय में विस्तार से विचार किया जा चुका है। यहाँ इतना ही कहना अभिप्रेत है कि जिस व्यवस्था का भूषण ने समर्थन किया उस समर्थन में भूषण के काव्य का मूल्य है।

शुक्लजी ने 'आनन्द की साधना' का उल्लेख करते हुए थिओडोर वाट्स डंटन (Theodore Watts-Dunton) के सम्बन्ध में लिखा कि डंटन ने—"जिसे शक्ति-काव्य (Poetry of an energy) कहा है वह हमारे प्रथम प्रकार के अन्तर्गत आ जाता है जिसमें लोक प्रवृत्ति को परिचालित करने वाला प्रभाव होता है, जो पाठकों या श्रोताओं के हृदय में भावों की स्थायी प्रेरणा उत्पन्न कर सकता है।"[१] भूषण का काव्य इस दृष्टि से शक्ति-काव्य है।

अब एक प्रश्न और रह जाता है कि इन मूल्यभावों की व्याप्ति कितनी है? मढ़ेंकर के शब्दों में कुछ मूल्यभाव की व्याप्ति संकुचित होती है, साथ ही सार्थक्य साधनात्मक होती है। भूषण के मूल्यभावों की व्याप्ति काव्य में वर्णित घटनाओं के सन्दर्भ से सम्बन्धित है। सन्दर्भ सापेक्ष होने के कारण भूषण के काव्य का मूल्यांकन तटस्थ रहकर नहीं किया जा सकता। इसी अर्थ में मूल्यभाव संकुचित है। घटनाओं का सन्दर्भ फिर ऐतिहासिक है। अतः ऐतिहासिक ज्ञान के अभाव में (जो तत्कालीन राजनीतिक गतविधियों से सम्बन्धित ही है) काव्य का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। भूषण के अपने युग में छत्रपति शिवाजी की राजनैतिक सफलताओं का जन-जीवन पर जो प्रभाव पड़ा और जिससे जनता ने शिवाजी को एक त्राता या

[१] **रस मीमांसा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५७**

रक्षक के रूप में देखा, शिवाजी के उस व्यक्तित्व को भूषन ने अपने काव्य में व्यक्त किया है। उस व्यक्तित्व के रेखांकन में जिन ऐतिहासिक घटनाओं का ब्यौरा भूषण ने उपस्थित किया है वे शिवाजी की सफलता को बतलाने वाले हैं। अत: इस सन्दर्भ से पूर्णत: परिचय पाये बिना भूषण के मूल्यभावों की व्याप्ति जानी नहीं जा सकती। भूषण के काव्य के नायक छत्रपति शिवाजी की मान्यता आज भी बनी हुई है, इसी-लिए काव्य में निहित मूल्य भावनाएँ आज भी अपना मूल्य रखती हैं।

८·४. अलंकार

भूषण के काव्य में अलंकारों का विवेचन करने से पूर्व यह लिख देना उचित होगा कि भूषण का काव्य अलंकार-प्रधान ही है। शिवराजभूषण के सभी छन्द अलंकारों के उदाहरण रूप में लिखे गये। स्वयं कवि ने कहा है :—

सिव चरित्र लखि यौं भयौ कवि भूषन के चित्त।
भाँति भाँति भूषननि सों भूषित करौं कवित्त॥[1]

भूषण अपने काव्य में छत्रपति शिवाजी के चरित्र को अलंकारों से भूषित कर लिखना चाहते हैं। इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि कवि अपने भावों को अलंकारबद्ध लिखना चाहता है। भावनाओं को व्यक्त करते समय कौशल की ओर भी उसकी दृष्टि रही है।

अलंकार काव्य की शोभा बढ़ानेवाले धर्म हैं : साहित्य दर्पण कराने लिखा है—

"शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्।"[2]

अर्थात् शोभा को अतिशय करने वाले, रस के उपकारक जो शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं, वे अंगद (बाजूबन्द) आदि की तरह अलंकार कहाते हैं। काव्य में मुख्य रस ही माना गया है। कवि जब अपने को रस पर केन्द्रित करता है तो अलंकारों का औचित्यपूर्ण विन्यास अपने आप हो जाता है। प्रत्येक कवि का कोई न कोई आशय होता है। उस आशय को व्यक्त करने के लिए कोई न कोई माध्यम उसे चुनना पड़ता है। अलंकारों का प्रयोग काव्य में माध्यम को रमणीय रूप प्रदान करने की दृष्टि से होता है। अपनी अनुभूति को तीव्र एवं व्यापक रूप में प्रस्तुत करने के लिए कवि अलंकारों से सहायता लेता है। कवि की निरीक्षण शक्ति जितनी सूक्ष्म होगी, उतनी ही शक्ति एवं तीव्रता के साथ वह अपनी अनुभूति

---

१ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३४८**

२ **साहित्य दर्पण (विमला व्याख्या), दशम परिच्छेद, पृ० २७३**

को व्यक्त कर सकेगा। आचार्य शुक्ल ने लिखा है—"अलंकार हैं क्या ? सूक्ष्म दृष्टि वालों ने काव्यों के सुन्दर-सुन्दर स्थल चुने और उनकी रमणीयता के कारणों की खोज करने लगे। वर्णन शैली या कथन की पद्धति में ऐसे लोगों को जो-जो विशेषताएँ मालूम होती गईं, उनका वे नामकरण करते गये।"[१] शुक्लजी ने आगे यह भी लिखा है कि वर्णन की अब भी अनेक प्रणालियाँ आदि काव्य से लेकर आज तक काव्यों में भरी पड़ी हैं, जिनका नामकरण होना शेष है। कवि भूषण यद्यपि मौलिक आचार्य नहीं हैं और न ही उन्होंने इस क्षेत्र में कोई मौलिक योगदान दिया है (आचार्यत्व वाले अध्याय में इस सम्बन्ध में विचार किया जा चुका है) फिर भी उन्होंने जो ग्रन्थ लिखा है, वह अलंकारपरक ही है। उन्होंने १०५ अलंकारों के लक्षण दिये हैं और उन्हीं के उदाहरणस्वरूप काव्य लिखा है, इससे इतनी बात निश्चित है कि अलंकार की १०५ प्रणालियों से वे परिचित थे। नई प्रणालियों की खोज करने के स्थान पर उन्होंने जिन प्रणालियों का ज्ञान प्राप्त किया उसका प्रयोग उन्होंने अपने काव्य में किया है। उनका प्रमुख ग्रन्थ शिवराजभूषण अलंकारों के क्रम से लिखा हुआ है। पहले वे अलंकार का लक्षण देते हैं और तत्पश्चात् शिव चरित्र से उस अलंकार को भूषित करते हैं। भूषण ने पहले अर्थालंकारों का विवेचन किया है और तदनन्तर शब्दालंकारों का। अतः यहाँ पर भी पहले अर्थालंकारों और तदनन्तर शब्दालंकारों पर विचार किया जा रहा है।

अलंकारों के प्रयोग से काव्य शोभायमान होता है अर्थात काव्य के सौंदर्य में वृद्धि होती है। पण्डितराज जगन्नाथ ने कहा है—"पुनः पुनरनुसन्धानात्मा भावनाविशेषः" इसमें उन्होंने विशिष्ट उद्बोधित संस्कारों की प्रतिष्ठा की है। पण्डितराज के इस कथन की व्याख्या करते हुए दासगुप्त ने लिखा कि—"पण्डितराज का अभिप्राय यह है कि सौन्दर्य बोध हमारे मन में उठने वाले भावों का ही परिणाम है। यह भाव हमारे हृदय में किसी सुन्दर वस्तु के सौन्दर्य को देखकर उत्पन्न होते हैं। हमारे मन पर किसी समय बहुत पहले देखी हुई किसी सुन्दर वस्तु का एक प्रभाव अवशेष रह जाता है, जिसे संस्कार कहते हैं। इन्हीं संस्कारों के सहारे सौन्दर्य बोध होता है।"[३] आगे और लिखा है—"पण्डितराज ने सौन्दर्य को अनुसन्धानात्मक कहा है। सारांश यह है कि प्राचीन प्रभावों का वर्तमान ज्ञान के साथ भावात्मक संयोग घटित करा देना ही सौन्दर्य का मूल तत्व है।[४] भूषण के अलंकारों का विवेचन करते समय यह देखना आवश्यक

८. ४. १. अर्थालंकार

---

१ चिन्तामणि, भाग १, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १८४ एवं १८५

२ सौन्दर्य तत्त्व, डा० सुरेन्द्रनाथ दासगुप्त (अनुवादक : डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित), पृ० ६६

३ वही, पृ० ६७

होगा कि भूषण ने अलंकारों का प्रयोग करते समय (यहाँ अर्थालंकारों के सम्बन्ध में कहा जा रहा है) किन प्राचीन प्रभावों का वर्तमान ज्ञान के साथ भावात्मक संयोग घटित किया है ? उपमानों का चुनाव जीवन के किन क्षेत्रों से किया है ? उपमान रूढ़ हैं या नवीन हैं ? काव्य में अलंकारों का प्रयोग प्राचीन सौन्दर्यबोध को सुरक्षित रखने के भाव से किया गया है या सौन्दर्यबोध के कुछ नए मान भी कवि ने स्थिर किए हैं ? चमत्कार कौशल पर अधिक ध्यान दिया गया है या भावनाओं की स्पष्टता की ओर अधिक ध्यान दिया गया है ? आदि प्रश्न अलंकारों का विवेचन करते समय हमारे सामने आते हैं । इनका उत्तर नीचे दिया जा रहा है ।

८. ४. १. १. प्राचीन प्रभाव या पौराणिक उपमान : भूषण के काव्य पर प्राचीनता की एक अमिट छाप है । कवि को भारतीय संस्कृति से विशेष अनुराग है । एक प्रकार से कवि भारत के खोए हुए मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए अति आकुल दिखाई देता है । इस प्रतिष्ठा में वह रूढ़िवादी है । आचार-विचार एवं नीति विधान में वह कट्टर है । छत्रपति शिवाजी का गुणस्तवन करते समय कवि ने छत्रपति के लिए अनेक प्राचीन एवं पौराणिक उपमानों का प्रयोग किया है । छत्रपति शिवाजी से सम्बन्धित घटनाएँ साधारण रूप में चित्रित हैं, उनका महत्त्व भारत की अमर गाथाओं सा है । काव्य की यथार्थ घटनाएँ ऐतिहासिक हैं किन्तु इन घटनाओं को प्रभावशाली बनाने के लिए उन घटनाओं के आसपास कवि ने पौराणिकता का ताना-बाना बुन दिया है । कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :—

(१) सायस्तखाँ दुरजोधन सौ दुसासन सौ औ जसवन्त निहार्‌यो ।
द्रोन सौ भाउ करन्न करन्न सौ और सबै दल सौ दल मार्‌यो ।
ताहि विगोय सिवा सरजा भनि भूषन औलिफतो यों पछार्‌यौ ।
पारथ कै पुरुषारथ भारथ जैसे जगाय जयद्रथ मार्‌यौ ।[१]

(२) इन्द्र जिम जंभ पर बाड़व ज्यौं अंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुलराज है ।
पौन बारिबाह पर संभु रतिनाह पर,
ज्यौं सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है ।
दावा द्रुम-दण्ड पर चीता मृगझुण्ड पर,
भूषन बितुण्ड पर जैसे मृगराज है ।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कन्स पर,
यौं मलेच्छ-बंस पर सेर सिवराज है ।[२]

---

[१] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० स० ३४
[२] वही, छं० सं० ५०

(३) बारिधि के कुम्भभव घन बन दावानल,
तिमिर पै तरनि की किरन-समाज हौ।
कन्स के कन्हैया कामदेवहू के कण्ठ-नील,
कैटभ के कालिका बिहंगम के बाज हौ।
भूषन भनत सबै असुर के इन्द्र पुनि,
पन्नग के कुल के प्रवल पच्छिराज हौ।
रावन के राम कार्तबीज के परसुराम,
दिल्लीपति दिग्गज के सिंह सिवराज हौ।[1]

प्रथम उदाहरण में कवि ने जिन उपमानों की सहायता ली है, उनकी रूपरेखा कुछ इस प्रकार है—

क्रम संख्या	नायक	प्रतिनायक
(१)	भीम (शिवाजी)	दुर्योधन (शाईस्तखाँ)
(२)	भीम (शिवाजी)	दु:शासन (जसवन्तसिंह)
(३)	अर्जुन (शिवाजी)	द्रोणाचार्य (भाऊसिंह)
(४)	अर्जुन (शिवाजी)	कर्ण (करण सिंह)
(५)	अर्जुन (शिवाजी)	जयद्रथ (अलीफतेखाँ)

इस उदाहरण में नायक के स्थान पर महाभारत के प्रसिद्ध वीरों के नाम हैं और प्रतिनायक के स्थान पर मुगल सेनापतियों के नाम हैं। नायक को पाण्डवों के समकक्ष रखा गया है और प्रतिनायक को कौरवों के समकक्ष। उपमा अलंकार हैं। जैसे भीम और अर्जुन ने अपने शत्रुओं को देखा और उनका संहार किया वैसे ही यहाँ छत्रपति शिवाजी भी मुगल सेनापतियों के साथ व्यवहार कर रहे हैं। छत्रपति ने भी मुगल सेनापतियों को शत्रु रूप में देखा।

नायक के लिए जो उदाहरण चुने गए हैं, वे आदरणीय और आदर्श वीर हैं। उनकी वीरता पर भारतीय जनता गर्व करती आई है। अतः शिवाजी को उन वीरों की श्रेणी में रखकर कवि ने वीरता के प्राचीन संस्कारों को (जो भारतीय जनजीवन में पहले से बने हुए हैं) वर्तमान ज्ञान के साथ भावात्मक संयोग स्थापित किया है। भारतीय जनता के लिए ये उपमान नए नहीं हैं। इन के प्रति एक आम धारणा भारतीय जनता में बनी हुई है अतः इनके प्रयोग से अपने नायक की वीरता आसानी से श्रेष्ठ सिद्ध की जा सकती है। प्रतिनायक के अन्तर्गत द्रोण और कर्ण के नाम आ गए हैं किन्तु इनके लिए प्रतिपक्षियों के दल से उन वीरों का नाम लिया गया है (जो वास्तव में वीर होते हुए भी अपनी वीरता का उपयोग मुगलों के लिए

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४१०**

कर रहे हैं) जिन्हें वास्तव में छत्रपति का साथ देना चाहिए था। जैसे द्रोणाचार्य और कर्ण की वीरता का लाभ कौरव उठा रहे थे वैसे ही इन वीरों से मुगल लाभान्वित हो रहे थे। द्रोणाचार्य के प्रति पाण्डवों के मन में (अर्जुन के मन में) आस्था का भाव था किन्तु वे कौरवों के पक्ष से लड़ रहे थे अतः उन्हें भी शत्रु के समान अर्जुन को देखना पड़ा ठीक उसी तरह शिवाजी ने भी राजपूत वीरों को शत्रु पक्ष का साथ देने के कारण शत्रु रूप में देखा। बिहारी का एक दोहा प्रसिद्ध है जिसमें उसने इस प्रकार से अपनी शक्ति का व्यर्थ उपयोग करने वालों को सचेत किया है। उसका आशय यही है कि हम औरों को सहायता देकर अपने लोगों को हानि पहुँचा रहे हैं। दोहा इस प्रकार है—

स्वारथु सुकृतु न, श्रमु वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज, पराए पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि।[1]

दूसरा उदाहरण बहुत प्रसिद्ध है। इसमें मालोपमा अलंकार है। नायक शिवाजी और प्रतिनायक औरंगजेब है। इनके लिए कवि ने क्रम से उपमानों की माला प्रस्तुत की है। उपमानों का क्रम इस प्रकार है—

क्रम संख्या	नायक	प्रतिनायक
(१)	इन्द्र	जंभ
(२)	बाड़व	अंभ
(३)	राम	रावण
(४)	पवन	बारिबाह (बादल)
(५)	परशुराम	सहस्रबाहु
(६)	दावाग्नि	द्रुम-दण्ड
(७)	चीता	मृग-झुण्ड
(८)	तेज	तम
(९)	कान्ह	कंस
(१०)	सिंह	हाथी

इनमें वैदिक, रामायण और महाभारत के कुछ पौराणिक एवं कुछ प्राकृतिक उपमान हैं। भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि समझे बिना इन उपमानों द्वारा कवि ने जो आवेग एवं ओज इस कवित्त में भर दिया है, उसको समझा नहीं जा सकता। नायक के लिए जो उपमान प्रस्तुत किये गए हैं, वे वीर, धर्म-रक्षक, दुष्टों का संहार करने वाले साहसी एवं वीर हैं, जो इन कथाओं से परिचित होगा वह तत्काल समझ जाएगा कि शिवाजी म्लेच्छों का संहार उसी प्रकार कर रहे हैं या करने पर

[1] बिहारी रत्नाकर, दोहा सं० ३००

तुले हुए हैं, जैसे कि ये सभी बतलाए गए उपमान हैं। कवित्त में प्रभाव साद्दश्य है। क्रम से जो माला प्रस्तुत की गई है, वह प्रभाव को बढ़ाने में समर्थ है। इस कवित्त में एक स्थान पर दोष दिखाई देता है। वह तुक का निर्वाह करने के लिए हो गया है।

"तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर"—पंक्ति में यह कहना कि तेज तम के अंस को ही दूर करता है, उचित नहीं लगता। क्योंकि अंश अपने आप में लघुता का सूचक है। अंश के स्थान पर तोम या समूह का अर्थ देने वाला कोई दूसरा शब्द होता तो और अच्छा होता। आगे कंस शब्द आ रहा है इसीलिए कवि ने अंस शब्द का प्रयोग किया है। कवित्त के आवेग में कोई कमी नहीं आने पाई है पर ऊपर के उपमानों की तुलना में इस उपमान का प्रभाव कुछ कम हो गया है।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि भूषण ने ये सभी उपमान माला के रूप में प्रस्तुत किए हैं। इस सम्बन्ध में लोंजाइनस ने कहा है—"रूपकों के प्रयोग का उचित अवसर तब होता है जब आवेग उन्मद प्रवाह की भाँति उमड़ता चला जाता है। और अपने अबाध वेग में मानो अलंकारों की एक विपुल श्रृंखला को बहा लाता है।"[1] इस कवित्त में कवि ने उपमानों की श्रृंखला बहाकर अपने आवेग की शक्ति का परिचय दिया है। कवि का कथन इससे प्रभावशाली हो गया है।

तीसरा उदाहरण दूसरे उदाहरण के समान ही है किन्तु क्रम उलटा हुआ है। प्रायः उपमान सभी वही हैं। क्रम उलट देने से प्रवाह दूसरा हो गया है। दूसरे कवित्त में मालोपमा अलंकार है। वहाँ तीसरे उदाहरण में रूपकों की माला है। अंक में "इन्द्र जिम जंभ पर" कहा गया है, वहाँ दूसरे में 'असुर के इन्द्र' कहा गया है। चाहे उपमानों की माला हो या रूपकों की कवि अपने आशय को आवेग में आकर दो विभिन्न प्रणालियों में उसे कह रहा है।

८. ४. १. २. अन्य उपमान : काव्य में प्रयुक्त उपमानों के आधार पर कवि के सौन्दर्यबोध एवं उसके साँस्कृतिक स्तर का ज्ञान होता है। भूषण के काव्य में प्रयुक्त उपमानों से कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

(१) जुरत सजोर जंग जोम-भरे सूरन के,
स्याह-सह नागिन लौं खग्ग खरकत है।[2]

---

[1] काव्य में उदात्त तत्व, लोंजाइनस, (अनुवादक : डा० नगेन्द्र), पृ० ६२

[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४५०

१८

(२) साँगन सों पेलि पेलि खग्गन सों खेलि खेलि,
समद-सा जीता जो समद लौं बखाना है।[१]

(३) भादौं की घटा-सी उडि गरद गगन घिरे,
सेलै समसेरैं फिरे दामिनी सी दमकैं।[२]

(४) चाकचक-चमू के अचाकचक चहूँ ओर,
चाक-सी फिरती धाक चम्पति के लाल की।[३]

(५) भूषन तबहूँ ठिठकत ही गुसलखाने,
सिंह-सी झपट मन मानी महाराज की।[४]

(६) तारा सो तरनि धूरि-धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है।[५]

(७) छूटि रही गोरे गाल पै अलक आछी,
कुसुम गुलाब के ज्यों लीक अलि दो की सी।[६]

(८) चार-अंक-लक मुख चंद के समानी है।[७]

(९) रहँट की घरी जैसे औरंग के उमराव,
पानिप दिली के लाइ ढारि ढारि जात है।[८]

(१०) सिंह सिवराज दल मुगल बिनास करि,
घास ज्यों पजायो आमखास पातसाह को।[९]

(११) बड़ी औड़ी उमड़ी-नदी-सी फौज छेकी जहाँ,
मेड़ बेड़ी छत्रसाल मेरु से खरे रहे।[१०]

ऊपर अलंकारों के जो उदाहरण दिए गए हैं, वे सादृश्यमूलक अलंकारों के हैं। सादृश्य तीन प्रकार के होते हैं—रूप सादृश्य, धर्म सादृश्य और प्रभाव सादृश्य

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५१४
२ वही, छन्द सं० ५०७
३ वही, छन्द सं० ५०८
४ वही, छन्द सं० ४४२
५ वही, छन्द सं० ४११
६ वही, छन्द सं० ५४८
७ वही, छन्द सं० ४३२
८ वही, छन्द सं० ४५७
९ वही, छन्द सं० ४८१
१० वही, छं० सं० ५१६

रूप साहृश्य का सम्बन्ध बाह्य आकारों से होता है। धर्म साहृश्य और प्रभाव साहृश्य दोनों का सम्बन्ध अन्तःकरण की विशेषताओं से होता है। जहाँ तीनों का योग हो वे स्थल काव्य में अधिक प्रभावशाली होते हैं।

भूषण ने वीर रस का काव्य लिखा है अतः उन्होंने जिन अप्रस्तुत विधानों का उल्लेख किया है, वे वीर रस के उत्कर्ष को बढ़ाने वाले हैं। वीरों की तलवार चल रही है, उसे कवि ने नागिन सदृश कहा है। नागिन जैसे प्राण ले लेती है, वैसे ही तलवार भी शत्रु के प्राण ले लेती है। साथ ही जो लचक नागिन में होती है और जैसे वह फुफकार सकती है वैसे ही तलवार लचकती है और फुफकारती (वार करती) है। दूसरे उदाहरण में 'समद-सा जीता' में समुद्र उपमान है। तीसरे उदाहरण में युद्ध के समय धूलि के उड़ने का और भालों एवं तलवारों के चमकने का वर्णन है। धूलि के उड़ने की तुलना भादों की घटा से और भालों एवं तलवारों के चलने की तुलना बिजली से की गई है। इन उपमानों में रूप साहृश्य के साथ साथ धर्म साहृश्य भी है।

कुछ उपमानों में नवीनता और ताजगी भी है। 'चाक-सी फिरती धाक' में छत्रसाल बुन्देला के आतंक का वर्णन है। सेना जिधर-जिधर जाती है, उधर-उधर शत्रु की सेना काँपती जाती हैं। सेना के चलने को धाक का पहिया कहा गया है। इस उपमान में ताजगी है। इसी तरह आगे वाले उदाहरण में शिवाजी के झपटने को सिंह के झपटने की उपमा दी गई हैं। उसके बाद के उदाहरण में अत्युक्ति होने पर भी सेना के प्रभाव को बतलाने में कवि का उपमान सार्थक है। सेना के प्रस्थान के समय आकाश इतना धूल-धूसरित हो गया कि सूर्य तारे के समान दिखाई देने लगा और धरती ऐसे डगमगाने लगी कि थाली पर जैसे पारा हिलता है, उसी तरह पारा-वार (समुद्र) हिलने लगा।

बाद के दोनों उदाहरण नायिका के रूप-वर्णन के हैं। उपमान सार्थक एवं उचित है। अन्तिम तीनों उदाहरण वीर रस के हैं। प्रथम में रहँट का प्रयोग अप्रस्तुत रूप में हुआ है। रहँट जैसे पानी कुएँ से लाकर ऊपर डालता है और खाली होकर फिर चला जाता है, उसी तरह उमराव दिल्ली का पानी लेकर दक्षिण आते हैं और फिर खाली होकर लौट जाते हैं। तात्पर्य यह है कि औरंगजेब ने जितने सेनापतियों को नियुक्त कर शिवाजी को परास्त करने के लिए दक्षिण भेजा था, शिवाजी ने उन सब को परास्त किया। यहाँ प्रभाव साहृश्य भी है। दूसरे उदाहरण में भी नवीनता है। शिवाजी ने मुगल दल का विनाश उसी तरह किया जैसे घास को प्रज्वलित किया जाता है। तीसरा उदाहरण छत्रसाल की वीरता के वर्णन का है। उमड़ती नदी का सामना होने पर भी मेरु पर्वत अपने स्थान से विचलित नहीं होता, वह ज्यों का त्यों खड़ा रहता है ठीक उसी तरह छत्रसाल शत्रु की भारी सेना

को रोक रखते हैं और डटकर उसका सामना करते हैं। अब कुछ उत्प्रेक्षा के उदाहरण दिए जा रहे हैं :—

(१) भरि भाजन बाहर जात मनौ,
मुसुकानि किधौं छबि की छलकैं।[1]
(२) मोती सीसफूल तें बिथुरि फैलि रह्यो,
मानो चन्द्रमा तें छूटी है नक्षत्रन की चौकीसीं।[2]
(३) दावि यौं बैठो नरिंद अरिंदहि,
मानौ मयंद गयन्द पछार्यौ।[3]
(४) कोट बाँधियतु मानौं पाग बाँधियतु है।[4]
(५) मानौ हय हाथी उमराउ करि साथ,
अवरंग डरि सिवाजी कौं भेजत रसाल है।[5]

प्रायः उत्प्रेक्षा में चमत्कार होता है, किन्तु कवि ने यहाँ जिन अप्रस्तुतों को उत्प्रेक्षा के रूप में रखा है, वे कवि के भाव को बोधगम्य बनाने वाले हैं। प्रथम दोनों उदाहरण नायिका के रूप वर्णन के है। प्रथम में नायिका के मुसकराने वाले चितवन पर उत्प्रेक्षा की है और दूसरे में नायिका ने जो सीसफूल पहन रखा है उसके कारण जो उसकी शोभा बढ़ रही है, उस पर उत्प्रेक्षा की है। रूप-साहश्य के साथ-साथ प्रभाव-साहश्य भी इन उदाहरणों में है। बाद के तीनों उदाहरणों में शिवाजी के आतंक, उनकी वीरता और उनके प्रभाव का चित्रण हुआ है। अफजलखान को परास्त कर शिवाजी उस पर ऐसे सवार हुए हैं मानो सिंह हाथी को परास्त कर उस पर सवार होता हो। दूसरे उदाहरण में शिवाजी की सहज और स्वाभाविक वीरता व्यक्त हुई है। शिवाजी किलों को इस प्रकार जीत लेते हैं मानो पाग बाँध रहे हों। इस उत्प्रेक्षा में नवीनता है। पाग बाँधना जितना सरल है या जितनी सरलता से वह बाँधा जा सकता है, उतनी ही सरलता से शिवाजी शत्रुओं के किलों को जीत लेते हैं। अन्तिम उदाहरण में कवि ने शिवाजी द्वारा बार-बार औरंगजेब के परास्त होने पर उत्प्रेक्षा की है। कथन में कुछ वक्रता है। शिवाजी को परास्त करने के लिए औरंगजेब रिसाला (सेना, घोड़े, हाथी आदि) नहीं भेज रहा है, मानो वह यह सब शिवाजी को नजराने के रूप में भेज रहा है।

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५४६
[2] वही, छन्द सं० ५४८
[3] वही, छन्द सं० ३५४
[4] वही, छन्द सं० ९५
[5] वही, छन्द सं० ९४

कवि ने रूपक अलंकार का प्रयोग अनेक स्थानों पर किया है। कहीं कहीं तो समस्तकवित्त सवैये और छप्पय में यह सांग-रूपक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इस तरह के कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

(१) केतकी भो राना और बेला सब राजा भये,
ठौर-ठौर रस लेत नित यह काज है।
सिगरे अमीर भए कुंद मकरंद भरे,
भृंग सो भ्रमत लखि फूल की समाज है।
भूषन भनत सिवराज देस-देसन की,
राखी है बटोरि एक दच्छिन में लाज है।
तजत मलिंद जैसे तैसे तजि दूर भाग्यौ,
अलि अवरंगजेब चम्पा सिवराज है।[1]

(२) कलजुग जलधि अपार उद्ध अधरंम अंबुमय,
लच्छनि लच्छ मलेच्छ कच्छ अरु मच्छ मगर-चय।
नृपति नदीनद-बृंद होत जाकौं मिलि नीरस।
भनि भूषन सब भूमि घेरि किन्हिय सुअप्पु-बस।
हिन्दुआन पून्य-ग्राहक बनिक तासु निबाहक साहिसअ।
बर बादबान करवान गहि जस-जिहाज सिवराज हुअ।[2]

प्रथम उदाहरण में कवि ने तत्कालीन राजनैतिक अवस्था के गिरते हुए स्तर का चित्रण खींचा है। भ्रमर सब फूलों पर बैठकर उसका रस लूटता है, एक फूल चम्पा ही ऐसा है जिस पर वह नहीं बैठता। इसी मान्यता के आधार पर कवि ने रूपक के द्वारा यह भाव व्यक्त किया है कि सब राजा औरंगजेब के प्रभाव में आकर उसके अधीन हो गये हैं। अकेले शिवाजी औरंगजेब से प्रभावित नहीं हुए हैं। दूसरे उदाहरण में कलियुग पर कवि ने रूपक बाँधा है। कलियुग को अपार समुद्र कहा गया है और उसमें सारे (लाखों की संख्या में) म्लेच्छ और उमराव कच्छप और मगर हैं। नृपति-वृन्द जो उनसे मिल गए हैं, वे उस सागर में मिलने वाली नदियाँ हैं। इस तरह का जो सागर है, उसमें डूबने से बचाने वाले रक्षक जहाज के रूप में एकमात्र शिवाजी हैं। कवि का तात्पर्य यह है कि शिवाजी इस समय हिन्दू-धर्म की रक्षा कर रहे हैं।

अब कुछ विरोधमूलक अलंकारों के उदाहरण दिए जा रहे हैं:—

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४४०

२ वही, छन्द सं० ५७

(१) श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं म्लेच्छन के मुँह कारे ।
भूषन तेरे ही राते प्रताप सपेत लसे कुनरा नृप सारे ।।[१]

(२) श्री सिवराज भनै कवि भूषन तेरे सरूपहि कोउ न पावै ।
सूर के बंस में सूर-सिरोमनि ह्वै करि तूँ कलचन्द कहावै ।।[२]

(३) महाराज सिवराज चढ़त तुरंग पर,
ग्रीवा जात ने करि गनीम अति बल की ।
भूषन चलत सरजा की सैन छिति पर
छाती दरकति है खरी अखिल खल की ।।
कियो घात दौरि अमीरन उमराउ परि,
गई कटि नाक सिगरेई दिल्ली-दल की ।
सूरत जराय कियौ दाह पातसाह उर,
स्याही जाइ सब पातसाही-मुख झलकी ।।[३]

(४) राजकुमार कहाँ सुकुमार कहाँ बिकरार पहार वे ऊँचे ।[४]

ये उदाहरण बहुत ही मार्मिक और भावपूर्ण है । विरोधमूलक अलंकारों में कुछ चमत्कार होता है । किन्तु जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, उनमें चमत्कार होने पर भी वे स्वाभाविक ढंग से सहज ही में कहे गए हैं तथा वीर रस के उत्कर्ष को बढ़ाने वाले हैं । इनमें वैदग्ध्य ने सीमा का अतिक्रमण नहीं किया है । प्रथम उदाहरण में रंगों का चमत्कार है । शिवाजी का यश बढ़ता है तो शत्रुओं का अपयश होता है । शिवाजी क्रोधित होते हैं तो शत्रु-सेना काँपने लगती है । इसी बात को कवि ने रंगों के चमत्कार द्वारा व्यक्त किया है । यश का रंग श्वेत होता है और अपयश का रंग स्याह । क्रोध में मुख का रंग लाल हो जाता है और घबराने पर या डरने पर मुँह सफेद पड़ जाता है । यही बात प्रथम उदाहरण में कही गई है । बाद के उदाहरण भी प्रभावशाली हैं ।

अब ऐसे अलंकारों के उदाहरण दिए जा रहे हैं, जिनमें कवि कल्पना की ऊँची उड़ानें भरता है । अत्युक्ति या चमत्कार की सीमाओं को जानने की दृष्टि से ये उदाहरण दिए जा रहे हैं ।

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १६५
२ वही, छं० सं० १६७
३ वही, छं० सं० १८२
४ वही, छं० सं० १८९

(१) पंकीभूत समुद सुलंकी के प्रयान ते।[1]

(२) बाने फहराने घहराने घंटा गजन के,
नाहीं ठहराने राव-राने देस-देस के।
नग भहराने ग्राम-नगर पराने सुनि,
आवत निसाने सिवराजजू नरेस के।
हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के।
दल के दरारन ते कमठ करारे फूटे,
केरा के से पात बिहराने फन सेस के ॥[2]

इन उदाहरणों को पढ़कर यही अनुभव होता है कि कवि कल्पना की उड़ानें ले रहा है। इनमें सीमा का अतिक्रमण हो गया है। सेना के प्रयाण से समुद्र में कीचड़ नहीं हो सकता। इसी तरह दूसरा उदाहरण है। कवि का आशय इतना ही है कि सेना बड़े उत्साह के साथ आगे बढ़ रही है और उसके आगे बढ़ने से शत्रु का उत्साह दब रहा है। भाव की तीव्रता का बोध कराने की दृष्टि से ही अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

शब्दालंकारों में कवि ने शिवराज भूषण में केवल चार अलंकारों का उल्लेख किया है। अनुप्रास अलंकार के उदाहरण देने के लिए ही कवि ने अमृत ध्वनि छन्द का प्रयोग किया है। ये छन्द व्यंजन बहुल हैं, संयुक्त व्यंजनों का इसमें अधिक प्रयोग है। साथ ही ये व्यंजन वर्ण-विन्यास की दृष्टि से ऐसे रखे गये हैं कि

८. ४. २. शब्दालंकार

शब्द सौन्दर्य में वृद्धि हो गई है। 'अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।'[3] स्वर की विषमता रहने पर भी शब्द अर्थात् पद, पदांश के साम्य (सादृश्य) को अनुप्रास कहते हैं। स्वरों की समानता हो चाहे न हो, परन्तु अनेक व्यंजन जहाँ एक से मिल जाएँ वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। केवल स्वरों की समानता से विचित्रता नहीं होती। व्यंजनों की समता के समान उनमें चमत्कार नहीं होता। रस भावादि के अनुगत प्रकृष्ट न्यास को अनुप्रास कहते हैं। यहाँ 'अनु' का अर्थ 'अनुगत' और 'प्र' का 'प्रकृष्ट' एवं 'आस' का अर्थ 'न्यास' है। रस की अनुगामिनी प्रकृष्ट रचना का नाम अनुप्रास है।—"रसाद्यनुगतत्वेन प्रकर्षेण न्यासोऽनुप्रासः"[4] अमृतध्वनि छन्द का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है।

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५३२
[2] वही, छं० सं० ४१२
[3] साहित्य दर्पण, (विमला व्याख्या), दशम परिच्छेद, पृ० २७५
[4] वही, पृ० २७५

दिल्लिय दलनि गजाइ कै, सिव सरजा निरसंक।
लूटि लियौ सूरति सहर, बंकक्करि अति डंक।
बंकक्करि अति डंकक्करि अ्रस संकक्करि खल।
सोचच्चकित भरोचच्चलिअ बिमोचक्चख चल।
तट्ठट्ठई मन कट्ठट्ठिक सो रट्ठट्ठिल्लिय।
सद्दद्दिसि दिसि मद्दद्दबि भइ रद्दद्दिल्लिय।[१]

इसी तरह के अन्य छन्द (अमृत ध्वनि के) हैं। इनके सिवा कवित्त एवं सवैयों में भी अनुप्रास अलंकार का बहुत प्रयोग हुआ है। विशेष रूप से वे स्थल जहाँ युद्ध का वर्णन हो रहा है या सेना के प्रस्थान का वर्णन किया जा रहा है, अनुप्रास से युक्त हैं। इस प्रकार के एक-दो उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं:—

(१) ऐल-फैल, खैल-मैल खलक में गैल-गैल,
गजन की ठैल-पैल सैल उलसत है।
तारा सो तरनि धूरि-धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है॥[२]

(२) किलकि-किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम-डिम डमरु दिगंबर बजाई है।[३]

(३) कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि,
कीन्हीं सिवराज वीर अकह कहानियाँ।[४]

यमक का प्रयोग उन स्थलों पर अधिक हुआ है, जहाँ कवि ने शत्रु की स्त्रियों की दुर्दशा के चित्र खींचे हैं। जैसे:—

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।
कंद-मूल भोग करैं कंद-मूल भोग करैं,
तीन बेर खाती ते वै तीन बेर खाती हैं॥
भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं।
भूषन भनत शिवराज बीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं॥[५]

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३३२
२ वही, छन्द सं० ४११
३ वही, छन्द सं० ४१३
४ वही, छन्द सं० ४२५
५ वही, छन्द सं० ४२६

अब समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि भूषण ने अलंकारों का प्रयोग करते समय काव्य की मूल अनुभूति में व्याघात नहीं आने दिया। शिवचरित्र को भूषित करने में उनके आलंकारिक प्रयोग सफल हुए हैं। आचार्यत्व की दृष्टि से भूषण ने भले ही कोई नवीन देन न दी हो किन्तु काव्य में उनका यह ज्ञान उपयोगी सिद्ध हुआ है। कवि ने आलंकारिक प्रयोगों में सौन्दर्यबोध के मान्य (भारतीय दृष्टि से) उपमानों का ही प्रयोग किया है। शिवाजी के राज्य का आदर्श रूप उनकी दृष्टि में भारतीय ढंग का प्राचीन राज्य रहा है। अतः कवि ने राज्य की व्यवस्था का (शिवाजी के राज्य की व्यवस्था का) चित्र खींचते समय प्राचीन आदर्श राजाओं की व्यवस्था को उपमान रूप में प्रस्तुत किया है। शिवाजी के राज्य की कल्पना के लिए प्रयुक्त उपमानों का एक उदाहरण—

एक कहैं कलपद्रुम है इमि पूरत है सबकी चित-चाहै।
एक कहैं अवतार मनोज को यौं तन में अति सुन्दरता है।
भूषन एक कहैं महि इन्दु यौं राज बिराजत बाढ़यौ महा है।
एक कहैं नर-सिंह है संगर एक कहैं नरसिंह सिवा है।[1]

उपमानों में यदि नवीनता मिलती है, तो वह प्रायः उन्हीं स्थलों पर जहाँ युद्ध का वर्णन हुआ है या सेना के प्रयाण का वर्णन है। सांस्कृतिक दृष्टि से या सौन्दर्यबोध की दृष्टि से भूषण ने परम्परित उपमानों को ही अपनाया है।

८. ५. छन्द योजना

भूषण के काव्य में जिन छंदों का व्यवहार हुआ है, वे निम्नलिखित हैं। अमृतध्वनि, अलसा या अरसात सवैया, किरीटी, छप्पय, दोहा, मनहरण, माधवी, मालती, लीलावती और हरिगीतिका।

(१) **अमृतध्वनि** : यह मात्रिक विषम छन्द है। आरम्भ में एक दोहा और उसके बाद दो रोला होते हैं। दोहे के अन्तिम चरण से रोला का प्रथम चरण आरम्भ होता है। रोला की चारों पंक्तियों में ८, ८ मात्रा के क्रम तीन बार यति, यमक आते हैं जो रोला के होते हैं। उदाहरणार्थ—

गतबल खानदलेल हुए, खानबाहादुर मुद्ध।
सिव सरजा सलहेर ढ़िग,कुद्धद्धरि किय जुद्ध।
कुद्धधरि किय जुद्ध अरि अद्धद्धरि करि।
मुंडड्डुर तहिं रुंडड्डुकर उड्डड्डुग भरि।
खेद्दिददर बर छेद्दिददय करि मेद्ददल दल।
जंगग्गति सुनि रंगग्गलि अवरंगग्गत बल।[2]

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३५२
[2] वही, छं० सं० ३३३

यह छन्द वीर रस का अपना छन्द है। इस छन्द में प्रायः संयुक्त ध्वनियों का प्रयोग अधिक होता है। अपभ्रंश की झलक इस भाषा में देखी जा सकती है। इन छन्दों में युद्ध का वर्णन हुआ है।

अलासा या अरसात सवैया में २४ वर्ण होते हैं। इसमें ७ भगण और एक रगण होता है। जब कि किरीट सवैये में आठ भगण होते हैं और १२, १२ वर्णों पर यति होता है। भूषण ने दोनों ही प्रकार के सवैयों का प्रयोग किया है।

गीतिका मात्रिक छन्द हैं। यह २६ मात्राओं का होता है। इसमें १४ तथा १२ मात्राओं पर यति होता है। अन्त में लघु गुरू होता है। इस छन्द का प्रयोग कवि ने अलंकारों की सूची देने के लिए किया है।

छप्पय में ६ पंक्तियाँ होती हैं। इसी से इसे षट्पद भी कहते हैं। यह संयुक्त छन्द हैं; जो रोला (११, १३) चार पाद और उल्लाला (१५, १३) के दो पाद के योग से बनता है। यह अमृतध्वनि की तरह वीर रस का छन्द है। इसका प्रयोग रासो ग्रन्थों में और मानस में युद्ध के प्रसंगों में हुआ है। भूषण ने भी इसका प्रयोग वीर रस के उत्कर्ष के लिए किया है। इसका प्रयोग बहुत कम किया गया है।

दोहा मात्रिक छन्द है। २४ मात्रा के इस छन्द में १३, ११ पर यति होता है। इस छन्द का प्रयोग शिवभूषण के प्रस्तावना वाले अंश में और बाद में शिवभूषण में अलंकारों का लक्षण देने के लिए हुआ है।

मनहरण, घनाक्षरी या कवित्त : छब्बीस वर्णों से अधिक वर्ण वाले छन्द दंडक कहलाते हैं। इसके दो प्रधान भेद हैं। जिनमें गणों का बन्धन होता है वे गणात्मक और जिनमें यह बन्धन नहीं होता वे मुक्तक कहलाते हैं। दूसरे में केवल अक्षरों की संख्या देखी जाती है। मनहरण मुक्तक दंडक है। इसे घनाक्षरी या कवित्त भी कहते हैं। इसका प्रयोग कवि ने सब से अधिक किया है।

माधवी सवैये में आठ सगण होते हैं और मालती सवैये में सात भगण और अन्त में दो गुरु अर्थात् तेईस अक्षर होते हैं। भूषण के काव्य में घनाक्षरी कवित्तों के बाद सवैयों का प्रयोग ही अधिक हुआ है।

लीलावती छन्द में ३२ मात्राएँ होती हैं। इसमें लघु गुरु का बन्धन नहीं होता। इसका प्रयोग विरल रूप में मिलता है।

हरिगीतिका २८ मात्राओं का छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में १६ एवं १२ पर यति होता है। अन्त में गुरु होता है। कवि ने इस छन्द का प्रयोग रायगढ़ की शोभा का वर्णन करने के लिए किया है।

यह भूषण द्वारा व्यवहृत छन्दों का विवरण है। रीतिकाल के कवियों का ध्यान अभिव्यक्ति कौशल पर अधिक हो रहा है। इस कौशल में छन्दों के चुनाव

का भी अपना महत्व है। छन्द एक प्रकार से कविता की लयबद्ध धारा है। इसमें अक्षर या वर्ण नियमित रूप में लयबद्ध होते हैं। विशिष्ट छन्द विशिष्ट प्रकार के भावों को व्यक्त करने में सहायक होते हैं। वीर रस के लिए अमृतध्वनि और छप्पय छन्दों का प्रयोग किया गया है। इनमें भी विशेष रूप से आतंक का चित्र खींचने में एवं युद्ध के प्रसंगों के लिए ही ये छन्द प्रयुक्त हुए हैं। सवैयों में मालती सवैयों का प्रयोग अधिक मिलता है। घनाक्षरी कवित्त का प्रयोग कवि ने सबसे अधिक किया है। यह रीतिकाल का बहु व्यवहृत छन्द है। छन्दों को कवि ने अपनी भावना के अनुसार मोड़ने का प्रयत्न भी किया है। कवित्तों में वीर रस एवं शृंगार रस दोनों का वर्णन हुआ है किन्तु दोनों के वर्णविन्यास में अन्तर है। इस दृष्टि से दो कवित्त उदाहरण स्वरूप नीचे दिए जा रहे हैं। एक में वीर रस का वर्णन है और दूसरे में शृंगार रस का :

(१) छूटत कमान बान बंदूकरु कोकबान,
मुसकिल होत मुरचानहू की ओट में।
ताही समै-सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि द्वेषिन पै बीरन लै जोट में।
भूषन भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट-झोट में।
ताव दै-दै मूंछन कँगूरन पै पाँव दै-दै,
घाव दै-दै अरि-मुख कूदे परै कोट में।[1]

(२) मन्दिर न नाह औ न निकट ननद आजु,
औसर अनन्द नन्दनन्दन कों ध्यावती।
ऐहे मनमोहन लगैहै उर आपने सों,
ह्वै है हित मन चित्त चैन यौं बढ़ावती।
है समीप सासु पै न नन बलि बैरिन के,
मुदित भई है मुदिता बधू कहावती।
लोचन बिलोल कबि भूषन हिएँ अलोल,
कामिनि कपोलन में लोभ उपजावती।[2]

दोनों कवित्तों का प्रवाह अलग-अलग है और वर्णों की योजना भी भिन्न प्रकार की है।

---

[1] भूषण. पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४१५

[2] वही, छन्द सं० ५६३

८.६. मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग

भूषण के काव्य में मुहावरों और कहावतों का प्रयोग हुआ है इन से कवि अपनी बात को शक्ति के साथ कह सका है। मुहावरे प्रारम्भिक काल में प्रयोजनवती लक्षणा ही रहे होंगे। फिर बार-बार उनका उसी अर्थ में प्रयुक्त होने से उनका वह अर्थ रूढ़ हो गया और वे मुहावरों के रूप में परिवर्तित हो गए। इनकी सहायता से भावों को तीव्रता से व्यक्त किया जा सकता है। कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं—

(१) काहू पै सिवा नरेस **भृकुटी चढ़ाई** है।[1]

(२) दिल्ली **कर मीड़े कर झारत** कितै गयो।[2]

(३) खुमान के तौउ **गुमान न आयौ**।[3]

(४) **दन्त तोरि** तखत तरे ते आयो सरजा।[4]

(५) देखि तेग-चमक सिवा को **मुख लाल भयौ**।[5]

(६) **मीड़ि राखे** मुगल **मरोड़ि राखे** पातसाह।[6]

(७) **बैरि पीसि राखे,** बरदान राख्यौ कर में।[7]

(८) बहादुरखान ह्वै है **घाट को न घर कौ**।[8]

(९) एक अचम्भव होत बड़ो **तिन ओठ-गहे** अरि जात न जारे।[9]

(१०) अजौ मुगलान **हाथ मलहीं**।[10]

(११) सहर मिलायो मारि **गरद मिलायो** गढ़,
अजहूँ न **आगे पाछे** भूप किन नाँ करी।[11]

(१२) नृपन की नारि रोइ **हाथन मलति** है।[12]

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४१३**
[2] **वही, छं० सं० ४७६**
[3] **वही, छं० संख्या १७७**
[4] **वही, छं० संख्या १७९**
[5] **वही, छं० संख्या ४४३**
[6] **वही, छं० सं० ४२०**
[7] **वही, छं० सं० ४२०**
[8] **वही, छं० सं० ४८८**
[9] **वही, छं० संख्या १६५**
[10] **वही, छं० सं० ४६७**
[11] **वही, छं० सं० ४७२**
[12] **वही, छं० सं० १०६**

(१३) तबै तुरकन के **निकसि गए जियरे**। [१]

(१४) **खिसि गई** सेखी **फिसि गई** सूरताई सब,
हिसि गई हिम्मत हजारों लोग मारे की।[२]
........आदि-आदि।

उपर्युक्त उदाहरणों में काले छपे भाग मुहावरों का है। मुहावरे अपने आप में दोहरा काम करते हैं। उनके कारण स्वभावोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास आदि कई अलंकार रूप ग्रहण करते हैं। एक तो इनके द्वारा भावों में तीव्रता आती है और दूसरे अलंकारों की चमत्कारिकता बढ़ जाती है, जैसे विरोधालंकार का उदाहरण देखा जा सकता है :—

श्री सरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं म्लेच्छन के मुँह कारे।
भूषन तेरे ही राते प्रताप सपेत लखे कनरा नृप सारे।
साहितनै तुअ कोप-कृसानु तें बैरि जरे सब पानिपवारे।
एक अचम्भव होत बड़ो तिन ओठ गहे अरि जात न जारे।[३]

यहाँ पर रंगों का चमत्कार है। यश का रंग श्वेत माना गया है। इसके विरोध में अपयश का रंग काला माना गया है। इसी तरह लाल होने का तात्पर्य क्रोधित होना होता है। साथ ही सफेद हो जाने का अर्थ फीका पड़ जाना होता है। इसी बात को कवि ने विरोधात्मक ढंग से प्रस्तुत कर काव्य में चमत्कार पैदा किया है। शिवाजी श्वेत होते हैं तो म्लेच्छ काले पड़ जाते हैं और यदि शिवाजी लाल होते हैं तो शत्रु सफेद हो जाते हैं।

ऊपर जो मुहावरों के उदाहरण दिए गये हैं, उनको देखने से यह सहज ही में ज्ञात हो जाता है कि इन मुहावरों के प्रयोग से कवि के कथन में शक्ति आ गई है। 'हाथ-मलना' में मुगलों की स्थिति का आभास है, चाहने पर भी वे कुछ नहीं कर सके। इसी तरह 'मीड़ि राखे' एवं 'मरोड़ि राखे' मुहावरों द्वारा कवि ने यह कहा है कि शिवाजी ने शत्रु की स्थिति क्या करदी है। सम्भवतः इन स्थानों पर यदि दूसरे सबूत रख दिए जायें तो भावों में यह तीव्रता नहीं आ पाएगी। इसी तरह के अन्य उदाहरण भी हैं।

मुहावरों के साथ-साथ कहावतों का प्रयोग भूषण ने उपयुक्त स्थलों पर किया है। कहावतों में लोक प्रसिद्ध मान्यता होती है। इन मान्यताओं के आधार

---

[१] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४५५**

[२] **वही, छं० सं० ४४६**

[३] **वही, छं० सं० १६५**

पर कवि ने अपने कथन को प्रभावित ढंग से कहने का प्रयत्न किया है। कुछ उदाहरण :—

(१) सौ सौ चूहे खाइकै बिलाइ बैठी तप के।[१]

(२) कालि को जोगी कलिंदे को खप्पर।[२]

(३) सिंघ की सिंघ चपेट सहे गजराज सहे गजराज सो धक्का।[३]

(४) छावो गहे क्यों गयंद को टप्पर।[४]

........आदि आदि।

८.७. शैली

शैली व्यक्ति के शील एवं संस्कृति का समन्वित रूप है। एक ओर इसके अन्तर्गत व्यक्तित्व के पहलुओं पर विचार किया जा सकता है, तो दूसरी ओर लिखित अंश की पद्धतियों का वैज्ञानिक अध्ययन भी किया जा सकता है। भूषण के काव्य का अध्ययन शैली की दृष्टि से प्रस्तुत करते समय यह कहना आवश्यक होगा कि भूषण के काव्य पर उनके व्यक्तित्व की छाप क्या थी ? अपने आशय को व्यक्त करने के लिए कवि ने अभिव्यक्ति की किस प्रणाली को अपनाया ? साथ ही यह भी देखना होगा कि आशय एवं अभिव्यक्ति के बीच कितनी एकरूपता है ?

काव्य की शैली का सम्बन्ध काव्य के कर्त्ता के व्यक्तित्व से होता है। भूषण के व्यक्तित्व की विशेषताओं में भूषण के काव्य की विशेषताएँ समाहित हैं। कृतिकार कृति में अपने व्यक्तित्व को ही वाणी देता है। पाश्चात्य समीक्षक जिसे शैली के नाम से पुकारते हैं, उसे हमारे यहाँ रीति के नाम से पुकारा गया है। काव्य की रीति से तात्पर्य विशिष्ट पद रचना से लिया गया है। इसे काव्य की आत्मा भी माना गया है। रीति में जहाँ काव्य के बाह्य पक्ष पर ध्यान रहता है, वहाँ शैली का विवेचन करते हुए यह भी देखा जाता है कि कवि का व्यक्तित्व क्या है ? कवि को भूलकर काव्य की परीक्षा नहीं की जा सकती। यहाँ पहले भूषण के व्यक्तित्व का परिचय दिया जा रहा है और बाद में उनकी अभिव्यक्ति प्रणाली पर विचार किया जायगा।

व्यक्तित्व का सम्बन्ध व्यक्ति के विचारों से होता है। क्योंकि विचारों की जीत सब से बड़ी जीत होती है और विचारों की हार सबसे बड़ी हार। अतः

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५४२

२ वही, छं० सं० ३०१

३ वही, छं० सं० १२४

४ वही, छं० सं० ३०१

व्यक्तित्व पर विचार करते समय यह देखना होगा कि भूषण की विचारधारा क्या थी ? और साथ ही वह अपने विचारों पर कितना दृढ़ रहता था ? भूषण की जीवनी की जो मोटी रेखाएँ हमें प्राप्त हैं उनमें से एक घटना यह है कि

८. ७. १. व्यक्तित्व

कवि अपने घर से अपनी भाभी से असन्तुष्ट होकर चले जाते हैं। यह घटना कम से कम इस बात को स्पष्ट करती है कि कवि में अपने प्रति स्वाभिमान का भाव था। दूसरे शब्दों में स्वाभिमान भूषण के व्यक्तित्व का अंग है। यही नहीं वह औरंगजेब के दरबार में औरंगजेब को खरी-खोटी सुनाता है (यदि इस सम्बन्ध में कथित किम्बदन्ती को सत्य मान लिया जाय) इसी तरह और भी अनेक प्रसंगों में हम देखते हैं कि कवि में स्वाभिमान का भाव है। कवि के काव्य में कवि का स्वाभिमानी व्यक्तित्व मुखर हुआ है। कुमाऊँ-नरेश के दिए दान को लौटा देना क्योंकि वह दान स्वयं को सब से बढ़कर कहलाने की दृष्टि से दिया था और इसी तरह मन का यह भाव कि जब तक यवनों का विरोधी आश्रयदाता नहीं मिलेगा मैं किसी के आश्रय में नहीं रहूँगा आदि घटनाएँ उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाली हैं।

भूषण के व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता है—निर्भीकता। कवि सत्य को कहने में झिझकता नहीं है। अपने युग की ज्वलन्त समस्याओं को देखकर कवि का व्यक्तित्व चुप नहीं रह सकता। स्थान-स्थान पर कवि ने यथार्थ का अंकन बड़ी निर्भीकता के साथ किया है। औरंगजेब के सम्बन्ध में उसकी उक्ति— 'सौ-सौ चूहे खाइकै बिलाय बैठी तप के।'' उसकी निर्भीकता का परिचय देने वाली है। जिस व्यक्तित्व में झिझक का भाव होगा वह वीर वाणी में कैसे बोल सकता है ?

भूषण में राष्ट्र के प्रति अपार प्रेम था। राष्ट्रीयता वाले अध्याय में इस सम्बन्ध में विस्तार से लिखा गया है। यहाँ इतना ही कहना अभिप्रेत है कि इस राष्ट्र-प्रेम के कारण ही कवि ने राष्ट्रनायक का गुणगान किया। कवि का यह गुणगान अकेले छत्रपति शिवाजी तक ही सीमित नहीं रहा। कवि ने छत्रसाल बुन्देला का भी गुणगान किया है।

राष्ट्रनायकों का गुणगान करते समय कवि ने जो विचारधारा व्यक्त की है या भारतीय संस्कृति के प्रति जो आस्था व्यक्त की है, उन्हीं में कवि के व्यक्तित्व की गरिमा का आभास किया जा सकता है। यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि कवि राष्ट्रनायकों का गुणगान करते समय अपने व्यक्तित्व की क्या झलक देता है ? प्रशस्ति कोरी प्रशस्ति बनकर रह जाती है या कवि के आशय की सच्ची अभिव्यक्ति है ?

कवि का काव्य प्रशस्तिमूलक है। इस बात में सन्देह नहीं किया जा सकता। भूषण कवि ही क्यों ? संस्कृति के कवियों ने भी प्रशस्तिमूलक काव्य लिखे हैं और हिन्दी के प्रसिद्ध कवि गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी राम की प्रशस्ति गाई है।

प्रशस्तिमूलक काव्यों में सबसे पहले महत्त्वपूर्ण बात जिस पर विचार करना आवश्यक है वह है, काव्य का नायक। तुलसी की महत्ता राम में है। जिस नायक की प्रशस्ति में काव्य लिखा गया है, उस नायक के व्यक्तित्व की महानता में ही कवि के व्यक्तित्व का परिचय मिल सकता है। भूषण कवि ने छत्रपति की प्रशस्ति गाने में अपना मनोयोग दिखाया है। यह प्रशस्ति चाटुकारिता नहीं है। इस प्रशस्ति में जनभावना को भी स्थान मिला है। छत्रपति शिवाजी के व्यक्तित्व के रेखांकन में कवि ने ईमानदारी बरती है।

कवि का व्यक्तित्व कवि की शैली में व्यक्त होता है। कवि ने अपने काव्य में मुक्तक पद्धति अपनाई है। कवि का लक्ष्य शिवचरित्र को भूषित करना रहा है अतः

८. ७. .२ अभिव्यक्ति प्रणाली

शिवाजी के चरित्र से सम्बन्धित प्रमुख घटनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया (जो कवि की होने के साथ-साथ उस युग की जनता की भी थी) व्यक्त की है। कवि ने घटनाओं का ब्यौरा विस्तार से नहीं लिखा और न ही उन घटनाओं से सम्बन्धित पात्रों की मनोभावनाओं को विस्तार से व्यक्त किया। कवि ने तो केवल उन घटनाओं का आख्यान तत्कालीन राष्ट्रीय संदर्भ में संश्लिष्ट ढंग से किया है। कवि केवल घटनाओं का उल्लेख करता है और उस घटना से काव्य के नायक ने जो राजनैतिक सफलता प्राप्त की है उस पर अपनी टिप्पणी देता चलता है, वह भी आवेगमय भाषा में और फिर एक साथ अनेक घटनाओं का उल्लेख भी करता जाता है। घटनाओं से परिचित व्यक्ति ही उस आवेग को समझ सकता है। इस दृष्टि से एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है—

चन्दराव चूर करि जावली जपत कीन्ही,
घेर्‌यौ है सिंगारपुर-भूषन को जायकै।
भूषन भनत सुलतान दल खेदि डारे,
मारि डारे अफजल-दल को गिरायकै।
एदिल सो बेदिल हरम कहैं बार-बार,
अब कहा सोए सूते सिंहहि जगायकै।
भेजियै सुभेंट सिवराज कों रिसालैं कन्त,
बाजीं करनालैं परनालैं गढ़ आयकै।[1]

कवित्त में मुख्य पंक्ति है—"एदिल सों बेदिल हरम कहैं बार-बार अब कहा सोए सूते सिंहहि जगायकै" है। पन्हाला किले पर छत्रपति पहुँच चुके हैं अतः अब बीजापुरियों को शान्त नहीं रहना चाहिए। छत्रपति को छेड़ना सोते हुए सिंह को जगाना है और जब वह जाग चुका है (अर्थात् पन्हाले पर आ चुका है) तो अब सोना

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४३६

अच्छा नहीं है। अब सेना भेजी जाए और शिवाजी से देश की रक्षा की जाए। किस शिवाजी से ? उत्तर है (१) जिसने चन्द्रराव मोरे को चूर कर जावली पर अधिकार कर लिया, (२) जिसने शृंगारपुर को घेर लिया, (३) जिसने सुलतानों के दल को खदेड़ दिया, और (४) जिसने अफजलखान को मार कर उसके दल को परास्त कर दिया। ऐसे छत्रपति शिवाजी को छेड़ना सोते हुए सिंह को जगाना है।

शैली की दृष्टि से ध्यान देने योग्य कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य निम्नलिखित हैं :

(१) कवि घटनाओं का विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत नहीं करता। "चन्दराव चूर करि" कहकर कवि ने घटना का उल्लेख मात्र किया है।

(२) कवि जिस घटना का उल्लेख करता है, उससे उसका उद्देश्य घटना से सम्बन्धित नायक के प्रभाव को दिखाना है। कवि जब अनेक घटनाओं का उल्लेख करता जाता है तो उसमें उसका आशय प्रभाव को दिखाना ही रहा है। एक सफलता का प्रभाव दूसरी सफलता पर पड़ता है और इसी तरह तीसरी पर। नायक के साहसी व्यक्तित्व की इनमें अभिव्यक्ति है।

(३) नायक के सम्बन्ध में यह कथन शत्रु के मुख से कहलाया गया है। इससे नायक के सम्बन्ध में शत्रु की धारणा का पता चलता है।

(४) इस प्रकार के कथन से नायक के प्रति आम जनता की राय व्यक्त हो रही है। कथन में आवेग है। किसी राजनीतिक घटना का व्यौरा, जैसे आज समाचार पत्रों में प्रकाशित होता है और सफलता के आधार पर ही राजनीतिक अटकलें लगाई जाती हैं, साथ ही आम जनता इस पर अपनी प्रतिक्रिया जैसे व्यक्त करती है उसी प्रकार कवि ने भी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। एदिल की बेगमों को भयभीत दिखाने में कवि का आशय यही है कि शिवाजी के साहसी कारनामों से शत्रु आतंकित है।

(५) एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि कवि का कथन आवेगयुक्त होता है। कथन प्रशस्ति और आवेग को व्यक्त करने वाले हैं। लाजाइनस का कथन है कि—"मैं विश्वासपूर्वक दृढ़ता से कह सकता हूँ कि जो सच्चा आवेग अगम्य उत्साह के झंझा का रूप लेकर आविर्भूत होता है और मानों वक्ता के शब्दों को उन्मद अनुप्राणित कर देता है; उसके यथास्थान व्यक्त होने से जैसे उदात्तता भर जाती है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।"[१] तात्पर्य यह है कि भूषण के काव्य में जो आवेग व्यक्त हुआ है, उसमें अदम्य उत्साह है और वह प्रशस्ति का औपचारिक रूप नहीं है और न ही यह निम्न

---

[१] **पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा, सं० डा० (श्रीमती) सावित्री सिन्हा, पृ० ५१ और ५२**

कोटि की प्रशस्ति है। सब से बड़ा कारण तो यह है कि कवि ने निज के लाभ से प्रशस्ति नहीं गाई। साथ ही अपने भीतरी आवेगों को दबाने का प्रयास भी कवि ने कहीं नहीं किया है। कवि का आवेग स्वतःस्फूर्त है।

इन कुछ विशेषताओं के कारण कवि की शैली विशिष्ट हो गई है। शिवराजभूषण में कवि का ध्यान अलंकारों पर रहने के कारण कवि को अपने आवेगों को अलंकारबद्ध करना पड़ा है। भीतर के आवेग को शास्त्रीय ढंग से कहने का प्रयास कवि ने किया है। प्रशस्ति में प्रशंसा होती है और प्रशस्ति अलंकारिक भाषा में हो तो गुणकथन अधिक होगा और वर्णन कम। इसीलिए काव्य में स्तुतिवाले अंश भी आ गये हैं। इस प्रकार के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं :

(१) आज गरीबनिवाज मही पर तो सो तुही सिवराज बिराजै।[1]
(२) है नरलोक में राज बड़ो सब राजन में सिवराज बड़ो है।[2]
(३) भूषन भिच्छुक भूप भए भलि भीख लै केवल भ्वैसिला ही की।[3]
(४) को कबिराज बिभूषन होत बिना कबि साहितनै को कहाए।
को कविराज सभाजित होत सभा सरजा के बिना गुन गाए।[4]

........आदि आदि।

वेदों में जैसे वैदिक कवियों ने इन्द्र, वरुण आदि की प्रशस्तियाँ गाई हैं और उन प्रशस्तियों की जो शैली रही है कुछ उसी तरह की शैली भूषण ने भी अपनाई है। ऋग्वेद २·१२ में इन्द्र का एक इसी शैली में लिखा हुआ गीत दिया जा रहा है—

वह हर गरीब-अमीर (स्तोता) की सुनता है।
मुसीबत में पड़े पुरोहित का भी उसे ध्यान है।
जो उसके लिए सोमरस तैयार करता है—उसका ध्यान तो आते ही—
उमसे होंठ चसक उठते हैं।
ये सब घोड़े और रथ,
ये ग्राम और ग्रामीणों का यह पशु-धन,
यह सूर्य और यह सुहावनी सुबह,
ये गहरी नदियाँ
—सब इन्द्र के अनुशासन में हैं।

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५५
[2] वही, छं० सं० २१६
[3] वही, छं० सं० २४३
[4] वही, छं० सं० ३६३

जहाँ भी कहीं सेनाएँ, युद्ध के लिए, परस्पर सम्मुख होती हैं
—इधर या उधर—
दोनों के महारथी एक इन्द्र का ही, सहायता के लिए, आह्वान करते हैं।
उसके बिना कोई विजय असम्भव है,
एक उसी की ही अपेक्षा हर योद्धा को सदा बनी रहती है,
शत्रु कितना भी बड़ा क्यों न हो, बढ़-चढ़ कर क्यों न आया हो,
—इन्द्र उसे क्षण में चूर कर सकता है।
........आदि आदि।[1]

जैसे यहाँ इन्द्र की प्रशस्ति गाई गई है ठीक इसी तरह भूषण ने भी शिवाजी और छत्रसाल की प्रशस्ति गाई है। अन्तर इतना है कि दोनों युगों के पात्रों में अन्तर होने के कारण वस्तु में अन्तर है। वैदिक कवि ने जहाँ प्रकृति का चित्र खींचा है वहाँ भूषण ने शिवाजी की वीरता के ऐतिहासिक कारनामों का उल्लेख किया है। शैली एक ही प्रकार की है। शिवाजी की वीरता का कुछ इसी शैली में वर्णन दिया जा रहा है—

(१) साहितनै सरजा समथ्थ सिवराज कबि,
भूषन कहत जीबौ तेरो ही सफल है।
तेरौ करवाल करै म्लेच्छन कौ काल,
बिन काज होत काल बदनाम भूमितल है॥[2]

(२) को दाता को रन चढ्यौ, को जग पालनहार।
कबि भूषन उत्तर दियौ, सिव नृप हरि-अवतार॥[3]

(३) दच्छिन-नाइक एक तुही, भुवि-भामिनी कौ अनुकूल ह्वै भावै।
दीनदयाल न तो सो दुनी, अरु म्लेच्छ के दीनहिं मारि मिटावै॥
श्री सिवराज भनै कवि भूषन तेरे सरूपहि कोउ न पावै।
सूर्य के बंस में सूर-सिरोमनि ह्वै करि तूं कुलचन्द कहावै॥[4]
........आदि आदि।

८. ८. काव्यरूप

शैली का अध्ययन जब वस्तुमूलक ढंग से किया जाने लगता है तो कवि के काव्यरूप पर सहज ही में ध्यान चला जाता है। काव्य का अध्ययन करते समय

---

[1] प्राचीन भारतीय साहित्य, विंटरनित्ज (अनुवादक : लाजपतराय), पृ० ६५
[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ८१
[3] वही, छं० सं० ३८५
[4] वही, छं० सं० १६७

काव्य के गठन पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। कवि अपने आशय को व्यक्त करने के लिए अभिव्यक्ति की जिन प्रणालियों को अपनाता है, उन्हीं के आधार पर काव्य अपना रूप धारण करता जाता है। आदि से अन्त तक कव्य की जो सुसंघटना होती है या काव्य (किसी एक सम्पूर्ण कृति) में जिन आधारों पर गठित होता है उसका अध्ययन करना काव्यरूप का अध्ययन करना है। रूप और शैली में अन्तर है। साहित्य कोश के अनुसार—"शैली वह प्रक्रिया है, जिसमें हम किसी वस्तु को समाविष्ट देखते हैं। रूप का सम्बन्ध वस्तु से होता है, प्रक्रिया से नहीं। शैली बदली जा सकती है। किसी साहित्यिक कृति की शैली हम तभी पहचान सकते हैं, जब यह जान लें कि वह प्रक्रियाओं को मूर्त करनेवाला एक तत्त्वमात्र है तथा उस वृत्ति से दूसरे ढंग से दूसरी शैली में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। फिर भी प्रक्रिया समझ लेने तथा कृति को उसमें प्रतिष्ठित कर लेने के बाद रूपात्मक तत्त्व और शैली तत्त्व में अन्तर नहीं रह जाता।"[१] भूषण के काव्य में पाए जानेवाले काव्यरूपों का अध्ययन निम्न प्रकार है :

भूषण की रचनाओं वाले अध्याय में यह कहा गया है कि शिवराजभूषण कवि की एकमात्र प्रामाणिक रचना है। शिवा-बावनी और छत्रसालदशक दोनों ही रचनाएँ संग्रह मात्र हैं। किन्तु फिर भी इन पर संक्षेप में नीचे विचार किया जा रहा है।

८. ८. १. शिवराजभूषण

शिवराजभूषण के प्रारम्भ में गणेशजी की स्तुति है, बाद में भवानी की स्तुति है। इसके पश्चात् शिवाजी के पूर्वजों का अति संक्षिप्त परिचय प्रबन्धात्मक ढंग से दिया गया है। तत्पश्चात् शिवाजी के जन्म का उल्लेख कवि ने उसी ढंग से किया है जैसे किसी प्रबन्ध काव्य में होता है—

महावीर ता बंस में भयौ एक अवनीस।
लियौ बिरद सीसोदिया दियौ ईस को सीस ॥[२]

इसे मुक्तक नहीं कह सकते क्योंकि "ता बंस में" अपने आप में पूर्वापर सम्बम्ध पर निर्भर है। शिवाजी के परिचय के बाद उनके द्वारा किलों को जीतने, उनके राजा होने और अन्त में रायगढ़ किले को राजधानी बनाकर उसमें वास करने का वर्णन है। रायगढ़ किले का वस्तुवर्णन प्रबन्धात्मक ढंग से ही लिखा गया है। एक उदाहरण—

---

१ **साहित्य कोश (प्रथम संस्करण), पृ० ८४८**

२ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५**

मनिमय महल सिवराज के इमि रायगढ़ में राजहीं।
लखि जच्छ किंनर सुर असुर गंधरब हौंसनि साजहीं॥
उत्तंग मरकत-मन्दिरन मधि बहु मृदंग यों बाजहीं।
घन-समय मानहु घुमड़ि करिघन घनपटल गलगाजहीं॥[1]

रायगढ़ वर्णन के बाद कवि ने अपना परिचय संक्षेप में दिया है। वह सारी प्रस्तावना प्रबन्धात्मक ढंग से लिखी गई है। बाद के काव्य का विषय शिवचरित्र है। स्वयं कवि यही कहता है—

सिवचरित्र लखि यौं भयौ कवि भूषन के चित्त।
भाँति भाँति के भूषननि सों भूषित करौं कबित्त॥[2]

शिवचरित्र को कवि अलंकारों द्वारा भूषित करना चाहता है और शिवाजी के जीवन से संलग्न प्रमुख घटनाओं का, कम से कम उन घटनाओं का जिनके कारण वे लोकप्रिय बने हैं, कवि ने अनेक बार उल्लेख किया है। इतिहास की उन घटनाओं को क्रम से जोड़कर उपस्थित किया जाय तो कथा का कुछ निर्वाह होता दिखाई देता है। ऐतिहासिक प्रामाणिकता पर विचार करते समय कथाक्रम को ऐतिहासिक क्रम से सन्-संवत् के साथ लिखने का प्रयास किया गया है। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि काव्य में प्रबन्धात्मकता है।

इस काव्य में शिवचरित्र है अतः इसे एक दृष्टि से चरितकाव्य कहना चाहिए। साहित्य कोश में डाक्टर शम्भुनाथसिंह ने चरितकाव्य की विशेषताएँ इस प्रकार लिखी हैं—"चरितकाव्य की शैली जीवन-चरित्र की शैली होती है। उसमें प्रारम्भ में या तो ऐतिहासिक ढंग से नायक के पूर्वज माता-पिता और वंश का वर्णन रहता है या पौरणिक ढंग से उसके पूर्व भावों का वृत्तान्त तथा उसके जन्म के कारणों का वर्णन होता है अथवा कथाकाव्य की तरह उसके माता-पिता, देश और नगर का वर्णन रहता है वह कथाकाव्य के अधिक निकट तथा शास्त्रीय प्रबन्ध काव्यों की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक, सरल और लोकोन्मुख होता है....सब में कोई न कोई प्रेम-कथा अवश्य होती है। और उसका स्थान गौण नहीं महत्त्वपूर्ण होता है....चरितकाव्य प्रायः उद्देश्य प्रधान होता है....यह उद्देश्य कभी धार्मिक, कभी प्रशस्तिमूलक और कभी कल्याणाभिनिवेशी होता है। परन्तु उसका उद्देश्य अधिक उभरा हुआ और स्पष्ट होता है, शास्त्रीय प्रबन्ध काव्यों जैसा कलात्मक सौन्दर्य के भीतर निहित नहीं होता। इसी कारण चरितकाव्य उद्देश्यात्मक, प्रचारात्मक या प्रशस्तिमूलक

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १६**

[2] **वही, छं० सं० ३४८**

होते हैं।"[1] इस दृष्टि से देखें तो चरितकाव्य की कुछ विशेषताएँ शिवराजभूषण में मिल जाती हैं। शिवाजी की कथा ऐतिहासिक है और नायक की वीरता का वर्णन उसमें हुआ है। यह प्रशस्तिमूलक काव्य है। साथ ही लोककल्याणाभिनिवेशी है। उद्देश्य स्पष्ट है—

जे सोहात सिवराज कों ते कवित्त रसमूल।
जे परमेस्वर पै चढ़ै तेई आछे फूल॥[2]

इतना सब कुछ होते हुए भी शिवराजभूषण न तो प्रबन्ध काव्य है न यह चरित-काव्य है। प्रमुखतः यह मुक्तक काव्य है। मुक्तक होने के साथ-साथ यह लक्षण ग्रन्थ है। ग्रन्थ का क्रम अलंकारों के अनुसार चलता है। मिश्रबन्धुओं का अनुमान है कि कवि ने अलंकारों के विचार से समय-समय पर स्फुट रूप में छन्द बनाए और बाद में उन्हें ग्रन्थ के रूप में परिणत कर दिया। स्फुट रूप में रचना लिखी गई और बाद में उनका क्रम निश्चित किया गया है। अतः प्रमुख रूप से मुक्तक रचना ही है। अलंकारों के लक्षण कवि ने दोहों में दिए हैं और उनके उदाहरण शिवचरित्र से सम्बन्धित हैं। अतः यदि लक्षणोंवाले भाग को और प्रस्तावनावाले भाग को (जिसके सम्बन्ध में ऊपर लिखा गया है कि यह प्रबन्धात्मक है) छोड़ दें तो बाद का सारा काव्य मुक्तक काव्य ही है

समय संकोच और कला मुक्तक काव्य का मूल रहस्य है। कम समय में सीमित शब्दों में कलात्मक ढंग से जीवन का खण्ड-चित्र उपस्थित करना मुक्तक काव्यकार की विशेषता होती है। बिहारी का मुक्तक काव्य इस दृष्टि से उत्कृष्ट है। भूषण का मुक्तक काव्य कुछ दूसरी विशेषताएँ रखता है। मुक्तक काव्य का आनन्द तब तक नहीं लिया जा सकता जब तक कि हम उसके प्रसंग को ठीक ढंग से समझ न पाएँ। बिहारी के मुक्तकों के प्रसंग जीवन के लौकिक आनन्द पक्ष से, उस पक्ष से जिसमें क्रीड़ा और आनन्द है, सम्बन्धित हैं। भूषण के मुक्तकों का सम्बन्ध अपने युग की ज्वलंत समस्या से है। वह अपने युग के इतिहास से अपनी सामग्री का चयन करते हैं। इस युग के इतिहास का ज्ञाता ही कवि के मुक्तकों का रस ले सकता है। उदाहरणार्थ एक कवित्त नीचे दिया जा रहा है—

कैयक हजार किए गुर्ज-बरदार ठाढ़े,
करिकै हुस्यार नीति सिखई समाज की।
राजा जसवंत कों बुलायकै निकट राखे,
जिनकों सदाई रही लाज स्वामि-काज की॥

---

[1] साहित्य कोश (प्रथम संस्करण), पृ० २८६ और २८७

[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३८७

भूषन तबहुँ ठिठकत ही गुसलखाने,
सिंह-सी झपट मन मानी महाराज की।
हठ तें हथ्यार फेंट बाँधि उमराव राखे,
लीन्ही तब नौरंग ने भेंट सिवराज की।।[1]

प्रस्तुत कवित्त में कवि ने उस समय का वर्णन किया है जब औरंगजेब के दरबार में शिवाजी उनसे मिलने के लिए उपस्थित हुए थे। जयसिंह का विश्वास पाकर वे दरबार में जयसिंह के पुत्र रामसिंह के साथ आए थे। उस दिन दरबार बड़ा सजा हुआ था। अमीर उमराव अपने-अपने स्थान पर दरबारी पद्धति से बैठे हुए थे। आलमगीर की उस दिन ४६ वीं वर्षगांठ थी। सब दरबारियों को उनकी स्थिति और पद के अनुसार सिरोपाव बाँटे जा रहे थे। ठीक ऐसे समय में शिवाजी वहाँ रामसिंह के साथ उपस्थित हुए। ऐसे अवसर पर भी औरंगजेब ने अपनी रक्षा का (स्वयं अपने दरबार में होने पर भी, क्योंकि इससे पूर्व की शिवाजी सम्बन्धी घटनाओं से वह परिचित था। एक तो यह कि अफजलखान से भेंट लेते समय ही उसका बध कर दिया, दूसरे शाईस्तखान के डेरे में पहुँच कर—सारी सुरक्षा के बावजूद उसके पुत्र को मार दिया और उसकी अंगुलियाँ काट दीं, अतः शिवाजी किस समय झपट कर खून कर दे, इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता था इसीलिए अपने दरबार में होने पर भी अपनी रक्षा का प्रबन्ध करना उचित समझा) प्रबन्ध किया। प्रस्तुत कवित्त में शिवाजी से भेंट लेने से पूर्व अपनी रक्षा के लिए उसने जो व्यवस्था की उसी का वर्णन है।

औरंगजेब ने कितने ही गुर्ज-बरदारों (गदाधारियों) को पहले से अपनी नीति का समुचित ज्ञान दे, पूरी सावधानी के साथ रहने के लिए कहकर उपयुक्त स्थलों पर खड़ा कर दिया। किन्तु फिर भी ये तो गुर्जबरदार ही ठहरे, समय पर ये काम न आये (आखिर आज्ञाधारी हैं, सम्भवतः आज्ञा देने का अवसर ही न आये) अतः जसवन्तसिंह को बादशाह ने अपने निकट बुलाकर रखा, औरंगजेब को जसवन्तसिंह की स्वामिभक्ति पर विश्वास था। जैसे ही शिवाजी वहाँ (गुसलखाने में, भेंट के लिए) उपस्थित हुए, गुसलखाने में शिवाजी तब ठिठक ही रहे थे, उसी समय उनमें सिंह की मनमानी झपट का अनुभव किया गया। शिवाजी का वहाँ पहुँचना सिंह का पहुँचना था। सिंह किसी भी स्थान पर अपनी वीरता से विमुख नहीं होता। सिंह सदैव अपनी चाल से चलता है और उसके साहस एवं वीरता में कभी अन्तर नहीं आता। इसी तरह शिवाजी भी अपनी मनमानी चाल से ठिठकते गुसलखाने में उपस्थित हुए। इस समय औरंगजेब ने पूरी व्यवस्था कर ली थी।

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४४२**

उमरावों से कहकर जबरन हथियारों की मनाही कर दी। उमरावों को कतार बाँध कर खड़ा किया (शिवाजी को हथियार लाने नहीं दिया गया)। इस तरह से पूरी व्यवस्था हो जाने के बाद औरंगजेब ने शिवाजी से भेंट ली। ऐसी अवस्था में बादशाह ने शिवाजी से नजराना स्वीकार किया। नजराना देने के लिए शिवाजी आगे बढ़ रहे थे, उस समय कहीं सिंह की तरह झपट न जाए यह भय औरंगजेब को बना हुआ था इसीलिए नजराना स्वीकार करने से पूर्व सारी व्यवस्था की गई।

उपर्युक्त उदाहरण में जो खण्ड चित्र प्रस्तुत किया गया है वह अपने आप में पूर्ण है और भाव की सामग्री प्रस्तुत करने वाला है। औरंगजेब के मन में शिवाजी के प्रति आशंका थी अतः उसने पूरा प्रबन्ध किया। नायक की प्रतिक्रिया प्रतिनायक पर क्या होती है, यही इस कवित्त में दिखाया गया है। कवित्त मुक्तक है।

भूषण ने नायक के उत्साह का जहाँ वर्णन किया है (नायक के पक्ष में), वहाँ भय की स्थिति का वर्णन भी किया है (प्रतिनायक के पक्ष में)। इन दोनों अवस्थाओं के अनेक खण्ड चित्र भूषण के काव्य में हैं, काव्य में किसी नायिका का उल्लेख नहीं हुआ है। प्रायः वीरकाव्यों में नायिकाओं का चित्रण होता है किन्तु यह उससे एकदम अछूता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि नायक को छोड़कर नायक की ओर से लड़ने वाले उनके कंधे से कंधा भिड़ाकर रहने वाले किसी सेनापति या सरदार का नामोल्लेख तक कवि ने नहीं किया है। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इस काव्य को (उनका आशय भूषण के समस्त काव्य से है) शुद्ध वीरकाव्य कहा है, वह बिलकुल ठीक है।[१]

अत्र नीचे शिवराजभूषण की विशेषताएँ लिखी जा रही हैं—

(१) शिवराजभूषण का नायक ऐतिहासिक राजा है।

(२) इस ग्रन्थ में केवल वीर रस का प्रमुख रूप से वर्णन हुआ है। शत्रु पक्ष में भयानक रस का वर्णन हुआ है, जो एक दृष्टि से नायक के पक्ष में वीर रस को पुष्ट करने में सहायक हुआ है।

(३) इस ग्रन्थ में किसी नायिका का वर्णन नहीं हुआ है। एक दृष्टि से शृंगार रस का अभाव है।

(४) नायक के चरित्र का गुणगान, उसकी कीर्ति का वर्णन प्रशस्तिमूलक ढंग से हुआ है।

(५) ग्रन्थ के आरम्भ में प्रस्तावना प्रबन्धात्मक ढंग से और बाद में सारा काव्य मुक्तक ढंग से लिखा गया है।

---

[१] **हिन्दी साहित्य का अतीत–भाग २, शृङ्गारकाल, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ७००**

(६) यह अलंकारों का लक्षण-ग्रन्थ है। प्रस्तावना के बाद एक सौ पाँच अलंकारों के लक्षण दोहों में और उनके उदाहरण प्रधानतः कवित्त और सवैये छन्द में दिए हुए हैं। ये सभी उदाहरण शिवचरित्र पर घटित किए गए हैं।

(७) काव्य का उद्देश्य लोकधर्म की रक्षा करने वाले नायक का गुणगान कर लोकधर्म की रक्षा का आग्रह करना तथा राष्ट्रीय भावनाओं को अभिव्यक्ति देना है।

इन विशेषताओं के आधार पर हम इतना कह सकते हैं कि शिवराजभूषण एक लक्षण-ग्रन्थ होते हुए भी प्रधान रूप से शुद्ध वीर काव्य है। इस वीरता का वर्णन मुक्तक पद्धति में हुआ है। उद्देश्य इसका स्पष्ट और उभरा हुआ होने के कारण और ऐतिहासिक चरितगान से इसका सम्बन्ध होने के नाते कथात्मक प्रवाह के अभाव में भी यह चरितकाव्य है।

८. ८. २. शिवाबावनी एव छत्रसालदशक

शिवाबावनी एवं छत्रसालदशक दोनों ही स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं, संग्रह मात्र हैं। इस बात को मिश्रबन्धुओं[1] और पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र[2] दोनों ने स्वीकार किया है। मिश्रबन्धुओं की ग्रन्थावली में ये दोनों रचनाएँ इन्हीं नामों को प्रयुक्त कर प्रकाशित की गई हैं। मिश्रजी ने इनके नाम हटा दिए हैं। उन्होंने अपने सम्पादित ग्रन्थ 'भूषण' में इन्हें प्रकीर्ण रचनाओं के अन्तर्गत रखा है। शिवाबावनी का क्रम विभिन्न सम्पादकों ने विभिन्न ढंग से निश्चित किया है। इस सम्बन्ध में वे लिखते हैं—"यह कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं, वरन् भूषणजी के ५२ छन्दों का संग्रह मात्र है। इसी हेतु प्रचलित प्रतियों का क्रम छोड़कर हमने नया क्रम स्थिर किया है क्योंकि हम उक्त क्रम को बहुत ही अनुपयुक्त समझते हैं।"[3]

संख्याओं के आधार पर रचनाओं का नाम दिए जाने का क्रम हिन्दी में ही नहीं संस्कृत में भी प्रचलित रहा है। प्रायः कवि लोग अपने फुटकर पद्यों की रचनाओं को संख्यापरक नाम दे दिया करते थे। सौ पद्यों को शतक कहते हैं। भर्तृहरि के तीन शतक और अमरुक का अमरुकशतक प्रसिद्ध है। शतक की तरह सतसई का नामकरण भी संख्याओं के आधार पर दिया हुआ है। हजारा भी लिखे गए हैं। और तो और चौबीसी, पच्चीसी, बाईसी, छब्बीसी और छत्तीसी तक लिखे गये हैं। चालीसा भी मिलते हैं।

---

[1] भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु (सातवाँ संस्करण), पृ० १०८

[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ४ और ५

[3] भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु (सप्तम संस्करण), पृ० १०८

बावनी काव्यरूप का आधार संख्यापरक ही है। श्री वासुदेवसिंह ने लिखा है—"बावनी काव्यरूप की रचना नागरी वर्णमाला के आधार पर होती है। हिन्दी में स्वर और व्यंजन मिलाकर ५२ अक्षर होते हैं। प्रत्येक अक्षर के आधार पर एक-एक छन्द किया जाता है। इन बावन अक्षरों को ब्रह्म की स्थिति का अंश मानकर इन्हें पवित्र अक्षर के रूप में छन्द के आरम्भ में प्रयुक्त किया जाता है।"[1] इस तरह इतना तो ज्ञात होता है कि बावनी कव्यरूप भी संख्यापरक काव्यरूपों की तरह बहुत पहले से मिलते हैं। वासुदेवसिंह ने इसकी परम्परा तेरहवीं और चौदहवीं शताब्दी से मानी है।[2] कबीर की बावन आखरी भी इसी प्रकार की रचना है। उन्हीं के अनुसार बावनी काव्य लिखने की प्रथा जैन कवियों में अधिक रही है। उन्होंने पृथ्वीचन्द के "मातृका प्रथमाक्षर दोहरा" को प्रथम बावनी काव्य माना है। १७ वीं और १८ वीं शताब्दी के कवियों ने इस रूप को विशेष महत्त्व दिया। इनका मुख्य विषय धार्मिक या नैतिक होता था। उपदेश देने के लिए इस काव्यरूप को प्रमुख रूप से अपनाया गया है। इस प्रकार की कई अप्रकाशित बावनियों का उल्लेख विद्वान लेखक ने किया है और वे अब भी बीकानेर में सुरक्षित हैं।[3]

भूषण की शिवाबावनी को बावनी नाम संख्या के आधार पर दिया गया है। और बावनियों की तरह न तो यह अक्षरों के क्रम से लिखी गई है और न ही इस काव्य का विषय धार्मिक या नैतिक ही है। इस काव्य का विषय लगभग वही है जो शिवराजभूषण का है। अन्तर केवल इतना ही है कि यह अलंकार ग्रन्थ नहीं है साथ ही इसमें शिवराज भूषण की तरह कोई प्रस्तावना भी नहीं है। यह शुद्ध वीरकाव्य है, जो मुक्तक रूप में लिखा गया है। छत्रसालदशक भी इसी तरह संख्यापरक रचना है। इसका विषय भी वही है, जो शिवावावनी का है, अन्तर केवल इतना ही है कि उसमें शिवाजी की वीरता का वर्णन है और इसमें छत्रसाल की वीरता का।

संख्याओं के आधार पर यदि काव्यरूप निश्चित किए जाते हैं तो उक्त दोनों रचनाओं को सम्पादक के आधार पर—कवि के आधार पर नहीं—बावनी और दशक परम्परा के अन्तर्गत रख सकते हैं।

८. ९. निष्कर्ष

काव्य के क्षेत्र में भूषण की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे कवि और आचार्य दोनों थे। प्रधान रूप से कवि होने के नाते उनके काव्य का भाव पक्ष प्रबल रहा है।

---

[1] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६–७, अंक २, पृ० १४९ (श्री वासुदेवसिंह का लेख—"हिन्दी में बावनी काव्य की परम्परा")

[2] वही, पृ० १५०

[3] वही, पृ० १५२

आचार्य होने के नाते वे युग की शास्त्रीय पद्धति से परिचित थे। इस परिचय का लाभ उनके काव्यपक्ष को मिला है। यह वह समय था जब काव्य शास्त्र का अनुसरण कर रहा था अतः स्वाभाविक रूप में अपने काव्य को सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न कवि लोग किया करते थे। फिर भूषण तो आचार्य थे अतः उनके काव्य में शास्त्रीय सिद्धान्तों का व्यावहारिक प्रयोग हुआ है। कवि ने जिस मूल उद्देश्य को दृष्टि में रखकर काव्य की सृष्टि की उसी के अनुरूप भाषा और काव्य की पद्धति का उन्होंने अनुसरण किया है। काव्य के मूल रस (वीर रस) के उत्कर्ष को दिखलाने में तोड़मरोड़ भी की है किन्तु यह विषयानुरूप है। छन्दों के निर्वाचन में, मुहावरे और कहावतों के प्रयोग में उन्होंने विषय और संदर्भ का ध्यान रखा है। उनके काव्य की धारा प्रत्यक्ष रूप से अपने भावों का बोध कराते हुए बहती चलती है। वह श्रोताओं में और पाठकों में वीरश्री की भावना जगाने में समर्थ है। उनकी काव्य प्रतिभा पर स्वयं आचार्य शुक्ल ने मुग्ध होकर लिखा—"भूषण अच्छे कवि थे, जिस रस को उन्होंने लिया उसका पूरा आवेश उनमें था।"[1] इसी आवेश के अनुकूल उन्होंने कला का आश्रय ग्रहण किया है। अन्त में हम कह सकते हैं कि भूषण के काव्य का भावपक्ष कलापक्ष का अनुसरण करता हुआ चलता है और वह सफल वीरकाव्य कहलाने का अधिकारी है।

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (नौवाँ संस्करण), पृ० २३८

नवम अध्याय

भूषण की भाषा

भूषण की भाषा

९.१. प्रस्तावना

भूषण से पूर्व ब्रजभाषा का सम्बन्ध मध्यदेश की उस भाषा परम्परा से रहा है जो विकास की प्रत्येक स्थिति में अपने क्षेत्र की सीमाओं का अतिक्रमण करके विस्तृत क्षेत्र की भाषा बनी रही है। इस परम्परा में शौरसेनी प्राकृत, शौरसेनी अपभ्रंश, ब्रजभाषा, खड़ी बोली सभी आती हैं। आरम्भिक युग में इसका साहित्यिक संस्कार पिंगल के रूप में राजस्थान में हुआ। पिंगल दरबारों से सम्बद्ध होकर वह अपनी अभिव्यंजना शक्ति और क्षमता का विस्तार कर सकी। इसका दूसरा संस्कार वैष्णव कवियों के द्वारा हुआ। इससे संस्कृत की शास्त्रीय परम्परा की शृंगार-प्रियता विशेष रूप से और अन्य भावों की क्षमता सामान्य रूप से इसमें आई। रीतिकाल के कवियों ने भक्ति के शृंगार समन्वित संस्कार को शुद्ध शृंगारिक संस्कार में परिणत किया। एक ओर यह शास्त्रीय और पारिभाषिक लक्षण साहित्य की परम्परा को आत्मसात करने लगी तो दूसरी ओर शृंगार की शास्त्रीय मुक्तक परम्परा को वहन करने लगी। इस प्रकार ब्रजभाषा अपने व्यावहारिक क्षेत्र से उठकर शास्त्रीय और साहित्यिक रूप में प्रतिष्ठित हुई। इस प्रतिष्ठा पर्व में इसके पड़ोस के भाषा रूपों और शब्द-समूह ने भी योगदान दिया। यहीं भूषण ने विषय की दृष्टि से इसे एक नवीन मोड़ और विस्तार दिया।

भूषण ने साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित और सुसंस्कृत भाषा को तो ग्रहण किया पर अपभ्रंश और वीरकाव्य की कुछ भूली-बिसरी वीरकाव्योचित भाषा प्रवृत्तियों को भी पुर्नियोजित किया। इसी प्रयत्न में ब्रजभाषा की प्रकृति के कुछ विपरीत पड़ते हुए भी द्वित्वों और संयुक्त-व्यंजनों का प्रयोग किया। शृंगार रसोचित सरस और स्वरबहुल ब्रजभाषा की ध्वनि-व्यवस्था को उन्होंने व्यंजनबहुल भाषा का रूप दिया और उसे वीर रस के अनुकूल बना लिया। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सामान्य रूप से ब्रजभाषा की शास्त्रीय और शृंगारिक रूप योजना को

ग्रहण करते हुए भी उसकी नवीन सम्भावनाओं और उसकी शक्तियों का भी कवि ने उद्घाटन किया है। इस सबके प्रमाण में नीचे भूषण की भाषा का व्याकरणिक और संरचनात्मक रूप संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

६.२. ध्वनियाँ

भूषण द्वारा प्रयुक्त ध्वनियों का विवरण प्रस्तुत करने में कई कठिनाइयाँ हैं। पहली कठिनाई यह है कि हस्तलिखित प्रतियों में ध्वन्यात्मक एकरूपता प्राप्त नहीं होती। मिश्रबन्धुओं द्वारा सम्पादित प्रति[1] और पण्डित विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित प्रति[2] के तुलनात्मक पर्यवेक्षण से ध्वनि सम्बन्धी अनियमितता स्पष्ट हो जाती है। प्रस्तुत विवरण मिश्रजी की प्रति के आधार पर ही दिया गया है और आवश्यकतानुसार अन्य रूपान्तर भी प्रस्तुत किया जायगा। ऐतिहासिक दृष्टि से भूषण की भाषा रीतिकालीन साहित्यिक ब्रजभाषा ही है। ब्रजभाषा की प्रकृति कुछ संस्कृत ध्वनियों से सामंजस्य स्थापित न कर सकी। जैसे—तालव्य श्, मूर्द्धन्य ण्, दन्त्योष्ठ्य व् आदि मूल ध्वनियाँ ब्रजभाषा में क्रमशः स्, न्, ब् में परिवर्तित मिलती

---

१ मिश्रबन्धु वाली प्रति का प्रकाशन नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हुआ है। मिश्रबन्धु लिखते हैं—"सप्तम (युगलकिशोरजी मिश्र के पुस्तकालय गँधौली (सीतापुर) की हस्तलिखित प्रति) और अष्टम (गोविन्द गिल्लाभाई काठियावाड़ की हस्तलिखित प्रति) ग्रन्थों और विशेषतया अष्टम से हमें बहुत सहायता मिली है। छन्द सब से अधिक गिल्लाजीभाई वाली प्रति में मिले परन्तु सब से शुद्ध प्रति पं० युगलकिशोरजी वाली पाई गई। तो भी कहना पड़ता है कि बहुत शुद्ध कोई प्रति न थी और कतिपय तो महा नष्ट-भ्रष्ट थीं। अतः हमें अपनी ओर से सब प्रतियों को मिलाकर एवं अपने कंठस्थ छन्दों द्वारा संशोधित करने पड़े। कतिपय छंद किसी भी प्रति में शुद्ध नहीं मिले। ऐसी दशा में विवश होकर हमें वे छन्द अपनी ओर से शुद्ध करने पड़े हैं। ऐसा करने में किसी छन्द में हमने कोई घटना नहीं घटाई-बढ़ाई।"

—भूषण ग्रन्थावली, सं० मिश्रबन्धु (सप्तम संस्करण), पृ० ५४

२ पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्रजी की पुस्तक "वाणी-वितान" ब्रह्मनाल, काशी से प्रकाशित हुई है। यह प्रति काशिराज पुस्तकालय की हस्तलिखित पुष्पिका के आधार पर प्रकाशित की गई है। इसका लिपिकाल मिश्रजी संवत् १८१८ वै० बतलाते हैं।

—भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, आरम्भ वचन, पृ० ६-७

हैं।[1] जहाँ कहीं तत्कालीन ब्रजभाषा की प्रकृति के विरोध में कुछ ध्वनियों का प्रयोग मिलता है, वहाँ भाषा की प्रकृति के अपवाद स्वरूप ही उनको ग्रहण किया गया है। ऐसी भी कुछ ध्वनियाँ हैं जो वीर रसात्मक काव्यों में प्रयुक्त द्वित्व ध्वनियों की प्रवृत्ति के कारण ब्रजभाषा की सामान्य प्रवृत्ति से कुछ भिन्न पड़ गई हैं और जिनमें अपभ्रंश मिश्रित वीर काव्य भाषा के प्रयोगों का प्रभाव है।

९. २. १. (क) **व्यंजन** : भूषण की भाषा में मिलने वाले व्यंजन इस प्रकार हैं :—

: कंठ्य—क्, ख्, ग्, घ्

: तालव्य—च्, छ्, ज् झ्

: मूर्द्धन्य—ट्, ठ्, ड्, ढ्

: दन्त्य—त्, थ्, द्, ध्

: ओष्ठ्य—प्, फ्, ब्, भ्

: नासिक्य—न्, म्, न्ह, म्ह

: अंतस्थ—र्, ल्

: उष्म—स्, ह्

: अर्धस्वर—य् व्

९. २. २. (ख) **स्वर** : /अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ/

ये ध्वनिग्राम (Phonemes) माने जा सकते हैं। इनमें से कुछ के संस्वन (Auophones) भी हैं। कुछ ध्वनियों का संस्वनात्मक विवरण इस प्रकार है।

९. २. ३. /ड्/ : (ड्), (ड़्)

: (ड्) का प्रयोग १—पद के आदि में, २—बलाघात युक्त होने[2], द्वित्व अथवा संयुक्त होने पर पद के मध्य में होता है। उदाहरण—

---

[1] प्राचीन ब्रज में तीनों ऊष्म ध्वनियों—श, ष्, स्—का प्रयोग पाया जाता है किन्तु प्राचीन हस्तलिखित पोथियों में हम श् के स्थान पर स् बहुलता से लिखा हुआ पाते हैं, इससे यह प्रकट होता है कि स्, श् का स्थान ग्रहण कर रहा था और श् का प्रयोग कदाचित् लिपि परम्परा के अनुरोध से होता था। —ब्रजभाषा, डा० धीरेन्द्र वर्मा (प्रथम संस्करण), पृ० ४५

[2] ऐसे शब्द वे हैं जो निषेधात्मक उपसर्गों से युक्त हैं। इनमें बलाघात उपसर्ग पर नहीं, मूल शब्द पर रहता है। वही बलाघात /-ड्-/ की सुरक्षा करता है।

१—/डमरू/[१], /डर/[२], /डावरे/[३], /डाह/[४], /डील/[५]

२—/निडर/[६] "निर्भय", /अडोल/[७] "अचल", /अडग/[८] "अटल", /बिडारी/[९] "दूर करके"

/ड्+ड्/ : /बिड्डाल/[१०] "बिडालाक्ष राक्षस"

/ङ्+ड्/ : मुंडड्डुर/[११] "मुंड डालकर"

/ण्+ड/ : /अखंड/[१२], /नवखंड/[१३]

(ड़्) का प्रयोग पद के मध्य में, ऊपर की स्थितियों के अतिरिक्त मिलता है। उदाहरणार्थ :—

/छोड़ि/[१४], /खड़गी/[१५], /बड़ो/[१६], /गड़ो/[१७]

९. २. ४ : /ढ्/ : (ढ्), (ढ़्)

/ढ्/ का प्रयोग सदैव पद के आरम्भ में मिलता है। उदाहरण—

/ढव/[१८], /ढाल/[१९], /ढेरु/[२०]

/ढ़्/ सदैव अन्यत्र प्रयुक्त होता है। उदाहरण—

/गढ़पति/[२१], /काढ़ि/[२२], /डाढ़ी/[२३]

मिश्रबन्धुओं की प्रति में कुछ स्थलों पर तालव्य 'श्' का प्रयोग मिलता है।[२४] किन्तु ब्रजभाषा की प्रवृत्ति को देखते हुए यही अधिक उचित जान पड़ता है

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४१३

२ वही, छन्द संख्या ६२

३ वही, छं० सं० २४०

४ वही, छं० सं० ५३९

५ वही, छं० सं० ३६४

६ वही, छं० सं० ९५

७ वही, छं० सं० ४५

८ वही, छं० सं० ४६२

९ वही, छं० सं० १०८

१० वही, छं० सं० २

११ वही, छं० सं० ३३३

१२ वही, छं० सं० ४०९

१३ वही, छं० सं० ४०९

१४ वही, छं० सं० ७०

१५ वही, छं० सं० ३३८

१६ वही, छं० सं० २१९

१७ वही, छं० सं० २१९

१८ वही, छं० सं० ४४७

१९ वही, छं० सं० ५२१

२० वही, छं० सं० २००

२१ वही, छं० सं० ५३०

२२ वही, छं० सं० ५३०

२३ वही, छं० सं० ५०४

२४ /शिव/ "शिवराजभूषण, छं० सं० २४"/शिवभूषन/ "शिवराजभूषण, छं० सं० ३०" /बिहारीश्वर/ "शिवराजभूषण, छं० सं० २७" /विश्वेश्वर/ "शिवराज भूषण छं० सं० २७" आदि—प्रस्तुत उदाहरण मिश्रबन्धु की भूषणग्रन्थावली (सप्तम संस्करण) से दिए गए हैं।

कि भूषण की भाषा में इस ध्वनि का अस्तित्व न माना जाय। मिश्रजी की प्रति में सर्वत्र स् मिलता है। मूर्द्धन्य ण् का प्रयोग भूषण में सदैव तत्सम शब्दों में भी न् के रूप में ही हुआ है। मूर्द्धन्य ष् का अस्तित्व स्वतन्त्र ध्वनि के रूप में तो भूषण में है ही नहीं पर लिपि में इस चिह्न का प्रयोग लिपिकारों ने किया है। मिश्रजी की प्रति में जहाँ इस ध्वनि का उच्चारण कण्ठ्य महाप्राण ख् के समान है वहाँ इसके नीचे बिन्दु रख दिया गया है। वहाँ ख् के समान शब्द का उच्चारण नहीं है वहाँ अधिकांश में ख् का ही उच्चारण अभिप्रेत दीखता है।

९. २. ५. /य्/ : के सम्बन्ध में पहली प्रवृत्ति ब्रजभाषा से समान है : य) ज। नीचे की सूची से यह प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है। /सुजस/[१] (सुयश), /कलजुग/[२] (कलियुग), /जुत/[३] (युत), /जच्छ/[४] (यक्ष). /जवनी/[५] (यवनी), /जुगल/[६] (युगल) आदि।

अन्त्य प्रयुक्त होने पर य् इ के समान उच्चरित दीखता है। आज भी हिन्दी और ब्रजभाषा में अन्त्य '–य्' स्वरवत् उच्चरित दीखता है, गाय/गाइ। भूषणग्रन्थावली की आधारभूत प्रतियों में चाहे अन्त में–य् हो पर उच्चारण -इ के समान ही होता है। उदाहरण—

लिखा हुआ रूप	**सम्भावित उच्चारण**
जगाय[७]	जगाइ
छिपाय[८]	छिपाइ
जय[९]	जइ
होय[१०]	होइ
समुदाय[११]	समुदाइ
प्रमेय[१२]	प्रमेइ

य् के सम्बन्ध में तीसरी प्रवृत्ति इसके संयुक्त रूपों में प्रयोग की है। य् के साथ कई व्यंजनों का संयोग संभव है।[१३] सामान्यतः य्, व् तथा र् से संयुक्त व्यंजन रूप ही पद आदि के आरम्भ में मिलते हैं। अन्यथा भूषण की ब्रजभाषा में पद का आरम्भ संयुक्त ध्वनि से नहीं होता।

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २४
२ वही, छन्द सं० ५७
३ वही, छन्द सं० २३
४ वही, छन्द सं० १६
५ वही, छन्द सं० २११
६ वही, छन्द सं० १२५
७ वही, छन्द सं० ३४
८ वही, छन्द सं० ७७
९ वही, छन्द सं० २
१० वही, छन्द सं० ७९
११ वही, छन्द सं० ७७
१२ वही, छन्द सं० १९९
१३ देखिए आगे संयुक्त व्यंजनों का विवरण।

/य्/ से आरम्भ होने वाले कुछ तो सर्वनाम या सार्वनामिक विशेषण, रीति-वाचक क्रिया विशेषण और संज्ञा शब्द मिलते हैं। जैसे—/यह[१]/, /ये[२]/, /या[३]/, /यों[४]/, /यौं[५]/, /यारो[६]/ आदि। आज की मथुरा जिले की ब्रजभाषा में ये शब्द 'य्' तथा 'ज्' दोनों से युक्त मिलते हैं।[७] या/जा, याकी/जाकी/, याते/जाते। भूषण में भी किसी स्थान पर य् से और किसी स्थान पर ज् से युक्त इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं। जैसे—यातें[८] /जाते,[९] जा[१०]/या[११], आदि रूप मिलते हैं। सूर[१२] आदि ब्रजभाषा के कवियों में भी दोनों ही रूप स्वतन्त्र वैविध्य (Free Variation) के रूप में मिलते हैं। वस्तुतः य् वाले शब्द श्रुति से युक्त ही माने जा सकते हैं। इस पर आगे विचार किया गया है।

य् और व् श्रुतियों के सम्बन्ध में कोई विशेष नियम नहीं दिये जा सकते क्योंकि इनको चिह्नित करने की प्रणाली देवनागरी में नहीं है। वैसे ब्रजभाषा की दृष्टि से य् श्रुतियों की स्थितियाँ इस प्रकार हो सकती हैं। उदाहरण :—

स्थिति	उदाहरण	ध्वन्यात्मक लेख	अर्थ
इ—अ	/यह[१३]/	य् (इ अह्)	'यह'
	/पियत[१४]/	य् (प्इ अत्)	'पीता'

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १
२ वही, छन्द सं० ५२०
३ वही, छन्द सं० ४६, यातें, छन्द सं० ४६, यामें, छन्द सं० ७३, याको, छन्द सं० १२६ आदि रूप।
४ वही, छन्द सं० १६
५ वही, छन्द सं० १५
६ वही, छन्द सं० ४३६
७ मथुरा जिले के पूर्वी या दक्षिणी भाग में ज् वाले रूप मिलते हैं और पश्चिम उत्तर में य् वाले रूप मिलते हैं।
८ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४६
९ वही, छन्द सं० ८
१० वही, छन्द सं० १५
११ वही, छन्द सं० ४६
१२ याकौं, याही कौं, याही, यासों आदि य् वाले सार्वनामिक रूप सूर में भी प्राप्त होते हैं। —सूर की भाषा, डाक्टर प्रेमनारायण टण्डन, पृ० २३२–२३३
१३ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १
१४ वही, छन्द सं० ७८

स्थिति	उदाहरण	ध्वन्यात्मक लेख	अर्थ
इ—आ	/या[१]/	य् (इ आ)	इस'
	/किया[२]/	य् (क्इ आ)	'किया'
	/आया[3]/	य् (आइ आ)	'आया'
	/बयारी[४]/	य् (ब्अइ आरी)	'हवा'
इ—ए	/ये[५]/	य् (इ अ)	'ये'
	/किये[६]/	य् (क्इ ए)	'किये'
इ—औ	/भयौ[७]/	य् (भ्इ औ)	'हुआ'
	/आयौ[८]/	य् (आइ औ)	'आया'
ई—आ	/जितैया[९]/	य् (जित्अई आ)	'जीतनेवाला'

ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि श्रुति का सबसे अधिक मुखर रूप 'अ' और 'आ' के बीच तथा 'आ' और 'औ' के बीच मिलता है। यहाँ पर इसका रूप स्वतन्त्र ध्वनि के समान दीखता है, पर स्वल्पान्तर युग्मों के प्रभाव में इसको स्वतन्त्र ध्वनि नहीं कहा जा सकता।

९. २. ६. /व्/ : ब्रजभाषा में (व्) ब् की प्रवृत्ति मिलती है। भूषण की रचनाओं में भी यह प्रवृत्ति पाई जाती है। उदाहरण :—

/महाबीर[१०]/ (महावीर), /बिलास[११]/ (विलास), /छबि/[१२] (छवि), /गंधरब[१३]/ (गंधर्व), /बिहार[१४]/ (विहार), /कबि[१५]/ (कवि) आदि। अन्य

---

[१] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४६
[२] वही छन्द सं० १४५
[3] वही, छन्द सं० १४५
[४] वही, छन्द सं० ४२७
[५] वही, छन्द सं० ५२०
[६] वही, छन्द सं० ३३
[७] वही, छन्द सं० ६
[८] वही, छन्द सं० २५
[९] वही, छन्द सं० ६७
[१०] वही, छन्द सं० ५
[११] वही, छन्द सं० १४
[१२] वही, छन्द सं० १५
[१३] वही, छन्द सं० १६
[१४] वही, छन्द सं० १९
[१५] वही, छन्द सं० ४०

व्यंजनों के साथ सयुक्त होकर सूर आदि ब्रजभाषा के कवियों में भी व् ध्वनि प्राप्त होती है[१] और भूषण में भी।[२] जहाँ कहीं स्वतन्त्र रूप से व् ध्वनि मिलती है वहाँ तत्समता की प्रवृत्ति ही माननी होगी अथवा मूल प्रतियों के लेखकों द्वारा उच्चरित रूप पर ध्यान न देकर तत्सम रूप में लिखने की प्रवृत्ति का होना सम्भव है। स्वतन्त्र रूप से मिश्रजी ने कुछ शब्दों को व् से युक्त लिखा है। उदाहरण :—

/सिवराज[३]/, /अवनीस[४]/, /देवगिरि[५]/, /अमरावति[६]/, /पावति[७]/, /आवत[८]/, दावेदार[९]/, पावक[१०]/, ऐरावत[११]/, /उमरावत[१२]/ आदि। कहीं-कहीं व के लुप्त हो जाने पर मात्र स्वर ही अवशिष्ट मिलते हैं। जैसे—व) उ, व) अ की प्रवृत्ति के उदादरण ये हैं :

/वजीर) उजीर[१३]/, /भुवपाल) भुअपाल[१४]/, /तुव) तुअ[१५]/, /भुवाल) भुआल[१६]/, /छेव) छेउ[१७]/, /भेव) भेउ[१८]/

कुछ अन्य पुरुष सर्वनाम या दूरवाची सार्वनामिक विशेषण व् से युक्त मिलते हैं – जैसे : /वह[१९]/, /वै[२०]/, /वे[२१]/ इनके ब् वाले रूप नहीं मिलते। वर्तमान ब्रजभाषा में स्थानीय रूप से ब् और व् हल वाले दोनों रूप प्राप्त होते हैं और ब्रजभाषा के अन्य कवियों में भी। इन व् वाले रूपों को व् श्रुति के अन्तर्गत रखा जा सकता है। मिश्रजी द्वारा सम्पादित भूषण ग्रन्थावली की प्रति में व् से आरम्भ कोई शब्द नहीं मिलता। केवल ऊपर कहे हुए सर्वनाम व् से आरम्भ होते हैं, जिनका श्रुत्यात्मक रूप इस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है—

---

१ स्व, स्वान, स्वारथ आदि, देखिए। —सूर की भाषा, डा० प्रेमनारायण टण्डन, पृ० ७४ (प्रकाशन तिथि, नवम्बर १९५७)

२ देखिए आगे संयुक्त व्यंजनों का विवरण।

३ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २

४ वही, छन्द सं० ५ ५ वही, छन्द सं० ७

६ वही, छन्द सं० १५ ७ वही, छन्द सं० १८

८ वही, छन्द सं० २५ ९ वही, छन्द सं० ३३

१० वही, छन्द सं० ३६ ११ वही, छन्द सं० ३९

१२ वही, छन्द सं० ५८ १३ वही, छन्द सं० १६३

१४ वही, छन्द सं० ६८ १५ वही, छन्द सं० ६८

१६ वही, छन्द सं० ११ १७ वही, छन्द सं० ६७

१८ वही, छन्द सं० ६७ १९ वही, छन्द सं० ७३

२० वही, छन्द सं० ४८७ २१ वही, छन्द सं० १८९

स्थिति	उदाहरण	ध्वन्यात्मक लेख	अर्थ
उ—अ	/वह[1]/	(उ अह) (व्)	'वह'
उ—ए	/वे[2]/	(उ ए) (व्)	'वे'
उ—ऐ	/वै[3]/	(उ ऐ)	'वे'

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भूषण में य् और व् स्वतन्त्र ध्वनिग्राम के रूप में न होकर इ और उ के संस्वन के रूप में ही हैं, जो श्रुतिरूप में ऊपर दिखाए गए हैं और जिनकी परिस्थितियों का विवरण भी दे दिया गया है।

दन्त्य और ओष्ठ्य नासिक्य व्यंजनों के अल्पप्राण और महाप्राण दोनों रूप मिलते हैं। महाप्राण रूपों के उदाहरण इस प्रकार हैं : /कीन्हों[4] /, /लीन्हें[5] / /बरम्हाइयै[6] /, /बेसम्हार[7] /, आदि। महाप्राण

९. २. ७ नासिक्य व्यंजन नासिक्य व्यंजन प्रायः सभी ब्रजभाषा कवियों में मिलते हैं। आधुनिक ब्रज की बोली में भी इनको स्वतन्त्र ध्वनि के रूप में स्वीकार किया गया है। इनके अतिरिक्त अन्य नासिक्य व्यंजनों की स्थिति भूषण में नहीं मिलती। केवल दन्त्य नासिक्य के संस्वनात्मक वैविध्य मिलते हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है :

/न्/ : (ङ्), (ञ्), (ण्)

: (ङ्) का प्रयोग केवल कंठ्य व्यंजनों से पूर्व होता है। जैसे—
/पंक[8]/, /परिसंख्य[9]/, /बिहंगम[10]/, /उलंघैं[11]/,

: (ञ्) का प्रयोग केवल तालव्य स्पर्श संघर्षी ध्वनियों के पूर्व होता है।
जैसे—/बिरंचिहू[12]/, /मन-बांछित[13]/, /भंजन[14]/

: (ण्) का प्रयोग मूर्द्धन्य स्पर्श व्यंजनों से पूर्व होता है। जैसे—
/घंटा[15]/, /कंठ[16]/, /घमंड[17]/, ढूंढार[18]/

---

१ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ७३**
२ **वही, छन्द सं० १८९**
३ **वही, छन्द सं० ४८७**
४ **वही, छन्द सं० ५१६**
५ **वही, छन्द सं० ३७०**
६ **वही, छन्द सं० १०**
७ **वही, छन्द सं० ९३**
८ **वही, छन्द सं० ४६**
९ **वही, छन्द सं० २२७**
१० **वही, छन्द सं० २३**
११ **वही, छन्द स० ४८७**
१२ **वही, छन्द सं० १०**
१३ **वही, छन्द सं० १९४**
१४ **वही, छन्द सं० १**
१५ **वही, छन्द सं० ४१२**
१६ **वही, छन्द सं० ५२२**
१७ **वही, छन्द सं० ७८**
१८ **वही, छन्द सं० १०२**

: (न्) दन्त्य व्यंजनों से पूर्व, स् से पूर्व तथा पद के आरम्भ में तथा स्वर मध्यवर्ती स्थिति में प्रयुक्त होता है। जैसे—

/कंत[१] /, /भवपंथ[२] /, /बंदि[३] /, /गंधरब[४] /, /हंस[५] /, / नद[६] /, /बखान[७]/

/म्/ : के संस्वन नहीं मिलते। इसका प्रयोग पद के आदि में, स्वर मध्यवर्ती स्थिति में तथा ओष्ठ्य व्यंजनों से पूर्व होता है। जैसे—
/मरजाद[८] /, / उमराव[९] /, /चंपति[१०] /, / चंबल[११] /, /संभावना[१२]/

नियमत: ब्रजभाषा में किसी भी पद का आरम्भ संयुक्त व्यंजन से नहीं होता है। इस नियम के अपवाद भी मिलते हैं। य्, र् तथा व् से युक्त रूप भूषण के काव्य के पदारम्भ में मिलते हैं। य् और व् के संयुक्त रूप इस प्रकार हैं—

९. २. ८. संयुक्त व्यंजन

/य्/ से संयुक्त व्यंजनों की तालिका : /भटक्यौ[१३]/, /राख्यौ[१४]/, /लाग्यौ[१५]/, /ज्यौं[१६]/, /उज्यारी[१७]/, /जूझ्यो[१८]/, /लूट्यौ[१९]/, /जीत्यौ[२०]/, /मिथ्याध्वसित[२१]/, /द्यौस[२२]/, /ध्याइयतु[२३]/, /पुन्य[२४]/, /प्याला[२५]/, /ब्याकुल[२६]/, /म्यान[२७]/, /मदभर्‌यो[२८]/,

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २३१
२ वही, छन्द सं० १
३ वही, छन्द सं० ७२
४ वही, छन्द सं० ७४
५ वही, छन्द सं० २४५
६ वही, छन्द सं० १२१
७ वही, छन्द सं० १२१
८ वही, छन्द सं० ५०४
९ वही, छन्द सं० ५०८
१० वही, छन्द सं० ५१४
११ वही, छन्द सं० ५२७
१२ वही, छन्द सं० २४६
१३ वही, छन्द सं० ५९
१४ वही, छन्द सं० १३५
१५ वही, छन्द सं० ४३८
१६ वही, छन्द सं० ५०
१७ वही, छन्द सं० ३८
१८ वही, छन्द सं० ५२३
१९ वही, छन्द सं० ९४
२० वही, छन्द सं० १३
२१ वही, छन्द सं० २४८
२२ वही, छन्द सं० १३५
२३ वही, छन्द सं० ११६
२४ वही, छन्द सं० ५७
२५ वही, छन्द सं० ५७६
२६ वही, छन्द सं० ५२७
२७ वही, छन्द सं० ५२२
२८ वही, छन्द सं० ४६

/ ल्याइयतु[1] /, / कस्यपी[2] /, / स्याम[3] /, / रह्यो[4] / आदि-आदि……।

मध्य में ड् ण् के साथ संयुक्त होकर य् के साथ संयुक्त होता है। जैसे—/उमंड्यो[5] /। यदि मूल रूप में संयुक्त होगा तो इसके संस्वन /ड़्/ के साथ ही संयुक्त होगा। यही नियम /ढ्/ के साथ भी होगा। केवल /ढ़्/ के साथ ही य् का संयुक्त रूप मिलता है। जैसे— /बढ़यौ[6]/

/व्/ से युक्त व्यंजनों की तालिका इस प्रकार है—च्वैं[7] /, /छ्वै[8] /, /ज्वानी[9] /, /द्विज[10]/, अनन्वय[11]/, /भ्वैसिला[12]/, /बिस्वेस्वर[13]/, /ह्वै[14]/, एक स्थल पर तुक की आवश्यकता से प्रेरित होकर व्+व् का रूप भी लिखा गया है। जैसे—/व्वै[15]/ किन्तु यहाँ पहले ध्वन्यांश को ब् मानकर भी तुक की आवश्यकता पूर्ण हो जाती है। उस स्थान पर व का प्रयोग लिपिकार का ही आवश्यक प्रयोग माना जा सकता है। जिम रूप में वह लिखा है उस रूप में तुक की संगति के साथ उच्चारण असम्भव है। इसी प्रकार का एक और शब्द/ तहव्वरखान[16]/ भी मिलता है।

/र्/ से युक्त व्यंजनों की तालिका इस प्रकार है—/क्रुद्ध[17]/, /पराक्रम[18]/ ग्राम[19]/, /नीलग्रीव[20]/. /बज्र[21]/, /छत्रसाल[22]/, /त्रास[23]/, /समुद्रन[24]/, /द्रग[25]/, /ध्रुवलोकहू[26]/, /घृति[27]/, नृप-बृंद[28], /बृंद[29]/, /प्रतीप[30]/,

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ११६
[2] वही, छन्द सं० २६
[3] वही, छन्द सं० २७१
[4] वही, ,, ,, ५२५
[5] वही, ,, ,, ५४३
[6] वही, ,, ,, ३५२
[7] वही, ,, ,, ५२५
[8] वही, ,, ,, ५२५
[9] वही, ,, ,, १३
[10] वही, ,, ,, ६४
[11] वही, ,, ,, ५४
[12] वही, ,, ,, ८४
[13] वही, ,, ,, २७
[14] वही, ,, ,, ५२५
[15] वही, ,, ,, ५२५
[16] वही, ,, ,, ५१८
[17] वही, ,, ,, ३३६
[18] वही, ,, ,, २३४
[19] वही, ,, ,, ४१२
[20] वही, ,, ,, ४६
[21] वही, ,, ,, ६२
[22] वही, ,, ,, ५२३
[23] वही, ,, ,, ४१८
[24] वही, ,, ,, ५२३
[25] वही, ,, ,, ६१
[26] वही, ,, ,, ५४०
[27] वही, ,, ,, ११०
[28] वही, ,, ,, ६
[29] वही, ,, ,, ६
[30] वही, ,, ,, ३७

/ब्रह्म[१] /, /भ्रम[२] /, / भृकुटि[३] /, / मृत[४] /, / घुर्रा[५] /, / श्रीसरजा[६] / / हृदैराम[७] /

कहीं-कहीं सम्पादित प्रति में /ऋ/ से युक्त करके कुछ शब्दों को लिखा गया है। पर उच्चारण की दृष्टि से यह ध्वनि हिन्दी में भी /र्/ के समान उच्चरित होती है और ब्रजभाषा में भी। अतः भूषण में भी इन शब्दों को /र्/ से युक्त ही मानना चाहिये।

इनके अतिरिक्त कोई भी संयुक्त रूप पद के आरम्भ में नहीं मिलता। ब्रज भाषा के साहित्यक रूप में /र्/ से संयुक्त रूप पद के आरम्भ में मिल सकते हैं, पर आधुनिक ब्रज की बोली में इस प्रकार के उदाहरण नहीं मिलते। अपवाद रूप में /म्लेच्छ[८]/, /म्लेच्छच्छय[९]/ एक-दो शब्द मिलते हैं।

अन्य संयुक्त व्यंजनों के रूप अगले पृष्ठ के चित्र (ग्राफ) से स्पष्ट हो जाते हैं। इन संयुक्त व्यंजनों में ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुसार ही संयोग क्रम दीखता है। कहीं विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ता।

उदाहरणों की तालिका इस प्रकार है—

/मक्क[१०]/, /दक्खक्खलनि[११]/, /रक्तबीज[१२]/, /सख्खर[१३]/, /दुग्ग[१४]/, /वग्घ[१५]/, /लग्न[१६]/, /सोच्चकित[१७]/, /लच्छ[१८]/, /सज्जनता[१९]/, /ठट्ट[२०]/, /कट्ठट्ठिक[२१]/, /विड्डाल[२२]/, /छत्तापता[२३]/, /हत्थिमत्थ[२४]/, /समथ्थ[२५]/, /अतद्गुन[२६]/, /खेद्दिद्दर[२७]/, /क्रुद्धद्धरि[२८]/, /करन्न[२९]/, /अपन्हुति[३०]/,

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २११
२ वही, छन्द सं० ७१
३ वही, छन्द सं० ४१३
४ वही, ,, ,, ४५०
५ वही, ,, ,, ४६३
६ वही, ,, ,, १६५
७ वही, ,, ,, २८
८ वही, ,, ,, ५८
९ वही, ,, ,, ३३५
१० वही, ,, ,, ५१३
११ वही, ,, ,, ३३४
१२ वही, ,, ,, २
१३ वही, ,, ,, ५२६
१४ वही, ,, ,, १४
१५ वही, ,, ,, २२४
१६ वही, ,, ,, ५२८
१७ वही, ,, ,, ३३२
१८ वही, ,, ,, ५७
१९ वही, ,, ,, ३७७
२० वही, ,, ,, ४१६
२१ वही, ,, ,, ३३३
२२ वही, ,, ,, २
२३ वही, ,, ,, ५२१
२४ वही, ,, ,, ३६०
२५ वही, ,, ,, २
२६ वही, ,, ,, २७१
२७ वही, ,, ,, ३३३
२८ वही, ,, ,, ३३३
२९ वही, ,, ,, ३४
३० वही, ,, ,, ७७

/लुप्त[१]/, /सुअप्पु[२]/, /अब्दुल्लसमद[३]/, /बब्बर[४]/, /गरक्म[५]/, /घुम्म[६]/, /म्लेच्छच्छय[७]/, /अर्क[८]/, /गुर्जबरदार[९]/, /चक्रवर्ति[१०]/, /अर्थ अन्तरन्यास[११]/,

संयुक्त व्यंजनों का चित्र

/कपर्दनि[१२]/, /सुभ्रांतपूर्न[१३]/, /पूर्बरूप[१४]/, /स्वधर्म[१५]/, /निर्देसना[१६]/,

---

[१] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३५
[२] वही, छन्द सं० ५७
[३] वही, छन्द सं० ५१३
[४] वही, ,, ,, ४४७
[५] वही, ,, ,, ४३५
[६] वही, ,, ,, ३३४
[७] वही, ,, ,, ३३५
[८] वही, ,, ,, ४०९
[९] वही, ,, ,, ४४२
[१०] वही, ,, ,, १०६
[११] वही, ,, ,, ४०५
[१२] वही, ,, ,, २
[१३] वही, ,, ,, ४००
[१४] वही, ,, ,, ४७५
[१५] वही, ,, ,, ४२०
[१६] वही ,, ,, ४०१

/बिकल्प[१] /, /बहलोलल्लिय[२] /, /मस्जिद[३] /, /सायस्तखाँ[४] /, /दूरस्थित[५] /, /परस्पर[६] /, /स्लेष[७] /, /ब्रह्म[८] /।

६. २. ६. स्वर विचार

भूषण में स्वर ध्वनिग्राम इस प्रकार मिलते हैं :—

इ		उ
ई		ऊ
ए	अ	ओ
ऐ		औ
	आ	

इनका विभाजन दीर्घ और ह्रस्व स्वरों में किया जा सकता है। ह्रस्व स्वरों के वैविध्य प्राप्त नहीं होते, यद्यपि /अ/ का परिवर्तन कहीं-कहीं शून्य में मिलता है : अ) ∅ (ऽ)[९]। इस प्रकार शून्य वाले /अ/ का समावेश पूर्वस्थ स्वर ध्वनि में हो जाता है। उदाहरण—

/नाऽवाज[१०]/ : -आ + ∅ ← — /नावाज/
/ज्योंऽब/[११] : -अ + ∅ ← — /ज्योंब/

इसी तरह के अन्य उदाहरण—

/मिथ्याध्यवसितऽरु /[१२], /जोऽब,/[१३], /कहाऽब/[१४], /करौऽब[१५]/

ऊपर के उदाहरणों में से प्रथम में मूल 'आवाज' शब्द में' 'अवाज' ब्रज की प्रवृत्ति के अनुसार हुआ। इस प्रकार ना + आवाज (ना + अवाज) नावाज। शेष में शून्यीकरण की प्रकिया स्पष्ट है।

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २२६
२ वही, छन्द सं० ३३४
३ वही, छ० सं० ४६६
४ वही, ,, ,, ३४
५ वही, ,, ,, ३११
६ वही, ,, ,, ४७
७ वही, ,, ,, १४७
८ वही, ,, ,, २२
९ लिपिकार ने इस चिन्ह का प्रयोग शून्य के लिए किया है। इस चिन्ह के प्रयोग की परम्परा संस्कृत में भी है।
१० भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४६३
११ वही, छ० सं० ५२८
१२ वही, छ० स० ४०५
१३ वही, ,, ,, ४५
१४ वही, ,, ,, ३५०
१५ वही, ,, ,, ३८४

दीर्घ स्वरों के सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय प्रवृत्ति उनके ह्रस्वीकरण की है। यह प्रवृत्ति भूषण के द्वारा प्रयुक्त मात्रिक छन्दों या वर्णिक में मिलती है। कवित्त या घनाक्षरी बिना दीर्घ ह्रस्व का विचार किए हुए ३१ अक्षरों की संख्या पर निर्भर रहता है। पर मात्रिक छन्दों में या वर्णिक छन्दोविधान को आवश्यकतानुसार दीर्घ स्वर का ह्रस्व स्वर में परिवर्तित हो जाना संभव है। जैसे—

ई) ई : /की/[1]

ए) ई~इ : /इक/[2]

ऐ) ऐ : /कीजै/[3]

उ) उ~उ : /महमुद/[4]

ओ) ओ : /डोकरा/[5]

,, ,, : /छोकरा/[6]

ए) ए : /सौंधे/[7]

कुछ स्वरों के मिश्रण के परिणामस्वरूप एक ही स्वर अवशिष्ट रह जाने की प्रवृत्ति मिलती है। अधिकांश पूर्वस्थ /अ/ उत्तरस्थ दीर्घ स्वर में एकाकार हो जाता है। जैसे—

अ+ए : ए : गे[8] (गए।

,, : ए : भे[9] (भए।

६. २. १० संयुक्त स्वर

नीचे भूषण की प्रकाशित प्रति के आधार पर स्वर के संयुक्त रूपों के उदाहरण दिए जा रहे हैं। संयुक्त स्वरों के रूपों का चित्र देखिए। उदाहरण उसी चित्र के अनुसार दिए गए हैं। स्वर संयोग या स्वरसान्निध्य

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४९९

[2] वही, छन्द सं० ४६६

[3] वही, छन्द सं० ४९९

[4] वही, ,, ,, ५१३

[5] वही, ,, ,, २१८

[6] वही, ,, ,, २१८

[7] वही, ,, ,, ५४६

[8] वही, ,, ,, ४९५

[9] वही, ,, ,, ४९५

/संचरइ/[१], /दई/[२], /तिलंगग्गयऊ/[३], औरउ/[४], /गए/[५], /आइबे/[६], /बड़ाई/[७], महाउत /[८] , /भाऊ/[९] ,- /पाए/[१०], /जाओ/[११], /बखानिए/[१२], /तुअ/[१३], /अरुआ/[१४], /छुए/[१५],

	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं
अ			o	o	o	o	o				
आ			o	o	o	o	o		o		
इ							o				
ई											
उ	o	o		o			o				
ऊ											
ए		o	o	o		o					
ऐ					o						
ओ			o	o	o	o					
औ						o					

संयुक्त स्वरों का चित्र

/बे-आब/[१६], /लेइगौ/[१७], /तेई/[१८], /जनेऊ/[१९], /अक्रमातिसैउक्ति/[२०], होइ/[२१], /गढ़ोई/[२२], /कोउ/[२३], /तौऊ/[२४], /कोऊ/[२५]

---

[१] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १३४**
[२] वही, छन्द सं० २८
[३] वही, छन्द सं० ३३५
[४] वही, ,, ,, ५२
[५] वही, ,, ,, २६६
[६] वही, ,, ,, ६२
[७] वही, ,, ,, ३७६
[८] वही, ,, ,, ५६
[९] वही, ,, ,, ३४
[१०] वही, ,, ,, ३६३
[११] वही, ,, ,, ४७३
[१२] वही, ,, ,, ४०४
[१३] वही, ,, ,, ५५
[१४] वही, ,, , ४६४
[१५] वही, ,, ,, ५५१
[१६] वही, ,, ,, ३१७
[१७] वही, ,, ,, १८०
[१८] वही, ,, ,, २२१
[१९] वही, ,, ,, ४२०
[२०] वही, ,, , ४०१
[२१] वही, ,, , १८१
[२२] वही, ,, ,, १३१
[२३] वही, ,, ,, १७७
[२४] वही, ,, ,, ३८३
[२५] वही, ,, ,, १७७

९. ३ संज्ञा

भूषण में संज्ञा की रूप रचना की दृष्टि से तीन विभाग हो सकते हैं—मूल संज्ञा, संयुक्त संज्ञा तथा अन्य पदों से व्युत्पन्न संज्ञा। मूल संज्ञा व्यंजनांत और स्वरांत दोनों प्रकार की मिलती हैं। इनमें लिंग, वचन और विभक्तियों के द्योतक प्रत्यय आदि संयुक्त होते हैं। पहले इन्हीं प्रत्ययों पर विचार कर लेना आवश्यक है।

९. ३. १. वचन

(१) **एकवचन**—एकवचन के द्योतन के लिए ब्रजभाषा में मुख्यत: दो रूप मिलते हैं। उकारान्त रूप का /ओकारान्त/औकारान्त/ रूप मिलते हैं। भूषण में उकारान्तता की प्रवृत्ति इतनी नहीं मिलती जितनी कि एक ब्रजभाषा के कवि से अपेक्षित होती है। केवल कुछ शब्द कर्त्ता एकवचन पुल्लिग विभक्ति से युक्त मिलते हैं। जैसे : /अवतारु/[1], /हरकतु/[2], /तनु/[3], /गोतु/,[4], /उदोतु/[5] 'उद्यत' आदि-आदि।

ओकारान्त पुल्लिग संज्ञाएँ भी प्राप्त होती हैं। इसमें 'ओ' विभक्ति पुल्लिग एकवचन की द्योतक हैं। जैसे : /झूठो/[6], '/झूठा।' आदि।

आधुनिक ब्रजभाषा क्षेत्र में मथुरा प्रदेश में ओकारान्त रूप प्राप्त नहीं होता केवल औकारान्त रूप प्राप्त होता है। एटा जिले में अथवा उसके आसपास केवल ओकारान्त रूप प्राप्त होता है। भूषण में औकारान्त रूप भी मिलता है। जैसे—/हियौ/[7], /तेरौ/[8] आदि। इस दृष्टि से विशेष दृष्टव्य बात यह है कि खड़ी बोली की भाँति एकाध संज्ञा आकारान्त भी मिलती हैं जिसमें—आ पुल्लिग एकवचन का द्योतक है। जैसे—/बहाना/[9], /खजाना[10]। शेष संज्ञा शब्दों के मूलरूप में एकवचन बहुवचन का द्योतन नहीं होता।

(२) **बहुवचन**—जो शब्द '—आ' एकवचन पुलिंग कर्त्ता के मूलरूप में संयुक्त होकर एकवचन का द्योतन करते हैं अथवा ब्रजभाषा की परम्परा के अनुसार औकारान्त या ओकारान्त होते हैं, उनके मूल बहुवचन रूप –ए प्रत्यय से संयुक्त हो

---

1. भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १४८
2. वही, छन्द सं० २०४
3. वही, छन्द सं० ५५१
4. वही, ,, ,, ५५१
5. वही, ,, ,, ५५१
6. वही, ,, ,, २४८
7. वही, ,, ,, ४८
8. वही, ,, ,, ४८
9. वही, ,, ,, १२०
10. वही, ,, , ५२४

जाते हैं—जैसे : /अंगारे/[१], /ताले/[२], /दमामे/[३], /खेलनवारे/[४], /डावरे/[५], /कँगूरे[६]/ आदि। कुछ शब्द खड़ी बोली की भाँति ऐंकारान्त भी हैं। ब्रजभाषा में ये शब्द प्रायः किसी प्रत्यय से युक्त नहीं होते। उदाहरणार्थ—/करनालैं/[७], /रिसालैं[८]/, /तलवारैं[९]/, /जमडाढ़ैं[१०]/, /अलकैं[११]/, आदि-आदि।

तिर्यक रूप में एकवचन प्रत्यय -ए केवल उन शब्दों के साथ प्रयुक्त होता है जिनका मूल एकवचन -आ या -ओ प्रत्यय से युक्त होता है—/अखारे/[१२], /सितारे[१३], /आगरे/[१४], /बहाने/[१५]। अन्य अन्तवाले संज्ञा शब्द तिर्यक एकवचन में अविकृत रहते हैं।

तिर्यक बहुवचन में बहुवचन प्रत्यय ब्रजभाषा की परम्परा के अनुसार -न ही मिलता है। केवल एक शब्द खड़ी बोली के अनुसार तिर्यक बहुवचन -ओं प्रत्यय के साथ मिलता है। जैसे—/तीरथों/[१६]।

–न प्रत्यय के दो रूपान्तर प्राप्त होते हैं। एक 'इ' से युक्त और दूसरा 'अ' से युक्त अथवा मात्र व्यंजन रूप में। सभी व्यजनों के पश्चात् -न का प्रयोग मिलता है।

कुछ शब्द मूल बहुवचन प्रत्यय—'आँ' से युक्त हैं। ये रूप साहित्यिक ब्रजभाषा में अत्यन्त विरल रूप से मिलते थे किन्तु खड़ी बोली में इकारन्त स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों के बहुवचन की रूपरचना में नियमतः मिलते हैं। जैसे—/आलियाँ[१७]/, /कहानियाँ[१८]/, /रानियाँ[१९]/, /नदियाँ[२०]/। इस प्रवृत्ति को निम्नलिखित कवित्त में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है—

बाजि-गजराज सिवराज सैन साजत ही,
दिल्ली दल गही दसा दीरघ-दुखन की।
तनियाँ न तिलक **सुथनियाँ पगनियाँ** न,
घामैं घुमराती छोड़ि **सेजियाँ** सुखन की।

---

[१] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १७५
[२] वही, छन्द सं० ४६८
[३] वही, छन्द सं० ४४६
[४] वही, ,, ,, ४६९
[५] वही, ,, ,, २४०
[६] वही, ,, , ४८९
[७] वही, ,, ,, ४३९
[८] वही, ,, ,,
[९] वही, ,, ,, ५२५
[१०] वही, ,, ,, ५२५
[११] वही, ,, ,, ५४६
[१२] वही, ,, ,, ४५३
[१३] वही, ,, ,, ४४३
[१४] वही, ,, ,, ७४
[१५] वही, ,, ,, ९०
[१६] वही, ,, ,, २१६
[१७] वही, ,, ,, ४२६
[१८] वही, ,, ,, ४२५
[१९] वही ,, ,, ४२५
[२०] वही, ,, ,, १२६

भूषन भनत पति बाँह-बहियान तेऊ,
छहियाँ छबीली ताकि रहियाँ रुखन की।
बालियाँ बिथुर जिमि आलियाँ नलिन पर,
लालियाँ मलिन मुगलानियाँ मुखन की।[१]

-आँ के स्थान पर -आन भी विरल रूप से मिलता है। जैसे—
/बहियान[२]/, /कटियान[३]/।

कुछ शब्दों में -न के संयोग के परिणामस्वरूप विकार उत्पन्न हो जाता है। जैसे दीर्घ /ई/ का ह्रस्व /इ/ में परिणत हो जाना, जैसे—

हजारी) हजारिन[४]
नारी) नारिन[५]
सुन्दरी) सुन्दरिन[६]
अटारी) अटारिन[७]

किन्तु कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनमें दीर्घ /ई/ सुरक्षित रहती है। जैसे—

नदी) नदीन[८]
चुरी) चुरीन[९]

किन्तु यह प्रवृत्ति विरल है।

दूसरी प्रवृति अकारान्त के आकारान्त हो जाने की है। जैसे—/तुरक) तुरकान[१०]/। दीर्घ /ऊ/ भी कहीं-कहीं ह्रस्व /उ/ में परिणत हो गया है। जैसे—/हिन्दू) हिन्दुन[११]।

अन्य स्वरान्त पद इस प्रत्यय के संयोग से अविकृत रहते हैं। जैसे—

दल) दलन[१२]
तुरक) तुरकन[१३]

---

[१] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४२६
[२] वही, छन्द सं० ४२६
[३] वही, छन्द सं० ४७८
[४] वही, छन्द सं० ४४३
[५] वही, छन्द सं० १००
[६] वही, छन्द सं० १९
[७] वही, छन्द सं० ४९४
[८] वही, छन्द सं० १५४
[९] वही, छन्द सं० १५४
[१०] वही, छं० सं० २४। दक्खिनी में बहुवचन /आँ/ का विकास ऐसे ही रूपों से हुआ होगा। जैसे—तुरकाँ।
[११] वही, छं० सं० ४२०
[१२] वही, छं० सं० ९०
[१३] वही, छं० सं० १०४

बालक) बालकन[1]
अबला) अबलान[2]
अरि) अरिन[3]
पति) पतिन[4]
कबि) कबिन[5]
बस्तु) बस्तुन[6]
सत्रु) सत्रुन[7]

-नि का प्रयोग भी प्रायः /न/ की भाँति कारक विभक्तियों के पूर्व स्वतन्त्र वैविध्य (Free variation) के रूप में मिलता है। जैसे—

/अम्बनि[8]/ (के विभक्ति से पूर्व)
/अंगनि[9]/ (तें विभक्ति के पूर्व)
/देसनि[10]/ (तें विभक्ति के पूर्व)
/भूषननि[11]/ (में विभक्ति के पूर्व)
/सोधनि[12]/ (अन्तर्हित 'को' विभक्ति से पूर्व)

किन्तु इस -नि वहुवचन प्रत्यय रूप का एक विशेष प्रयोग मूल रूप के बहुवचन के रूप में भी मिलता है। जैसे—/लतनि[13]/ 'लताएँ' /झालरनि[14]/ 'झालरें' यह खड़ी बोली में प्रत्यय का पूर्वरूप दीखता है।

ऊपर जिन बहुवचन प्रत्ययों की चर्चा की गई है, उनके अतिरिक्त कुछ ऐसे स्वतन्त्र शब्द भी हैं जिनके योग से वहुवचन का द्योतन किया जाता है। वे शब्द ये हैं—/गन, जन, झुण्ड, पुंज, वृन्द, अवली/ उदाहरण— /तुरीगन[15]/, /दारगन[16]/, /करीगन[17]/, /साधुजन[18]/, /गुरजन[19]/, बन्दीजन[20]/, मृगझुंड[21]/, /रजपुंज[22]/, /नृप-बृन्द[23]/, /कुमुदावली[24]/, /नखतावली[25]/।

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १०४
[2] वही, छन्द सं० ४७८
[3] वही, छन्द सं० ६७
[4] वही, छन्द सं० १५२
[5] वही, छन्द सं० ५१
[6] वही, छन्द सं० १३६
[7] वही, छन्द सं० १८४
[8] वही, छन्द सं० ५५३
[9] वही, छन्द सं० ५४७
[10] वही, छन्द सं० २५
[11] वही, छन्द सं० ३०
[12] वही, छन्द सं० ३८
[13] वही, छन्द सं० २०
[14] वही, छन्द सं० १७
[15] वही, छन्द सं० १२६
[16] वही, ,, ,, १७५
[17] वही, ,, ,, १२६
[18] वही, ,, ,, २१८
[19] वही, ,, ,, ५५६
[20] वही, ,, ,, ३१४
[21] वही, ,, ,, ५०
[22] वही, ,, ,, १०४
[23] वही, ,, ,, ६
[24] वही, ,, ,, ३६
[25] वही, ,, ,, ५३

सामूहिक रूप से किसी जाति के निवासस्थान को 'आना' या 'आन' (बहुवचन 'आने') प्रयुक्त होता है। जैसे—घर) घराने[१], हिन्दु) हिन्दुवाने[२], तुरक) तुरकाने[३]।

पुल्लिग प्रत्यय केवल -उ तथा -ओ या -औ मिलते हैं जो लिंग के साथ वचन के भी द्योतक हैं। इन पर वचन के साथ विचार किया जा चुका है।

९. ३. २. लिंग

स्त्रीलिंग प्रत्यय के दो रूप मिलते हैं: -ई अथवा -इ तथा -न वाले दोनों रूप जो कभी -ई से युक्त होते हैं कभी -इ से अथवा -ई से युक्त होने पर -न के पूर्व -आ भी मिलता है। इस प्रकार -ई, -नी -नि -आनी स्त्री० प्रत्यय प्राप्त होते हैं। कुछ विरल शब्द संस्कृत के समान -इका प्रत्यय वाले मिलते हैं। जैसे— /कुमारिका[४]/, /परिचारिका[५]/, -ई प्रत्यय वाले उदाहरण—/भवानी[६]/, /रानी[७]/, /कामिनी[८]/, आदि।

कहीं-कहीं -ई प्रत्यय लघुत्व का बोधक होता है। उदाहरणार्थ—/काँकरी[९]/, /खोपरी[१०]/, /कटारी[११]/. /नगरी[१२]/

कुछ शब्दों में -ई प्रत्यय के योग से अर्थ में कुछ और विशिष्टता भी उत्पन्न हो जाती है। जैसे— /उज्यारी[१३]/, अँध्यारी[१४]/ में उजाले और अँधेरे का भाव तो है ही, साथ ही कुछ भाववाचकत्व भी है। कहीं-कहीं -ई प्रत्यय से स्त्रीलिंग के साथ बिल्कुल पृथक् अर्थ भी व्यक्त हुआ है। जैसे— /सवारी[१५]/ में -ई प्रत्यय से स्त्रीलिंग तो व्यक्त हो ही रहा है साथ ही जुलूस (Procession) का अर्थ भी व्यक्त हो रहा है अथवा वाहन का भी बोध होता है। यही रूप /चौकी[१६]/ 'पहरा' में भी देखा जा सकता है।

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५०४
२ वही, छन्द सं० ५०४ — ३ वही, छन्द सं० ५०४
४ वही, ,, ,, ४९१ — ५ वही, ,, ,, ४९१
६ वही, ,, ,, ४९८ — ७ वही, ,, ,, ४९२
८ वही, ,, ,, ४८० — ९ वही, ,, ,, ४७२
१० वही, ,, ,, ४५३ — ११ वही, ,, ,, १९१
१२ वही, ,, ,, २४२ — १३ वही, ,, ,, ९८
१४ वही, ,, ,, ९८
१५ वही, ,, ,, ४२७, मिश्रजी ने फुटनोट में 'असवारी' रूपान्तर भी दिया है।
१६ वही, छन्द सं० ४७६

-न से युक्त प्रत्यय बहुधा ह्रस्व स्वरान्त या व्यंजनान्त शब्दों के बाद भी -न से युक्त स्त्री० प्रत्यय युक्त होते हैं। अधिकांश रूप -इन या -इनी मिलते हैं। जैसे— /भिल्लिन[1]/, /दुलहिन[2]/, /चतुरंगिनि[3]/, /कुमुदिनि[4]/, /भुजंगिनी[5]/।

-आनी प्रत्यय से युक्त रूप भी मिलते हैं। जैसे— /मुगलानी/[6], /मुगलानियाँ[7]/, /हिन्दुवानी[8]/ आदि। इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि ये स्त्रीलिंगी तुरक और मुगल के न होकर /तुरकान[9]/ और /मुगलान[10]/ जैसे शब्दों के स्त्री-लिंगी रूप हैं।

इस प्रसंग में कारक को संज्ञा के पश्चात् प्रयुक्त होने वाले कारक चिह्नों के अर्थ में तथा विभक्ति को कारक का अर्थ देने वाले तथा संज्ञा शब्दों के साथ संलग्न ध्वन्यांशों के अर्थ में प्रयोग किया गया है।

६. ३. ३. कारक

कारकों के प्रयोग में भूषण साहित्य में बहुत वैविध्य प्राप्त होता है। कुछ खड़ी बोली की परम्परा वाले रूप भी मिलते हैं, पर अधिकांश रूप ब्रजभाषा की परम्परा के ही हैं। कारकों की रूप तालिका इस प्रकार है—

१—कर्त्ता— कर्त्ता का प्रयोग प्रायः निर्विभक्तिक रूप में ही मिलता है। केवल एक स्थान पर भाववाचक सकर्मक क्रिया के भूतकालिक रूप कर्त्ता के पश्चात् /ने/ का प्रयोग मिलता है। जैसे—

'सिव की भगति जीत्यो साधुजन सेवा ने।''[11]

इसी छन्द में उसी स्थिति में निर्विभक्तिक कर्त्ता का चार बार प्रयोग हुआ है। सम्भव है कि छन्द की सीमा के बन्धन के कारण /ने/ का प्रयोग न हुआ हो।

२ और ४— कर्म और सम्प्रदान—कर्मकारक के भूषण की भाषा में वैविध्य प्राप्त होते हैं।—/को/, /कों/, तथा /कौ/। मिश्र बन्धुओं ने /को/ रूप को जिन स्थानों पर दिया है, मिश्रजी ने प्रायः उन स्थानों पर /कौ/ ही माना है। सम्भवतः ब्रज की औकारान्त प्रवृत्ति को समझकर मिश्रजी ने ऐसा किया है। सम्प्रदान में भी इसी कारक चिन्ह का प्रयोग मिलता है। इन तीनों के उदाहरण इस प्रकार हैं:

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ३६७
[2] वही, छन्द सं० ४४६ [3] वही, छन्द सं० १२४
[4] वही, ,, ,, ६४ [5] वही, ,, ,, ७९
[6] वही, ,, ,, ४९२ [7] वही, ,, ,, ४२६
[8] वही, ,, ,, ४२१ [9] वही, छन्द सं० २४
[10] /मुगलान/ शब्द भूषण में नहीं मिलता। इसका स्त्रीलिंगी रूप /मुगलानी मिलता है।
[11] भूषण पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २१८

"दियो ईस को सीस"[१] (ईश को सिर दिया), "दच्छिन कों दावि करि"[२] (दक्षिण को दबाकर), "जहि उतकरष अहेत कों"[३]" (जहाँ अहेत के उत्कर्ष को) "अरि-उर के उछाह कौ"[४] (अरि-उर के उत्साह को), सम्प्रदान के अर्थ में "लागी" का (के लिए) के अर्थ में प्रयोग मिलता है। जैसे—/सगर-सुतन-लागी[५]/।

३ और ५—करण और अपादान—इनके चिन्ह दो व्यंजनों के आधार पर बने हैं, स् के आधार पर /सौं/ तथा त् के आधार पर /ते/ और /तें/ बने हैं। उदाहरण इस प्रकार हैं—

/बज्र सौं[६]/	'बज्र से'
/नखतावली सौं[७]/	'नखतावली से'
/जहँ मन-बाँछित अरथ तें[८]/	'अर्थ से'

६—सम्बन्धकारक—सम्बन्धकारक का चिन्ह 'क्' व्यंजन के आधार पर रचित है। इसके साथ लिंग वचन प्रत्यय सम्बद्ध रहता है। जैसे—/कौ/ "क्—औ सम्बन्ध एकवचन" /के/ "क्- ए सम्बन्ध बहुवचन" तथा /की/ "क् -ई सम्बन्ध स्त्रीलिंग" मिलते हैं।

उदाहरण—/कौ[९]/, /के[१०]/ /,की[११]/। क् के आधारांश के स्थान पर 'केर' आधारांश भी मिलता है जो प्राचीन रूप है। जैसे—/केरी/[१२]। 'के'। इस रूप का प्रयोग केवल इसी स्थल पर हुआ है। मिश्रबन्धुओं की प्रति में इसका प्रयोग एक और स्थल पर हुआ है—/केरे[१३]/ दो छन्दों में क्/ आधारांश के साथ ब्रजभाषा एकवचन का प्रत्यय 'औ' न होकर 'आ' का ही प्रयोग हुआ है। इस दृष्टि से निम्नलिखित पद द्रष्टव्य है—

बचैगा न समुहाने बहलोलखाँ मियाने,
भूषन बखाने दिल आन मेंरा बरजा।
तोहीं तें सवाई तेरा भाई सलहेर पास,
बंदि किया साथ का न कोऊ बीर गरजा॥

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५
२ वही, छन्द सं० १७४ ३ वही, छन्द सं० २४४
४ वही, ,, ,, १३ ५ वही, ,, ,, ५११
६ वही, ,, , ६२ ७ वही, ,, ,, ५३
८ वही, ,, ,, १९४, मिश्र जी ने प्रायः /तें/ रूप ही दिया है जबकि मिश्रबन्धुओं ने तें और ते दोनों रूप दिए हैं। जैसे—ते "शि० भू० ३४", ते "शि० भू० ८४।" ९ वही, छन्द सं० ७६
१० वही, ,, ,, ८३ ११ वही, ,, ,, ७६
१२ वही, ,, ,, ३१२
१३ भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, शिवराज भूषण, छन्द सं० २०

साहिहू का साहि तिसी औरँग के लीने गढ़,
जिसना तूँ चाकर सो जिसकी है परजा।
साहि का ललन अफजल का मलन,
दिल्ली-दल का दलन सिवराज आया सरजा ॥[१]

इसके अतिरिक्त छन्द संख्या ५१४ में भी यही पंक्ति मिलती है।

७—अधिकरण—अधिकरण के चिन्ह /में/, /मैं/, /मधि/, /मध्य/, /माँहि/, /मँहि/, /पै/ तथा /पर/ मिलते हैं। उदाहरण इस प्रकार हैं—/में[२]/, /मैं[३]/, /मधि/[४], /मध्य/[५], /मँहि/[६], /माँहि/[७], /पै/[८], और /पर/[९]।

८—सम्बोधन—सम्बोधन के बहुवचन में -ओ का प्रयोग मिलता है। जैसे—/उमरावो/[१०]

९. ३. ४. विभक्तियाँ

कर्म सम्प्रदान /को/ कारक चिन्ह के स्थान पर संज्ञा के साथ संयुक्त होनेवाली विभक्तियाँ भी मिलती हैं। इनमें मुख्य विभक्ति /-हि/ है, जिसका सानुनासिक रूप /-हिं/ स्वतन्त्र वैविध्य में प्राप्त होता है। जैसे—/चितौरहिं/[११] "चित्तौर को", /सिवाहि/[१२] "सिवा को"। इसी का एक रूपान्तर /-ऐ/ तथा सानुनासिक /-ऐं/ भी मिलते हैं। यह स्वर संकोच की पद्धति का विकास है। अ इ ए /-ह-/ का लोप होने से यह स्वर संकोच की स्थिति उत्पन्न हुई। जैसे—/सिरीनगरै/[१३] "श्रीनगर को", /जोधपुरै/[१४] "जोधपुर को"। 'ऐं' का प्रयोग 'मे' अर्थ में भी होता है। जैसे—/घामैं/[१५] "धूप में" अत्यन्त विरल रूप में /-इय/ 'को' का प्रयोग भी मिलता है। जैसे—/बहलोल्लिय/[१६] "बहलोल को"।

/-न/ का प्रयोग 'के लिए' के अर्थ में मिलता है। जैसे—/उधरन[१७]/ "उद्धार करने के लिए"। क्रियाओं के साथ भी इस अर्थ में इस विभक्ति का प्रयोग मिलता है। जैसे—/हरन/[१८] "हरण करने के लिए"। यह विभक्ति वस्तुतः क्रियार्थक संज्ञा के -न प्रत्यय का ही अर्थभेदक रूप समझना चाहिए।

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १४५
२ वही, छन्द सं० ५
३ वही, छन्द सं० ५४६
४ वही, छन्द सं० १६
५ वही, छन्द सं० १२८
६ वही, छन्द सं० २१९
७ वही, छन्द सं० ५६०
८ वही, छन्द सं० ४१३
९ वही, छन्द सं० १५
१० वही, छन्द सं० ४७३
११ वही, छन्द सं० २३०
१२ वही, छन्द सं० २३०
१३ वही, छन्द सं० २३०
१४ वही, छन्द सं० २३०
१५ वही, छन्द सं० ४२६
१६ वही, छन्द सं० ३३४
१७ वही, छन्द सं० ७८
१८ वही, छन्द सं० ७८

सम्बन्ध सूचक विभक्ति के अर्थ द्योतन के लिए / -नि/ तथा / -इय/ का प्रयोग मिलता है । जैसे— /खाँडनि खाँचे/[1] अर्थात् "खाँडे के खींचने से" । /-नि/ का अर्थ 'से' भी मिलता है । जैसे—/दक्खक्खलनि/[2] ।

६.५. सर्वनाम

उत्तम पुरुष एकवचन सर्वनाम म्- आधार वाला ही मिलता है। इस आधारांश के साथ -ऐं का योग करके /मैं/ प्रातिपदीक आज की हिन्दी की भाँति व्युत्पन्न किया गया है।[3] इसका तिर्यक रूप 'मो-' है,

६.५.१ उत्तम पुरुष

जिसका प्रयोग -हि विभक्ति के साथ होता है। जैसे— /मोहिं[4]/ अर्थात् 'मुझे' । सम्बन्ध वाचक विभक्ति -एर के साथ सम्पन्न होकर /मेंरा[5]/ म् एर आ' रूप मिलता है। इसी रूप में /मो/ का प्रयोग मिलता है ।

"मो पति यौं तजियै अनुराग न, नागरि काहू निसा बिरमायो ।"[6]

सूर आदि ब्रजभाषा के कवियों की भाषा में ह्- पर आधारित उत्तम पुरुष एकवचन सर्वनाम मिलते हैं। जैसे—/हौं/ 'मैं' । भूषण की कविता में इस प्रवृत्ति का संकेत उनके नाम से प्रचलित शृंगारी कविता में मिलता है । जैसे :

---

1 भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४६५

2 वही, छन्द सं० ३३४

3 यह प्रयोग भूषण में केवल एक ही स्थल पर मिलता है—

"तुम्हें छाड़ि काहि यातें बिनती सुनाऊँ मैं,
तिहारे गुन गाऊँ तुम ढील कौं धरत हौ।
—भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ७०

4 वही, छन्द सं० ८६

5 आ (एकवचन पुल्लिंग) प्रत्यय ब्रजभाषा की प्रकृति के विरुद्ध है क्योंकि वह औकारान्त की प्रकृति की है। सभी स्थानों पर भूषण ने औकारान्त रूपों का प्रयोग ही किया है। पर इसी एक पद में दरबारी भाषा के रूप को प्रस्तुत करने की दृष्टि से आकारान्त रूप प्रयुक्त हुआ है । पंक्ति इस प्रकार है—

"भूषण बखाने दिल आन मेंरा बरजा"
—भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १४५

"मेंरे" शब्द का प्रयोग भी हुआ है । —वही, छन्द सं० २५६

6 भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५७३

(१) सोच भिद्यौ मन मोद ततच्छन लच्छन हौं मुगधा पहचानी ।[१]

(२) बोलि न व्यंगिन जानति हौं न बिलोल बिलोकनि में चतुराई ।[२]

उत्तम पुरुष बहुवचन सर्वनाम /हम[३]/ मिलता है, जो मूल और तिर्यक में समान रहता है । कर्म सम्प्रदान विभक्ति '-ऐं' के साथ संयुक्त होकर /हमैं[४]/ तथा सम्बन्ध विभक्ति के साथ संयुक्त होकर /हमारे[५]/ (हम्+आर्+ए) रूप मिलते हैं ।

९. ५. २. आत्मवाची सर्वनाम

'आप' का प्रयोग निर्विभक्तिक रूप में तो नहीं मिलता पर सविभक्तिक रूप में इसकी रूप रचना मिलती है । इसके कुछ उदाहरण ये हैं—/आप[६]/, /आपुनि[७]/, /आपनो[८]/, /आपने[९]/, /आपुही[१०]/

९. ५. ३. मध्यम पुरुष सर्वनाम

मध्यम पुरुष सर्वनाम का आधारांश त्- है । व्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुसार एकवचन /तैं[११]/ रूप मिलता है । इसका प्रयोग कर्त्ताकारक चिन्ह 'ने' के पूर्व ही होता है । जैसे— /तैंने[१२]/ तथा निर्विभक्तिक भी /तैंहीं[१३]/ "तूने ही" । /तू[१४]/ का प्रयोग भी तैं से कम नहीं है किन्तु इसका किसी चिन्ह से पूर्व प्रयोग नहीं मिलता । मिश्रबन्धुओं की प्रति में 'तू' का जहाँ अधिकांश प्रयोग हुआ है वहाँ मिश्रजी की प्रति में /तूँ[१५]/ का प्रयोग अधिक हुआ है । किसी विभक्ति या प्रत्यय से पूर्व यह ह्रस्व उकारान्त हो जाता है । जैसे— /तुहीं[१६]/ (तु+हीं) । इसका तिर्यक रूप 'तो' मिलता है। जैसे /तोहि[१७]/ 'तुझको', /तोसों[१८]/ 'तुझसे' । सम्बन्ध वाचक विभक्ति से युक्त रूप ये हैं :—

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५७२

२ वही, छन्द सं० ५७७

३ वही, छन्द सं० १५८ और १६३, इसका प्रयोग केवल इन्हीं दो स्थलों पर हुआ है ।

४ वही, छन्द सं० १५८

५ वही, छन्द सं० २११
इसका प्रयोग केवल इसी स्थल पर हुआ है । पंक्ति इस प्रकार है :—
तूँ सबको प्रतिपालनहार बिचारे भतार न मारु हमारे । छन्द सं० २११

६ वही, छन्द सं० ४४६

७ वही, छन्द सं० ३१२

८ वही, ,, ,, २६४

९ वही, ,, ,, ४४६

१० वही, ,, ,, १४६

११ वही, ,, ,, ९५

१२ वही, ,, ,, ४७५

१३ भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, शि० भू०, छन्दसं० ३६४

१४ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १६४

१५ वही, छन्द सं० १४५

१६ वही, छन्द सं० ५५

१७ वही, ,, ,, ६१

१८ वही, ,, ,, १५६

(१) /तरौ[1] / : (त्—+/—एर्—/+/—औ/)।
(२) /तेरा[2] / : (त्—+/—एर्—/+/—आ/)।
(३) /तेरी[3] / : (त्—+/—एर्—/+/—ई/)।
(४) /तेरे[4] / : (त्—+/—एर्—/+/—ए/)।

बहुवचन में /तुम[5]/ का प्रयोग मिलता है। /तुमहियै[6]/, /तुमहू[7]/ जैसे विभक्ति और प्रत्यययुक्त रूप भी हैं। सम्बन्ध विभक्ति के अर्थ में /तव[8]/, /तुम्हारे[9]/, /तुव[10]/ रूप मिलते हैं। कर्म सम्प्रदान विभक्ति '-एँ' से पूर्व यह महाप्राण से युक्त हो जाता है। जैसे— /तुम्हैं[11]/ सम्बन्ध विभक्ति से युक्त /तिहारो/ या /तिहारे[12]/ मिलते हैं। यह ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल है।

अन्य पुरुष में संकेत वाचक सर्वनामों का प्रयोग मिलता है। इसमें समीपवर्ती और दूरवर्ती रूप क्रमशः इ—/ य —/ ज— तथा उ—/ व— पर आधारित हैं। इनकी रूप तालिका इस प्रकार है :—

९. ५. ४. अन्य पुरुष

९. ५. ५. (क) समीपवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम

	मूल	:	तिर्यक
एकवचन	/यह[13]/	:	/या[14]/ 'इस'
		:	/याते[15]/ 'इससे'
		:	/याकी[16]/ 'इसकी'

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ६८

[2] वही, छन्द सं० १४५

ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार यह 'तेरौ' होना चाहिए था पर यह आकारान्त रूप एक स्थल पर ही मिलता है। पंक्ति इस प्रकार है—

"तोही तें सवाई तेरा भाई सलहेर पास"। —छं० सं० १४५

[3] वही, छन्द सं० १८४

[4] वही, छन्द सं० ४८

[5] वही, ,, ,, १५८

[6] भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, शिव० भू०, छन्द सं० १७५। मिश्रजी की प्रति में यह रूप नहीं मिलता।

[7] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३८४

[8] वही, छं० सं० ३९०

[9] मिश्रबन्धु, शि० भू०, छं० सं० ७५

[10] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३९७

[11] वही, छं० सं० ७०

[12] वही, छं० सं० ७०

[13] वही, ,, ,, ५८

[14] वही, ,, ,, ४६

[15] वही, ,, ,, ३०

[16] वही, ,, ,, २०४

बहुवचन	ए[1] ये~जे	:	/इन/
	/ये[2]/	:	/इनहूँ[3]/
	/जे[4]/	:	/इनसौं[5]/

६. ५. ६. (ख) दूरवर्ती संकेतवाचक सर्वनाम

	मूल	:	तिर्यक
एकवचन	/वह[6] /	:	/वाको[7] /
		:	/वाहि[8] /
बहुवचन	वे/वै	:	उन
	/वे[9] /	:	/उनहूँ[10]/
	/वै[11]/	:	/उनिकौं[12]/
	/वेऊ[13]/	:	/उनै[14]/

६. ५ ७. सम्बन्धवाचक सर्वनाम

सम्बन्धवाचक सर्वनाम का मूलांश हिन्दी की भाँति ज्- है, जिसके आधार पर यह रूप तालिका बनती है—

	मूल	:	तिर्यक
एकवचन	जो	:	जिस[16]/जा
	/जो[15]/	:	/जिसका[17]/

---

[1] यह रूप मिश्रबन्धुओं की प्रति में है। मिश्रजी ने इसके स्थान पर /ये/ दिया है। —मिश्रबन्धु में शि० भू०, छं० संख्या ४८

[2] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५२०

[3] वही, छं० सं० १०२

[4] वही, छं० संख्या ११६

[5] वही, ,, ,, ८६

[6] वही, ,, ,, ७३

[7] वही, ,, ,, १२६

[8] वही, ,, ,, ५८१

[9] वही, ,, ,, ५२१

[10] वही ,, ,, ११६

[11] वही, ,, ,, १०२

[12] वही, ,, ,, ५७५

[13] वही, ,, ,, १५६

[14] वही, ,, ,, ५७३

[15] वही, ,, ,, ३६१

[16] ब्रजभाषा में 'जिस' का प्रयोग नहीं मिलता, 'जा' का प्रयोग ही मिलता है।

[17] वही, छं० संख्या १४५, इस शब्द का प्रयोग केवल इसी छन्द में हुआ है। पंक्ति इस प्रकार है—

"जिसका तूँ चाकर सो जिसकी है परजा।"

	/जौन[1] / 'जो'	:	/जिसकी[3] /
	/जौ[2]/	:	/जाकी[4] /
		:	/जा[5]/
		:	/जामे[6]/
बहुवचन	जे	:	जिन
	/जेई[7] /	:	/जिन[9] /
	/जिहि[8] /	:	/जिन्हें[10]/

६. ५. ८. **नित्य सम्बन्धी सर्वनाम**—इनके रूप निम्न प्रकार के हैं—

	मूल	:	तिर्यक
एकवचन	सो सों	:	ता
	/सो[11]/	:	/ता[12]/
	/सों[13]/	:	/ताहि[14]/
		:	/तासों[15]/
बहुवचन	ते	:	तिन
	/तेई[16]/	:	/तिन[17]/
	/तेऊ[18]/	:	/तिनके[20]/
	/तेहि[19]/	:	/तिनमें[21]/

६. ५. ६. **पूर्णवाचक सर्वनाम**

इसमें केवल 'सब' का प्रयोग भूषण में मिलता है। जैसे— /सब[22]/, /सबही[23]/ आदि।

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५८६, जौन, तौन जैसे रूप कनौजी अथवा पूर्वी हिन्दी की अन्य बोलियों में प्राप्त होते हैं; पर साहित्यिक ब्रजभाषा में ऐसे प्रयोग अप्राप्य नहीं हैं।

[2] वही, छन्द सं० ५७०
[3] वही, छन्द सं० १४४
[4] वही, छन्द सं० ५१४
[5] वही, छन्द सं० १५
[6] वही, छन्द सं० २१६
[7] वही, छन्द सं० २२१
[8] वही, छन्द सं० ५८२
[9] वही, छन्द सं० ४१६
[10] वही, छन्द सं० ३२८
[11] वही, छन्द सं० ३३२
[12] वही, छन्द सं० २३५
[13] वही, छन्द सं० १७५
[14] वही, छन्द सं० २२७
[15] वही, छन्द सं० २३४
[16] वही, छन्द सं० २२१
[17] वही, छन्द सं० ३९८
[18] वही, छन्द सं० ३५४
[19] वही, छन्द सं० २५
[20] वही, छन्द सं० ३०७
[21] वही, छन्द सं० ६
[22] वही, छन्द सं० ६
[23] वही, छन्द सं० ३६६

६. ५ १० अनिश्चयवाचक सर्वनाम

व्रजभाषा की प्रकृति के अनुसार भूषण में का/ काहु[१] रूप मिलता है, पर इसका प्रयोग केवल एक ही स्थान पर मिलता है। पंक्ति इस प्रकार है—

"हिम्मत हिये में धरि काहुवै न हटक्यौ।"[२]

इसके अतिरिक्त ये रूप भी प्राप्त होते हैं— /कोय[३] /, 'कोई' /कोई[४] /, /कोउ[५] /।

६. ५. ११. अन्यवाची

/औरन[६]/ 'औरों' का प्रयोग भी कई स्थानों पर हुआ है।

प्रश्नवाचक सर्वनाम--इनके रूप निम्न प्रकार हैं—

मूल	:	तिर्यक
/कौन[७]/	:	का
/कौनहू[८]/	:	/काहू[९]/
	:	/कासों[१०]/

६.६. विशेषण

६. ६ १. संख्यावाचक विशेषण :

भूषण में संख्यावाचक विशेषण प्रत्यय रहित और प्रत्यय सहित दोनों ही रूपों में प्राप्त होते हैं।

(क) प्रत्यय रहित संख्यावाचक विशेषण

सात और दस की संख्या में कोई वैविध्य नहीं मिलता। शेष दस तक की संख्याओं का विवरण निम्न प्रकार है—

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५६ २ वही, छन्द सं० ५६
३ मिश्रबन्धु, शि० भू०, १५६, मिश्रजी की प्रति में 'कोय' के स्थान पर 'कोइ' मिलता है।
४ मिश्रबन्धु, शि० भू० १६१, मिश्रजी की प्रति में 'कोई' के स्थान पर 'कोऊ' ही मिलता है।
५ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५२३
६ वही, छं० सं० २५८ ७ वही, छन्द सं० २८६
८ वही, ,, ,, ५२३ ९ वही, ,, ,, ५७३
१० वही, ,, ,, २००

(१) इसके कई वैविध्य हैं। हिन्दी की प्रचलित पद्धति के अनुसार /एक[1] / मिलता है। ए– के संकुचित रूप से युक्त शब्द भी मिलते हैं। /इक[2]/ फ़ारसी की शैली पर /यक[3]/ भी अप्राप्य नहीं है।

(२) दो में इतना वैविध्य नहीं मिलता। केवल प्रचलित /दो[4]/ प्रत्यय रहित और ब्रजभाषा के अनुसार /द्वै[5]/ रूप मिलते हैं। प्रत्यय सहित होने पर कभी-कभी यह अविकृत रूप में प्रयुक्त होता है और कभी दु– संकुचित रूप भी मिलता है। जैसे—/दोय[6]/, /दुहुँन[7]/।

(३) प्रचलित /तीन[8]/ तो मिलता ही है। इसके साथ-साथ ति- (संस्कृत तृ) का प्रयोग मिलता है। जैसे—/तिहुँ[9]/।

(४) इसके दो रूप मिलते हैं। /चारि[10]/, /चार[11]/।

(५) तत्सम /पंच[12]/ और तद्भव /पाँच[13]/ दोनों का ही प्रयोग हुआ है।

(६) केवल एक ही स्थान पर /छहुँ[14]/ का प्रयोग हुआ है।

(८) इसके दो रूप हैं /अट्ठ[15]/ और तद्भव रूप /आठ[16]/।

(९) नौ का एक ही रूप /नव[17]/ भी मिलता है।

ऊपर की संख्याओं के अतिरिक्त /बारह[18]/, /सत्रह[19]/, /तैंतीस[20]/, /पंचतीस[21]/, /हिन्दी में पैंतीस/, /सैंतीस[22]/, /छत्तिस[23]/, और /चौंसठ[24]/ संख्याएँ

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० स० १२२

[2] वही, छं० सं० ५२०

[3] मिश्रबन्धु, शि० भू० १४४, मिश्रबन्धुओं की प्रति में /यक/ मिलता है। मिश्रजी की प्रति में इसके स्थान पर /इक/ का प्रयोग हुआ है।

[4] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १७४

[5] वही, छन्द सं० ६०

[6] वही, छन्द सं० ३७५

[7] वही, ,, ,, ३२

[8] वही, ,, ,, ४२८

[9] वही, ,, ,, २१६

[10] वही, ,, ,, ५०१

[11] वही ,, ,, ४३२

[12] वही, ,, ,, १९१

[13] वही, ,, ,, १७७

[14] वही, ,, ,, २३

[15] वही, ,, ,, २८९

[16] वही, ,, ,, ४५४

[17] वही, ,, ,, २८९

[18] वही, ,, ,, ४७४

[19] वही, ,, ,, ३४६

[20] वही, ,, ,, २७८

[21] वही, ,, ,, १९३

[22] वही, ,, ,, ३४६

[23] वही, ,, ,, ४७०

[24] वही, ,, ,, ४५३

प्राय: एक-समान ही हैं। /सौ[१]/ के लिए एक स्थान पर /एकसत[२]/ है। लाख[3] के कई वैविध्य मिलते हैं। प्राकृतों में संस्कृत 'क्ष' का विकास 'च्छ' और 'ख' दोनों रूपों में हुआ है। भूषण में ये दोनों प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। /लच्छ[४]/, /लक्खनि[५]/। करोड़ के लिए भूषण ने /कोटि[६]/ का ही प्रयोग किया है। /कोटियौ[७]/ रूप भी मिलता है।

(ख) प्रत्यय सहित संख्यावाचक विशेषण :

(१) क्रमवाचक—क्रमवाचक विशेषणों में तत्सम या अर्धतत्सम की प्रवृत्ति ही विशेष रूप से मिलती है। तत्सम रूप में /प्रथम[८]/, /चतुर्थ[९]/ और /पंचम[१०]/ द्रष्टव्य है। अर्धतत्सम रूप में /दुतिय[११]/ और /तृतिय[१२]/ लिये जा सकते हैं।

९. ६. २. गुणावाचक संख्याओं का प्रयोग अत्यन्त विरल है। केवल दो के आधार पर बनी ये संख्याएँ मिलती हैं—/दुगुन[१३]/, /दूना[१४]/, दूना[१५]/।

९. ६. ३. बहुवचन प्रत्यय से युक्त खड़ी बोली हिन्दी की भाँति –ओं का संयोग न करके भूषण ने ब्रजभाषा पद्धति पर -न और -नि का ही प्रयोग किया है। जैसे—/दुहुँन[१६]/, 'दोनों' /लक्खनि[१७]/ 'लाखों' /कोटिन[१८]/ 'करोड़ों'। एक स्थान पर 'कोटि' के साथ -क प्रत्यय का प्रयोग भी हुआ है। जैसे—/कोटिक[१९]/ 'करोड़ों'।

९. ६. ४. Exclusive में -हि, -ऐ और -इ का प्रयोग मिलता है। जैसे—/एकहि[२०]/, /इक्कहि[२१]/, /एकै[२२]/।

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १७४
२ वही, छन्द सं० ४०७
३ वही, छन्द सं० १३५
४ वही, छन्द सं० ५७
५ वही, छन्द सं० १३४
६ वही, छन्द सं० ४१८
७ वही, छन्द सं० २७८
८ वही, छन्द सं० १०७
९ मिश्रबन्धु, शि० भू० ४७
१० मिश्रबन्धु, शि० भू० ४९
११ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३७६
१२ वही, छन्द सं० ३५१
१३ वही, छन्द सं० १३५
१४ वही, छन्द सं० १७४
१५ वही, छन्द सं० २७६
१६ वही, छं० सं० ३२
१७ वही, छं० सं० १३४
१८ वही, छं० सं० १७७
१९ वही, छं० सं० २३५
२० मिश्रबन्धु, शि० भू० २४०
२१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १३४
२२ वही, छं० सं० १२२

६. ६. ५. Inclusive इसके कई रूप वैविध्य मिलते हैं। जैसे — हूँ/ -हू, -हु; -उ; -ऊ; -ओं/ -औ। उदाहरणार्थ— /नौहू[१]/, /तिहुँ[२]/, /चहुँ[३]/, /छहु[४]/, /तीनहु[५]/, /चारियौ[६]/, /दोऊ[७]/, 'दोनों' /दोनों[८]/, /चारों[९], /बारहौं[१०]/, /तीनौ[११]/।

६. ६. ६. निषेधवाचक उपसर्ग से युक्त /अनेक[१२]/ शब्द मिलता है।

६. ६. ७. **व्युत्पन्न विशेषण** : -ल प्रत्यय से युक्त /अकेले[१३]/, /अकेलौ[१४]/ 'अकेला' मिलते हैं। एकान्त के स्थान पर /इकन्त[१५]/ का प्रयोग मिलता है।

प्रश्न या आश्चर्य के भाव से युक्त अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण क्- के आधार पर बने हैं। जैसे—/केतिक[१६]/ 'कितने', /कितेक[१७]/ 'कितने', /कैयक/[१८] 'कितने ही' /कैयो[१९]/।

६. ६. ८. शेष विशेषणों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है— मूलविशेषण तथा व्युत्पन्न विशेषण।

६. ६. ८. १. (क) **मूल विशेषण**—इस वर्ग के अन्तर्गत सार्वनामिक विशेषण तथा अन्य गुणवाचक विशेषण आते हैं।

(अ) **सार्वनामिक विशेषण**—सार्वनामिक विशेषणों पर कुछ विचार सर्वनामों के साथ हो चुका है। अन्यवाचक विशेषण के रूप 'और' पर आधारित हैं। इस पर बने हुए रूपों की तालिका इस प्रकार है : /औरई[२०]/ 'और ही' /औरउ[२१]/ 'और भी' /औरऊ[२२]/ 'और भी' /औरौ[२३]/ 'और भी'।

सम्बन्धवाचक सार्वनामिक विशेषणों में -आ या -औ (पु० एकवचन), -ए (पु० बहुवचन) तथा -इ (स्त्री०) प्रत्ययों का प्रयोग मिलता है। उदाहरण पहले दिए जा चुके हैं।

---

१ **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३४१**
२ **वही, छं० सं० २१६**
३ **वही, छं० सं० ४८३**
४ **वही, छं० सं० २३**
५ **वही, छं० सं० १५**
६ **वही, छं० सं० १२४**
७ **वही, छं० सं० ५२३**
८ **वही, छं० सं० ५२०**
९ **वही, छं० सं० १९५**
१० **वही, छं० सं० ३१०**
११ **वही, छं० सं० ३४५**
१२ **वही, छं० सं० १३४**
१३ **वही, छं० सं० ३१५**
१४ **वही, छं० सं० १३५**
१५ **वही, छं० सं० ३६७**
१६ **वही, छन्द सं० ५०५**
१७ **वही, छन्द सं० ६२**
१८ **वही, छन्द सं० ४४२**
१९ **वही, छन्द सं० ३७०**
२० **वही, छन्द सं० १८५**
२१ **वही, छन्द सं० १९७**
२२ **वही, छन्द सं० १८३**
२३ **वही, छन्द सं० ६०**

(आ) परिणामवाचक विशेषण—परिणामवाचक विशेषण भी कुछ तो समीपवर्ती और दूरावर्ती सार्वनामिक अंश इ- तथा उ- पर आधारित मिलते हैं, जैसे /इतनो[1]/ 'इतना' /इत[2]/, /उत[3]/, /इतै[4]/, /उतै[5]/ नित्यसम्बन्धी भाव को व्यक्त करने के लिए उक्त रूपों के साथ ज्- का संयोग होता है, जैसे—/जेतो[6]/ 'जितना' /जेती[7]/ 'जितनी' /जेते[8]/ 'जितने' /जिते[9] 'जितने'। अनिश्चितता का भाव व्यक्त करनेवाले /कछु[10]/, /कछू[11]/, /कछूक[12]/ रूप भी मिलते हैं।

(इ) बहुत्ववाची विशेषण—/अत्यन्त[13]/, /बहु[14]/, /अधिक[15]/ जैसे तत्सम रूप भी मिलते हैं। साथ ही /बहुत[16]/ जैसा तद्भव तथा /घने[17]/, /घनी[18]/ और /घनेरी[19]/ जैसे बोलीगत रूप भी प्राप्त होते हैं।

(ई) गुणवाचक विशेषण—गुणवाचक विशेषणों के सम्बन्ध में केवल एक बात द्रष्टव्य है कि कुछ विक्षेषण लिंग, वचन प्रत्ययों से युक्त होकर प्रयुक्त होते हैं और कुछ बिना प्रत्ययों के। स्त्रीलिंग प्रत्यय -ई है। इसके कुछ उदाहरण ये हैं—/बावरी[20]/, /भली[21]/, /कारी[22]/, /बड़ी[23]/। एकवचन पुल्लिग प्रत्यय -ओ या -औ है। इनके कुछ उदाहरण ये हैं—/बड़ौ[24]/, 'बड़ा', /छोटो[25]/, 'छोटा' /कारो[26]/, 'काला'। एकाध शब्द का खड़ी बोली की भाँति आकारान्त रूप भी मिलता है। जैसे–/पक्का[27]। पुल्लिग बहुवचन प्रत्यय -ए है। इसके कुछ उदाहरण ये हैं– /कारे[28]/, /गोरे[29]। समस्त का भाव व्यक्त करनेवाले विशेषण प्रत्ययों से युक्त भी हैं, जैसे—/सारे[30]/,

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५५३
२ वही, छन्द सं० ४६८
३ वही, छन्द सं० ५०६
४ वही, ,, ,, ४१६
५ वही, ,, ,, ४१६
६ वही, ,, ,, ३१०
७ वही, ,, ,, ५२३
८ वही, ,, ,, १०
९ वही, ,, ,, २७२
१० वही, ,, ,, १६०
११ वही, ,, ,, ४५
१२ वही, ,, ,, १७१
१३ वही, ,, ,, २५३
१४ वही, ,, ,, १६
१५ वही, ,, ,, १६६
१६ वही, ,, ,, ४६
१७ वही, ,, ,, १२६
१८ वही, ,, ,, १३६
१९ वही, ,, ,, ३१२
२० वही, ,, ,, ५५५
२१ वही, ,, ,, १६१
२२ वही, ,, ,, ५५४
२३ वही, ,, ,, ५६
२४ वही, ,, ,, ६
२५ वही, ,, ,, २४६
२६ वही, ,, ,, ५५४
२७ वही, ,, ,, १५६
२८ वही, ,, ,, १६५
२९ वही, ,, ,, ५४८
३० वही, ,, ,, ४४६

/सिगरी[१]/, और इस भाव को प्रकट करनेवाले अप्रत्यय विशेषण भी मिलते हैं—/सकल[२]/, /तमाम[३] ।

९. ६. ८. २. व्युत्पन्न विशेषण

इनके दो वर्ग हो सकते हैं : उपसर्ग लगाकर बनाए हुए विशेषण तथा अन्त्य प्रत्यय लगाकर बनाए हुए विशेषण ।

(अ) उपसर्ग के द्वारा संज्ञा से व्युत्पन्न विशेषण—

(१) अ+संज्ञा=विशेषण । जैसे—/अचेत[४]/, /अयाने[५]/, /अमाघ[६]/

(२) नि+संज्ञा=विशेषण । जैसे—/निरगुन[७]/

(३) नी+संज्ञा=विशेषण । जैसे—/नीरस[८]/

(४) बद+संज्ञा=विशेषण । जैसे—/बदनाम[९]/, /बदरंग[१०]/

(५) बे+संज्ञा=विशेषण । जैसे—/बेइलाज[११]/, बेआब[१२]/

(६) प्र+संज्ञा=विशेषण । जैसे—/प्रबल[१३]/, /प्रबीनौ[१४]/

(७) स+संज्ञा=विशेषण । जैसे—/सगुन[१५]/, /सदंभ[१६]/ /साभिप्राय[१७]/

(८) सु+संज्ञा=विशेषण । जैसे—/सुलच्छन[१८]/, /सुबरन[१९]/

(आ) प्रत्यय के द्वारा संज्ञा से व्युत्पन्न विशेषण

(१) सज्ञा+ई=विशेषण । जैसे—/प्रतापी[२०]/, /बली[२१]/, /अनन्दी[२२]/

(२) संज्ञा+ए (पुल्लिंग बहुवचन)=विशेषण । जैसे—/सूने[२३]/ (शून्य+ए)

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ११०
२ वही, छन्द सं० १०
३ वही, छन्द सं० ५०४
४ वही, ,, ,, ८४
५ वही, ,, ,, १४६
६ वही, ,, ,, २२४
७ वही, ,, ,, ५९
८ वही, ,, ,, ५७
९ वही, ,, ,, ८१
१० वही, ,, ,, ११३
११ वही, ,, ,, २५६
१२ वही, ,, ,, ३१७
१३ वही, ,, ,, ८६
१४ वही, ,, ,, १८६
१५ वही, ,, ,, १३२
१६ वही, ,, ,, ५०
१७ वही, ,, ,, १४४
१८ वही, ,, ,, ४९
१९ वही, ,, ,, १५९
२० वही, ,, ,, ६४
२१ वही, ,, ,, ३६
२२ वही, ,, ,, ५३२
२३ वही, ,, ,, १३५

(३) संज्ञा + इत/ऐत = विशेषण । जैसे— /संकित[1]/ "शंका से युक्त" /लवनित[2]/ "लावण्ययुक्त", /घमंडित[3]/ "घमण्ड से युक्त", /कमनैत[4]/ "धनुषधारी" ।

(४) संज्ञा + दार = विशेषण । जैसे—अड़दार[5]/, /दावेदार[6]/, /गड़दार[7]/

(५) संज्ञा + मान/वन्त = विशेषण । जैसे—/आयुषमान[8]/, /मतिमान/[9], /बलवन्त[10]/, /ज्ञानवन्त[11]/ ।

(६) संज्ञा + -ल प्रत्यय के रूप = विशेषण । जैसे—/रसाल[12]/, गसीला[13]/, /कटीले[14]/, /कृपाल[15]/, /गरूरे[16]/ (ल् र्) 'मतवाले' ।

(७) संज्ञा + वार + लिंगवचन = विशेषण । जैसे—/करनवारो[17]/ 'कर्णवाला' । /पानिपवारे[18]/ 'तेजस्वी', /मतबारे[19]/ मतवाले /बकतरबारे[20]/ 'वख्तर-कवच वाले' ।

(८) संज्ञा + संज्ञा = विशेषण । जैसे—/मदजल[21]/ 'मतवाला', /मदगल[22]/ 'मतवाला' /तेजपुंज[23] ।

(९) संज्ञा + मय = विशेषण । जैसे—/भूषनमय[24]/, /अम्बुमय[25]/

(१०) संज्ञा + क्रिया या कृदन्त = विशेषण । जैसे— /सुखकर[26]/, /रजभरी[27]/,/जसरत[28]/,/करनजित[29] /'कर्ण को जीतनेवाला',

---

1 भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ९१
2 वही, छ० सं० २३ — 3 वही, छं० सं० ५३९
4 वही, ,, ,, ६७ — 5 वही, ,, ,, ३३
6 वही, ,, ,, ३३ — 7 वही, ,, ,, ३३
8 वही, ,, ,, ८ — 9 वही, ,, ,, ७१
10 वही, ,, ,, १७७ — 11 वही, ,, ,, १३२
12 वही, ,, ,, २१ — 13 वही, ,, ,, ४४२
14 वही, ,, ,, ५२२ — 15 वही, ,, ,, ६८
16 वही, ,, ,, २७० — 17 वही, ,, ,, २४७
18 वही, ,, ,, १६५ — 19 वही, ,, ,, २२८
20 वही, ,, ,, २८४ — 21 वही, ,, ,, १२३
22 वही, ,, ,, ५९ — 23 वही, ,, ,, ५३९
24 वही, ,, ,, २९ — 25 वही, ,, ,, ५७
26 वही, ,, ,, ४८ — 27 वही, ,, ,, १५९
28 वही, ,, ,, ३१४ — 29 वही, ,, ,, ६७

/ कंसमंथन[1] / 'कंस को मंथने वाला' / कामनादानि[2] / / गरीबनिवाज[3] /, / पावक-तूल[4] /, / करंकीभूत[5] / 'कलंकित' हो गए।

(इ) उपसर्ग के आधार पर क्रिया से बने हुए विशेषण—

(१) निषेधात्मक उपसर्ग + धातु = विशेषण।

अ— + धातु = विशेषण। इसके उदाहरण ये हैं :

/अकह[6]/, /अगन[7]/, /अचल[8]/, /अचूक[9]/, /अटल[10]/

कुछ रूप ऐसे हैं जो मूल धातु से नहीं, पातपदीक से व्युत्पन्न हुए हैं। जैसे /अभंग[11]/ (अ + √भज्)।

(२) अन् — + √ + वर्तमान कृदन्त प्रत्यय + लिंगवचन = विशेषण। जैसे अनखाती[12]/ (अन् – + – √खा – + –त्– + ई) आदि।

(३) अन् – + √ + क्रियार्थक संज्ञा प्रत्यय तिर्यक् विशेषण। जैसे— /अनहूवे[13]/ (अन् + – √हो– + –व्– + ए) 'अनहोने की'।

(४) अन्– + भूतकालिक कृदन्त प्रत्यय या वहुवचन प्रत्यय + – ए विशेषण। जैसे—/अनरीझे[14]/ (अन्– + –√रीझ– + –ए), /अनबाढ़े[15]/ अन्– + –√बढ़– + –ए)। /अनखीझे[16]/

(१) सु – 'सुगम के अर्थ में' + √ = विशेषण। जैसे—/सुकर[17]/

(२) वि- + भूतकालिक कृदन्त = विशेषण। जैसे—/विरुद्ध[18]/

(ई) प्रत्यय के आधार पर क्रिया से बने हुए विशेषण।

(१) √ – + न् + इय विशेषण। जैसे—/करनीय[19]/ 'करने योग्य', इसी तरह—

(२) अ– + √– + अ (–य्–) = विशेषण। जैसे— /अलक्ख/ 'अलक्ष्य'।[20]

---

1 भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४
2 वही, छन्द सं० ४५
3 वही, छन्द सं० १३९
4 वही, छन्द सं० ३६
5 वही, छन्द सं० ५३२
6 वही, छं० सं० ४२५
7 वही, छं० सं० २६५
8 वही, छं० सं० ९५
9 वही, छं० सं० १०१
10 वही, छं० सं० १२०
11 वही, छ० सं० १८४
12 वही, छं० सं० ५५५
13 वही, छं० सं० १७८
14 वही, छं० सं० १७०
15 वही, छं० सं० २५८
16 वही, छं० सं० १७०
17 वही, छं० सं० २३२
18 वही, छं० सं० १९६
19 वही, छं० सं० १८३
20 वही, छं० सं० ३३४

(३) वर्तमानकालिक कृदन्त प्रत्यय -त् से युक्त विशेषणों का प्रयोग सामान्य है। इसके कुछ उदाहरण ये हैं। जैसे—/जटित[१]/ ।√जट् (<जट्–)+इत =वि०)।

इसी तरह /लुप्त[२]/ 'तत्सम', /जुत[३]/ (युत) युक्त। एकाध शब्द में वर्तमान-कालिक कृदन्त प्रत्यय का पुराना रूप –अन्त भी मिलता है। जैसे—/विकसन्त[४]/।

(४) √ – + लिं० वच० = विशेषण। जैसे—/लेबा[५]/, देबा[६]/।

(५) धातु+ऐया = विशेषण। जैसे—/लरैया[७]/ √लर्+ऐया= 'लड़ने वाला', /धरैया[८]/ √धर्+ऐया='धरने वाला'।

(६) अन्य प्रकार जैसे— /ग्राही[९]/ 'ग्रहण करनेवाला', /गतबल[१०]/ 'बलहीन', इसमें गत– भूतकालिक कृदन्त है और 'बल' संज्ञा। /ऐंड़ायल[११]/ 'अड़ियल'।

इस विवेचन से स्पष्ट होता है कि भूषण में विशेषणों का वैविध्य पर्याप्त है। कुछ तत्सम, कुछ अर्ध तत्सम और कुछ तद्भव विशेषण मिलकर इस वैविध्य को पूर्ण कर देते हैं।

९. ७. क्रिया

९. ७. १. वर्तमानकालिक कृदन्त

वर्तमानकालिक कृदन्त का आधार-त् प्रत्यय मिलता है। "√+-त्-+ लिंगवचन।" इसके कई रूप मिलते हैं।

[-त्-]=/-त्-/, /-अत्-/, /-आत्-/, /-इत्-/, /-इयत्-/ / यत्-/, /-वत्-/

(१) /-त्-/ का प्रयोग आकारान्त तथा कुछ एकारान्त धातुओं के साथ होता है। जैसे—/देत[१२]/ √दे+त्, √जा+त् /जात[१३]/, √खा+त् /खात[१४]/

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० २०
२ वही, छं० सं० ३५
३ वही, छं० संख्या २३
४ (यह शब्द मिश्रबन्धुओं की प्रति में है, मिश्रजी वाली प्रति में नहीं है) छं० सं० १८
५ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ७४
६ वही, छन्द सं० ५०८
७ वही, छन्द सं० २२१
८ वही, ,, ,, २२१
९ वही, ,, ,, ४६८
१० वही, ,, ,, ३३३
११ वही, ,, ,, ३३७
१२ वही, ,, ,, १२६
१३ वही, ,, ,, ९८
१४ वही, ,, ,, ३९

(२) /-अत्-/ का प्रयोग व्यंजनान्त धातु के साथ होता है।[1] जैसे—/उठत[2]/, /घिरत[3]/, /लगत[4]/

(३) /-आत्-/ का प्रयोग बहुधा व्यंजनांत धातु के साथ होता है। जैसे—√उड़-से /उड़ात[5], "उड़ जाते हैं"

√ठहर-से /ठहरात[6]/ "ठहर जाते हैं"

इसी प्रकार /घननात[7], भननात[8] तथा झुलमुलात[9] जैसी अनुकरणात्मक ध्वनियों के साथ भी यह प्रयुक्त मिलता है।

(४) /-इत्-/ इसका प्रयोग एक ही स्थान पर मिलता है। जैसे-/थकित[10]/ पर यह रूप विशेषणवत् ही प्रयुक्त हुआ है। क्रियाओं की रूप रचना में /-अत्-/ से युक्त पद का ही प्रयोग होता है। जैसे—/थकत[11]/।

(५) /-इयत्-/ इसका प्रयोग एक विशिष्ट प्रयोग है, जो आकारान्त धातुओं के साथ होता है। जैसे—√गा से /गाइयतु[12]/, √छा से /छाइयतु[13]/ √आ से /आइयतु[14], √पा से /पाइयतु[15]। प्रेरणार्थक रूप के साथ भी /-इयत्-/ का प्रयोग मिलता है। जैसे—/चलाइयतु[16] "चलाते हैं।" [√चल-+-आ-+इयतु]। कुछ व्यंजनान्त धातुओं के साथ भी इसका प्रयोग मिलता है। जैसे—√जान् से /जानियतु[17]/, √आन् से /आनियत्[18]/, तथा √काँध से /काँधियतु[19]/ "स्वीकार करते हैं।"

(६) /-यत्-/√पी- धातु के साथ इसका प्रयोग होता है किन्तु ईकारान्त रूप इकारान्त हो जाता है। जैसे—/पियत[20]/

---

१ यदि व्यंजनान्त धातु का अस्तित्व ही स्वीकार न करके सभी व्यंजनान्त धातुओं को अकारान्त मान लिया जाय तो इस रूपान्तर की आवश्यकता नहीं है।

२ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २२४

३ वही, छन्द सं० ३९६ ४ वही, छन्द सं० ८३

५ वही, ,, ,, ४६ ६ वही, ,, ,, ४६

७ वही, ,, ,, ३१७ ८ वही, ,, ,, ३१७

९ वही, ,, ,, ३१७ १० वही, ,, ,, ४८६

११ वही ,, ,, ३३६ १२ वही, ,, ,, १०८

१३ वही, ,, ,, १९५ १४ वही, ,, ,, १०८

१५ वही, ,, ,, १९५ १६ वही, ,, ,, ३९८

१७ वही, ,, ,, ६१ १८ वही, ,, ,, ६१

१९ वही, ,, ,, ९५ २० वही, ,, ,, २३

(७) /-वत्-/ का प्रयोग कुछ आकारान्त धातुओं के साथ होता है। जैसे—√आ से /आवत[१]/, √गा से /गावत[२], छहरा से /छहरावत[३]/। ऊकारान्त धातुओं के साथ भी इसका प्रयोग होता है पर इस प्रत्यय को ग्रहण करने से पूर्व ऊकारान्त धातु उकारान्त हो जाती है। जैसे—√छू से /छुवति[४]/

वर्तमानकालिक कृदन्त प्रत्यय [-त्-] के संयोग के फलस्वरूप कुछ धातुओं में भी परिवर्तन हो जाता है। ऊकारान्त > उकारान्त, ईकारान्त > इकारान्त के उदाहरण ऊपर आ चुके हैं। कुछ स्वतन्त्र वैविध्य और भी मिलते हैं। जैसे—/नचत[५]/∼/नाचत[६]।

९. ७. २. भूतकालिक कृदन्त

क्रिया धातु + [-य-] + लिंग वचन = भूतकालिक कृदन्त। पु० एक वचन में -औ∼-ओ प्रत्यय मिलते हैं। जैसे—

/आयौ[७]/, /आयो[८]/, /भयौ[९]/, /भयो[१०]/, /कटायौ[११]/, /कटायो[१२]/, /राख्यो[१३]/, /जीत्यो[१४]/ आदि आदि....

खड़ी बोली के प्रभाव के कारण -आ प्रत्यय वाले रूप भी मिलते हैं। उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :

पंच-हजारिन बीच **खरा किया** मैं उसका कुछ भेद न **पाया**।
भूषन यौं कहि औरँगजेब उजीरन सों बेहिसाब **रिसाया**।
कम्मर कीन कटारी दई इस नाम ने गोसलखाना **बचाया**।
जोर सिवा करता अनरथ्थ भली भई हथ्थ हथ्यार न **आया**॥[१५]

किन्तु यह प्रवृत्ति सर्वत्र नहीं है। कुछ स्थानों पर ही यह प्रवृत्ति लक्षित होती है। पु० बहुवचन में -ए प्रत्यय मिलता है। जैसे—/गए[१६]/, /भए[१७]/, /दले[१८]/,

---

[१] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० २५**
[२] **वही, छन्द सं० २६१** [३] **वही, छन्द सं० २७०**
[४] **वही, ,, ,, ३५५** [५] **वही, ,, ,, ३९६**
[६] **वही, ,, ,, ३१०** [७] **वही, ,, ,, २५**
[८] **वही, ,, ,, ४२७** [९] **वही, ,, ,, ९**
[१०] **वही, ,, ,, ४३८** [११] **वही, ,, ,, ३०४**
[१२] **वही, ,, ,, ४१८** [१३] **वही, ,, ,, ४१४**
[१४] **वही, ,, ,, ४१७** [१५] **वही, ,, ,, १९१**
[१६] **वही, ,, ,, १६१** [१७] **वही, ,, ,, ४४३**
[१८] **वही, ,, ,, ४५२**

/दुरे[1]/ स्त्रीलिंग की स्थिति में -ई प्रत्यय मिलता है। जैसे—/पाई[2]/, /आई[3]/, /भई[4]/।

भू० कृ० /–य–/ के ध्वन्यात्मक परिस्थितिजन्य विविध रूप—

/-य-/=/ϕ/, /-य-/

=/ϕ/ का प्रयोग '-ए' तथा '-ई' के पूर्व होता है। जैसे—

=/गए[5]/ "गये" /आए[6]/ "आये"

=/गई[7] "गयी" /आई[8]/ "आयी"

=/-य-/ का प्रयोग -ओ और -औ के पूर्व होता है। जैसे—/गयौ[9]/, /गयो[10]/, /आयौ[11]/, /आयो[12]/।

स्वतन्त्र वैविध्य

/किया[13]/~/कियौ/~[14]/कीनौ[15]/~/कीन्हों[16]/

/किये[17]/~/कीने[18]/~/कीन्हें[19]/

/लियो[20]/~/लियौ[21]/~/लीनौ[22]/~/लीन्हों[23]/

/लीने[24]/~/लए[25]/

/भौ[26]/~/भयो[27]/~/भयौ[28]/

/गौ[29]/~/गो[30]/~/गयौ[31]/

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १२४
२ वही, छन्द सं० ५१८
३ वही, छन्द सं० ५१८
४ वही, ,, ,, ५६४
५ वही, ,, ,, १६१
६ वही, ,, ,, ३४६
७ वही, ,, ,, ५६४
८ वही, ,, ,, ५१८
९ वही, ,, ,, ५१८
१० वही, ,, ,, ४७३
११ वही, ,, ,, २५
१२ वही, ,, ,, ४२७
१३ वही, ,, ,, १६१
१४ वही, ,, ,, २४१
१५ वही, ,, ,, ६४
१६ वही, ,, ,, ५१६
१७ वही, ,, ,, ३४
१८ वही, ,, ,, २५५
१९ वही, ,, ,, ४३८
२० वही, ,, ,, ५४१
२१ वही, ,, ,, ३१६
२२ वही, ,, ,, ७८
२३ वही, ,, ,, ३८४
२४ वही, ,, ,, १५०
२५ वही, ,, ,, २६६
२६ वही, ,, ,, ३६
२७ वही, ,, ,, ४३८
२८ वही, ,, ,, ६
२९ वही, ,, ,, ५४५
३० वही, ,, ,, ३७२
३१ वही, ,, ,, ५१८

/दिये[१]/~/दीन्हें[२]/
/करी[३]/~/कीन्हीं[४]/
उपर्युक्त सभी रूपों का प्रयोग मिलता है।

६. ७. ३. पूर्वकालिक कृदन्त

क्रिया धातु + /-इ/ = पूर्वकालिक कृदन्त। जैसे—/पेखि[५]/, /देखि[६]/, /डारि[७]/, /पीसि[८]/, /करि[९]/ आदि आदि।

पूर्वकालिक कृदन्त का प्रत्यय -इ = /-इ/ , /-य/
= -इ प्रत्यय वाले उदाहरण ऊपर दिये गए हैं। -य प्रत्यय का योग आकारान्त धातुओं के साथ मिलता है। जैसे –
√पा से /पाय[१०]/
√छा/ से /छाय[११]/
√समुझा से /समुझाय[१२]/
√छिपा से /छिपाय[१३]/
केवल दो एकारान्त धातुओं के साथ -ए प्रत्यय के योग से पूर्वकालिक कृदन्त बने हुए मिलते हैं। जैसे—√दे से /दै[१४]/, √ले से /लै[१५]/

उपर्युक्त सभी रूप परसर्ग सहित और परसर्ग रहित दोनों रूपों में प्रयुक्त मिलते हैं। इनके साथ प्रयुक्त होने वाला परसर्ग /कै/ है। जैसे— /जराइकै[१६]/, /दाबिकै[१७]/, /करिकै[१८]/, /सुनिकै[१९]/, /जायकै[२०]/।

बिरल रूप से /कर/ परसर्ग एक स्थान पर मिलता है। पंक्ति इस प्रकार है—"दै कर गँवाई रामगिरि से गिरीस को"[२१]

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १०
२ वही, छन्द सं० ५१२
३ वही, छन्द सं० ३७३
४ वही, छन्द सं० ४२५
५ वही, छन्द सं० ४४८
६ वही, छन्द सं० ४५०
७ वही, छन्द सं० ४३०
८ वही, छन्द सं० ४२०
९ वही, छन्द सं० ४१८
१० वही, छन्द सं० ४०
११ वही, छन्द सं० ३८
१२ वही, छन्द सं० ५१३
१३ वही, छन्द सं० ७७
१४ वही, छन्द सं० १७७
१५ वही, छन्द सं० ३३
१६ वही, छन्द सं० ४४८
१७ वही, छन्द सं० ४२१
१८ वही, छन्द सं० ७८
१९ वही, छन्द सं० ६२
२० वही, छन्द सं० ४३९
२१ वही, छन्द सं० १९३

पूर्वकालिक कृदन्त की द्विरुक्ति के उदाहरण भी मिलते हैं। इससे क्रिया में बल पैदा होता है। जैसे—

/ चौंकि-चौंकि[1] /, / देखि-देखि[2] /, / दै-दै[3] /, / किलकि-किलकि[4] /

९. ७. ४. क्रियार्थक संज्ञा

क्रिया धातु + /-ब ~-इब~-न/ + /-औ~-ओ~-ए/ = क्रियार्थक संज्ञा।

जैसे—

/गाजिबौ[5]/, /बाँधिबौ[6]/, /कहिबौ[7]/, /कीबो[8]/।

तिर्यक रूप में /-ब/ के साथ -ए का संयोग मिलता है।

/दिबे[9]/, /लेबे[10]/, /धरिबे[11]/

–न वाले उदाहरण—

/पयान[12]/, /गिरन[13]/, /परावने[14]/, /मलन[15]/

९. ७. ५. कर्तृवाचक कृदन्त

धातु क्रिया में –ऐया, –हार, –वारे, –वाल प्रत्यय से युक्त कर्तृवाचक कृदन्त मिलते हैं। जैसे—

/लरैया[16]/, "लड़नेवाला", /धरैया[17]/ "धरनेवाला"

/होनहार[18]/, /भरनहार[19]/

/खेलनवारे[20]/, /रहनवारी[21]/

/ढाहनवाल[22]/

९. ७. ६. आज्ञार्थक क्रियाएँ

आज्ञार्थक धातुओं के साथ -ओ, -औ, -उ -हु प्रत्ययों से युक्त आज्ञार्थक क्रियाएँ मिलती हैं।

---

1 भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४३६
2 वही, छन्द सं० ४२७
3 वही, छन्द सं० ४१५
4 वही, छन्द सं० ४१३
5 वही, छन्द सं० ७६
6 वही, छन्द सं० ४३८
7 वही, छन्द सं० ५७५
8 वही, छन्द सं० १४६
9 वही, छन्द सं० १५८
10 वही, छन्द सं० १६३
11 वही, छन्द सं० ६७
12 वही, छन्द सं० ५७०
13 वही, छन्द सं० ४१४
14 वही, छन्द सं० ४३३
15 वही, छन्द सं० १४५
16 वही, ,, ,, २२१
17 वही, ,, ,, २२१
18 वही, ,, ,, ५२७
19 वही, ,, ,, ८१
20 वही, ,, ,, ४६६
21 वही, ,, ,, ४२६
22 वही, ,, ,, ५२१

जैसे—/सुनो[1]/, /मानो[2]/
/गहौ[3]/, /रहौ[4]/, /टिकौ[5]/, /सुनौ[6]/
/मारु-मारु/[7]
/जाहु[8]/, /दंडियहु[9]/

६. ७. ७. काल रचना

६. ७. ७. १. वर्तमान निश्चयार्थ, भविष्य निश्चयार्थ तथा आज्ञार्थ रूप मूल काल के अन्तर्गत आते हैं। भूषण के काव्य में इन मूल काल रूपों में प्रयुक्त प्रत्यय ये हैं :—

क्रिया धातु		पुरु० वचन	:	मूल काल
,,	+	/-ऊँ/	:	उत्तम पुरुष एकवचन। जैसे—/"जद्यपि हौं सिखऊँ चतुराई"[10]/ / 'तुम्हैं छोड़ि काहि यातें बिनती सुनाऊँ मैं तिहारे गुन गाऊँ तुम ढील कौं धरत हौं"[11]/
,,	+	/-ऐ/	:	मध्यम० अन्य० एकवचन। जैसे /"तेरौ करवाल करै"[12]/, /"संग न नेक चलै ननदी"[13]/
,,	+	/-औ/	:	मध्यम बहुवचन : जैसे— /"धाय नहीं घर माहिं सुनौ"[14]/
,,	+	/-औ/	:	-औ/, /-ओ/, /-उ/, /-हु/
			:	-औ प्रत्यय का उदाहरण ऊपर दिया गया है। -ओ प्रत्यय का उदाहरण— /"भूषन सुकबि कहै सुनो नवरंगजेब"[15]/

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५४१
[2] वही, छन्द सं० ४४७
[3] वही, छन्द सं० २३१
[4] वही, छन्द सं० ४३६
[5] वही, छन्द सं० ३९१
[6] वही, छन्द सं० ११४
[7] वही, छन्द सं० २०२
[8] वही, छन्द सं० ७२
[9] वही, छन्द सं० ५८
[10] वही, छन्द सं० ५७७
[11] वही, छन्द सं० ७०
[12] वही, छन्द सं० ८१
[13] वही, छन्द सं० ५६०
[14] वही, छन्द सं० ५६०
[15] वही, छन्द सं० ५४१

/"सुनि सोई साह कहै यारो उमरावो जाओ"/[1]

-उ प्रत्यय के उदाहरण— /"मारु-मारु सोर होत है समर में"[2]/ "युद्ध में मारो मारो का शोर हो रहा है।"/

: /"पीय पहारन पास न जाहु"[3]/ अर्थात् -"प्रियतम पहाड़ के पास मत जाओ"।

-हु वाला एक और उदाहरण—

/दंडियहु[4]/ "दंड दो"

क्रिया धातु + /-ऐं/ : उत्तम० अन्य० बहुवचन। जैसे—

/"भूषन सुभट येई पाछे परे मेरे हैं।"[5]/

/"ब्याकुल पठानी मुगलानी अकुलानीं फिरैं"/[6]

/"कन्त तुमैं हैं अनन्त महा सौं"/[7]

/"बगरे बराह जानवरन के जोम हैं"[8]

९. ७. ७. २ वर्तमान निश्चयार्थ अथवा आज्ञार्थक-अभिप्रायार्थक

क्रिया धातु + /-ऊँ/ : उत्तम पुरुष एकवचन। जैसे–/सुनाऊँ[9]/ /गाऊँ[10]/

,, + /–ऐ/ : मध्यम० अन्य० एकवचन। जैसे-/चलै[11]/, /करै[12]/

,, + /-औ/ : मध्यम बहुवचन जैसे—/करौ/[13]

,, + /–ऐं/ : उत्तम० अन्य० बहुवचन। जैसे—/हैं[14]/, /फिरैं/[15]

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४७३

[2] वही, छं० सं० २०२

[3] वही, छं० सं० ७२

[4] वही, छं० सं० ५८

[5] वही, छं० सं० ५४७

[6] वही, छं० सं० ५२७

[7] वही, छं० सं० २३१

[8] वही, छं० सं० ३३७

[9] वही, छं० सं० ७०

[10] वही, छं० सं० ७०

[11] वही, छं० सं० ५६०

[12] वही, छं० सं० ८१

[13] वही, छं० सं० २३१

[14] वही, छं० सं० ५४७

[15] वही, छं० सं० ५२७

६. ७. ७. ३. भविष्य निश्चयार्थ

क्रिया धातु		पु० वचन		भवि०		लिंग-वचन	:	भविष्य निश्चयार्थ	
√बच्	+	-ऐ	+	-ग-	+	-आ	:	/बचैगा/[1]	मध्यम एकवचन ।
√रह्	+	-ऐ	+	-ग-	+	-ओ	:	/रहैगो/[2]	मध्यम बहुवचन ।
√चल्	+	-ऐ	+	-ग-	+	-औ	:	/चलैगौ/[3]	अन्य एकवचन ।
√बुला	+	-ऐ	+	-ब-	+	-औ	:	/बुलैबौ/[4]	अन्य एकवचन ।
√पा	+	-इ	+	-ह-	+	-ओं	:	/पाइहौं/[5]	उत्तम एकवचन ।
√लर्	+	-इ	+	-ह-	+	-औं	:	/लरिहौं/[6]	उत्तम बहुवचन ।
√खा	+	-ऐ	+	-ह-	+	-ऐं	:	/खैहैं/[7]	उत्तम बहुवचन ।

६. ७. ७. ४. काल रचना के कृदन्ती रूप

कृदन्ती काल रचना में वर्तमानकालिक कृदन्त, भूतकालिक कृदन्त और भूत सम्भावनार्थ प्रयुक्त होते हैं । भूषण में प्राप्त इनका विवरण इस प्रकार है—

(अ) वर्तमानकालिक कृदन्त :

क्रिया धातु + -त् + -आ∼ओ	:	पु० एकवचन जैसे— /"जोर सिवा **करता** अनरथ्थ भली भई हथ्थ हथ्यार न आया"[8]/, /'औरंग यों पछितात है **करतो** जतन अनेक"/[9]
,, + -त् + -ए	:	पु० बहुवचन जैसे— /"कछु दिन **उबरते** तो घने काम **करते**"/[10]
,, + -त् + -ई	:	स्त्री० एकवचन । जैसे— /"ब्याकुल बिलोल चितकोप के अलोल ही में सरस कपोल ढीठ पुलक **बढ़ावती**"/[11]
,, + त् + -ईं	:	स्त्री० बहुवचन । जैसे—/बिजन **डुलातीं** ते वे बिजन डुलाती हैं"/[12]

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १४५
[2] वही, छन्द सं० ५४०
[3] वही, छन्द सं० ५८६
[4] वही, छन्द सं० ४२५
[5] वही, छन्द सं० ५७०
[6] वही, छन्द सं० ४३७
[7] वही, छन्द सं० ४३७
[8] वही, छन्द सं० १९१
[9] वही, छन्द सं० १८०
[10] वही, छन्द सं० १६३
[11] वही, छन्द सं० १६३
[12] वही, छन्द सं० ४२६

(आ) भूत सम्भावनार्थ :

इसके रूप वर्तमानकालिक कृदन्त वाले ही होंगे । ये रूप ऊपर दिये गये हैं ।

(इ) भूतकालिक कृदन्त :

क्रिया के भूतकालिक कृदन्त रूप भूत निश्चयार्थ के रूप में प्रयुक्त होते हैं ।

"चलना" क्रिया के रूप

/-औ/ पु० एकवचन । जैसे—/चल्यौ/[१] , /-ऐ/ पु० बहुवचन । जैसे—/चले/[२]
/-ई/ स्त्री० एकवचन । जैसे—/चली/[३] , /ई/ स्त्री० बहुवचन । जैसे—/चलीं/[४]

शेष काल-रचना के रूप संयुक्त क्रियाओं के आधार पर बनते हैं । संयुक्त क्रिया का काल, वचन तथा पुरुष उसमें प्रयुक्त अन्तिम क्रिया रूप के अनुसार निर्धारित होता है । इसमें लिंग कृदन्तीय अंश के अनुसार होता है ।

९. ७. ८. संयुक्त क्रियाएँ

भूषण को भाषा में क्रिया के वर्तमानकालिक कृदन्त, भूतकालिक कृदन्त, पूर्वकालिक कृदन्त तथा कियार्थक संज्ञाओं के साथ किसी सहायक क्रिया अथवा प्रधान क्रिया का संयोग करके विभिन्न अर्थों का द्योतन करने वाले रूप मिलते हैं । नीचे इनके उदाहरण दिए जा रहे हैं ।

९. ७. ८. १. वर्तमानकालिक कृदन्त के साथ सहायक क्रियाएँ

/होतु है[५]/, /कहत हैं[६]/, डारत हैं[७]/
/काँपत रहत[८]/, जागत रहत[९]/
/होति जाती है[१०]/, /मुदित भई है[११]/, /फिरत रहत है[१२]/,
/सोचत रहत हैं[१३]/
/पीवत अघाय धाय उठैं अकुलाइ हैं[१४]/

---

[१] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १८६
[२] वही, छन्द सं० ५२५
[३] वही, छन्द सं० ५२५
[४] वही, ,, ,, ५२५
[५] वही, ,, ,, ५५१
[६] वही, ,, , १४७
[७] वही, ,, ,, १४६
[८] वही, ,, ,, १५६
[९] वही, ,, ,, १५९
[१०] वही, ,, ,, ५००
[११] वही, ,, ,, ५६३
[१२] वही, ,, ,, ४५७
[१३] वही, ,, ,, ३९०
[१४] वही, ,, ,, ४८०

/मुदित भए[१]/, /जात चलै[२]/, /चलत चलै[३]/
/देत हौ[४]/, /लेत हौ[५]/, /लेत रहौ[६]/ /कहत हौं[७]/

९. ७. ८. २. भूतकालिक कृदन्त के साथ सहायक क्रियाएँ

/बच्यौ है[८]/, /आयौ है[९]/, /पाई है[१०]/, /चली है[११]/
/चलीं हैं[१२]/, /रहे हैं[१३]/, /लड़ें हैं[१४]/, /अड़ो है[१५]/
/दिखाई देत[१६]/, /चली जाती हैं[१७]/
/खरा किया[१८]/, लिये जात[१९]/, /खरे रहे[२०]/
/डरे रहे[२१]/, /ह्वै गयो[२२], चल्यौ हौ[२३]/

९. ७. ८. ३. पूर्वकालिक कृदन्त के साथ सहायक क्रियाएँ

/आइ रहीं/[२४], /छूटि जात[२५]/, /सोइ रहे[२६]/, /गाजि रहे[२७]
/उमगि आइ है[२८]/, /जोरि आइ है[२९]/, /करि आयो है[३०]/
/बढ़ाय लीजियतु है[३१]/, /गिरि परि हैं[३२]/, बाँधि जाना है[३३]
/झारि डारे हैं[३४]/, /पौरि पैठत ग्रसत है[३५]/
/लाइ ढारि ढारि जात हैं[३६]/

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १२
२ वही, छन्द सं० ५०१ ३ वही, छन्द सं० ३०७
४ वही, छन्द सं० १५८ ५ वही, छन्द सं० १५८
६ वही, छन्द सं० ४३६ ७ वही, छन्द सं० ४४७
८ वही, छन्द सं० ७२ ९ वही, छन्द सं० ५६१
१० वही, छन्द सं० ५६१ ११ वही, छन्द सं० २३८
१२ वही, छन्द सं० २३८ १३ वही, छन्द सं० १२०
१४ वही, छन्द सं० ५४७ १५ वही, छन्द सं० २१९
१६ वही, छन्द सं० ४४६ १७ वही, छन्द सं० ४२८
१८ वही, छन्द सं० १९१ १९ वही, छन्द सं० ५०१
२० वही, छन्द सं० ५१६ २१ वही, छन्द सं० ५१६
२२ वही, छन्द सं० ४७३ २३ वही, छन्द सं० ५०१
२४ वही, छन्द सं० ५४८ २५ वही, छन्द सं० ५३७
२६ वही, छन्द सं० ४६६ २७ वही, छन्द सं० ५५०
२८ वही, छन्द सं० ५६१ २९ वही, छन्द सं० ४१३
३० वही, छं० सं० ३०४ ३१ वही, छन्द सं० ५७८
३२ वही, छन्द सं० ४८५ ३३ वही, छन्द सं० ५१४
३४ वही छन्द सं० ४१६ ३५ वही, छन्द सं० ४९४
३६ वही, छन्द सं० ४५७

/अड़ि-अड़ि पिलि-पिलि लड़े हैं[1]/
/मनाइ लियो[2]/, /आनि मिल्यौ[3]/, /खोदि डारे[4]/
/लै गयो[5]/, /दै गयो[6]/. /फैलि रह्यौ[7]/
/भाजि आए[8]/, /निवारि डार्यौ[9]/, /उठि गयौ[10]/
/डाँडि पकरि लीन्हों[11]/
/भजि जैहौं[12]/, /जनाइ हौं[13]/

९. ७. ८. ४. क्रियार्थक संज्ञा के साथ प्रस्तुत सहायक क्रियाएँ

/बखाना है[14]/, दीने हैं[15]/, /जान्यौ जाइ[16]/
/जीतन चलत है[17]/, /परावने परत हैं[18]/
/करन लगै/[19], /पावने लगे[20]/, /गिरन लागे[21]/
/डरन लागै/[22], /बलकन लाग्यौ[23]/

९. ८. अव्यय

भूषण में प्राप्त अव्ययों को दो भागों में बाँटा जा सकता है :
(१) क्रिया विशेषण, और (२) अन्य अव्यय ।

९. ८. १. क्रिया विशेषण —

भूषण में रूप रचना की दृष्टि से मूल, प्रत्ययों के आधार पर अन्य पदों से व्युत्पन्न तथा संयुक्त क्रिया विशेषण मिलते हैं । इनका विवरण निम्न प्रकार है ।

९. ८. १. १. **मूल क्रिया विशेषण**—अर्थ की दृष्टि से ये चार प्रकार के हैं । स्थानवाचक, कालवाचक, रीतिवाचक और परिमाणवाचक ।

---

1 भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ५४७
2 वही, छं० सं० ५४१
3 वही, छं० सं० २९२
4 वही, „ „ ४४८
5 वही, „ „ ४७३
6 वही, „ „ ४७३
7 वही, „ „ ५४८
8 वही, „ „ २६३
9 वही, „ „ ५०१
10 वही, „ „ ५४५
11 वही, „ „ ४४४
12 वही, „ „ ३८४
13 वही, „ „ ५७०
14 वही, „ „ ५१४
15 वही, „ „ १९३
16 वही, „ „ २८१
17 वही, „ „ ४११
18 वही, „ „ ४३३
19 वही, „ „ १८५
20 वही, „ „ २९८
21 वही, „ „ ४१४
22 वही, „ „ ४४८
23 वही, „ „ ४४३

(अ) स्थानवाचक—इसके दो भेद किए जा सकते हैं : (१) स्थितिवाचक, और (२) दिशावाचक ।

१. स्थितिवाचक : /ऊपर/ "अमरावति की छबि ऊपर छाजै"[1]
/पीछें/ "गोलकुण्डावारो पीछें ही को सरकतु है"[2]
/अनत/ "काज अनत ही होइ"[3]
/आगे/ "भ्वैसिला के आय आगे ठाढ़े"[4]
/संग/ "संग छोड़ि साथी चले"[5]
/समीप/ "है समीप सासु पै न नन बलि वैरिन के मुदित भई है मुदिता वधू कहावती"[6]
/भीतर/ "भीतर भवन भरे"[7]

२. दिशावाचक : /ओर/ "चारौं ओर नदीन की पाँति उतरत है"
/दूर/ "कहै कवि भूषन दूर पहुँचे"[8]

(आ) कालवाचक /कालि/ "कालि को जोगी कलिंदे को खप्पर"[10]
/आजु/ "समाजु आजु कहाँ चलि"[11]
/बेग/ "ताको निधन करति बेग"[12]
/पुनि/ "हेतु पुनि अनुमान कहि"[13]
/रोज/ "उनहिं को रोज पाइयतु है"[14]
/नित/ "नित हय गय लक्खनि सचरइ"[15]
/सदा/ /"सदा दान किरवान में जाके आनन अभु"[16]
/फिरि/ "फिरि फिरि करत बखान"[17]
/दिन-राती/ "याही तें विकल बिताती दिन-राती हैं"[18]

---

[1] **भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १५**
[2] **वही, छं० सं० २०४**
[3] **वही, छं० सं० १८१**
[4] **वही, छं० सं० ३४६**
[5] **वही छं० सं० ५२५**
[6] **वही, छं० सं० ५६३**
[7] **वही, छं० सं० ३३७**
[8] **वही, छन्द सं० ५३**
[9] **वही, छन्द सं० १८६**
[10] **वही, छन्द सं० ३०१**
[11] **वही, छन्द सं० ४१३**
[12] **वही, छन्द सं० १४६**
[13] **वही, छन्द सं० ४०७**
[14] **वही, छन्द सं० ४१**
[15] **वही, छन्द सं० १३४**
[16] **वही, छन्द सं० ७**
[17] **वही, छं० सं० ११६**
[18] **वही, छन्द सं० ५५५**

(इ) परिमाणवाचक : /अति/ "क्रुद्ध फुरत अति"[1]
/नेक/ "नेक की रीझि धनेस करि"[2]
/भारी/ "पैग पैग होत भारी"[3]
/बराबरी/ "क्यों बराबरी करत है"[4]
/जासती/ 'तेरी तलवार स्याह नागिन तें जासती[5]

(ई) रीतिवाचक : /मुसकिल होत मुरचानहू की चोट में"[6]
/मति/ "या पूना में मति टिकौ"[7]
/परस्पर/ "जहाँ परस्पर होत है"[8]
/रीति/ "सुनि सुनि रीति बिरुदैत के बड़प्पन की"[9]
/झलमल/ झलमल भूमि है"[10]
/संका/ "संका मानि सूखत अमीर दिल्लीवारे सब"[11]
/अचानक/ "डरी तिय प्रान अचानक सोका"[12]
/ठीक/ "किए दुहुँ ठीक"[13]
/कुतुहल/ "किलकि किलकि के कुतुहल करति काली"[14]
/घमासान/ "चंपति के चक्कवै मचायो घमासान"[15]
/उद्यत/ "उद्यत होत कछु करिबे को"[16]
/उचित/ "करियै उचित बखान"[17]
/भयानक/ "भूषन भनत भारे भालुक भयानक है"[18]
/अचंभव/ "एक अचंभव होत बड़ो"[19]
/प्रगट/ "प्रगट होत नहीं काज"[20]
/न/ "बैठि न सकत आय"[21]
/नहीं/ "जानौ नहीं अबहीं चतुरापन"[22]

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३३६
२ वही, छं० सं० २४३ — ३ वही, छं० सं० ५३१
४ वही, छं० सं० ३९८ — ५ वही, छं० सं० ४५९
६ वही, छं० सं० ४१५ — ७ वही, छं० सं० ३९१
८ वही, छं० सं० ४७ — ९ वही, छं० सं० ५०८
१० वही, छं० सं० २० — ११ वही, छं० सं० ५२४
१२ वही, छं० सं० ५६९ — १३ वही, छं० सं० ४६९
१४ वही, छं० सं० ४१३ — १५ वही, छं० सं० ५१६
१६ वही, छं० सं० १८६ — १७ वही, छं० सं० १९०
१८ वही, छं० सं० ३३७ — १९ वही, छं० सं० १६५
२० वही, छं० सं० १७६ — २१ वही, छं० सं० ४४१
२२ वही, छं० सं० ५७४

९. ८. १. २. व्युत्पन्न क्रिया विशेषण — व्युत्पन्न क्रिया विशेषणों की रचना शब्दों में प्रत्यय अथवा शब्द संयुक्त कर की जाती है। भूषण में प्राप्त संज्ञापदों, विशेषणों, सार्वनामिक अंगों तथा अव्ययों में प्रत्ययों का योग करके जो क्रिया विशेषणों के रूप मिलते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है :

(अ) संज्ञाओं के आधार पर बने क्रिया विशेषण : इसके दो रूप हैं—संज्ञा से पूर्व प्रत्यय लगाकर बने हुए क्रिया विशेषण और संज्ञा के पश्चात् प्रत्यय लगाकर बने हुए क्रिया विशेषण।

१. भूषण में संज्ञा से पूर्व प्रयुक्त प्रत्यय ये हैं :—/नि- ~निह- ~निर-/, /बे-/, /बर- /, /ना- /, / तत- / "तत्" /प्रती- / "प्रति"।

/नि- ~निह- ~निर-/ : /निडर/[1] "पायतर आए तिन्हें निडर बसायबे कौं"
/निहचिंत/[2] "भूषन अब निहचिंत है"
/निरभै/[3] 'आजु दुनी में गुनी निरभै है"
/निरम्लेच्छ/[4] "भूषन भू निरम्लेच्छ करी"

/बे-/ : /बेहिसाव/[5] "बेहिसाब रिसाया"
/बेफिकिर/[6] "जिन्हें पाय होत कबिराज बेफिकिर है।

/बर-/ : /बरजोर/[7] "बेही काज बरजोर कटक कटायो है"।

/ना-/ /नाहक/[8] 'नाहक कहौ तौ जाय दच्छिन में मरियै।"

/तत-/ : /ततकाल/[9] "होत काज ततकाल"
/ततच्छन/[10] "ततच्छन लच्छन मुगधा हौं पहचानी"

/प्रती-/ : /प्रतीदिन/[11] प्रतीदिन दान कौं दुन्दुभि बाजै"

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ९५
२ वही, छन्द सं० ३५९
३ वही, छं० सं० १५१
४ वही, छन्द सं० २५४
५ वही, छन्द सं० १९१
६ वही, छन्द सं० ३१७
७ वही, छन्द सं० ३०४
८ वही, छन्द सं० २४७
९ वही, छन्द सं० १०५
१० वही, छन्द सं० ५७२
११ वही, छन्द सं० ५५

२. भूषण में संज्ञा से परे परप्रत्यय और शब्द ये हैं—/-ऐं/, /-लौं~-तक्क/ /-तर/, /-कौ~ -के~ -की/, /-से~ -सों~-सौं~ -तें~ -हू/, /-में/ /-समेत/

/-ऐं/ : /धूपैं/[1] "धूपैं चली जातीं"
/समाजैं/[2] "समाजैं निदरत है"

/लौं~ -तक्क : /सिरौंज लौं/[3] "सहर सिरौंज लौं"
: /मक्के तक्क/[4] "मक्के तक्क तुरक भजि"

/-तर/ : /पायतर/[5] "पायतर आय"

/-कौ~ -के~ -की/ : /प्रानन कौ/[6] "प्रानन कौ लेवा है।"
: /अरि के/[7] "अरि के चलाए"
: /कुहु की/[8] "कुहु की अंध्यारी चढ़ि"

/-से~ -सों~ -सौं~ -तें~ -हू/ : /बीजना से/[9] "बीजना से बरम्हाइयै"
: /लोहू सों/[10] "लोहू सों भरे रहे"
: /भय सौं/[11] "भय सौं भगाने भूप"
: /गेह तें/[12] "गेह तें गौन कियौ गजगौनी"
: /हिय हू/[13] "हँस हिय हू"

/-में/ : /कोट में/[14] कूदे परे कोट में"

/-समेत/ : /सेन-समेत/[15] "सेन-समेत ऊँचे गयो भाई"

(आ) विशेषण के आधार पर बने क्रियाविशेषण :
विशेषण + नि : /लक्खनि/[16] "हय गय लक्खनि संचरइ"
विशेषण + तें : /बल तें/[17] "नवसेरीखान सों खुमान भिर्यौ बल तें/

(इ) सार्वनामिक अंगों के आधार पर बने क्रियाविशेषण[18] :
सार्वनामिक अंग + /-त्र/ = कालवाचक क्रियाविशेषण।

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४२८
२ वही, छन्द सं० ३९८
३ वही, छन्द सं० ४३३
४ वही, छन्द सं० ४३३
५ वही, छन्द सं० ९५
६ वही, छन्द सं० ७४
७ वही, छन्द सं० ५२५
८ वही, छन्द सं० ९८
९ वही, छन्द सं० १
१० वही, छन्द सं० ५१६
११ वही, छन्द सं० ८३
१२ वही, छन्द सं० ५८२
१३ वही, छन्द सं० ५८१
१४ वही, छन्द सं० ४१५
१५ वही, छन्द सं० ५१८
१६ वही छन्द सं० १३४
१७ वही, छन्द सं० २८४
१८ मथुरा जिले की बोली, डा० चन्द्रभान रावत, पृ० २४८ एवं २४९

/अ-/ + /-ब/ = /अब/ = (घटमान वर्तमान)
/ज-/ + /-अब/ = /जब/ = (दूरवर्ती अतीत, सम्बन्धवाचक)
/त-/ + /-अब/ = /तब/ = (दूरवर्ती अतीत, नित्यसम्बन्धी)
/क-/ + /-अब/ = /कब/ = (प्रश्नवाचक)

/-ब/ का प्रयोग स्वर के पश्चात् होता है तथा /-अब/ का प्रयोग व्यंजनों के पश्चात् होता है। भूषण में /अब[1]/, /जब[2]/, /तब[3]/, /कब[4]/ मिलते हैं।

सार्वनामिक अंग+/-आँ~ -अहाँ/ (-आँ का प्रयोग स्वर के पश्चात् और -अहाँ का प्रयोग व्यंजनों के पश्चात्) होता है।

/इ/ + /-आँ/ = /इँ आँ/~[न्याँ]~[ञ्याँ] "यहाँ"
/उ/ + /-आँ/ = /उँ आँ/~[म्वाँ]~[माँ] "वहाँ"
/ज्/ + /अँ हाँ/ = /जँ हाँ/ "जहाँ"
/त्/ + /अँ हाँ/ = /तँ हाँ/ "तहाँ"
/क्/ + /अँ हाँ/ = /कँ हाँ/ "कहाँ"

भूषण में प्राप्त इनके रूप निम्न प्रकार हैं :—

यहाँ : /इहां[5]~ह्यां/[6]
वहाँ : /उहां[7]~ह्वां/[8]
जहाँ : /जहाँ[9]~जहँ[10]~जहिं[11]/
तहाँ : /तहाँ[12]~तहँ[13]~तहिं[14]/
कहाँ : /कहाँ[15]~कहँ[16]~कहिं[17]~कहुँ[18]~कहूँ/[19]

सार्वनामिक अंग+/-त~ -इत/=दिशावाचक अव्यय

/इ-/ + /-त/ = /इत/ 'इधर' : समीपतासूचक।
/उ-/ + /-त/ = /उत/ 'उधर' : दूरत्वसूचक।
/क्-/ + /-इत/ = /कित/ 'किधर' : प्रश्नसूचक।

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३८४
[2] वही, छन्द सं० ३४७
[3] वही, छन्द सं० ३४७
[4] वही, छन्द सं० ४७०
[5] वही, छन्द सं० ४१५
[6] वही, छन्द सं० ३०६
[7] वही, छन्द सं० ४५४
[8] वही, छन्द सं० ५६१
[9] वही, छन्द सं० १७
[10] वही, छन्द सं० ९९
[11] वही, छन्द सं० ६६
[12] वही, छन्द सं० २४
[13] वही, छन्द सं० ३९६
[14] वही, छन्द सं० १७
[15] वही, छन्द सं० १८९
[16] वही, छन्द सं० ३३४
[17] वही, छन्द सं० २३
[18] वही, छन्द सं० १८
[19] वही, छन्द सं० ५६१

भूषण में /इत[१]/, /उत[२]/ और /कित/[३] मिलते हैं। इनके साथ -ऐ प्रत्यय से युक्त रूप भी मिलते हैं। /इतै[४]/, /उतै/[५] प्रश्नसूचक 'कित' के रूप /कैयो[६]/, /कैयक/[७] भी मिलते हैं।

सार्वनामिक अंग + /-यौं/ = रीतिवाचक अव्यय।

/इ-/ + /औं/ = /इँयों/, /न्यौं/~न्यों/ "यौं" समीपतासूचक।
/ज्/ + /-औं/ = /ज्यों/ "ज्यों" सम्बन्धसूचक।
/त्-/ + /औं/ = /त्यौं/ "त्यों" सम्बन्धसूचक।
/क्-/ + /-ग्रौं/ = /क्यों/ "क्यों" प्रश्नवाचक।

भूषण के काव्य में ये सभी रूप मिलते हैं। /यौं[८] यों[९]/, /ज्यौं[१०] ज्यों[११]/, /त्यौं[१२] त्यों[१३]/, /क्यों[१४] क्यों[१५]/

सार्वनामिक अंग + /-स्~ -ऐस्/ + /-ऐ/ = रीतिवाचक।

/-ऐस-/ = समानताद्योतक।
/-ऐ-/ = प्रकार द्योतक।
/ए-/ + /-स्-/ + /-ऐं/ = /ऐसें/ 'इस प्रकार' समीपतासूचक।
/ब्-/ + /-ऐस्-/ + /-ऐं/ = /बैसें/ 'उस प्रकार' दूरत्वसूचक।
/त्-/ + /-ऐस्- + /-ऐं/ = /तैसें/ 'तिस प्रकार' दूरत्वसूचक।
/ज्-/ + /-ऐस्-/ + /-ऐं/ = /जैसें/ 'जिस प्रकार' दूरत्वसूचक।

भूषण में इनके रूप इस प्रकार मिलते हैं: /इमि[१६]/, /जिम[१७]/, /ऐसी[१८]/ /तैसो[१९]/, /वैसोई[२०]/

सार्वनामिक अंग + /-औ/ = उद्देश्य सम्बन्धसूचक।

/ज्-/ + /-औ/ = /जौ/ "यदि"
/त्-/ + /-औ/ = /तौ/ "तो"

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४९८
२ वही छन्द सं० ४९८
३ वही, छन्द सं० ३००
४ वही, छन्द सं० ५२८
५ वही, छन्द सं० ५२८
६ वही, छन्द सं० ३७०
७ वही, छन्द सं० ४४२
८ वही, छन्द सं० २७०
९ वही, छन्द सं० ५१५
१० वही, छन्द सं० ३४५
११ वही, छन्द सं० ४०८
१२ वही, छन्द सं० ३०५
१३ वही, छन्द सं० २५५
१४ वही, छन्द सं० १७५
१५ वही, छन्द सं० ३९८
१६ वही, छन्द सं० १७५
१७ वही, छन्द सं० १६
१८ वही, छन्द सं० ५०
१९ वही, छन्द सं० ५५४
२० वही, छन्द सं० २१०

भूषण में इनके रूप इसी रूप में मिलते हैं। /जौ[1]/, /तौ/[2]

सार्वनामिक अंग + /-आ~ -अहा/ = प्रश्नसूचक अव्यय।

/क्-/ + /-आ~ अहा/ = /का/ /कहा/ 'क्या'?

भूषण में /कहा/ मिलता है। "कुन्द कहा पय-वृन्द कहा अरु चन्द कहा सरजा जस आगे।"[3]

(ई) क्रियाओं के आधार पर बने हुए क्रियाविशेषण :—

१. /क्रिया धातु/ + /-इ/ = क्रियाविशेषण:

/फिर/ + /-इ/ = /फिरि/ "फिरि फिरि करत बखान"[4]

२. पूर्व० कृ० + /कै/ 'कर' = क्रियाविशेषण, जैसे—

/पैरि/ + /कै/ = /पैरिकै/ "पैरिकै कपाली बचे"[5]

/चढ़ि/ + /कै/ = /चढ़िकै/ "काली बचीं माँस के पहार पर चढ़िकै"[6]

(उ) अव्ययों से रचित क्रियाविशेषण : /कहाँ लौं/ "भूषन भनत तेरी हिम्मत कहाँ लौं कहैं/[7] इसी तरह /जौ लौं[8]/, /तौ लौं/[9]

(ऊ) क्रियाविशेषण से रचित क्रियाविशेषण : क्रियाविशेषण में /-इ/ जोड़ देने से निश्चयार्थक रूप बनते हैं। जैसे /सदा/ + /-ई/ = /सदाई/ 'जिनको सदाई रही लाज स्वामी काज की"[10] इसी तरह /ह्याँई/ "ह्याँई साइतखान कों दीन्हीं सिवा सजाय"[11]

९. ८. १. ३. **संयुक्त अव्यय**

१. संज्ञाओं की द्विरुक्ति से : /देसनि देसनि/[12] "देश देश से", /जुत्थ जुत्थ/[13], /धाम धाम[14]/, /ठौर ठौर[15]/, /घर घर[16]/, /बन बन[17]/, /खाने खाने/[18]

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ३४५
[2] वही, छन्द सं० ३४५
[3] वही, छन्द सं० ३५०
[4] वही, छन्द सं० ११९
[5] वही, छन्द सं० ४५८
[6] वही, छन्द सं० ४५८
[7] वही, छन्द सं० ४१५
[8] वही, छन्द सं० ३४५
[9] वही, छन्द सं० ३४५
[10] वही, छन्द सं० ४४२
[11] वही, छन्द सं० ३९१
[12] वही, छन्द सं० १५
[13] वही, छन्द सं० ४१३
[14] वही, छन्द सं० ४३४
[15] वही, छन्द सं० ४७६
[16] वही, छन्द सं० १००
[17] वही, छन्द सं० ४९२
[18] वही, छन्द सं० ४९३

२. विशेषणों की द्विरुक्ति से : /कछु कछु[1]/, /चारि चारि/[2]

३. क्रियाविशेषणों की द्विरुक्ति से : /पुनि पुनि/[3] /जहाँ जहाँ[4] /, /तहाँ तहाँ/[5]

४ क्रियाओं की द्विरुक्ति से : /बैठे बैठे[6]/, /खरे खरे[7]/, /पेलि पेलि[8]/, /खेलि खेलि[9]/, /चौंकि चौंकि/[10]

५. अनुकरणात्मक द्विरुक्ति से : /थर थर[11]/, /डिम डिम[12]/, /सगबग[13]/, /धक धक[14]/, /ऐल-फैल[15]/, /खैल मैल/[16]

९. ८. २. अन्य अव्यय : इसके अन्तर्गत बलवर्द्धक, समानार्थक, समेतार्थक, केवलार्थक, सम्बन्धसूचक, समुच्चयबोधक तथा विस्मयादिबोधक अव्यय भूषण में निम्न रूप में मिलते हैं :

१. बलवर्द्धक : /तो/ "सिवाजी न होतो तो सुनति होती सबकी।"[17]

/लौं/ 'तक' "लै परनालो सिवा सरजा करनाटक लौं कुल देस बिगूँचे"[18]

/तक्क/ 'तक'—"मक्के तक्क तुरक्क भजि"[19]

२ समानार्थक : /स्/ : लिं० वचन० = /सो से सी/ 'सा, से, सी'

जैसे—/सो/ 'तारा सो तरनि धूरि–धारा में लगत जिमि"[20]

/से/ "गिरि से गिरन लागे"[21]

/सी/ "चाक-सी फिरति धाक चम्पति के लाल की"[22]

३. समेतार्थक : /उ/ 'भी' जैसे—"गढ़पति वीर तेऊ धीर न धरत है।[23]"

/हू/ 'भी' जैसे—'उनहू के डर याकी धाक धरकत है।"[24]

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १०८

[2] वही, छं० सं० ५०१

[3] वही, छं० सं० ४

[4] वही, छं० सं० ५००

[5] वही, छं० सं० ५००

[6] वही, छं० लं० ३९०

[7] वही, छं० सं० ३९०

[8] वही, छं० लं० ५१४

[9] वही, छं० सं० ५१४

[10] वही, छं० सं० ४२३

[11] वही, छं० सं० ४२३

[12] वही, छं० सं० ४१३

[13] वही, छं० सं० ४२८

[14] वही, छं० सं० ४३५

[15] वही, छं० सं० ४११

[16] वही, छं० सं० ४११

[17] वही, छं० सं० ४४६

[18] वही, छं० सं० १८९

[19] वही, छं० सं० ५१३

[20] वही, छं० सं० ४११

[21] वही, छं० सं० ४१४

[22] वही, छं० सं० ५०८

[23] वही, छं० सं० ४३३

[24] वही, छं० सं० २०४

४. केवलार्थक : /ई/ 'ही' जैसे—"सोई प्रगट्यौ"[१]

/ही/ जैसे—तेरे ही भुजन पर भूतल को भार"[२]

५. सम्बन्धसूचक : भूषण में संज्ञाओं की विभक्तियों के पीछे और संज्ञाओं के तिर्यक रूपों के साथ प्रयुक्त होने वाले सम्बन्धसूचक अव्यय मिलते हैं।

क—संज्ञाओं की विभक्ति के पीछे आने वाले सम्बन्ध सूचक :

/आर-पार/ "चम्बल के आर-पार नेजे चमकत है"[३]

/पास/ "सरजा के पास आइबे को"[४]

/बीच/ "बारिधि के बीच बसै जेते सुरतान तेते"[५]

/सहारे/ "राति के सहारे वै अराति-अमरषतें"[६]

/भीतर/ "भौनन के भीतर भुजंग भूत फैलै फिरें"[७]

/आगे/ "लालन के आगे रस पागे[८]

/अन्दर/ "मन्दर के अन्दर रहाती है"[९]

/नियरे/ "ताहि खरो कियो छ-हजारिन के नियरे"[१०]

/बाहिर/ "बैराट नगर तें बाहिर गूढ़ ज्ञान के"[११]

ख—संज्ञाओं के तिर्यक् रूपों के साथ प्रयुक्त होने वाले :

/समेत/ "सेन-समेत अँचै गयो भई"[१२]

"गयौ बंगस बंस-समेत चबाई"[१३]

/तरे/ 'तख्त तरे तें आयो सरजा"[१४]

/लौं/ की तरह' "चन्दावत लौं कोउ टूटै सु टूटै "[१५]

६. संयोजक : इसके अन्तर्गत भूषण में समुच्चयबोधक, विभाजक, प्रतिषेधक परिणामदर्शक और संकेत वाचक अव्यय निम्न रूप में मिलते हैं।

क—समुच्चयबोधक : /अरु/ "कुन्द अरु करबीर है"[१६]

/रु/ 'और' जैसे– लूट्यौ खाँनदौरा जोरावर आस फजंग रु लूट्यौ करतलबखाँ मानहु अमाल है।"[१७]

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ११

२ वही, छं० सं० ८१

३ वही, छं० सं० ५२७

४ वही, छं० सं० ६२

५ वही, छं० सं० ५०२

६ वही, छं० सं० २३६

७ वही, छं० सं० ४९४

८ वही, छं० सं० ५७०

९ वही, छं० सं० ४२९

१० वही, छं० सं० ४४३

११ वही, छं० सं० ३१५

१२ वही, छं० सं० ५१८

१३ वही, छं० सं० ५१८

१४ वही, छं० सं० १७९

१५ वही, छं० सं० २५४

१६ वही, छं० सं० २१

१७ वही, छं० सं० ९४

/औ/ 'और' जैसे—"आरिन में अरुआ अटारिन में आवज औ आँगन अदूसन में बाघ बिलसत है।"[1]
/और/ "बेटिन को यार और यार है लुगाइन को।"[2]

ख—विभाजक : /कै/ जैसे—"कै यह कै वह यौं जहाँ होत आनि सन्देह"[3]

ग—प्रतिषेधक : /परि/ जैसे—जहि हेतू पूरन नहीं, उपजत है परि काज"[4]
/पै/ "आन रितैं सरसै बरसै, पै बढ़ै नदियाँ नद पावस आऐं"[5]

घ—परिणामदर्शक : /सो/ "बहु विधि करत उलेख कौं सो उल्लेख उलेखि"[6]

च – संकेतवाचक : /जद्यपि-तद्यपि/ "जद्यपि मो गुन ए कवि भूषन तद्यपि मो पर यों नित नीकौ"[7]

(७) विस्मयादिबोधक : /हा/ : "न मिटावत हा है"[8]
/हाय हाय/ रावरेहू आये हाय हाय मेघराय सब धरती जुड़ानी पै न बरती जुड़ानी मैं"[9]

६. ६. शब्द समूह

परम्परागत रूप में शब्दों का विभाजन तत्सम, तद्भव, अर्ध तत्सम और देशज के रूप में किया जाता है। मध्य काल में मुख्य प्रवृत्ति तद्भव और अर्ध तत्सम की ही कही जा सकती है। तत्सम शब्दों को ब्रजभाषा के ध्वनिविकास की दृष्टि से तद्भव के रूप में समीकृत, सरलीकृत या मृदुलीकृत कर दिया जाता था। तत्सम की प्रवृत्ति शून्य तो नहीं थी। डाक्टर प्रेमनारायण टण्डन ने सूर की भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उनकी तत्सम प्रवृत्ति पर विचार किया है।[10] इन तत्सम शब्दों का प्रचलन कुछ हद तक रीतिकाल में भी बना रहा। इन तत्सम शब्दों की स्थिति कुछ स्रोतगत कारण से, कुछ संस्कृत ज्ञान से, कुछ लेखकों की तत्सम वृत्ति के कारण और कभी-कभी ब्रजभाषा की प्रकृति अनुकूल होने के कारण मानी जाती

भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४६४
२ वही, छं० स० ४७० ३ वही, छं० स० ७३
४ वही, छं० स० १७३ ५ वही, छं० स० १२६
६ वही, छं० स० ६६ ७ वही, छं० स० ५७४
८ वही, छं० स० २५८ ९ वही, छं० स० ५४६
१० सूर की भाषा, डा० प्रेमनारायण टंडन, पृ० ८५ से १०५ तक देखिए।

है किन्तु यह निश्चित है कि तत्सम शब्दों का अनुपात कम है। भूषण के काव्य में तत्सम शब्दावली निम्न रूप में मिलती है :

६. ६. १. तत्सम शब्द : भूषण में प्रयुक्त तत्समों में शुद्ध तत्सम काव्य शास्त्रीय लक्षणों और सन्दर्भों में ही अधिकांश आए हैं। इनमें भी अलंकारों के नाम ही अधिक उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार की तत्सम शब्दावली इस प्रकार है :—

(प्रत्येक शब्द के आगे पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के भूषण ग्रन्थ से छन्द संख्या दी गई है।)

१. अत्युक्ति (३१६)
२. अर्थान्तरन्यास (२४१)
३. अधिक (१९९)
४. अनुप्रास (३३१)
५. अनुमान (३२४)
६. अनुज्ञा (२५९)
७. अन्योन्य (२०७)
८. अभिप्राय (२८५)
९. असंगति (१८१)
१०. असंभव (१७८)
११. आधार (१९९)
१२. आधेय (१९९)
१३. आक्षेप (१६७)
१४. उक्ति (३९२)
१५. उत्तर (१३७)
१६. उपमा (३०)
१७. उपमान (३१)
१८. उपमेय (३१)
१९. उल्लेख (६६)
२०. कैतवापह्नुति (८९)
२१. क्रम (२२०)
२२. गुंफ (२१२)
२३. छेकापह्नुति (८५)
२४. दीपक (११७)
२५. दोष (२५७)
२६. दृष्टान्त (१२५)
२७. निषेध (३२०)
२८. पर्यस्तापह्नुति (८०)
२९. पर्याय (२२२)
३०. परिकर (१४४)
३१. परिसंख्या (२२७)
३२. विहित (२९३)
३३. प्रतिषेध (३२०)
३४. प्रतिबिंबित (२५०)
३५. प्रतीप (३७)
३६. प्रत्यनीक २३४)
३७. प्रथम (३५८)
३८. प्रमेय (१९९)
३९. प्रसिद्ध (३२०)
४०. प्रस्तुत (१५०)
४१ मालोपमा ४९)
४२. मिथ्याध्यवसित (२४८)
४३. मीलित (२७७)
४४. यथासंख्य (२२०)
४५. रीति (१३९)
४६. रूप (४६)
४७. रूपक (५६)
४८. ललितोपमा (५१)
४९. लुप्त (३५)
५०. वाक्य (१२२)
५१. व्याजस्तुति (१५७)
५२. सम ३१)

५३. सामान्य (२४१)
५४. समुच्चय (३७४)
५५. साभिप्राय (१४४)
५६. सार (२१७)
५७. संकर (३२८)
५८. सन्देह (७३)
५९. संभावना (२४६)
६०. स्मृति (६९)
६१. हेतु (१०३)
६२. हेतूपह्नुति (७७)

तत्सम शब्दों का दूसरा वर्ग वनस्पतियों, फूलों या पक्षियों के नामों से सम्बद्ध है। इनमें भी ऐसे ही शब्दों का प्रयोग है, जो ब्रजभाषा की ध्वनि-विकास सम्बन्धी प्रवृत्तियों के विरोध में नहीं पड़ते। इस प्रकार की सूची यह है (यहाँ भी प्रत्येक शब्द के आगे प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के भूषण ग्रन्थ से छन्द संख्या दी गई है) :

१. अंकुर (५७६)
२. कदली (२१)
३. कंद (३२९)
४. कदंब (२१)
५. कपोत (२३)
६. कमल (१८)
७. करी (६४)
८. कीर (२३)
९. कुन्द (२१)
१०. कुमुद (१९)
११. कुमुदावलि (३६)
१२. कूप (१९)
१३. केतकी (२१)
१४. कोकनद (१)
१५. कोकिल (२३)
१६. गज (३९)
१७. चक्रवाक (१९)
१८. चकोर (२३)
१९. चंपा (२०)
२०. चन्दन (२०)
२१. चातक (२३)
२२. द्रुम (२०)
२३. नलिनि (११८)
२४. पंक (४६)
२५. पराग (३२९)
२६. बकुल (२२)
२७. विहंग (२२)
२८. भुजंग (४०८)
२९. भृंग (४४०)
३०. मकरन्द (२३)
३१. मयूर (२३)
३२. मन्द (६४)
३३. मलिंद (४४१)
३४. माधवी (२२)
३५. मुकलित (१९)
३६. मृगराज (५०)
३७. रसाल (२१)
३८. लंबोदर (४०८)
३९. सारस (१९)
४०. सुमन (२०६)
४१. हंस (१९)

तत्सम शब्दों में इनके अतिरिक्त देव, लोक, राक्षस, प्रकृति आदि के नाम भी आये हैं। सामान्यतः इन नामों के प्रयोग में मध्यकालीन साहित्य में विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता। फिर भी श्, ष्, य्, ण् जैसी ध्वनियों से युक्त नामों

का तद्‌भव रूप ही अधिकांश मिलता है। इस क्षेत्र में भी भूषण की शब्दावली ब्रजभाषा ध्वनियों का अतिक्रमण नहीं करती। इस प्रकार के शब्द निम्नलिखित हैं (यहाँ भी प्रत्येक छन्द के आगे पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के भूषण ग्रन्थ से छन्द संख्या दी गई है) :

१. अनंत (२३१)
२. अर्क (४०८)
३. अलकापति (१५)
४. अवतार (७८)
५. अवनि ([illegible])
६. असुर (१६)
७. अह्मेव (१२)
८. अनंग (४०८)
९. अबर (१७)
१०. अम्बिका (४७९)
११ अंबुमय (७)
१२. अंभ (५०)
१३. आलोक (३)
१४. इन्दु (१९)
१५. इन्द्र (५०)
१६. इन्द्रनाग (४६)
१७. उपेन्द्र (९५)
१८. उदधि (४६३)
१९. ऐरावत (३९)
२०. कलानिधि (४६)
२१. कानन (५५३)
२२. कामधेनु (१०८)
२३. कुंडलि (४५)
२४. कुंभज (४०८)
२५. कृपाल (६८)
२६. गगन (१७)
२७. घटा (४२७)
२८. घनपटल (१६)
२९. घन (२३)
३०. चपला (७६)
३१. चन्द्रमा (५४८)
३२. जलनिधि (२)
३३. तम (५०)
३४. तरंग (१८)
३५. त्रिभुवन (१३४)
३६. त्रिपुरारि (३०३)
३७. दामिनी (४२७)
३८ दिनकर (४८)
३९. देव (१२)
४०. दैत्य (४७७)
४१. द्विज (१२)
४२. द्विजराज (५०)
४३. द्विहृदमुख (१)
४४. नीलग्रीव (४७)
४५. पंचानन (६१)
४६. पावक (३६)
४७. पीयूष (२१)
४८. प्रभा (११८)
४९. प्रभु (४)
५०. प्रेत (२२४)
५१. ब्रह्म (२११)
५२. भानु (३४६)
५३. भूमि (२०६)
५४. मनोज (३५२)
५५. मही (१५)
५६. मंदिर (४३०)
५७. मेघ (४६)
५८. समुद्र (२८)
५९. सलील (२००)
६०. सागर (२४९)

६१. सिद्ध (३२२)
६२. सिन्धु (२८६)
६३. सुधा (३६)
६४. सुर (१२)
६५. सुरतरु (४८)
६६. सृष्टि (२११)
६७. हिमकर (४८)

शेष तत्सम शब्दावली में भी उपर्युक्त प्रवृत्ति द्रष्टव्य है। उदाहरण के लिए ये शब्द दिये जा रहे हैं (यहाँ भी प्रत्येक शब्द के आगे पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के भूषण ग्रन्थ से छन्द संख्या दी गई है):

१. अखंड (११४)
२. अति (३१६)
३. अनादर (४०)
४. अनुज (२७८)
५. अनीति (१३६)
६. अनुराग (५७३)
७. अनुरूप (१६०)
८. अनुसार (१०८)
९. अनेक (५६८)
१०. अपार (५७)
११. अभिमान (१३६)
१२. अभेद (६०)
१३. अरि (११३)
१४. अर्थ (१३१)
१५. अवलम्ब (२६५)
१६. आकर (४८)
१७. आदर (४३)
१८. आदि (२)
१९. आनन (७)
२०. आनन्द (१६)
२१. आयुष्मान (८)
२२. उत्तंग (१६)
२३. उत्तम (३०)
२४. उल्लास (२५२)
२५. ओज (१३६)
२६. ओप (३८)
२७. कनक (१००)
२८. कपट (१३६)
२९. कबंध (४५२)
३०. कर (४२०)
३१. कलंक (६१)
३२. कवि (१५)
३३. कन्त (२३१)
३४. काल (६८)
३५. कामिनी (४८०)
३६. कानन (५५३)
३७. कामना (४५)
३८. कुच (४७८)
३९. कुमार (२६)
४०. केलि (२३)
४१. कोट (२३१)
४२. कोर (५७६)
४३. कोमल (१८)
४४. कौतुक (८३)
४५. क्रिया (१३१)
४६. क्रोध (४८२)
४७. गुप्त (६७)
४८. ग्रन्थ (२६)
४९. ग्राम (४१२)
५०. ग्रीवा (१८२)
५१. गृहद्वार (५६८)
५२. डमरू (४१३)
५३. चतुरंग (१०६)
५४. चपल (२४६)

५५. चमू (१०६)
५६. चंचल (१४६)
५७. चाप (७६)
५८. चारु (२०)
५९. चित्त (४५३)
६०. तुरंग (२६५)
६१. त्रास (२८७)
६२. दया (२३१)
६३. दन्त (२३१)
६४. दान (१२१)
६५. दीप (१४१)
६६. दीपावलि (५३)
६७. दुर्ग (१८०)
६८. दृग (६१)
६९. दृगजल (९३)
७०. द्वार (१०८)
७१. द्विरद (१२३)
७२. धन्य (५०२)
७३. धवल (३५५)
७४. धाम (२५१)
७५. धीर (१२०)
७६. नगर (४१२)
७७. नन्द (१०)
७८. नाद (४११)
७९. निकेत (९८)
८०. निज (१०८)
८१. निधन (१४९)
८२. निमित्त (३९४)
८३. नीति (१४८)
८४. नृप ९)
८५. पय (३५०)
८६. पवित्र (२५३)
८७. परस्पर (४७)
८८. पराक्रम (२३४)
८९. पन्थ (२९)
९०. पीतपट (१८)
९१. प्रताप (४१)
९२. प्रवल (४१०)
९३. प्रीति (११)
९४. बन्दन (१६)
९५. बल (५८)
९६. बहु (१६)
९७. बुद्धि (१०८)
९८. भयंकर (४१३)
९९. भिन्न (३३१)
१००. भुज (५८)
१०१. भुजदंड (११४)
१०२. भूप (१३)
१०३. भूमिपाल (६)
१०४. मान (११३)
१०५. मानस (२०६)
१०६. मति (८०)
१०७. मद (३४३)
१०८. मधुर (२३)
१०९. मरकत १६)
११०. मंजुल (२३)
१११. मित्र (५२)
११२. मुख (१८)
११३. मृदंग (२२४
११४ ललित (१)
११५. लोचन (५६३)
११६. सकल (१२)
११७. सफल (८१)
११८. समाज (१३९)
११९. समान (१९)
१२०. सहज (१४६)
१२१. साहस (२८)
१२२. सुकुमार (१८९)

१२३. सुकुमारी (१८४)
१२४. सुगन्ध (४३१)
१२५. सुत (२८)
१२६. सुषमा (५७५)
१२७. सुन्दरी (१८४)
१२८. सोपान (१६)
१२९. स्वधर्म (४२०)
१३०. स्वर (२२४)
१३१. हृदय (५८)
१३२. ज्ञान (११८)
१३३. ज्ञानवन्त (१३२)

मिश्रबन्धुओं द्वारा सम्पादित भूषण ग्रंथावली में ब्रजभाषा की प्रवृत्ति की ओर लेखकों का विशेष ध्यान नहीं गया है। उन्होंने य्, व्, श् और ण् जैसी ध्वनियों को ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुसार मृदुल नहीं बनाया। यह भी संभव है कि उनकी आधारभूत प्रतियों में इन्हीं ध्वनियों से युक्त शब्दावली हो और यह भी संभव है कि उन्होंने तत्सम की दृष्टि से शुद्धता के सिद्धान्त को जाने-अनजाने ग्रहण किया हो। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने ब्रजभाषा की प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए इन ध्वनियों के प्रयोग के स्थलों पर प्रायः ज्, ब्, स् और न् का प्रयोग किया है। तुलना के लिए कुछ शब्द देखे जा सकते हैं :

मिश्रबन्धु वाली प्रति में	:	मिश्रजी वाली प्रति में
/कलियुग[1]/	:	/कलिजुग[2]/
/कवि[3]/	:	/कबि[4]/
/बिहारीश्वर[5]/	:	/बिहारेस्वर[6]
/विश्वेश्वर[7]/	:	/बिस्वेस्वर[8]/

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भूषण ने तत्सम शब्दों का प्रयोग सात या आठ प्रतिशत किया है। इनमें भी ऐसे शब्द एक प्रतिशत भी नहीं हैं जो ब्रजभाषा के ध्वनिसंयोगों अथवा ध्वनिप्रयोगों का उल्लंघन करते हों। काव्यशास्त्रीय और पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में तो एक विषयगत विवशता का अनुभव सभी कवि-गण करते रहे हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त तत्सम शब्दावली मध्यकालीन ब्रजभाषा साहित्य में प्रयुक्त सामान्य शब्दावली से भिन्न नहीं है।

---

१ षण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, शिवराज भूषण, छं० सं० १२
२ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १२
३ भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, शिवराज भूषण, छं० सं० २८
४ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० २८
५ भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, शिवराज भूषण, छं० सं० २७
६ भूषण. पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० २७
७ भूषण ग्रन्थावली, मिश्रबन्धु, शिवराज भूषण, छं० सं० २७
८ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० २७

इन शब्दों की सूची देना तो अनावश्यक है क्योंकि तत्सम और विदेशी शब्दों को छोड़कर शेष शब्द इसी वर्ग में आते हैं। केवल ध्वनिविकास सम्बन्धी उन प्रवृत्तियों की ओर संकेत किया जा सकता है जो तत्समों को तद्भव में परिणत करने के लिए उत्तरदायी हैं। इनमें मुख्य प्रवृत्तियाँ स्वरागम और व्यंजन परिवर्तन की हैं। व्यंजन परिवर्तन ब्रजभाषा के अनुसार इस प्रकार मिलते हैं—

९. ६. २. तद्भव और अर्ध तत्सम

(१) व्यंजन परिवर्तन—

य्) ज्	:	कलियुग) कलिजुग[१]
	:	युत) जुत[२]
व्) ब्	:	कवि) कबि[३]
	:	विभावना) बिभावना[४]
श्) स्	:	सुरेश) सुरेस[५]
	:	वंश) बंस[६]
ण्) न्	:	प्राण) प्रान[७]
	:	भूषण) भूषन[८]

(२) स्वरागम—

सुवर्ण) सुबरन[९], संकल्प) संकलप[१०], अर्थ) अरथ[११], वर्णन) बरनन[१२] आदि।

९. ६. ३. आगत शब्द : आगत शब्दों में मुख्य वर्ग निम्नलिखित हैं—

(१) न्याय, (२) शासन, (३) दरबारी जीवन और उस जीवन सम्बन्धी उपकरणों की द्योतक शब्दावली, और (४) युद्ध एवं सुरक्षा सम्बन्धी। भूषण की भाषा में इन वर्गों का वैविध्य इसलिए अधिक है कि इनका काव्य राज्याश्रय में लिखा हुआ काव्य ही नहीं तत्कालीन जीवन के विविध पक्षों का स्पर्श करनेवाला काव्य भी है। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र से सम्बद्ध होने के कारण मराठी शब्दों के कुछ

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० १२
२ वही, छं० सं० २३
३ वही, छं० सं० १५७
४ वही, छं० सं० १७१
५ वही, छं० सं० १५
६ वही, छं० सं० ४
७ वही, छं० सं० ९०
८ वही, छं० सं० २३
९ वही, छं० सं० १५८
१० वही, छं० सं० १७२
११ वही, छं० सं० २४८
१२ वही, छं० सं० २९३

रूप भी आ गए हैं। उपर जो वर्ग दिए गए हैं उनमें अरबी और फारसी दोनों भाषाओं के शब्द सम्मिलित हैं। उन दिनों मुस्लिम दरबारों में इनका प्रयोग होता था अतः भूषण की भाषा में उनका प्रयोग हुआ है।

अरबी और फारसी के जिन शब्दों का प्रयोग भूषण ने किया है उनमें ध्वनि सम्बन्धी और व्याकरण सम्बन्धी परिवर्तन हुए हैं। अरबी-फारसी की जो ध्वनियाँ ब्रजभाषा के अनुकूल नहीं हैं उन्हें ब्रजभाषा की ध्वनियों के अनुकूल बना लिया गया है। इनमें भी जो ध्वनियाँ ब्रजभाषा के अनुकूल रही हैं उनमें अरबी-फारसी के तत्सम शब्द ज्यों के त्यों मिलते हैं।

अरबी के तत्सम शब्दों के उदाहरण : /अदब[१]/, /अमीर[२]/, /आदमी[3]/, /इलाज[४]/, /करामात[५]/, /तमाम[६]/, /दौलत[७]/, /नवाब[८]/, /फौज[९]/, /बहाने[१०]/, /मस्जिद[११]/, /मुहीम[१२]/, /सलाम[१३]/, /हिम्मत/[१४]।

इसी तरह फारसी के तत्सम शब्दों के उदाहरण ये हैं : /आसमान[१५]/, /आब[१६]/, /कमान[१७]/, /गुमान[१८]/, /जंग[१९]/, /दरगाह[२०]/ /दरबार[२१]/, /दिल[२२]/ /नेकी[२३]/ /पनाह[२४]/, /प्यादे[२५]/, /बदन[२६]/, /बदनाम[२७]/, /बहादुर[२८]/, /बहार[२९]/, /बन्दगी[३०]/, /बेआब[३१]/, /मियाँ[३२]/, /मीर[३३]/ /यार[३४]। /राह[३५]/, /स्याह[३६]/।

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४८२
२ वही, छन्द सं० ४४० ३ वही, छन्द सं० १७४
४ वही, ,, ,, २४७ ५ वही, ,, ,, ५०१
६ वही, ,, ,, ५०४ ७ वही, ,, ,, १९७
८ वही, ,, ,, ७२ ९ वही, ,, ,, १९७
१० वही, ,, ,, ९० ११ वही, ,, ,, ४९६
१२ वही, ,, ,, १५१ १३ वही, ,, ,, ४४३
१४ वही, ,, ,, ५४३ १५ वही, ,, ,, २६५
१६ वही, ,, ,, ३१७ १७ वही, ,, ,, ४१५
१८ वही, ,, , ४१६ १९ वही, ,, ,, ४६७
२० वही, ,, ,, ४३४ २१ वही, ,, ,, ४१४
२२ वही, ,, ,, ३२६ २३ वही, ,, ,, ४८२
२४ वही, ,, ,, १०२ २५ वही, ,, ,, २०४
२६ वही, ,, ,, ४२५ २७ वही, ,, ,, ८१
२८ वही, ,, ,, ५४३ २९ वही, ,, ,, ५२६
३० वही, ,, ,, ५४२ ३१ वही, ,, ,, ३१७
३२ वही, ,, ,, ५८४ ३३ वही, ,, ,, ४७६
३४ वही, ,, ,, ४७० ३५ वही, ,, ,, ४७०
३६ वही, ,, ,, ४५०

किन्तु ऐसे शब्दों की संख्या बहुत कम है। ऐसे शब्द वही हैं जिनकी ध्वनियाँ ब्रजभाषा की ध्वनियों के अनुकूल रही हैं।

ध्वनि सम्बन्धी परिवर्तन की कुछ प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) क़, ख़, ग़, ज़, फ़, श ध्वनियाँ क्रमश : क, ख, ग, ज, फ, स में परिवर्तित हैं। ये ध्वनियाँ आज भी हिन्दी में तत्सम रूप में लिखी जाती हैं किन्तु इनके नीचे बिन्दी लगाते हैं। भूषण की भाषा में ये ध्वनियाँ ब्रजभाषा की ध्वनियों के अनुकूल बदल गई हैं। कुछ उदाहरण :—

अरबी से

क़तार) कतार[1] क़) क
ख़ाल) खाल[2] ख़) ख
ग़नीम) गनीम[3] ग़) ग
ज़वाल) जवाल[4] ज़) ज
फ़ना) फना[5] फ़) फ
शहादत) सहादत[6] श) स

फारसी से

क़द) कद[7] क़) क
ख़ाक) खाक[8] ख़) ख
दाग़) दाग[9] ग़) ग
ज़ोर) जोर[10] ज़) ज
फ़रियाद) फरियाद[11] फ़) फ
शोर) सोर[12] श) स

(२) व) उ जैसे :—

वज़ीर) उजीर,[13] (अरबी)
वक़ील) उकील[14] (अरबी)
दरयाव) दरियाउ[15], (फारसी)

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ५१२
[2] वही, छन्द सं० ४५३
[3] वही, छन्द सं० ४७४
[4] वही, ,, ,, ९८
[5] वही, ,, ,, ४७२
[6] वही, ,, , ५४४
[7] वही, ,, ,, ५३९
[8] वही, ,, ,, ४९३
[9] वही, ,, ,, ४७३
[10] वही, ,, ,, ४६७
[11] वही, ,, ,, ४७३
[12] वही, ,, ,, ४७५
[13] वही, ,, ,, ४८४
[14] वही, ,, ,, ४८४
[15] वही, ,, ,, ३२६

(३) स्वरागम की प्रवृत्ति भी मिलती है। जैसे :—

खल्क) खलक[१] (अरबी)
तुर्क) तुरक[२] (फारसी)
तस्बीह) तसबीह[३] (अरबी)
नर्म) नरम[४] (फारसी)
उज्र) उजर[५] (अरबी)

(४) अकारान्त का इकारान्त में परिवर्तन; जैसे—

खबर) खबरि[६] (अरबी)
सुन्नत) सुनति[७] (अरबी)
हिम्मत) हिम्मति[८] (अरबी)
दहशत) दहसति[९] (फारसी)

इन प्रवृत्तियों के साथ-साथ कुछ ऐसे शब्द भी मिलते हैं, जिनमें कहीं ध्वनि-लोप हो गया है, कहीं द्वित्व व्यंजन सामान्य व्यंजन में बदल गया है, कहीं व्यंजन परिवर्तित हो गया है तो कहीं मात्राओं में परिवर्तन हो गया है। कुछ उदाहरण :—

क—ध्वनिलोप : इलहाम) इलाम[१०] (अरबी)

ख—द्वित्व-व्यंजन का सामान्य व्यंजन में परिवर्तन :
गुस्सा) गुसा[११] (अरबी)

ग—व्यंजन परिवर्तन :

विलायत) बिलाइत[१२] (अरबी)
पादशाह) पातसाह[१३] (फारसी)

घ—मात्राओं में परिवर्तन :

बेहाल) बिहाल[१४] (बे, उपसर्ग फारसी, हाल, अरबी)
बेहद्द) बिहद[१५] (बे, उपसर्ग फारसी, हद्द, अरबी)

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४८३
२ वही, छन्द सं० ४४७
३ वही, छन्द सं० ५४२
४ वही, छन्द सं० ४३०
५ वही, छन्द सं० १६३
६ वही, छन्द सं० ४३६
७ वही, छन्द सं० ४७०
८ वही, छन्द सं० ४१५
९ वही, छन्द सं० ४२३
१० वही, छन्द सं० १७६
११ वही, छन्द सं० ४४३
१२ वही, छन्द सं० ४८९
१३ वही, छन्द सं० ४४५
१४ वही, छन्द सं० ४३०
१५ वही, छन्द सं० ४११

आवाज) अवाज[१] (फारसी)
सरताज) सिरताज[२] (फारसी)
जुमला) जुमिला[३] (अरबी)

अरबी-फारसी के शब्द ब्रजभाषा व्याकरण के अनुसार प्रयुक्त किए गए हैं। बहुवचन में -न प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। जैसे :—

अमीर) अमीरन[४] (अरबी)
उजीर) उजीरन[५] (अरबी)
महल) महलन[६] (अरबी)

इकारान्त संज्ञाओं में ई को ह्रस्व करके अन्त्य स्वर के पश्चात् '-याँ' जोड़ने की खड़ी बोली की प्रवृत्ति भी मिलती है। जैसे : —

मुगलानी) मुगलानियाँ[७] (फारसी)

-ई प्रत्यय के द्वारा संज्ञाओं से अधिकार, गुण, स्थिति अथवा मोल सूचित करने वाली संज्ञा बनने के उदाहरण भी मिलते हैं :

अद्ल) अदली[८] (अरबी)
दग़ाबाज़) दगाबाजी[९] (फारसी)
ग़रीब) गरीबी[१०] (अरबी)
क़फ़न) कफनी[११] (अरबी)
साहब) साहिबी[१२] (अरबी)
पादशाह) पातसाही[१३] (फारसी)

संयुक्त शब्द : संयुक्त शब्दों का विवरण निम्न प्रकार है :—

१. /छ-हजारिन/[१४] : छ (हिन्दी), हजार (फारसी), -इन (बहुवचन का प्रत्यय)

२. /तेग-बल/[१५]/ : तेग (फारसी), बल संस्कृत)

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४३६
२ वही, छं० सं० ४०६
३ वही, छं० सं० १०२
४ वही, छं० सं० १८२
५ वही छं० सं० १८८
६ वही, छं० सं० २२४
७ वही, छं० सं० ४२६
८ वही, छन्द सं० २२८
९ वही, छन्द सं० ५२३
१० वही, छन्द सं० ४२५
११ वही, छन्द सं० २६४
१२ वही, छन्द सं० १४०
१३ वही, छन्द सं० ४०६
१४ वही, छन्द सं० ५४३
१५ वही, छन्द सं० ४२०

३. /पील-सम/[1] : पील (फारसी), सम (संस्कृत)

४. /रूप-गुमान/[2] रूप (संस्कृत), गुमान (फारसी)

५. /दल-जंगी/[3] ; दल (संस्कृत), जंग (फारसी), -ई (हिन्दी का प्रत्यय)

६. /हेम-खजाननि/[4] : हेम (संस्कृत), खजाना (फारसी),
-आ के स्थान पर अ और -नि प्रत्यय

७. /सुलतान-दल/[5] : सुलतान (फारसी), दल (संस्कृत),
फारसी के '-खाना' शब्द को जोड़कर बने संयुक्त शब्दों के उदाहरण:—
/खसखाने[6] /, /जंगखाने[7] /, /तोसहखाने[8] /, /तहखाने[9] /,
/सुतुरखाने/[10]

ये सभी शब्द फारसी के ही हैं। अन्त में -आ के स्थान पर -ए प्रत्यय हो गया है।

अरबी शब्दों के साथ फारसी 'खाना' शब्द से बने संयुक्त शब्द
/किताबखाने[11]/, /खिलवतखाने[12]/, /सिलहखाने[13]/, /हरमखाने/[14]
यहाँ भी अन्त में -आ के स्थान पर -ए हो गया है।

प्राय: आगत शब्दों में क्रियाओं का प्रयोग नहीं होता किन्तु भूषण की भाषा में कुछ अरबी-फारसी की क्रियाओं के रूप भी मिलते हैं। इनका प्रयोग ब्रजभाषा के अनुकूल ही किया गया है।

अर्ज़ से /अरजै/[15] (अरबी)
दहशत से /दहसति/[16] (फारसी)

अरबी-फारसी के मिश्रण से कुछ मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। इनके उदाहरण निम्नलिखित हैं :—

/बिहाल करि[17]/, /दिवाल राखी[18]/, /हिसि गई हिम्मत/[19]

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४१४
२ वही, छन्द सं० ५०५ ३ वही, छन्द सं० ४८३
४ वही, छन्द सं० ४९५ ५ वही, छन्द सं० ४३९
६ वही, छन्द सं० ३३८ ७ वही, छन्द सं० ४९३
८ वही, छन्द सं० ३३८ ९ वही, छन्द सं० ३३८
१० वही, छन्द सं० ३३८ ११ वही, छन्द सं० ४९३
१२ वही, छन्द सं० ३३८ १३ वही, छन्द सं० ३३८
१४ वही, छन्द सं० ४९३ १५ वही, छन्द सं० ४८४
१६ वही, छन्द सं० ४२३ १७ वही, छन्द सं० ४६८
१८ वही, छन्द सं० ४२१ १९ वही, छन्द सं० ४४९

/फिसि गई सूरताई[१]/, /खिसि गई सेखी[२]/, गरद मिलायो/[३]

/फनाँ करी[४]/, /जेर कीन्हों[५]/, /हद्द राखि[६] /, हद्द बाँधि/[७]

अब नीचे अरबी एवं फारसी शब्दों की सूची दी जा रही है (शब्दों के आगे जो संख्याएँ दी गई हैं, वे पं विश्वनाथप्रसाद मिश्र के भूषण ग्रन्थ की छन्द संख्याएँ हैं) :

अरबी

१ अकिल (१३५)
२. अदब (४८२)
३. अदल (४७८)
४. अदली (२२८)
५. अमीर (४४०)
६ अमीरन (४४०)
७. अरजैं (४८४)
८. आदमी (१७८)
९. आफत (४९३)
१०. आमखास (१३७)
११. आमखासन (४९४)
१२. आमिल (५३०)
१३. आलम (३९८)
१४. आलमसुभानु (४८०)
१५. आलमपनाहजू (४७२)
१६. आलमगीर (४६९)
१७. आह (५३९)
१८. इनाम (२९४)
१९. इलाज (२४७)
२०. इलाम (१७९)
२१. ईजति (२९६)
२२. उकील (४८४)
२३. उजीर (४८४)
२४. उजीरन (१८८)
२५. उजर (१६३)
२६. उमराय (४८७)
२७. उमरा (१८२)
२८. उमरावो (४७३)
२९. उमरावा (४७३)
३०. औलिया (४६२)
३१. कफनी (२९४)
३२. कतलान (२०२)
३३. कतार (५१२)
३४. करामात (५०१)
३५. कसम (५४१)
३६. कहर (५३३)
३७. कहरी (६७)
३८. किताबखाने (४९३)
३९. किबले (५४१)
४०. किम्मति (४१५)
४१ कैद (५४१)
४२. कौल (४६२)

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० ४४९

२ वही, छन्द सं० ४४९

३ वही, छन्द सं० ४७२

४ वही, ,, ,, ४७२

५ वही, ,, ,, ४१४

६ वही, ,, ,, ४२०

७ वही, ,, ,, ४१४

४३. खता (३१५)
४४. खबरि (४३६)
४५. खबीस (४९३)
४६ खबीसन (३३७)
४७. खलक (४८३)
४८. खाल (४५३)
४९. खासे (४९४)
५०. खिलवतखाने (३३८)
५१. गनीम (४७४)
५२. गरूर (२७०)
५३. गरीबनिवाज (१३९)
५४. गरीबी (४२५)
५५. गाजी (२१४)
५६. गोसलखाना (१९१)
५७. गुसा (४४३)
५८. गैर (२५६)
५९. गैरमिसिल (३८२)
६०. जरब (४१८)
६१. जमात (५१९)
६२. जमाना (४६५)
६३. जलूस (१७९)
६४. जवाल (६८)
६५. जवाहिर (२६०)
६६. जहाज (४३६)
६७. जापता (३४९)
६८. जाल (२६०)
६९. जालिम (४६५)
७०. जाहिर (११८)
७१. जुमिला (७१)
७२. तमाम (५०४)
७३. तमासे (४५२)
७४. तमासो (२९४)
७५. तसबी (२९४)
७६. तसबीह (५४२)
७७. ताजिए (५०६)
७८. ताकत (१०२)
७९. दावा (४०९)
८०. दुनी (४२१)
८१. दुनियाँ (२९६)
८२. दौलत (१९७)
८३. दौलति (२९९)
८४. नबाव (७२)
८५. नाहक (२२६)
८६. निवाजत (१३२)
८७. निवाजे (३१४)
८८. फतह (१८४)
८९. फकीर (४९५)
९०. फिकिर (४३४)
९१. फाका (४९३)
९२. फनां (४७२)
९३. फौज (१९७)
९४. फौजें (४८७)
९५. बहस (५३)
९६. बहरी (६७)
९७. बहाने (९०)
९८. बिलाइत (४८९)
९९. बेफिकिर (३९७)
१००. बेहवाल (४९४)
१०१. बेहिसाब (१९१)
१०२. बेइलाज (२५६)
१०३. मनसब (४३७)
१०४. मनसबदार (१५६)
१०५. मसनंद (१००)
१०६. मस्जिद (४९६)
१०७. मकवरन (४९६)
१०८. महल (२६५)
१०९. महलन (२२४)
११०. मिनारें (४९९)

१११. मुलुक (४२५)
११२. मुकाम (४४६)
११३. मुहीम (१५१)
११४. रिसालैं (४३६)
११५. रैयति (१२०)
११६. वजीर (४६६)
११७. सरीक (२४५)
११८. सलाम (४४३)
११९. सलाह (९५)
१२०. सहादत (५४४)
१२१. साहिबी (१४०)
१२२. सिकार (५२६)
१२३. सिलहखाने (३३८)
१२४. सुनति (४७०)
१२५. सूबा (४६३)
१२६. सूबेदार (३०४)
१२७. सूबेदारी (१४९)
१२८. सूरति (३१२)
१२९. सेख (४१६)
१३०. सैयद (४१६)
१३१. हजरत (४३७)
१३२. हद्द (४१४)
१३३. हवस (४८३)
१३४. हमाल (६८)
१३५. हरम (४३०)
१३६. हरमखाने (४९३)
१३७. हरमैं (४२७)
१३८. हालत (४१८)
१३९. हिम्मत (५४३)
१४०. हिम्मति (४१५)
१४१. हैबत (४९३)

फारसी

१. अवाज (४३६)
२. अन्देस (३२७)
३. अफसर (४१६)
४. आसमान (२६५)
५. आफताब (५१२)
६. आब (३१७)
७. कद (५३९)
८. कद्द (५४३)
९. कमान (४१५)
१०. कम्मर (१९१)
११. कासा (२९४)
१२. कुलंग (५२९)
१३. खजाने (३३८)
१४. खरगोस (३३८)
१५. खसखाने (३३८)
१६. खाक (४९३)
१७. खाकसाही (४४९)
१८. खानजादे (४८६)
१९. खाने खाने (३३८)
२०. ख्याल (१३०)
२१. गजक (५३८)
२२. गरद (४७२)
२३. गरद्द (५४३)
२४. गुनाह (७०)
२५. गुर्जबरदार (४४२)
२६. गुमान (४१६)
२७. गुलन (४९२)
२८. गुलाब (२२)
२९. चउगान (४६९)
३०. चिकत्ता (३३)
३१. चुगलन (४९२)
३२. जबर (४१८)

३३ जब्बर (४६२)
३४. जवाब (३२३)
३५. जबान (४५१)
३६. जसन (१७६)
३७. जहान (४६७)
३८. जंजीरैं (३१७)
३९. जंग (४६७)
४०. जंगखाने (४९३)
४१. जरवाफ (२६०)
४२. जानवरन (३३७)
४३. जिरह (५१९)
४४. जोर (४६७)
४५. ज्वान (५२८)
४६. ज्वानी (१३)
४७. तकिया (४०)
४८. तखत (१७६)
४९. तहखाने (३३८)
५०. ताजी (१४०)
५१. ताबगीर (५९)
५२. तीरंदाज (२३६)
५३. तुरक (४४७)
५४. तुरकान (२४)
५५. तूत (२१)
५६. तेग (४२०)
५७. तेगबरदार (४८१)
५८. तोसहखाने (३३८)
५९. दगा (३५४)
६०. दगाबाजी (५२३)
६१. दरगाह (४३४)
६२. दरबार (४१४)
६३. दरियाउ (३२६)
६४. दहसति (४२३)
६५. दाग (४७३)
६६. दावनगीर (१८८)
६७. दिल (३२६)
६८. दिवाल (४२१)
६९. दिवान (८६)
७०. नरम (४३०)
७१. निसान (५१३)
७२. नेकी (४८२)
७३. पातसाही (४०९)
७४. पनाह (१०२)
७५. पयगंवरा (४४६)
७६. पाइमाल (४८४)
७७. परिंदन (५२६)
७८. पातसाह (४४५)
७९. पीरा (४४६)
८०. पील (४१४)
८१. पील-खाने (३३८)
८२. पेस (१२०)
८३. पेसकस (५०२)
८४. प्यादन (२८४)
८५. प्यादे (२०४)
८६. फरियाद (४७३)
८७. बकतरवारे (२८४)
८८. बखत-बिलंद (१००)
८९. बदन (४२५)
९०. बदनाम (८१)
९१. बदरंग (११३)
९२. बहादुर (४५३)
९३. बहादरी (४७२)
९४. बहार (५२६)
९५. बदसूरत (४७१)
९६. बंदगी (५४२)
९७. बाग (२३)
९८. बाज (४०८)
९९. बाजखाने (४९३)
१००. बादवान (५७)

१०१. बादसाह (४७०)
१०२. बारगीरन (५०२)
१०३. बिलंद (६)
१०४. बेआव (३१७)
१०५. बेहवाल (४६४)
१०६. मयदान (४३६)
१०७. मरद (५१४)
१०८. मरदाने (४७४)
१०९. महताब (४६२)
११०. मियाँ (५८४)
१११. मीर (४७६)
११२. मीरजादे (४८६)
११३. मुगल (४१६)
११४. मेहरहू ५४१)
११५. महिरबान (६२)
११६. यार (४७०)
११७. यारो (४७३)
११८. राह (४७०)
११९. रुखन (४२६)
१२०. सोर (४७५)
१२१. सवारन (४५९)
१२२. सरम (१३७)
१२३. समसेर (४१८)
१२४. सान (४८२)
१२५. साहन (१०)
१२६. सम्याने (३१४)
१२७. साहजादा (४६१)
१२८. सिपाह (३०९)
१२९. सिपाहन (१०)
१३०. सिरताज (४०९)
१३१. सीनो (३२५)
१३२. सुतुरखाने (३६८)
१३३. सुरतान (५०२)
१३४. स्याह स्याह (४५०)
१३५. स्याही (१८२)
१३६. हजार (४४२)
१३७. हुन्नर (४८२)
१३८. हुस्यार (४४२)
१३९. हमेस (४६१)

भूषण का शब्दसमूह लगभग ४,००० है; इनमें तत्सम शब्दों का प्रयोग सात/आठ प्रतिशत है। इनकी तुलना में अरबी-फारसी की शब्दावली देखें तो इनका प्रतिशत भी लगभग ७ के मिलता है। रीतिकालीन अन्य कवियों में इसी शब्द-समूह के किसी कवि ने शायद ही अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग इतना अधिक किया हो। इसका कारण भूषण का दरबार से सम्बद्ध रहना तो है ही, दूसरा कारण यह भी है कि कवि ने यह रचना दक्षिण में शिवाजी के दरबार में उपस्थित रहकर की। दक्षिण में उस समय राजकाज की भाषा (छत्रपति शिवाजी के दरबार में) मराठी थी किन्तु इस मराठी पर अरबी-फारसी का बहुत अधिक प्रभाव था। शासन सम्बन्धी अनेक शब्द अरबी-फारसी के ही प्रयुक्त होते थे और इन शब्दों को मराठी की ध्वनियों के अनुकूल बनाकर इनका प्रयोग किया जाता था। मराठी की तत्कालीन लिपि मोडी-लिपि थी। बखरें इसी लिपि में लिखी मिलती हैं। उस युग के पत्र भी मिलते हैं (राज-काज सम्बन्धी) इन पत्रों की लिपि भी मोडी है। इनमें अरबी-फारसी शब्दों का प्रचुर प्रयोग मिलता है। भूषण की भाषा में बहुत से (अरबी-

फारसी के) शब्द मराठी के प्रभाव से आए हैं। भूषण ने इतना **अवश्य किया** कि उन शब्दों को ब्रजभाषा की ध्वनियों के अनुकूल बना लिया।

मराठी प्रभाव : भूषण की भाषा पर मराठी का भी प्रभाव पड़ा है। कुछ ऐसे शब्द मिलते हैं, जो मराठी के प्रभाव से आए हैं, जैसे—/पैज[१]/, /माची[२]/, /मसीत[३]/ (मस्जिद शब्द को मराठी में मशीद लिखा जाता है और मशीद से भूषण ने उसे मसीत बना दिया है), /सिच्छनकाज/[४] (यहाँ 'सिच्छन' का अर्थ दण्ड देने के लिए है। मराठी में शिक्षा देना अर्थात् दण्ड देना होता है। हिन्दी में इसका अर्थ पढ़ाना से है।) /मौज[५]/, /दंगली[६]/ (दंगल मराठी शब्द में हिन्दी का -ई प्रत्यय लगाया गया है) /बेदर[७]/ (बीदर शहर को मराठी में बेदर कहा जाता था), इसी तरह आदिलशाह को /एदिल[८]/, दिलेरखाँ को /दलेलखान/[९] आदि आदि। भूषण ने कुछ ऐसी क्रियाओं का प्रयोग किया है, जो मराठी से प्रभावित जान पड़ती हैं। उसळणें क्रिया से /उसलत[१०]/, भिड़णें क्रिया से /भिरौ[११]/ और /भिरें[१२]/, दिसणें क्रिया से /दीसै[१३]/, हटक्णें से /हटक्यो[१४]/ आदि। 'ज्यादा' के लिए मराठी जास्तो शब्द प्रचलित है। भूषण ने /जासती[१५]/ का प्रयोग किया है।

व्याकरण की दृष्टि से शब्द समूह पर विचार करें तो जातिवाचक संज्ञाओं की शब्द संख्या सब से अधिक है। इसके बाद दूसरा स्थान क्रियाओं का है। मध्यकालीन कवियों की सामान्य प्रवृत्ति के अनुसार उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द-संख्याओं में संज्ञा और विशेषणों की संख्या क्रियाओं से अधिक रही है भूषण में भी यही प्रवृत्ति अधिक मिलती है। किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से भूषण की भाषा में क्रियाओं की संख्या अधिक है।

९. १०. भाषा का शास्त्रीय और व्यावहारिक रूप

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भूषण के द्वारा प्रयुक्त भाषा एक मिश्रित भाषा की परम्परा में है। इस मिश्रित भाषा के आधार पर ही भिखारीदास ने "तुलसी गंग दुबो भए सुकविन के सरदार" कहकर ब्रजभाषा की मिश्रित

---

१ भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छन्द सं० १३५

२ वही, छन्द सं० १५

३ वही, छन्द सं० ४४७

४ वही, छन्द सं० १६१

५ वही, छन्द सं० ६७

६ वही, छन्द सं० १८४

७ वही, छन्द सं० ४८८

८ वही, छन्द सं० ३३५

९ वही, छन्द सं० ४११

१० वही, छन्द सं० ४११

११ वही, छन्द सं० १६१

१२ वही, छन्द सं० १६१

१३ वही, छन्द सं० ३१४

१४ वही, छन्द सं० ६३

१५ वही, छन्द सं० ४५९

साहित्यिक परम्परा पर गर्व का अनुभव किया था। भूषण की शब्दावली में ही नहीं व्याकरणिक रूपों में भी स्वतन्त्र वैविध्य और मिश्रित रूपों की स्थिति निर्विवाद है। जब भाषा अपने व्यवहार क्षेत्र से साहित्यिक और शास्त्रीय प्रतिष्ठा के क्षेत्र में प्रविष्ट होती है तो उसका वह रूप होना स्वाभाविक हो जाता है। व्यावहारिक रूप में जो ब्रजभाषा मोटे रूप से ग्वालियर और दिल्ली के बीच प्रचलित थी, वह अपने शास्त्रीय रूप में एक अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र की भाषा बन गई। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने अपनी ब्रजभाषा पुस्तक में साहित्यिक ब्रज का जो सीमाचित्र दिया है, उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है। अपने जन्मस्थान की दृष्टि से भूषण में बैंसवाड़ी की प्रवृत्ति स्थानीय रंग के रूप में मिलनी चाहिए थी पर ध्यान से देखने पर यह प्रवृत्ति उन में अधिक नहीं मिलती। जिन रूपों को हम बैसवाड़ी, बुन्देली या अवधी के कहते हैं वे वस्तुतः शास्त्रीय और साहित्यिक ब्रजभाषा के अंग बन चुके थे। यहाँ भाषा के प्रत्येक रूप की स्थानीयता और व्यावहारिकता का विस्तृत विवेचन संभव नहीं है किन्तु यह सर्वमान्य तथ्य है कि रीतिकाल के कवियों ने एक परिनिष्ठित और शास्त्रीय भाषा का प्रयोग किया। उसमें व्यावहारिकता का संस्पर्श उतना भी नहीं रहा जितना सूर की भाषा में मिलता है। भूषण भी रीतिकालीन कवियों की परम्परा में अपवाद नहीं हैं।

दशम अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

कहते हैं—साहित्य समाज का दर्पण है, ठीक है। किन्तु समाज जिन तत्त्वों के आधार पर प्रभावित होता रहता है, उन्हीं से साहित्य भी प्रभावित होता रहता है, यह भी उतना ही सत्य है। डा० प्रेमशंकर ने लिखा है—"समाज सदैव धर्म, अध्यात्म, दर्शन अथवा राजनीति से अनुशासित रहा है और साहित्य जो समाज का ही एक मानसिक और भावात्मक प्रकाशन है, क्रमशः धर्म, दर्शन और राजनीति की पगडण्डियों से होकर गुजरा है।"[1] लेकिन कभी-कभी समाज के सामने इस तरह की परिस्थितियाँ उपस्थित हो जाती हैं कि राजनीति ही सम्पूर्ण जनजीवन को आक्रान्त करने लगती है। प्रकारान्तर से समाज के विकास का सूत्र धर्म, दर्शन, अध्यात्म के हाथ में न रहकर राजनीति के हाथ में चला जाता है। मध्यकालीन धर्म की बागडोर राजनीति के द्वारा संचालित थी अथवा धर्म का विकास राजनीति की छत्रछाया में हो रहा था। इस अर्थ में समय विशेष पर राजनीति धर्म के ऊपर हावी होती रही। भूषण का युग राजनीति के प्राधान्य का ऐसा ही युग था। भूषण के समय में भी और उसके पहले भी भारतवर्ष का जन-जीवन दो धर्मों और दो सभ्यताओं—भारतीय धर्म (हिन्दू धर्म) और इस्लामी धर्म के संघर्ष से आहत था। इस संघर्ष में इस्लाम केवल विजेता के रूप में ही न टिककर भारतीय धर्म (हिन्दू-धर्म) के अस्तित्व को ही समाप्त करने के लिए सक्रिय हो चुका था। अकबर का उदार दृष्टिकोण तूफान के एक झोंके की तरह क्षण भर के लिए आकर समाप्त हो गया था। एक तरह से यह दो धर्मों का सीधा, दुर्दम्य और बर्बर संघर्ष बन चुका था और यह सब कुछ राजनीति के प्रश्रय में हो रहा था। अतः इस काल के समाज को इस संघर्ष का सामना करना पड़ रहा था। इस महत्त्वपूर्ण समस्या की ओर भूषण का ध्यान गया। भूषण की सब से बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने युग की इस माँग को भली भाँति परखा और उसे सशक्त वाणी में अभिव्यक्त किया। युग की इस

---

[1] आलोचना २२ वाँ अंक, 'कवि और सामाजिक दायित्व' लेख से, पृ० ६१

समस्या अथवा माँग के संदर्भ में भूषण का यह कृतित्व और उनका नाम अन्य सभी कवियों में अग्रणी रहेगा।

वास्तव में भूषण ने अपने युग की महत्त्वपूर्ण समस्या को बड़े सशक्त रूप में अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने न तो धर्म और दर्शन को अपने साहित्य का आधार बनाया और न वे किसी अन्य प्रकार की विचारधारा में उलझे रहे। शृंगारी कविता से भी एक प्रकार से वे मुक्त रहे।[1] उनके सामने एक ही मार्ग था और वह था औरंगजेब के राजनैतिक नेतृत्व का विरोध, क्योंकि अपने सामने होने वाले भीषण अत्याचारों को देखकर कवि का यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि इस शक्ति को समाप्त किए बिना देश में सुव्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती। भूषण में इस प्रकार की भावना का बीजारोपण छत्रपति शिवाजी से मिलने से पूर्व हो गया था। वे एक ऐसे आश्रयदाता की खोज में थे जो उस शक्ति का विरोधी हो। शिवाजी का नाम सुनकर वे दक्षिण गए और अपनी प्रथम भेंट में ही शिवाजी से पूछा—'जो यवनों का शत्रु होगा, मैं उन्हीं के पास रहूँगा।' और तब शिवाजी ने उत्तर दिया कि 'मैं यवनों का काल हूँ'। इस पर भूषण को अपने मन के अनुकूल आश्रय दाता मिल जाने के कारण उन्हीं के पास रह गए।

यह सर्वविदित तथ्य है कि जीवन संकट के अथवा अस्तित्व रक्षा के काल में उठनेवाला रक्षात्मक स्वर अत्यन्त स्पष्ट, सीधा और बेलौस होता है। इस अवस्था पर न विचारों की उलझी गुत्थियाँ ही आती हैं और न वाणी की उलटबाँसियाँ। भूषण अपने समय की समस्याओं से प्रतिबद्ध थे। उनकी यह प्रतिबद्धता उनकी नैतिक चेतना में व्यक्त हुई है—उन्होंने बाहरी दबाव में आकर अपने को रोका नहीं। न ही उन्होंने किसी प्रश्न को राजनीतिक कहकर टाल दिया। समकालीन समस्या के प्रति उन्होंने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। कबीर के समान उन्होंने खरी-खोटी सुनाने में आगे-पीछे नहीं देखा। अपनी बात को बड़ी शक्ति और फोर्स के साथ कहा है। जिस शक्ति का उन्होंने विरोध किया उसका खुलकर और डंके की चोट विरोध किया और उसी तरह जिस शक्ति का उन्होंने समर्थन किया उसका खुलकर समर्थन किया। भूषण के इस दृष्टिकोण का कोई विरोध करना चाहे तो कर सकता है किन्तु उसे भूषण के युग की परिस्थितियों का आकलन कर लेना चाहिए, उसके अभाव में उनका मूल्यांकन गलत हो जाएगा।

किसी काव्य का मूल्यांकन करने के लिए काव्य के विषय और वस्तु दोनों को परखना आवश्यक होता है। दोनों में भी वस्तु का महत्त्व अधिक होता है। नया विषय होने पर भी वस्तु पुरानी हो सकती है और इसी तरह पुराना विषय

---

[1] भूषण के काव्य का प्रधान विषय वीर रस से सम्बन्धित है। उनके शृङ्गार रस के ४० छन्द मिलते हैं, उनसे शिवराजभूषण का कोई सम्बन्ध नहीं है।

है । अतः काव्य कैसा है, यह विचार करने के लिए विषय की तुलना में वस्तु को परखना ही अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा । कृति की वस्तु अनिवार्यतः मानवीय वस्तु होती है । कवि का विषय के साथ रागात्मक सम्बन्ध होता है, वह वस्तु में ही प्रतिबिम्बित होता रहता है । भूषण के काव्य की वस्तु छत्रपति शिवाजी का गुणस्तवन और यशोगान है । इसमें उन्होंने शिवाजी के जिस उदात्त रूप को व्यक्त किया है, वही उनके काव्य की अनमोल वस्तु है । इसके साथ उनका पूर्ण तादात्म्य हुआ है । उन्होंने स्वयं अपने काव्य के उद्देश्य और उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए कहा है—

"पुन्य पवित्र सिवा सरजा बरम्हाय पवित्र भई बर बानी"

कवि के मानस की परीक्षा वास्तव में कवि की वस्तु से सम्बन्धित रागात्मक वृत्ति के द्वारा होती है । वस्तु के सहारे ही हम कृतिकार के मन में पहुँचने का प्रयत्न करते हैं । इसी से कवि ने मानवीय संवेदना को किस हद तक ग्रहण किया है इस बात का ज्ञान होता है और इसी से अपनी अनुभूति को प्रेषणीय बनाने में कवि की प्रतिभा और शक्ति का परिचय मिलता है । भूषण ने अपने वस्तु-विवेचन में तटस्थता नहीं बरती है और न ही वह अपनी भावनाओं के सम्बन्ध में पाठकों को भ्रम में रखना चाहता है । हर बात साफ है और उसे बड़ी शक्ति के साथ कहा गया है । वस्तु-विवेचन में वे वर्णनात्मक पद्धति को नहीं अपनाते और न किसी घटना के विस्तार में ही जाते हैं । उनका काम केवल एक है और वह है अपने आगे होने वाले राजनीतिक घटनाचक्रों के प्रति अपने वैयक्तिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति देना । इस अभिव्यक्ति में उन्होंने किसी बात को घुमा-फिराकर नहीं कहा ।

एक उदाहरण—

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठे बार बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह खरकति है ।
बलख बिलात, बिलखात बिजापुरपति,
भिरत फिरंगिन की नारी फरकति है ॥
थर-थर काँपत कुतुबसाही गोलकुंडा,
हहरि हबस-भूप भीर भरकति है ।
सिंह सिवराज तेरे धौंसा की धुकार सुनि,
केते पातसाहन की छाती धरकति है ॥[1]

उपर्युक्त कवित्त में भूषण की शक्ति और विषय के साथ उनके मानसिक योग की परख हो सकती है । शिवाजी की शक्ति का प्रभाव औरों पर कितना था

---

[1] भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४२३

यही इस कवित्त में कहा गया है। दिल्ली का सम्राट् रात-दिन सशंकित रहता था। उसे नींद नहीं आती। वह बार-बार चौंक कर उठता है। इसी तरह अन्य राजाओं की स्थिति है। गोलकुण्डा का बादशाह तो थर-थर काँपता है। इस वर्णन में शिवाजी की वीरता से शत्रु आतंकित रहते हैं इसका चित्रण तो है ही किन्तु इस कथन में कवि का जो मानसिक योग है, वह स्पष्ट रूप से निवेदित है। बात स्पष्ट है—शिवाजी का समर्थन और अन्य शक्तियों का विरोध। अमरीका के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री और दार्शनिक जॉन डेवी ने लिखा है—"जब हम किसी काम के सम्बन्ध में निर्णय करते हैं, अर्थात् उसकी निन्दा या प्रशंसा करते हैं तब हम एक प्रकार से अपने ही बारे में निर्णय करते हैं, अर्थात् अपनी ही इच्छाओं और रुचियों को प्रकट करते हैं। अनुमोदन और अननुमोदन कामों के साथ सदाचारण और दुराचारण या पाप-पुण्य को जोड़ना अपने आप में सदाचारण-दुराचारण या पाप-पुण्य बन जाता है।"[1] इस आलोक में कवि के कथन की परीक्षा की जाय तो कवि के नैतिक आग्रह को समझने में देर नहीं लगेगी।

साहित्य के नैतिक मूल्यों को परखना इतना सरल नहीं है किन्तु फिर भी इस पर विचार किया जाय तो हमें कवि के सत्य पर विचार करना चाहिए। कवि का सत्य वस्तु के साथ पाए जाने वाले रागात्मक सम्बन्ध पर निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में, मानवीय संघर्षों और अनुभूतियों में ही वह सत्य अभिव्यक्त होता रहता है, काव्य की नैतिकता को संदर्भ के अभाव में नहीं समझा जा सकता। जो युग के सन्दर्भ से परिचित होते हैं वे ही कवि की अनुभूति की सच्चाई की परीक्षा कर सकते हैं। जो संघर्ष को समझते हैं, वे ही कवि की अनुभूति में निहित नैतिक आग्रह को जान सकते हैं। भूषण का नैतिक आग्रह अपनी अनुभूति में यही था कि देश में प्राचीन संस्कृति के मूर्त चिह्न मन्दिरों का जो खुलेआम ध्वंस हो रहा था, वह बन्द हो जाय और साथ ही वे यह भी चाहते थे कि देश जिस संस्कृति में विश्वास करता आया है, उसी में विश्वास करता रहे। कवि ने जीवन के प्रति कोई नया जीवन-दर्शन प्रस्तुत नहीं किया है। भूषण की तो बात ही छोड़ दें, अन्य कवियों के प्रति डाक्टर देवराज ने लिखा है—"विश्व में ऐसे महान् कलाकार हुए हैं, जिन्होंने कोई नया निराला जीवन दर्शन न देकर जीवन की विशालता को ही अभिव्यक्ति दी है। शेक्सपियर ऐसा ही महान् लेखक है। कालिदास ने स्वीकृत भारतीय दर्शन और संस्कृति की परिधि में ही जीवन को वाणीबद्ध किया है। यही बात सूर तथा तुलसी के सम्बन्ध में कही जा सकती है। ये लेखक या कवि अपने देश की विचार-धारा से परिचित हैं, पर वे जीवन के विचारक नहीं हैं। उनके द्वारा चित्रित पात्रों के जीवन में जब कोई प्रश्न उठता है तो वे उसका समाधान स्वीकृत जीवन दर्शन के

---

[1] नैतिक जीवन का सिद्धान्त, जॉन डेवी (अनुवादक : कृष्णचन्द्र), पृ० १०६

दायरे में कर देते हैं।"[1] भूषण इन कवियों में कहाँ खड़ा रह सकता है ? भूषण ने तो जीवन की विशालता को भी अभिव्यक्ति नहीं दी। उन्होंने कोई नया जीवन भी प्रस्तुत नहीं किया। नैतिक दृष्टि से उनका आग्रह रूढ़िवादी और परम्परानिष्ठ है। वे अपने विचारों और आस्थाओं के प्रति बहुत कट्टर हैं और उसी कट्टरता के साथ वे कहना भी खूब जानते हैं। अपनी आँखों के आगे जब उन्होंने देखा कि जनता धर्म के जिन मूर्त रूपों में विश्वास करती आ रही है उसी पर खुलेआम कुठाराघात हो रहा है, तो उनके व्यक्तित्व में एक आग और शक्ति पैदा हुई और उसी का परिणाम उनका काव्य है। भारतीय संस्कृति के अनुसार जो जीवन दर्शन स्वीकृत था उसी में उन्होंने पूर्ण आस्था दिखाई है। उस संस्कृति के समर्थक और रक्षक का उन्होंने गुणस्तवन किया है और उस संस्कृति के विनाशक का विरोध किया है।

यहीं पर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या भूषण में जातीयता की भावना थी और क्या इसीलिए उनका दृष्टिकोण संकुचित बना हुआ था ? किस आधार पर उन्हें राष्ट्रीय कवि कहा जा सकता है ? उनके प्रति ये जो आरोप किए जाते हैं, वे इस युग को लक्ष्य में रख कर किए जाते हैं। वास्तव में राष्ट्रीय कविता सदैव युग की राजनीतिक चेतना से सम्बन्ध रखती है और उस युग की चेतना समाप्त हो जाने पर उसका मूल्य ऐतिहासिक रह जाता है। अतः किसी युग की राजनीतिक चेतना को तत्कालीन परिस्थितियों के आलोक में देखने से ही उसके साथ पूर्ण न्याय हो सकता है। उस युग की राजनीतिक चेतना को हम यदि आज के चश्मे से देखेंगे तो भूषण को जातीयता की भावनाओं का समर्थक और हिन्दू धर्म का पक्षपाती कवि कहना ही पड़ेगा। प्रश्न है क्या गोस्वामी तुलसीदासजी हिन्दू संस्कृति के समर्थक और उसके पक्षपाती कवि नहीं थे ? क्या उनके काव्य में कलियुग की बुराइयों के चित्र और रामराज्य की कल्पना के आदर्श रूप अंकित नहीं हैं ? यदि हैं तो फिर भूषण पर जातीयता का आरोप क्यों ? केवल इसीलिए कि उन्होंने औरंगजेब का विरोध किया और इसलिए यह समझ लिया गया कि वे मुसलमानों के विरोधी हैं। उन्होंने इस्लाम मात्र का विरोध नहीं किया है। वास्तव में उन्होंने औरंगजेब की नीति से अप्रसन्न होने के कारण उसकी नीति का विरोध करते हुए इस बात का संकेत दिया है कि उसने अपने दादा की नीति को बिसार दिया है। संक्षेप में औरंगजेब से भूषण का विरोध उसकी आसुरी वृत्ति के कारण था। गोस्वामी तुलसीदास ने जो बात राम और रावण के माध्यम से कही वही बात भूषण ने शिवाजी और औरंगजेब के माध्यम से कही है। एक में सत् का पक्ष दिखाया गया है और दूसरे में असत् का। मानस में रावण के पक्ष में किए गए चित्रणों के सम्बन्ध में श्री कृष्णबिहारी मिश्र ने लिखा

---

[1] **आलोचना ३० वाँ अङ्क, मानस का सामाजिक दर्शन :कुछ तत्त्व, पृ० ८६-८७**

है—"इस ग्रन्थ के द्वारा ही (मानस के द्वारा ही) महाकवि ने अपने युग के सामाजिक अन्याय का प्रबल प्रतिरोध करने की प्रेरणा हिन्दू समाज को दी थी। राक्षसों के मुनिमख-विध्वंस आदि अत्याचारों का चित्रण मुस्लिम शासकों के द्वारा हिन्दुओं के धार्मिक कृत्यों में डाले जाने वाले विघ्नों और देवस्थानों पर होने वाले प्रहारों का ही अप्रत्यक्ष वर्णन है, शक्ति संचित कर इसे रोकने का आह्वान तुलसी ने किया है। सीता हरण, मानस में उस युग में हिन्दू-ललनाओं के सतीत्व पर आए हुए संकट का प्रतीक है और कलियुग-वर्णन तो तत्कालीन वातावरण में सामाजिक उच्छृंखलता और आचारहीनता का भाष्य सा प्रतीत होता है।" तुलसी के अप्रत्यक्ष चित्रण में युग का प्रत्यक्ष रूप देखा जा रहा है जबकि वह अकबर का युग था, और इस दृष्टि से भूषण का युग तो औरंगजेब का युग है। अत्याचार की मात्रा तो इस युग में और भी बढ़ गई थी अतः भूषण को प्रत्यक्ष रूप से कहने के लिए विवश होना पड़ा है। यहाँ गोस्वामीजी की तुलना भूषण से करना अभीष्ट नहीं। भूषण ने गोस्वामीजी की तरह भारतीय संस्कृति के मूर्त रूपों का चित्र उपस्थित नहीं किया और न ही वे भारतीय समाज का वैसा विराट और आदर्श चित्र ही खींच पाए हैं। भूषण ने तो उस संस्कृति में पूर्ण आस्था मात्र दिखाई है। वह तो उससे प्रेरणा मात्र ग्रहण करता है। भूषण के काव्य की विशेषता इसी में है कि वह उस भावना को पूर्ण शक्ति के साथ ओजस्वी वाणी में कहता है। यह सब इसलिए कहा गया कि भारतीय भावना को अभिव्यक्ति देने वाले कवि को संकुचित दृष्टि वाला कवि कहना उचित नहीं है। राजनीतिक दृष्टि से धर्म निरपेक्षता की बात इस शताब्दी की है, भूषण के युग की नहीं। वास्तव में देखना यही है कि उस भावना का राजनीतिक चेतना में कितना हाथ था?

किसी मतवाद को जब कोई राजनीतिक शक्ति अपनी पूरी शक्ति के साथ जनता की इच्छा के विरुद्ध जनता के ऊपर लादने लगती है तो उसका प्रतिकार होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी हो जाता है। इन परिस्थितियों में जो शक्ति उसके विरोध में खड़ी होती है और सक्रिय रूप में उसका विरोध करने लगती है, तब राजनीतिक चेतना का उदय होता है। इस चेतना को पुष्ट और उद्दीप्त करने वाला साहित्य राष्ट्रीय साहित्य कहलाता है। यह बात दूसरी है कि राजनीतिक चेतना में तत्कालीन परिस्थितियों में जातीय भावना की प्रमुखता रही। अतः भूषण को भी उसी के अनुरूप अपने काव्य की सृष्टि करनी पड़ी है।

भूषण के ही काव्य में इस प्रकार की भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है, ऐसी बात नहीं। छत्रपति शिवाजी के दरबार में और भी ऐसे कवि थे जिन्होंने इसी आदर्श को लेकर लिखा है। शिवाजी के दरबार में उन दिनों कवियों का जमघट था। स्वयं उनके पिता शाहजी के दरबार में देश भर की समस्त भाषाओं के कवि विद्यमान थे। द्वादश भाषा का ज्ञाता जयरामपिण्ड्ये शाहजी का दरबारी कवि था

और बाद में वह शिवाजी का दरबारी कवि भी रहा। शिवाजी के समकालीन कवियों गागाभट्ट, कवीन्द्र परमानन्द कवियों का नाम भी भूषण के साथ लिया जा सकता है। शिवाजी के समकालीन और भी कवि हुए हैं किन्तु वे सन्त कवि हैं। समर्थ रामदास शिवाजी के गुरु थे। संत तुकाराम भी शिवाजी के समकालीन कवि थे किन्तु उनका साहित्य दरबारी ढंग का नहीं है। इसी तरह यमाजी और अन्य शाहीर कवि भी थे जो पोवाडे (वीर गीतों) की रचना किया करते थे। गागाभट्ट काशी का प्रकाण्ड पंडित था। उसी ने शिवाजी के राज्याभिषेक का कार्य भारतीय परंपरा से विधिवत् सम्पन्न किया था। सभासद बखर ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है।[1] उसकी रचना "शिवराज्याभिषेक" संस्कृत में है। कवीन्द्र परमानन्द की रचना "शिव-भारत" है। यह संस्कृत में लिखा हुआ इस युग का महाभारत है। काव्य के लिखने का ढंग पौराणिक है। स्वयं कवि की कामना रही है कि उसकी यह रचना महा-भारत की श्रेणी की हो। शिवाजी को कलियुगी अवतार मानकर उनकी कथा बड़े विस्तार से ३२ अध्यायों में लिखी गई है। किन्तु केवल १६३१ ई० तक की घट-नाओं की कथा ही इसमें मिलती है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस ग्रन्थ का बड़ा महत्त्व है। बहुत से प्रसंगों का वर्णन बहुत ही सजीव और आँखों देखा है। जयरामपिण्ड्ये का द्वादश भाषा युक्त 'राधामाधव विलासचम्पू' काव्य शाहजी के काल में लिखा गया किन्तु 'पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान' उन्होंने शिवाजी के आश्रय में रहकर लिखा। इस ग्रन्थ की भूमिका में सम्पादक महोदय ने इस बात की संभावना प्रकट की है कि संभवतः उनके और भी इस तरह के ग्रन्थ होंगे।[2] स्वयं कवि ने इस बात का उल्लेख उक्त ग्रन्थ में किया है कि मैंने मराठी और हिन्दी भाषा दोनों में शिवाजी की कथा लिखी है।[3] किन्तु अब वह नहीं मिलती। भूषण भी शिवाजी के दरबार में थे। इन कवियों से भूषण की भेंट हुई या नहीं इस सम्बन्ध में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। किन्तु इन कवियों के काव्य का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट होती है कि तीनों कवियों का आदर्शबिन्दु और लक्ष्य एक ही था। तीनों ने यह स्वीकार किया है कि शिवाजी विष्णु के अवतार हैं। उनका जन्म इसी हेतु हुआ है कि धरती पर बढ़ते हुए पाप को रोककर गौ-ब्राह्मण की रक्षा करें और भारत के प्राचीन आदर्शों की फिर से स्थापना की जाय।

श्री अज्ञेयजी ने लिखा है—"अनुभूति और परिस्थिति में जब विपर्यय, असन्तुलन, या विरोध होता है तब कलाकार अनुभूति पर आग्रह करता है। यदि वह अतिरिक्त आग्रह है तो इसीलिए कि वह सन्तुलन और सामंजस्य का आग्रह है।

---

[1] सभासद बखर, सं० वि० स० वाकसकर, पृ० ७८

[2] पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान, जयराम पिण्ड्येकृत, सं० स० म० दिवेकर, पृ० १

[3] वही, अध्याय १, छं० सं० २६ और ३२

साहित्य अथवा कला के आन्दोलनों का अध्ययन करें तो हम पायेंगे कि यह आग्रह केवल नये युग की विशेषता नहीं हैं। जब-जब परिस्थिति और अनुभूति में ऐसा विपर्यय हुआ है तब-तब ऐसा आग्रह पाया गया है।"[१] यही बात भूषण में भी मिलती है। उनकी अनुभूति परिस्थितियों में विरोध और विपर्यय का अनुभव कर संतुलन और सामंजस्य की दृष्टि से जो आग्रह करती है, वही उनके काव्य की बहुत बड़ी शक्ति है। कलात्मक सौष्ठव की दृष्टि से उनके काव्य में उनकी अनुभूति की यह तीव्रता और शक्ति ही सब से बड़ी चीज है। उनकी यह शक्ति विविध रूपों में व्यक्त हुई है। कहीं वह सीधी प्रशस्तिमूलक ढंग से व्यक्त हुई है तो कहीं वह शत्रु के आतंक चित्रण में, कहीं उसमें कर्मों की सक्रियता का चित्रण है तो कहीं व्यंगमूलक शैली का अनुसरण है, चाहे जिस रूप में अभिव्यक्ति हुई हो, वह स्पष्ट और प्रत्यक्ष चोट करने वाली अनुभूति है। समर्थक सिर हिला सकते हैं और विरोधी तिलमिला सकते हैं। दोनों में दो प्रकार के तीव्र विरोधी भाव पैदा करने में भूषण की कविता समर्थ है।

भूषण का युग हिन्दी साहित्य में रीतिकालीन कविता का युग है। उन पर अपने युग-प्रवृत्ति की छाप है किन्तु यह छाप काव्य के बाह्य वर्ण्य विषय के हद तक ही है। आभ्यंतर वर्ण्य विषय उनका अपना है। बाह्य रूप में उन्होंने रीतिग्रन्थ की ही रचना की है इस दृष्टि से उनके बाह्यांग विवेचन में उन पर तत्कालीन कवियों का प्रभाव रहा है। सब से अधिक वे अपने बन्धु मतिराम से प्रभावित जान पड़ते हैं। अन्य कवियों में केशव का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। वास्तव में हिन्दी में अलंकार या रीति का विवेचन केशव से ही आरम्भ होता है और इसका प्रभाव हिन्दी के उत्तरयुगीन कवियों पर भी बराबर रहा है। भूषण ने रस आदि का विवेचन न कर केवल अलंकारों का ही विवेचन किया है। लक्षणों में उन्होंने "कविन को पथ" अपनाया है। वे मूलतः आचार्य नहीं, कवि ही हैं। उनकी काव्य प्रतिभा का परिचय हमें उनके आभ्यंतर वर्ण्यविषय में मिलता है और इस क्षेत्र में भूषण अपने युग में अकेले हैं।

एक कवि की तुलना अन्य कवि से करना वैसे भी उचित नहीं और फिर सम्पूर्ण वांगमय को दृष्टि में रखकर किसी कवि का स्थान निर्धारित करना और भी दुष्कर कार्य है। महाकवि प्रायः अपने युग की उपज ही होते हैं। कवि की मौलिकता और शक्तिमता काव्य के संकल्पात्मक अनुभूति में ही निहित होती है। अतः इसी को आधार मानकर काव्य-क्षेत्र का निर्धारण कर कवि का मूल्यांकन करना उचित होगा। भूषण का काव्य वीरकाव्य होने पर भी रासो काव्यों से उसकी तुलना नहीं हो सकती क्योंकि रासो के रचयिताओं में और भूषण में युग की परिस्थितियों का

१ आत्मनेपद, अज्ञेय, पृ० १६८ और १६९

जहाँ अन्तर है वहाँ काव्य के संकल्प में भी अन्तर है और दृष्टिकोण में भी। फिर काव्य की पद्धतियों में और भाषा में भी अन्तर है। रासो काव्य प्रबन्धात्मक ढंग से लिखे गए हैं, उनमें वीर रस के साथ श्रृंगार रस भी अंगी रस होकर आया है जबकि भूषण का काव्य मुक्तक पद्धति में लिखा हुआ शुद्ध वीरकाव्य है। भूषण न भक्त थे, न सन्त अतः इन कवियों के साथ भी उनकी तुलना करना श्रेयस्कर नहीं। अपने युग में भी श्रृंगारी कवियों की तरह उन्होंने श्रृंगार रस का काव्य नहीं लिखा। उनके ४० छन्द अवश्य श्रृंगारी मिलते हैं, उन्हें देख कर अवश्य कहा जा सकता है कि यदि वे इस दिशा में भी प्रयास करते तो उनकी प्रतिभा चमक सकती थी क्योंकि उनके ये छन्द पद्माकर, मतिराम और देव के कवित्तों के समकक्ष रखे जा सकते हैं। भाषा, भाव और कला की दृष्टि से वही स्निग्धता इनमें भी मिलती है। किन्तु भूषण का जो मुख्य क्षेत्र है उसमें उनके समकक्ष रखे जाने योग्य और कोई कवि हमें नहीं मिलता। इस युग के वीर कवियों में भूषण के साथ लाल और सूदन का नाम लिया जा सकता है। भूषण के सूदन काव्य में यद्यपि वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है किन्तु उसमें भूषण और लाल के समान युग की चेतना की अभिव्यक्ति नहीं हुई है। अब रहे भूषण और लाल, इनमें भी लाल की अपेक्षा भूषण का पलड़ा भारी है। लाल का काव्य प्रबन्धात्मक ढंग से लिखा होने के कारण कई स्थानों पर वह ऐतिहासिक वृत्त मात्र रह गया है। छन्द निर्वाचन में उन्होंने वीर रस का ध्यान नहीं रखा है। इससे वीर रस की अभिव्यक्ति में बाधा ही हुई है। इस दृष्टि से भूषण ही श्रेष्ठ कवि जान पड़ते हैं। सब से बढ़कर बात है नायक का चुनाव। सूदन और लाल के नायकों की तुलना में भूषण के नायक अधिक लोकप्रिय हैं। तुलसी की महानता राम के नायकत्व में है उसी तरह भूषण की महानता छत्रपति शिवाजी के नायकत्व में है। अन्त में यही कहना है कि जिस क्षेत्र को भूषण ने चुना उस क्षेत्र में अपने युग में वे अकेले हैं। इस दृष्टि से हिन्दी साहित्य में उनका विशिष्ट स्थान बना हुआ है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट : १

चिटणीस बखर का मूल मराठी भाग[१]

१६४—भुखन-कवी हे, दिल्लीस पादशाहपाशीं त्यांचे बंधू चिंतामण कवी मनोरंजन करून होते, त्यांचे घरी असतां, घरांतच राहातांत ऐसे कोणी घरच्यानें म्हटलें। तेव्हां आम्हांस यवनांचे अन्न भक्षावयाचे नाहीं म्हणोन निघून प्रथम कमाहूचे पहाडांतील राजा याजकडे जाऊन बहूत चतुरपणें त्याचें मनोरंजन करीत होत्साते राहिले। त्याणीं यांचा बहूत सन्मान करुन दक्षणा लक्ष रुपए देऊन, दोन्हीं घरांस जाण्याचा निरोप (देते) समयीं दिले। आणि गर्वे करून भाषण केलें की "असा दाता पृथ्वीवर (दुसरा) कोण आहे ?" असें बोलला। ते कवीनें ऐकोन त्याजवरि त्तकाळ उत्तर केले कीं "ऐसे दाते शतभीष्म बहूत आहेत। परन्तु ऐसा याचक कोणी तुम्हीं पाहिला नाहीं कीं लक्ष रुपए तुमचे गर्वोक्तीनें दिल्हें ते तुच्छ आहेत; (असे समजेल) या द्रव्यास आम्हीं स्पर्श करायचे नाही" (असे) म्हणून निघालें, ते दक्षिण प्रांती शिवाजी महाराज यांची कीर्ती श्रवण केली होती। तेथें येऊन महारांजाचीं भेटी घेतली आणि महारांजांस विचारलें की, "यवनांचा शत्रू कोणी असेलत्याजपाशीं आम्हीं राहणार" तेव्हां महाराजानीं उत्तर केले कीं "मी यवनांचा काळ आहे" त्याजवरून महाराजांपाशीं राहून मनोरंजन बहूत प्रकारें कविता करून करिते जाले। आणि महाराजांचा प्रताप पाहून नूतन ग्रन्थ 'शिवभुखन' म्हणून कविता (बद्ध) करिते जाले। महाराजांची मर्जी बहूत प्रसन्न क्षणक्षणाचें ठायी करिते जालें। ऐसी वहिवाट पाँच चार वर्षे जाली। नंतर महाराजांची आज्ञा घेऊन दिल्लीस घरांस जाण्याचा निरोप घेतला। महाराजांनी वस्त्रें भूषणें हत्ती घोड़े जवाहिर लक्षावधी रुपए देऊन पुन्हां येण्याविषयीं सांगितले। आग्रह केला। त्याणीं ही मान्य केले। लौकर येतो असें बोलोन गेले।

---

[१] **मल्हार रामराव चिटणीस विरचित शककर्त्तें श्री शिव छत्रपति महाराज ह्यांचे सप्तप्रकरणात्मक चरित्र। —सम्पादक : रा० ब० काशीनाथ नारायण साने बी० ए० (प्रकाशन तिथि—१६२४), पृ० १८८ और १८६ से।**

१६५—दिल्लीस गेल्यावरीं हे वर्तमान पादशाहांस समजलें कीं भुखन कवी शिवाजी राजे यांजकडून सन्मान पावून आलें। ऐसें ऐकोन त्यांचें बंधू तेथे चितामण कवी यांस आज्ञा केली कीं, "तुमचे बंधू भुखन कवी भेटीस आणावे" त्यांजवरून चितामण कवी यांनी सांगितले कीं, "आमचे यजमान आपणांस बोलांवितात" तेव्हाँ उत्तर केले कीं "आमचे यजमानांचे हे) शत्रु; त्यांचे दर्शन आम्हांस कशाला पहिजे ? आमच्या मुखातून शिवाजीचें प्रतापाहून दुसरे निघावयाचें नाहीं। त्या योगे यांस क्रोध येईल" तेव्हां (चितामण) यांनी बहूत प्रकारें सांगितले व पादशाहास अर्ज केलाजे "कवी दर्शनांस येतील परन्तु शिवाजीचें प्रताप वर्णीतील। आज्ञा जाली तरीं आणू। "पादशाहाने घेऊन यावें आज्ञा केली। त्याजवरून चितामण कवी भुखन कवी यांस घेऊन गेले। भेटी जाली। हुकुम जाला कीं कांहीं वर्णन करावें। तेव्हां याणीं सांगितले कीं 'आपण हात धावून वसावें. आम्हीं वर्णन वीर रस (पर) करूँ, ते समयीं आपला हात मिशांवर जाईल।' तेव्हां हात घुण्याचें कारण काय विचारलें असतां, 'आपणांस शृंगार प्रिय. आमचें बंधू शृंगार रस वर्णितात, तेव्हां आपला हात इजारेस लागतो यांजकरितां हात धोवावा, हात धोवून बसावे " नंतर पादशाहानीं सांगितलें, "जे. आमचा हात मिशांवर न गेला असतां शिरच्छेद करूँ (असें) म्हणून हात धुतला। भुखन कवी यानी कवित्ते म्हणावयांस प्रारम्भ केला। (त्यांत) आधीं महाराजांचा प्रताप वर्णिला तेव्हां 'आम्हांविषयीं कवित्व म्हणावे' सांगितले। आणि 'सार्वभौमपद आमचे, सर्वराजे आम्हांस करभार देऊन मांडलिक होत, ऐसे वर्णावें (अशी. आज्ञा केली असतां, "सर्व पृथ्वीतील राजे पुष्प-वृक्ष होत आणि आपण (पादशाहा) भ्रमर,सर्वांचा मधू सेवन करणार, ऐसे वर्णून त्यांत शिवाजी राजे हे चंपकवृक्ष होत" ऐसे वर्णिले, कीं चंपकास भ्रमर शिवत नाहीं। तेव्हां पुन्हां पादशाहानीं, "हात धुवविला याचें कारण वर्णावे।" सांगितले असतां, साहा कवित्ते उत्कृष्ट वीररस (युक्त) वर्णन केलीं। सातवे कबित्तास पादशाहाचा हात मिशिवर अकस्मात आवेश येऊन जाता जाला। (तें) पाहून कवित्व आटोपिलें। पातशाहा बहुत खूष जाले। आणि सन्मान, बक्षीस, वस्त्रै, जवाहिर, हत्ती दिल्हे। गौरव केला। हे वर्तमान महाराजाकडील वकील यणीं सर्व लिहिलें। त्याजवरून महाराज बहूत प्रसन्न होऊन पुन्हां येण्यांविषयीं पत्रें पाठविली। आणिले।[1]

हिन्दी अनुवाद

१६४—भूषण कवि, ये, दिल्ली के बादशाह के पास उनके बंधु चिंतामणि कवि मनोरंजन करते थे, उनके घर पर रहते हुए, घर में ही रहते हैं, ऐसा किसी

---

[1] **ऊपर कोष्ठकों में जो शब्द हैं, वे चिटणीस बखर के सम्पादक रा० ब० काशीनाथ नारायण साने जी ने पाठ को ठीक करते हुए दिये हैं। ये शब्द मूल प्रति के नहीं हैं।**

घर के व्यक्ति ने कहा। तब हमें यवनों का अन्न भक्षण नहीं करना है, ऐसा कह निकल कर प्रथम कुमाऊँ पहाड़ के राजा के पास जा बहुत चतुराई से उनका मनोरंजन करते रहे। उन्होंने उनका बहुत सम्मान किया, लाख रुपये दक्षिणा दी, दोनों घरों को जाने के लिए विदाई दी और गर्व करते हुए कहा कि ऐसा दाता पृथ्वी पर और कौन है" ? कवि ने सुनकर तत्काल उत्तर दिया कि, "ऐसे दाते शत-भीष्म बहुत हैं परन्तु ऐसा याचक आपने देखा नहीं है। लाख रुपए आपने गर्वोक्ति से दिए हैं, वे तुच्छ हैं। इस द्रव्य को मैं स्पर्श नहीं करूँगा।" ऐसा कह, वे निकले, सो, दक्षिण प्रान्त में, शिवाजी महाराज की कीर्ति श्रवण की, वहाँ आकर महाराजा से भेंट की और महाराजा से पूछा कि, यवनों का जो शत्रु होगा, उसी के पास हम रहेंगे।" तब महाराजा ने उत्तर दिया, "मैं यवनों का काल हूँ।" इस पर महाराजा के पास रहकर मनोरंजन बहुत प्रकार से कविता करते रहे और महाराजा का प्रताप देखकर नूतन ग्रन्थ 'शिवभुखन' नाम से कवितावद्ध किया। महाराजा की मरजी क्षण क्षण में प्रसन्न रखी। ऐसा क्रम पाँच चार बरस चला। पश्चात् महाराजा की आज्ञा लेकर दिल्ली को घर को जाने की बिदाई ली। महाराजा ने वस्त्र, आभूषण, हाथी घोड़े, जवाहर लाखों रुपये देकर पुन: आने के सम्बन्ध में कहा। आग्रह किया। उन्होंने मान्य किया। जल्दी आऊँगा ऐसा कह चले गये।

१६५—दिल्ली जाने के बाद ये समाचार बादशाह को मालूम हुआ कि भूषण कवि शिवाजी राजा से सम्मानित होकर आए हैं। ऐसा सुन उनके बन्धु चिंतामणि कवि को आज्ञा दी कि "तुम्हारे बन्धु भूषण कवि को भेंट के लिए लाओ" इस पर चिंतामणि कवि ने कहा कि, हमारे यजमान आपको बुलाते हैं। तब उत्तर मिला कि, "हमारे यजमान के शत्रु, उनका दर्शन हमें क्यों करना चाहिए ? हमारे मुख से शिवाजी के प्रताप को छोड़कर दूसरा कुछ नहीं निकलेगा। इससे उनको क्रोध आएगा।" तब चिंतामणि कवि ने बहुत प्रकार से कहा और बादशाह को अरज किया, "कवि दर्शनार्थ आएँगे परन्तु शिवाजी के प्रताप का वर्णन करेंगे। आज्ञा हो तो लाऊँ।" बादशाह ने ले आवें, आज्ञा दी। इस पर चिंतामणि कवि भूषण कवि को लेकर गए। भेंट हुई। हुक्म हुआ कि कुछ वर्णन करें। तब इन्होंने कहा कि, "आप हाथ धोकर बैठें, हम वर्णन वीर रस का करेंगे, उस समय आपका हाथ मूँछों पर जाएगा।" तब हाथ धोने का कारण क्या है पूछने पर, आपको श्रृंगार प्रिय, हमारे बन्धु श्रृंगार रस का वर्णन करते हैं, तब आपका हाथ पाजामें को लगता है। इसीलिए हाथ धोना, हाथ धोकर बैठना। अनन्तर बादशाह ने कहा, "जो, हमारा हाथ मूँछों पर न जाय तो शिरच्छेद करेंगे।" कहकर हाथ धोया। भूषण कवि ने कवित्त कहना प्रारम्भ किया। प्रथम महाराजा के प्रताप का वर्णन किया तब, "हमारे विषय में कवित्त कहें।" कहा और "सार्वभौमपद हमारा, सर्व राजा करभार देकर मांडलिक बने हुए हैं, ऐसा वर्णन करें।" आज्ञा करने पर.

"धरती के सभी राजा पुष्प वृक्ष हैं और आप (बादशाह) भ्रमर, सब का मधु सेवन करने वाले, ऐसा वर्णन कर उनमें शिवाजी राजा चम्पक वृक्ष हैं।"[१] ऐसा वर्णन किया कि चम्पक को भ्रमर छूता नहीं। तब बादशाह ने फिर, "हाथ धुलवाया इस पर वर्णन करें।" कहने पर वीर रस युक्त उत्कृष्ट छः कवित्त कहे। सातवें कवित्त में बादशाह का हाथ अकस्मात् मूँछो पर आवेश में आने से चला गया। ये देख कवित्त समाप्त किए। बादशाह बहुत खुश हुए और सम्मान, पुरस्कार, वस्त्र, जवाहर, हाथी दिए। गौरव किया। ये समाचार महाराजा के वकील ने सब लिखा। इस पर महाराजा बहुत प्रसन्न होकर पुनः आने के लिए पत्र भेजे। ले आए।

---

१ भूषण के ये कवित्त इस प्रकार हैं :—

(१) केतकी भो राना और बेला सब राजा भए,
ठौर-ठौर रस लेत नित यह काज है।
सिगरे अमीर भए कुन्द मकरन्द-भरे,
भृंग सो भ्रमित लखि फूल की समाज है॥
भूषन भनत सिवराज देस देसन की,
राखी है बटोरि एक दक्खिन में लाज है।
तजत मलिंद जैसे-तैसे तजि दूर भाग्यौ,
अलि अवरंगजेब चंपा सिवराज है॥

(२) कूरम कमल, कमधुज है कदम्ब फूल,
गौर है गुलाब राना केतकी बिराज है।
पाँडरि पँवार जुही सोवत है चंदावत,
बकुल बुँदेला अरु हाड़ा हंसराज है॥
भूषन भनत मुचकुंद बडगूजर है,
बघेले बसंत सब कुसुम समाज है।
सब ही को रस लैके बैठि न सकत आय,
अलि अवरंगजेब चंपा शिवराज है॥

—भूषण, पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, छं० सं० ४४० और ४४१

परिशिष्ट : २

सहायक पुस्तकें

१. संस्कृत पुस्तकें

१. काव्य प्रकाश:—मम्मटाचार्य विरचित, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, सं० डा० नगेन्द्र ।
२. चन्द्रालोक—जयदेव ।
३. दशरूपक—धनंजय, व्याख्याकार डाक्टर भोलाशंकर व्यास ।
४. पर्णालपर्वतग्रहणाख्यान—जयरामपिण्ड्येकृत—संपादक : सदाशिव महादेव दिवेकर (भारत इतिहास संशोधक मण्डल, पूना) ।
५. राधामाधवविलासचम्पू-जयरामपिण्ड्येकृत—सम्पादक : विश्वनाथ कशीनाथ राजवडे (चित्रशाला छापाखाना, पूना) ।
६. शिवभारत-परमानन्दकविकृत—सम्पादक : सदाशिव महादेव दिवेकर, शक संवत् १८४६ (भारत इतिहास संशोधक मण्डल, पूना) ।
७. साहित्यदर्पण—विश्वनाथ-(विमला व्याख्या)—चतुर्थ संस्करण, १९६१ ।
८. हिन्दी कुवलयानन्द— अप्पयदीक्षितकृत, सम्पादक एवं व्याख्याकार—डाक्टर भोलाशंकर व्यास ।
९. हिन्दी रसगंगाधर—पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी—ना० प्र० सभा, काशी ।

२. हिन्दी पुस्तकें

१. अनुसन्धान की प्रक्रिया—सं० डाक्टर (श्रीमती) सावित्री सिन्हा और डाक्टर विजयेन्द्र स्नातक (प्रथम संस्करण : १९६० ई०) ।
२. अलंकार पीयूष—डाक्टर रमाशंकर शुक्ल रसाल (द्वितीय आवृत्ति), १९५४ ई० ।
३. अलंकार प्रकाश—मुरलीधर कवि भूषण कृत—संपादक : कैप्टन शूरवीरसिंह पँवार (प्रथम संस्करण : १९६३ ई०)
४. आत्मनेपद—अज्ञेय (प्रथम संस्करण : १९६० ई०) ।

५. आधुनिक समीक्षा—डाक्टर देवराज (प्रथम संस्करण : १९५१ ई०)।
६. औरंगजेब—यदुनाथ सरकार (प्रथम संस्करण : १९५१ ई०)।
७. इण्डियन इफीमरीज—दीवान बहादुर स्वामी कन्नु पिल्ले (भारत इतिहास संशोधक मण्डल, पूना)।
८. काव्य निर्णय—आचार्य भिखारीदास, सम्पादक : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।
९. काव्य में उदात्त तत्त्व—लोंजाइनस, अनुवादक : डाक्टर नगेन्द्र (प्रथम संस्करण : १९५८ ई०)।
१०. कुमायूँ—राहुल।
११. केशव और उनका साहित्य—डा० विजयपालसिंह (प्रथम संस्करण : १९६१ ई०)।
१२. खोज रिपोर्ट—हस्तलिखित ग्रन्थों का पन्द्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण (सन् १९३२ से सन् १९३४ तक) सम्पादक : डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ना० प्र० सभा, काशी।
१३. श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन—डा० जयराम मिश्र।
१४. चिन्तामणि, भाग १—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—१९६२, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।
१५. डिंगल में वीर रस—श्री मोतीलाल मेनारिया।
१६. दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक—डा० त्रिभुवनसिंह।
१७. दिग्विजयभूषण—सम्पादक : डाक्टर भगवतीसिंह।
१८. धर्मशास्त्र का इतिहास—डाक्टर पाण्डुरंग वामन काणे।
१९. नैतिक जीवन का सिद्धान्त—जॉन डेवी—अनुवादक : कृष्णचन्द्र।
२०. प्राचीन भारतीय साहित्य—विंटरनित्ज, अनुवादक : लाजपतराय।
२१. पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा—सम्पादिका : डाक्टर (श्रीमती) सावित्री सिन्हा।
२२. बिहारी—पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र।
२३. बिहारी रत्नाकर—जगन्नाथदास रत्नाकर।
२४. बुन्देलखंड का संक्षिप्त इतिहास—गोरेलाल तिवारी (ना० प्र० सभा, काशी)।
२५. ब्रजभाषा—डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा।
२६. भूषण—पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र (प्रथम संस्करण : संवत् २०१०)।
२७. भूषण ग्रन्थावली—बाबू ब्रजरत्नदास (दूसरा संस्करण, १९५० ई०)।
२८. भूषण ग्रन्थावली—मिश्रबन्धु (सातवाँ संस्करण, २०१५), ना० प्र० सभा, काशी।
२९. भूषण ग्रन्थावली—टीकाकार पं० राजनारायण शर्मा, हिंदी भवन, इलाहाबाद।

३०. भूषण विमर्श—पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित (प्रथम संस्करण : संवत् १९९५)।
३१. मतिराम कवि और आचार्य—डा० महेन्द्रकुमार।
३२. मतिराम ग्रन्थावली—पं० कृष्णबिहारी मिश्र (तृतीय आवृत्ति : १९५१ ई०)।
३३. मथुरा जिले की बोली—डा० चन्द्रभान रावत (प्रथम संस्करण: १९६७ ई०)।
३४. मध्यकालीन साहित्य में अवतारवाद—डा० कपिलदेव पाण्डेय।
३५. मानव मूल्य और साहित्य—डा० धर्मवीर भारती।
३६. मराठों का इतिहास—गोविन्द सखाराम सरदेसाई, अनुवादिका : श्रीमती रामेश्वरी देवी श्रीवास्तव।
३७. मराठों का नवीन इतिहास, भाग २—गोविन्द सखाराम सरदेसाई।
३८. मराठी का भक्ति साहित्य—प्रो० मी० गो० देशपाण्डे।
३९. मराठों का इतिहास—ग्राण्ट डफ, अनुवादक : कमलाकर तिवारी।
४०. महाकवि भूषण—पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित (प्रथम संस्करण : १९५३ ई०)
४१. महाराजा छत्रसाल बुन्देला—डा० भगवानदास गुप्त।
४२. मुगल दरबार, भाग १—बाबू ब्रजरत्नदास।
४३. मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण—इन्द्र विद्यावाचस्पति (दूसरा संस्करण : १९४९ ई०)।
४४. मुरलीधर कवि भूषण कृत—छन्दोहृदय प्रकाश—सम्पादक : प्रो० विश्वनाथ प्रसाद (के० एम० मुन्शी आगरा विद्यापीठ, आगरा)।
४५. रस कलश—अयोध्यासिंह उपाध्याय, पुस्तक भण्डार, पटना-४।
४६. रस सिद्धान्त—डा० नगेन्द्र।
४७. रस मीमांसा—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
४८. रस सिद्धान्त का स्वरूप और विश्लेषण—डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित।
४९. राजनीति और दर्शन—डा० विश्वनाथप्रसाद वर्मा।
५०. राजस्थान का इतिहास—जेम्स टॉड, अनुवादक : केशवकुमार ठाकुर।
५१. रामचरितमानस—गीता प्रेस, गोरखपुर (मँझला साइज)।
५२. विनयपत्रिका—गोस्वामी तुलसीदास (वियोगी हरि की टीका)।
५३. वीरकाव्य—डा० उदयनारायण तिवारी।
५४. शिवाजी—यदुनाथ सरकार (तृतीय संस्करण : १९५९ ई०)।
५५. सूर की भाषा—डा० प्रेमनारायण टण्डन।
५६. संस्कृत साहित्य का इतिहास—ए० बी० कीथ—अनुवादक : मंगलदेव शास्त्री (प्रथम संस्करण : १९६०)।
५७. संस्कृत के चार अध्याय—डा० रामधारीसिंह 'दिनकर' (तृतीय संस्करण : १९६२)।
५८. सौन्दर्य तत्त्व—डा० सुरेन्द्रनाथदास गुप्त, अनुवादक : डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित।

५९. हिन्दी अलंकार साहित्य—डा० ओ३म्प्रकाश ।
६०. हिन्दी नवरत्न—मिश्रबन्धु (सप्तम संस्करण : २०१२ संवत्) ।
६१. हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास—श्री जितेन्द्रनाथ पाठक ।
६२. हिन्दी वीरकाव्य—डा० टीकमसिंह तोमर (प्रथम संस्करण : १९५४ ई०) ।
६३. हिन्दी व्याकरण—श्री कामताप्रसाद गुरु (संशोधित संस्करण : संवत् १९७७)
६४. हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २—श्रृंगार काल—पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ।
६५. हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (प्रथम संस्करण : १९५२) ।
६६. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (नौवाँ संस्करणः संवत् २००९) ना० प्र० सभा, काशी ।
६७. हिन्दी साहित्य का इतिहास—सर जार्ज ग्रियर्सन, अनुवादक : किशोरीलाल गुप्त (प्रथम संस्करण : १९५७ ई०) ।
६८. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, प्रथम भाग—सम्पादक : श्री राजबली पाण्डेय, ना० प्र० सभा, काशी ।
६९. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग ६—सम्पादक : डा० नगेन्द्र, ना० प्र० सभा, काशी ।
७०. हिन्दी साहित्य कोश—सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा (प्रथम संस्करण : संवत् २०१५) ।
७१. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ।
७२. हिन्दुस्तान के निवासियों का इतिहास—डा० ताराचन्द (१९४९ ई०) ।
७३. हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद—श्री राधाकुमुद मुकर्जी (१९५७ ई०) ।

३. मराठी पुस्तकें

१. ऐतिहासिक पोवाडे किंवा मराठ्यांचा काव्यमय इतिहास—यशवन्त नरसिंह केलकर—प्रकाशन तिथि : १९२८ ई० ।
२. काव्येतिहाससंग्रह—प्रकाशन तिथि : १८८९ ई० ।
३. छत्रपति शिवाजी महाराज—श्री दिनकर विनायक काले (द्वितीय संस्करण : १९६१ ई०) ।
४. मराठी रियासत-शककर्त्ते शिवाजी—गोविन्द सखाराम सरदेसाई (प्रकाशन तिथि : १९३५ ई०) ।
५. मराठ्यांच्या इतिहासांची साधने-खण्ड चवथा—विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे (प्रकाशन तिथि १९००, चित्रशाला छापाखाना, पुणें) ।

६. मल्हार रामराव चिटणीस विरचित शककर्त्ते श्री शिवछत्रपति महाराज ह्यांचे सप्तप्रकरणात्मक चरित्र—सम्पादक : रा० ब० काशीनाथ नारायण साने, प्रकाशन तिथि : १९२४ ई० ।
७. रायगढ़ची जीवनकथा—शान्ताराम विष्णू आवलसकर (हस्तलिखित प्रति)।
८. शिवचरित्र निबन्धावली—सम्पादक : नरसिंह चिन्तामण केलकर आणि दत्तात्रय विष्णू आपटे-शके १८५१ ।
९. शिवचरित्र प्रदीप—दत्तात्रय विष्णू आपटे और सदाशिव महादेव दिवेकर द्वारा सम्पादित, प्रकाशन तिथि: शके १८४७ ।
१०. शिवचरित्र वृत्त संग्रह (३ रा खण्ड, फारसी विभाग)—सम्पादक : गणेश हरि खरे ।
११. शिवकालीन शकावली—शंकरनारायण जोशी ।
१२. सभासद बखर—कृष्णाजी अनन्त सभासदांची बखर कथित छत्रपति श्री शिवप्रभुचे चरित्र—सम्पादक : वि० स० वाकसकर (प्रथम संस्करण : १९५७) ।
१३. सम्पूर्ण भूषण—सम्पादक : रामचन्द्र गोविन्द काटे (प्रथम संस्करण : १९३०)
१४. सौन्दर्य आणि साहित्य—बा० सी० मर्ढेकर (द्वितीय आवृत्ति : १९६० ई०) ।
१५. श्रीमद्भगवद्गीतारहस्य अथवा कर्मयोगशास्त्र—बाल गंगाधर तिलक (आठवीं आवृत्ति : १९६३ ई०) ।

४. अंग्रेजी पुस्तकें

१. शिवाजी सावनेर, टरसेंच्युरी सिलेब्रेशन्स, बाम्बे, ३ मई १९२७. एडिटेड—जी० एस० सरदेसाई ।
२. दी आउटलाइन ऑफ दी हिस्ट्री—एच० जी० वेलस०

५. पत्र-पत्रिकाएँ

१. आलोचना २२ वाँ और ३० वाँ अंक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६७, अंक २, काशी नागरी प्रचारिणी, काशी ।
३. सम्मेलन पत्रिका—भाग ४७, अंक २ और ४, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
४. साहित्य सन्देश—मार्च १९५६ और नवम्बर १९५५ ई०, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा ।
५. त्रिपथगा—जनवरी १९६२ ई०, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ ।
६. सरिता—फरवरी १९६२, दिल्ली ।

नामानुक्रमणिका

(ग्रन्थ, लेखक एवं ऐतिहासिक व्यक्ति)

सूचना : (१) नामों के आगे दी हुई संख्यायें पृष्ठ संख्यायें हैं।
(२) रचनाओं (ग्रन्थों) के नाम मोटे टाइप में छपे हैं।
(३) ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम के आगे 'ऐ०' लिखा हुआ है, शेष नाम लेखकों या ग्रन्थकर्त्ताओं के हैं।